





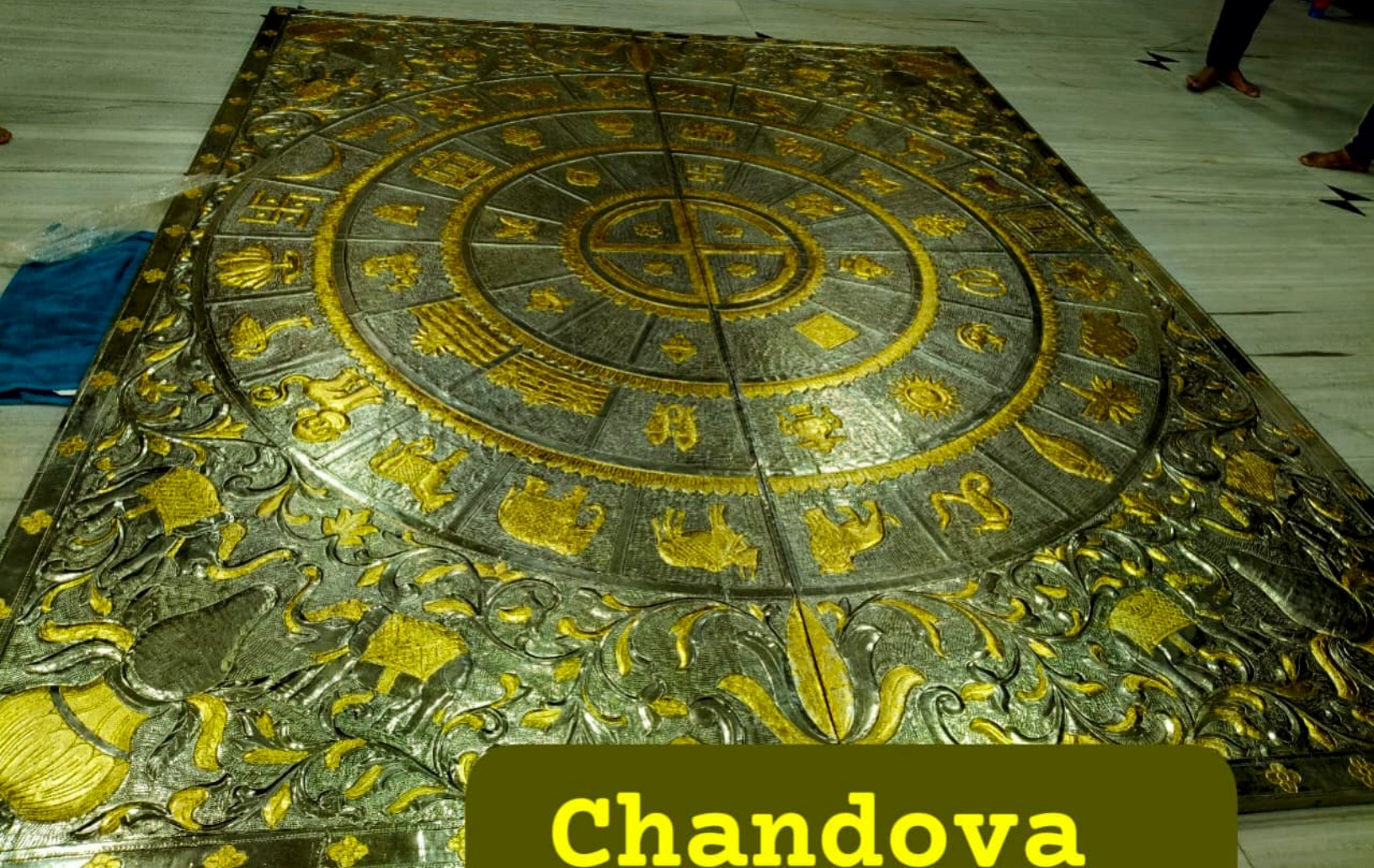
०२११ ॥ ०५॥ २०२०॥ दीर्घ अर्चना ॥ २०२० ॥ २०२० ॥ ८००१ ॥ १०००॥

साइज 3/3 फीट,
9993602663



9993602663

9993602663

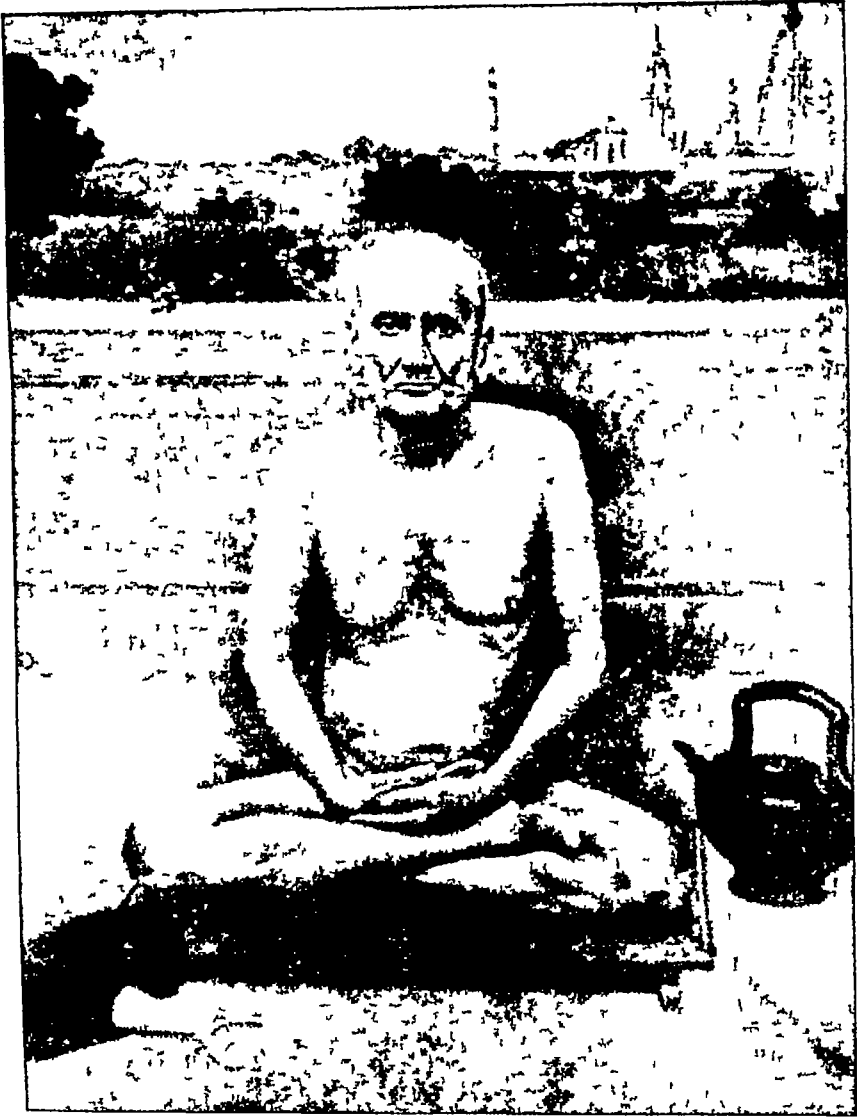


Chandova



पालकी
साइज 22/42 इंच
हैवी नक्काशी
9993602663

आध्यात्मिक ज्योति



चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शातिसागरजी महाराज

आध्यात्मिक ज्योति



धर्मदिवाकर सुमेरुचन्द्र दिवाकर

बी ए , एलएल बी , शास्त्री, न्यायतीर्थ

सिवनी (म.प्र.)

आध्यात्मिक ज्योति

- लेखक : सुमेरुचन्द्र दिवाकर, सिवनी
- प्रस्तुति : डॉ चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
- संस्करण : द्वितीय, ३५०० प्रतियाँ, श्रुतपंचमी, वि स २०५७, ६ जून २०००
- संकल्पना : निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर ॐ ४४०५७८
- मुद्रक : हिन्दुस्तान प्रिन्टिंग हाउस, जोधपुर ॐ ४३३३४५
- अर्थ सौजन्य
- १ कान्ति भाई जवेरी
C/o निहालचन्द गिरधारीलाल जवेरी
९८, जवेरी बाजार, मुम्बई - ४०० ००२
 - २ श्री दिगम्बर जैन समाज
C/o श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन पचायत
मदनगज-किशनगढ (राज)
 - ३ घाटलिया ताराचन्द दाडमचन्द
जैन ब्रदर्स, ग्राम-पारसोला, तहसील-धरियावद
जिला-उदयपुर (राजस्थान)
 - ४ कुन्थीलाल बैद, चिरजीलाल पाटनी
फर्म - धर्मसागर मार्बल, मदनगज-किशनगढ (राज)
 - ५ (ब्र) इन्द्रसेना जैन
आर-२, राज विश्वविद्यालय परिसर, जयपुर (राज)
 - ६ मदनलाल डूगरमल गगवाल, डेह वाला
बी-३/३८३, पहली मजिल, पश्चिम विहार, नई दिल्ली
 - ७ ब्र गोपीचंदजी छाबडा (चदलाई वाले)
फर्म-निर्मलकुमार छाबडा, अकुर इण्डस्ट्रीज, रायपुर (म प्र)
 - ८ नन्दलालजी मागीलालजी छाबडा
किराडा बडा निवासी, डीमापुर (नागालैण्ड)
- प्राप्ति स्थान राजकुमार दोसी
सचिव, आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट
'कुन्दनम्', २४/२५ माहेश्वरी कॉलोनी
रवीन्द्र रगमच के पास, मदनगज किशनगढ (अजमेर)
ॐ ४५१५१, ४५१४१ (नि), ४५१२१, ४५१३१ (ऑ)

❖ आभार ❖

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के दीर्घ सान्निध्य का मुझे इस जीवन में सुअवसर मिला था। आचार्यश्री बस आचार्यश्री ही थे, उनके गुण उन्हीं में थे। उस अद्वितीय विभूति की प्रेरणास्पद जीवनचर्या हम सबके लिए प्रेरक बने, इसी उद्देश्य से मेरी भावना प सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर की कृति 'आध्यात्मिक ज्योति' को पुनर्प्रकाशित कर वितरित करने की हुई, जिसकी पूर्ति वर्तमान सघनायक पू आचार्य श्री वर्धमानसागरजी के एव सघ के आशीर्वाद से आज हो रही है। मैं आचार्यश्री एव समस्त सघ के प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूँ।

इस कृति की सशोधित पाण्डुलिपि मुझे प सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर के अनुज श्री अभिनन्दनकुमार जी दिवाकर के सौजन्य से प्राप्त हुई, एतदर्थ मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ।

प्रकाशन में सहयोगी सभी दातार एव अन्य महानुभाव मेरी बधाई के पात्र हैं।

- कान्तिभाई जवेरी, मुम्बई

卐 卐 卐

अभिनन्दनकुमार दिवाकर

एम ए , एलएल बी
एडवोकेट

व २०१०९

दिवाकर मदन

गाँधी चौक,

मिवनी (म प्र) ४८०६६९

卐 प्रणति 卐

आर्ष परम्परा के महान् पुनर्स्थापक, भ्रमणराज चारित्र्यचक्रवर्ती
आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज की अग्रतिष्ठ सल्लेखना के उपरान्त
आदरणीय पूज्य बड़े भाईसाहब श्री मुमेरुचन्द्र दिवाकर द्वारा लिखित
ग्रन्थ आध्यात्मिक ज्योति का पुनर्प्रकाशन पूज्य आचार्यश्री
वर्धमानसागरजी महाराज के अज्ञोवांढ अनुकम्प्य से हो रहा है. यह
प्रसन्नता की बात है। उन महर्षि साधुराज का पुण्य- जीवन आज धर्म और
सामाजिक संस्कृति में व्याप्त विसर्गतियों एवं विषमताओं का मेरी दृष्टि में
पूर्ण समाधान है।

ग्रन्थप्रकाशन हेतु पूज्य आचार्यश्री के प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता
व्यक्त करता हूँ।

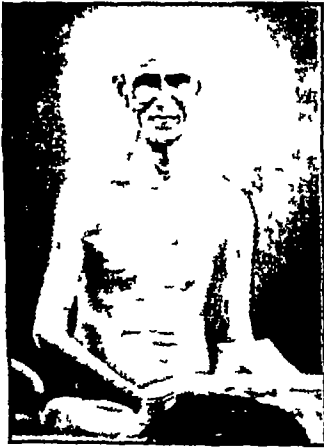
गुरु-चरण-सेवक
अभिनन्दन दिवाकर



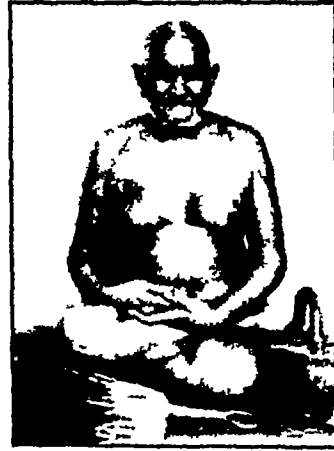
चारित्र्यचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज



आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज



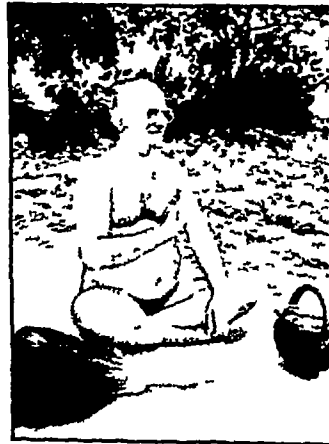
आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज



आचार्यश्री धर्मसागरजी महाराज



आचार्यश्री अजितसागरजी महाराज



आचार्यश्री वर्धमानसागरजी महाराज

卐 समर्पण 卐

जिन्होंने ब्रह्मत्व की उपलब्धि हेतु राग-द्वेष आदि अन्तरंग
तथा वस्त्रादि बाह्य परिग्रह का परित्याग कर विशुद्ध
दिगम्बरत्व अंगीकार किया,
जो भोगाकाक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रिय प्रतीत होने वाली
प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मशोधन की
मगल साधना में सलग्न है,
जो काम, क्रोध, मोह, माया आदि दुर्गति के द्वार रूप
अनिष्ट प्रवृत्तियों से अभिभूत नहीं है,
जो ससार-परिभ्रमण से मुक्ति-प्राप्ति के लिए विवेकपूर्वक
पुरुषार्थ-निरत है,
जो भौतिकता के मोहक जाल से ग्रस्त इस विश्व में
कल्पनातीत से प्रतीत होते हैं,
जो अतीत युग के ऋषिराज कुण्डकुण्ड, समतभद्र,
अकलक आदि मुनीन्द्रो एव वर्तमानकालीन
योगिराज शातिसागर महाराज सद्गुरु रत्नत्रय
ज्योति के पदचिह्नों पर चल रहे हैं और
जिनके ज्योतिर्मय जीवन से ही
‘आध्यात्मिक-ज्योति’
द्वैदीप्यमान हुई,
उन्हीं ज्ञान, ध्यान एव तप में अनुरक्त तथा
विषयों की आशा से रहित
विद्यमान निर्ग्रन्थों के
पावन कर-कमलों में —

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

५ मंगल-स्मरण ५

अर्हत्पिद्धाचार्योपाध्याया. सर्वमाधव ।

कुर्वन्तु मङ्गला. सर्वे निर्वाणपद्मश्रियम् ॥१॥

मंगलमय सम्पूर्ण अहन्त भगवान्, मिद्ध भगवान्, आचार्य उपाध्याय
और माधु पद्मेष्टी हमे मोक्षरूप श्रेष्ठ लक्ष्मी प्रदान करे ।

अनन्त-विज्ञान-मनन्तवीर्यता-मनन्तमौख्यत्व-मनन्तदर्शनम् ।

विभर्ति योऽनन्त-चतुष्टयं विभुः स नोऽस्मिन्नाति भवदुःख-गांतये ॥२॥

वे भगवान् ज्ञान्तिनाथ हमारे ममाग के दुःखों को जात करे, जिनके
अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य अनन्तमुख तथा अनन्तदर्शन रूप अनन्त चतुष्टय
विद्यमान हैं ।

य स्मर्यन्ते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैश्च स्तूयन्ते सर्वनरामरेन्द्रे ।

यो गीयते वेद-पुराण-शास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममाम्ताम् ॥३॥

जो सर्व मुनीन्द्र समुदाय द्वारा स्मरण किये जाते हैं, सर्व मनुष्यों और
देवताओं के शिरोमणि जिनकी स्तुति करते हैं, जिनका वेद पुराण तथा शास्त्रों
में गुण गाया गया है, वे देवाधिदेव जिनेन्द्र, मेरे हृदय में विराजमान हों ।

जनताभिमतार्थकरं मुखदं भवभीति-हरं कृतमिद्धपदम् ।

परमं शिव-सौध-निवासकरं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥४॥

मैं जीवों के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले आनन्ददायी, ससार के भय का
निवाण करनेवाले, मोक्षपद प्रदान करनेवाले, मुक्ति मंदिर में निवास करने वाले
अत्यन्त विशुद्ध चरित्र को प्रणाम करता हूँ ।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः ।

दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥५॥

वह श्रेष्ठ केवलज्ञान ज्योतिः जयवन्त हो, जिसमें समस्त पदार्थ अपनी
अनन्त पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होते हैं, जिस प्रकार दर्पण में अन्य पदार्थ
झलका करते हैं ।

॥ आमुख ॥

भौतिक विज्ञान की ध्यान में हमने जितने लोग हम चौकन्नी सतान्त्री को मानव के बौद्धिक विज्ञान का महान् युग मानते हैं। वे मानते हैं कि आज स्वर्ण, रम्य, घाण, नेत्र तथा वर्ण इन पाँचों इन्द्रियों को परितुष्टि प्रदान करने के साधनों की अद्भुत वृद्धि हुई है। आध्यात्मिक दृष्टि वाला व्यक्ति मोक्षता है कि वर्तमान युग ने मनुष्य की वामनाओं को जगाकर उसे भयंकर बन्दी बना लिया है। कोई व्यक्ति ब्रह्म दी बनाया जाता है, उसमें उमकी मजबूरी कारण पड़ती है। कोई जवाहरमय शक्ति फिर पर गव्या मानी है। इसमें मनुष्य कागवाम का कष्ट भोगता है। यदि उमका चम चले, तो उसे उस चमचम को दूर करके तनिक भी देर न लगेगी। यह वामना की दायता अद्भुत है। इसमें मनुष्य मनुष्य अपने को बन्धनबद्ध बनाकर दुःखी होता है।

एक कवि एक भ्रमर के रूप में विषयामय जीव का चित्रण करता है।^१

“सौम्य पान का लालुपी एक भ्रमर मंजु की सुगन्ध में मग्न होता हुआ सूर्यास्त के समय कमल के बाहर नहीं आता है। मृग्य के अमृतगत होने पर भ्रमर कमल के भीतर बैठे हुए आनन्द का अनुभव करता है और मन में मोक्षता है—‘ओ! रात्रि जीघ्र ही व्यतीत होगी। पुनः सुप्रभात आयेगा। प्रिय प्रभाकर का पुनः दर्शन होगा, उम समय इस कमल का मुख खिल जायेगा।’ इतने में कोई गजगज उम मरोच में घुसकर उम कमल को तोड़कर उदग्म्य करता है और स्वर्णिम स्वप्नों के सौन्दर्य में निमग्न भ्रमर की जीवन लीला समाप्त हो जाती है।” उम भ्रमर के ममान ही मनुष्य का जीवनप्रदीप अकस्मात् बुझ जाता है और उसका मनुष्यजन्म समाप्त हो जाता है।

मोह के बन्धन से क्रियाविहीन बने भ्रमर के विषय में कवि के ये शब्द अत्यन्त मार्मिक हैं -

१ गत्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभात,
भास्वानुदेयति हसिम्यति पङ्कजश्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोपगते द्विरेफे,
एव हन्त हन्त नलिनी गजमुज्जहार ॥

बन्धनानि किल मंति वह्नि,

मेह-गजुकृत-बंधनमन्यत ।

दानभेदनिपुणोपि षडंघ्रि.,

निष्क्रियो भवति पंकजवद्ध . ॥

— बन्धन तो अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु प्रेम की गजु द्वारा निर्मित बन्धन सबसे निगला है। कमल के प्रेमबन्धन में बद्ध भ्रमर, यद्यपि काष्ठ में छेद करने की क्षमता से सम्पन्न रहता है, परन्तु पञ्ज के मध्य में निष्क्रिय बन जाता है।

पचाध्यायी में लिखा है— कि “यह प्राणी यथार्थ में विश्व में भिन्न है, किन्तु समस्त विश्व को मोहवश अपनाता हुआ देखा जाता है।” मोह के कारण जब यह विविध पदार्थ-मालिका के साथ समता के माध्यम में आत्मरूपता स्थापित करता है, तब उन पदार्थों के अनुकूल परिणाम पर यह आनन्द की कल्पना करता है और उनके विपरीत परिणाम पर दुःखी होता है। तत्त्वज्ञान के प्रकाश में समता के केन्द्र इस जीव के समान उन सचेतन-अचेतन पदार्थों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, अतः उनके अनुकूल-प्रतिकूल परिणाम पर इस ज्ञानी आत्मा को अपना सन्तुलन नहीं खोना था, किन्तु क्या किया जाय, यह मोह की वाग्णी पान करने से विवेकहित स्थिति को प्राप्त करता है। फलतः ‘मेग’-‘मेग’, (मे-मे) कहनेवाले अज (बक्रे) के समान काल रूप भेड़िया (वृक) इसको मार डालता है। कवि कहता है -

अजनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे ।

इति मे मे कुर्वाणं कालवृको हंति पुरुषाजम् ॥

व्यावहारिक दृष्टि में मोचा जाय, तो प्रतीत होगा कि यह मानव संग्रह की दूषित भावना से प्रेरित हो, इतना धन-वैभव एकत्र करने में मलग्न रहता है, जितना यह सैकड़ों भवों में भी नहीं भोग सकेगा। इसे प्राग्भ में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रहता है, किन्तु जहाँ आवश्यकता की पूर्तियोग्य परिस्थिति आई, वहाँ तृष्णा की बीमारी उसे घेर लेती है तथा अनिश्चित भविष्य की भीतिवश यह संग्रह-मूर्ति बनता चला जाता है। उस स्वार्थ के नशे में यह दूम्पों के कष्टों की ओर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करता है। दूम्पों को अपने स्वार्थपूर्ति का साधन बनाने में उसे जग भी सकोच नहीं होता है। यह सब होते हुए भी आकुलताओं की सीमातीत वृद्धि होने से इसका मन अशान्ति का केन्द्र बन जाता है। अविद्या के कारण यह जीव इस मत्त पर दृष्टिपात ही नहीं करता

हे कि परिग्रह की वृद्धि में इसकी अगान्ति बढ़ गयी है तब फिर या' तथा पांग्या' पिडाच से अपना पिण्ड छुड़ाने का उद्योग नहीं करता है? पूज्यपादग्वामी ने छोपदेश में लिखा है -

आरभे तापकान्प्राप्तावतृप्ति-प्रतिपादकान् ।

अन्ते मुदुस्त्यजान् कामान् कामं क. मेवते मुधीः ॥१७॥

— विषयभोग प्रारम्भ में सन्ताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनकी उपलब्धि के लिए परिश्रम किया जाता है। अनुकूल सामग्री प्राप्त होने पर अमनोप वा भाव जागृत होता है, पश्चात् उन विषयों का नशा ऐसा चढ़ता है कि उनका त्याग करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। कौन विवेकी व्यक्ति होगा, जो इन विषयों को अभिक्. मंनन करेगा?

कभी-कभी सत्पुरुषों का सुयोग प्राप्त होने पर यह भानव अपनी मलिन प्रवृत्तियों के दोषों को जान जाता है, किन्तु वे प्रवृत्तियाँ छूटती नहीं हैं। इस सम्बन्ध में यह शिथिलाचारी व्यक्ति कहता है- “ मे तो इन बुराइयों को छोड़ने को तैयार हूँ किन्तु क्या करूँ, ये प्रवृत्तियाँ मुझे नहीं छोड़ती। ” ऐसे लोगों की वृद्धि को ठिकाने लगाना अत्यन्त कुशल व्यक्ति का काम है। कहते हैं, गुजरात में एक सहृदय साधु पहुँचे। उन्होंने काठियावाड़ के कुछ ठाकुरों को दारु (मद्य) त्यागने को कहा। एक ने कहा-“ मे तो दारु त्यागने को तैयार हूँ, किन्तु क्या किया जाय, यह दारु मुझे नहीं छोड़ती। ” साधु ने ठाकुर से कहा-“कल आकर मिलो, फिर विचार करेंगे।” दूसरे दिन प्रभात में ठाकुर वहाँ पहुँचा। ठाकुर ने आवाज लगाकर महाराज को बुलाया। वे स्वामीजी कहने लगे-“क्या बताऊँ, मैं तो आना चाहता हूँ, किन्तु इस घर के खम्भे ने मुझे पकड़ लिया है।” ऐसा कहते हुए वे दोनों हाथों से एक खम्भे को पकड़े हुए थे। ठाकुर ने कहा-“खम्भे से हाथ हटाइये।” हाथ हटाते ही स्वामीजी खम्भे से छूट गए। उन्होंने ठाकुर से पूछा-“क्यों भाई! खम्भे ने मुझे पकड़ा था, या मैंने उसे पकड़ा था।” ठाकुर महोदय ने तुरन्त कह दिया-“खम्भे ने आपको नहीं पकड़ा था। आपने ही स्वयं उसे पकड़ा था।” इस पर स्वामीजी ने समझाया कि इसी प्रकार दारु ने तुम्हें नहीं पकड़ा है, किन्तु तुमने उसको पकड़ लिया है। ठाकुर को अपनी भूल समझ में आ गई और उसने उम व्यसन को सदा के लिए छोड़ दिया। इसी प्रकार मनुष्य यदि अपनी मानसिक दुर्बलता को दूर कर सत्संकल्प का आश्रय ले, तो सहज ही अनेक हानिप्रद प्रवृत्तियों को छोड़ सकता है। जैनधर्म इसी कारण जीव के सुख-दुःख, उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व दूसरे पर न लादकर जीव को ही दोषी कहता है।

वर्तमान युग का मानव लौकिक जगत् में अलौकिक कार्य करता सा दिखाई देता है, किन्तु विषयो की दासता के परित्याग के क्षेत्र में वह आगे बढ़ने के स्थान में पीछे हटता जा रहा है। एक सर्वजनसम्मत रात्रिभोजन की प्रवृत्ति की हानि पर विचार किया जाय, तो शास्त्रों से भी महान्, अनुभव तथा प्रत्यक्ष बोध द्वारा इसकी हानि का सबको पता है, फिर भी साधन सम्पन्न व्यक्ति भी इस आदत से नहीं छूटता। एक बात “बालभारती” में छपी थी-“एक बार एक लडकी उस दूध को पी गई, जिसमें एक मक्खी गिर गई थी।” रात्रि को भोजन करने में ऐसी बातें अनेक बार हो जाती हैं, क्योंकि सूर्यप्रकाश के अभाव से दीपक के उज्जले में अनेक कीड़े स्वयं भोजन में आकर आत्मसमर्पण करते हैं। कभी-कभी उनका शरीर स्थूल रहा, तो दृष्टिगोचर हो गए और बहुधा छोटे शरीर वाले हुए, तो पता भी नहीं चलता कि रात्रिभोजन में उनका क्या हो गया। “उस लडकी ने बिना देखे दूध को पी लिया। मरी मक्खी पेट में चली गई। उससे उस लडकी का बुरा हाल हुआ। वह मर गई। डाक्टरों ने उसकी बीमारी समझने का प्रयत्न किया था, किन्तु पता नहीं चल पाया। जब उसके शव की परीक्षा की गई, तब पता चला कि मक्खी जहरीली थी। उसके साथ जहरीले कीटाणुओं ने शरीर में प्रवेश किया था।”

(बालभारती १९५५ पृष्ठ २२)

हिन्दी जगत् के सुपरिचित विद्वान् प० रामनरेश त्रिपाठी ने नवनीत बम्बई में वैदिक मिशनरी “प० रुचिराम की मक्का यात्रा” एक लेख छपाया था, उसमें उन्होंने लिखा था-“अदन में दो माह रहने के बाद पंडित रुचिराम जी जुकार मुकाम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने दो दिन का पानी भर लिया। बहूओं ने उनकी केटली में ऊँटनी का दूध भर दिया। कुछ खजूर भी दिए। चलते-चलते वे रास्ता भूल गए और शाम को एक जंगल में जा निकले। उन्होंने लकड़ियाँ जमाकर आग जलायी, खाना पकाया। चाय पी और वहीं सो गए। आधा दूध सोते समय पी लिया और आधा रात्रि में जब प्यास लगी, तब पी लिया। सबेरे उनको जोर का बुखार चढ़ आया। केटली को देखा, तो सारी केटली चींटियों से भरी थी। बुखार का कारण समझ में आ गया। आधी रात के दूध में चींटियाँ भी थीं, जिन्हें वे पी गए थे।”

(नवम्बर १९०८)

इन उदाहरणों के प्रकाश में विवेकी मानव अपना कर्तव्य सोच सकता है। धर्म के नाम पर न सही, अपने हित के नाम पर तो ऐसे बहुत से नियमों को सहज ही अपना

मकता है, किन्तु विषयासक्ति के बागण मनुष्य विवर्तन में विमुक्त होने का पुष्पार्थ नहीं करता है और देव की गोद में बच्चे की तरह सोया करता है। आत्मनिष्कार के लिए गीता का यह उपदेश विश्व के लिए हितपद है -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव हात्मानो बन्धुर्गर्त्मव रिपुरात्मनः ॥५, अध्याय ६ ॥

— अपने द्वारा अपनी आत्मा का उद्धार करें और अपनी आत्मा को अभोगति में न पहुँचावे, क्योंकि जीवात्मा आप ही अपना मित्र है, आप ही अपना शत्रु है। यह जीव आत्मशक्ति तथा कर्तव्य को भूलकर स्वयं का शत्रु बन रहा है। यह अपने अभुज्य नगजन्म को विषयभोग में व्यतीत करता है।

बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः ।

वृद्धस्तावत् चिन्तामग्न परमे ब्रह्मणि कोपि न लग्नः ॥^१ ✓

इसका भाव इस हिन्दी पद्य में दिया गया है :-

खेलकृद में बीता बचपन, रमणी राग रंग-रत यौवन ।

जेष समय चिन्ता में डूबा, इससे हो कब ब्रह्माराधन ॥

जिस प्रकार कुम्भकार का चक्र पूर्व संस्कार के प्रभाव में पुनः गमन हेतु प्रेरणा न मिलने पर भी भ्रमण करता है, इसी प्रकार जिनके पास आत्मशोधन तथा जीवन को विशुद्ध बनाने योग्य सर्व प्रकार की अनुकूलता रहती है, वे कीर्ति की लालसा से बाहर से आकुलताओं को खरीदने का प्रयत्न करते हैं और दोष कर्मों को देते फिरते हैं। कवि भूधरदास जी ने लिखा है- “सुबुद्धि रानी से उमकी एक सखी कहती है, कि तेरा पति आत्मदेव दुःखी हो रहा है। वह तो बहुत अच्छा है, किन्तु इस पुद्गल (जड तत्त्व) ने उसे कष्ट में डाल दिया है।” कवि के शब्दों में -

कहै एक सखी सुन सी सुबुद्धि रानी ।

तेरा पति दुःखी देख लागे उर आर है ॥

महा अपराधी एक पुद्गल है छहो माहि ।

सोई दुःख देत दीखे नाना परकार है ॥

✓^१ भज गोविन्द स्तोत्र-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (पृ०७)

अपने पति की दूषित वृत्ति की आलोचना करती हुई सुबुद्धि देवी न्यायपूर्ण वात कहती है, कि मेरा पति ही अपने दु ख का बीज बोता है। उमका दोष दूसरे के अग्र लादना ठीक नहीं है। सुबुद्धि की अपनी प्रिय सखी से अपने पति की कटु समालोचना कितनी सत्य है, यह प्रत्येक तत्त्वज्ञ सोच सकता है -

कहत सुबुद्धि आली कहा दोष पुद्गल को।

अपनी ही भूल लाल होत आप खवार है ॥

खोटो दाम आपनो सराफै कहा लगे वीर।

कोउ को न दोष मेरो भोंदू भरतार है ॥

अविद्या के कारण इस जीव की रुचि इतनी विकृत हो गई है कि यह आत्मा के अहितकारी कार्यों में आनन्द की कल्पना करता है। यह बालू को पेल तेल पाने को महाकष्ट उठाता है, किन्तु बालू के भीतर तेल का अभाव होने से वह उद्योग व्यर्थ जाता है, इसी प्रकार बाह्य पदार्थ में आनन्द न होने से उसकी वहाँ खोज सर्वदा निराशा रूप में ही परिणत होती है।

अमेरिकन दार्शनिक इमरसन ने कहा है- “एक समय अनेक लोगो ने बहुत शस्य-श्यामला भूमि पर अधिकार जमाया। वे अपनी जागीर में घूमते हुए गर्व का अनुभव कर रहे थे। वे कहते थे यह भूमि तो हमारी है।” उस समय पृथ्वी से प्रतिध्वनि उत्पन्न हुई -

‘ They call me theirs
Who so controlled me,
Yet everyone
Wished to stay, and is gone,
How am I theirs ?
If they cannot hold me
But I hold them? ,

— जिन्होंने मुझ पर अधिकार जमाया, उन्होंने कहा-‘यह पृथ्वी हमारी है।’ प्रत्येक ने चाहा कि वह यहाँ निवास करे, किन्तु वह चला गया। बताओ! मैं उनकी किस प्रकार हूँ? वे मुझे पकड़ नहीं सकते, किन्तु मैं ही उनको अपने आधीन करती हूँ।

विश्व का सर्वोच्च प्रहरी हिमालय बता सकेगा, कि इस भारत देश पर तथा

दूसरी जगह अपना प्रभुत्व जमाने कितने व्यक्ति, जातियो आदि का पदार्पण नहीं हुआ और अब उनका नाम भी ज्ञात नहीं है, इतिहास के पृष्ठों में जिन देशों की पुगलन युग में वैभवपूर्ण स्थिति बताई जाती है, वहाँ बिनाश तथा ग़न्यता का अखण्ड साम्राज्य है।

महाकवि जिनसेन ने महापुराण में बताया है कि चक्रवर्ती भगतेश्वर विविध देशों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त वृषभाचल नामक एक सुन्दर पर्वत के मर्मोप पाहुँचे। उस समय तक भरतराज अपने को विश्व में अप्रतिम पृथ्वीपति मानते थे, किन्तु उम पर्वत के पास पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि असह्य शासक इस पृथ्वी के स्वामी बने थे और वे सब चले गए। उम पर्वत पर परम्परा के अनुसार प्रतापी नरेश चक्रवर्ती का नाम उत्कीर्ण रहता है, उस क्रम के अनुसार पर्वत पर अपने नाम की प्रगल्भि अंकित करने को भगतेश्वर तैयार हुए। महाकवि कहते हैं- “चक्रवर्ती भगत ने वाकिणी रत्न लेकर ज्योंही वहाँ लिखने की इच्छा की, त्योही उन्होंने वहाँ हजारों चक्रवर्ती गजाआ के नाम अंकित देखे। असाख्यात करोड कल्पों में जो चक्रवर्ती हुए थे, उन सबके नामों से भरे हुए उस वृषभाचल को देखकर भरत को बहुत ही विस्मय हुआ। तदनन्तर जिसका गर्व कुछ दूर हुआ है ऐसे चक्रवर्ती ने आश्चर्ययुक्त होकर इस भरतक्षेत्र की भूमि को अनन्य-शासन-अन्य के शासन रहित नहीं माना।”^१ उस समय चक्रवर्ती भगतेश्वर के अन्त करण में याद बात अंकित हुई कि विश्व के मध्य उसकी असाधारण स्थिति नहीं है। जब तक मोह का नशा नहीं उतरता, तब तक मनुष्य अद्भुत कल्पनाजाल में स्वयं को केदी बनाया करता है।

मोह पिशाच के द्वारा छला गया जीव प्रभुता पाकर स्वयं का पतन करते हुए दूसरों की दुर्गति का भी कारण बनता है। उदाहरणार्थ वाममार्गियों का प्रश्रय पाकर धर्म का कितना विकृत रूप बनाया गया कि उसका विचार करते ही सच्चे धर्मवालों के हृदय पर वज्रपात सा होता है। इम वाममार्ग के मुख्य केन्द्र विक्रमशिला काश्मीर तथा बगाल थे। श्री के एम पनिक्कर ने लिखा है कि वाममार्ग के केन्द्रस्थलों की बड़ी दयनीय स्थिति

१ काकिणी रत्नमादाय यदा लिलिखित्ययम्।

तदा राजमहस्राणा नामान्यत्रैक्षताधिराट् ॥१४॥

असह्यकल्पकोटीषु येऽतिक्रान्ता धराभुज ।

तेषा नामभिराकीर्णं त पश्यन् विमिष्ये ॥१४२॥

तत किंचित् स्खलद्गर्वो विलक्षीभूय चक्रिराट्।

अनन्यशासनामेना स मेने भरतावनीम् ॥१४३॥ पर्व ३२

थी- “एक माधु गगन की बोलत महित विक्रमशिला के विश्वविद्यालय में पाया गया। इस सबध में पूछे जाने पर उमने कहा कि वह मदिग उमें उमकी प्रेयमी भिक्षुणी ने दी थी। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उमके विरुद्ध अनुज्ञामन की कार्यवाही करने का जब विचार किया, तब विश्वविद्यालय के सदस्यों में दो पक्ष हो गए। इस प्रकार काफी झगडा बढ़ गया। इन लोगों की आगधना मांस, मीन, मदिग, तथा स्त्री-मेवन की अनुज्ञा थी। मनुष्य बलि तक विधेय थी। इनके ग्रन्थ में यह उल्लेख आया है कि पूजा में नग्मांस भी आवश्यक था, जिसे वे लोग महाप्रसाद कहकर उदगम्य करते थे। मदिग के साथ मानव-रक्त भी पिया जाता था।” ✓

आज भी कभी-कभी पत्रों में ऐसा वर्णन पढ़ने में आ जाता है कि “अमुक साधु के वेषवाले व्यक्ति ने बच्चों को उडाकर उनका वध करके अपनी नग-रक्त प्रेमी देवी का आशीर्वाद प्राप्त किया।” ऐसे लोग भी अपने को महान् धर्म का अंग कहते हैं।

शान्तभाव में धर्मों के इतिहास का परिशीलन करने वाले को यह स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसी पतनकारी प्रवृत्तियों के कारण ही मत्वा धर्म भी लांछित किया जाने लगा और उमी का यह परिणाम है कि जन-साधारण का हृदय धर्म के बंधन से विमुक्त रहने में अपना कल्याण सोचता है। लोग अपनी भोगलिप्सा की पूर्ति के लिए धर्म तथा उसके आश्रयरूप देवी, देवताओं को उन बातों से अभिभूत बताते हैं, जिन दुर्बलताओं में मोही मानव व्यथित हो रहा है। उदाहरणार्थ किसी तम्बाखू प्रेमी कविगज ने यह कविता बना दी कि कृष्णमहागज भी तम्बाखू खाते थे-

1 In religion also this degeneration was apparent. The Left Hand Marge had taken deep roots and a nursery for it existed at Vikramasila. Kashmere and Bengal The following incident, which took place in Vikramsila will show how deep was the cancer which had eaten into the vitals of national life

A priest studying at the university was discovered with a bottle of wine When asked he stated that it was given to him by a nun whom he used to meet The authorities of the university decided to take disciplinary action but on this the members of the university split into two factions and great trouble followed

Every thing was permitted in this worship-fish flesh wine, women Even human-sacrifice was allowed One passage would seem even to indicate that human flesh was also used in worship and consumed as Mahaprasad Blood of men along with wine was also used

'A SURVEY OF INDIAN HISTORY K M Panikkar P.105

कृष्ण चले बैकुण्ठ को राधा पकड़ी बाँह ।

यहाँ तमाखू खाय लो, वहाँ तमाखू नाहि ॥

एक कवि कहते हैं कि भगवान ब्रह्मदेव से पूछा गया, कि इस जगत में सार रूप कौन पदार्थ है? उस समय अपने चारों मुखों से भगवान ने कहा कि तमाखू ही साररूप पदार्थ है ।

ऐसा ही काल्पनिक चित्रण अनेक विलासी तथा व्यसनी लोग करते हैं । भगवान के नाम पर लोग अपनी विषय लोलुपता की पूर्ति करते हैं । ऐसे कार्य का दुष्परिणाम क्या होगा, यह विलासी लोग नहीं सोचते हैं । (खोजा समाज के गुरु आगाखान जी भरकर शराब पीते हुए कहते हैं, 'The wine turns in to water as soon as it touches my mouth' (John Gunther Inside Asia, p 485) जिस समय शराब मेरे कंठ में पहुँचती है, उस समय वह जल रूप में परिवर्तित हो जाती है ।)

गीता में नरक अवस्था में जीवात्मा के पतन के त्रिविध तमोद्वारों का इन शब्दों में कथन किया गया है -

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१-अध्याय १६

- नरक के तीन द्वार कहे गए हैं- काम, क्रोध तथा लोभ । इनके द्वारा आत्मा का अधःपतन होता है, इससे इन तीनों का त्याग करना चाहिए । दिगम्बर जैन मूर्तियों में शांति, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य का दर्शन स्पष्ट रूप से होता है ।

यदि हम शान्त भाव से विचार करें, तो उपर्युक्त उक्ति अक्षरशः सत्य प्रतीत होगी । इनमें सर्वोपरि स्थान लोभ का है । जैन पूजा में कहा है “लोभ पाप का बाप बखाना” अंग्रेजी में सूक्ति है- “No vice like avarice” आज भारत राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गया है, किन्तु वह लोभ के जाल में भयंकर रूप से पराधीन हो गया है । अहिंसा का पुण्य नाम लेने वाला शासन मासाहार तथा जीववध को प्रेरणा देता है । जीववध द्वारा वह धनसंचय करने के पथ में लग रहा है । जीवघात द्वारा धन कमाना धीवर, कसाई आदि का कार्य रहा है । अहिंसावादी शासन जीवघात द्वारा गरीबी दूरकर संपन्नता का स्वप्न देखता है । यह भयंकर भ्रम है । अहिंसावादी रहते हुए गरीबी वरदान है । शीलवती महिला फटे वस्त्रों में रहती हुई भी रत्नालंकृत वेश्या से अनन्त गुनी अच्छी है । शासन अव्यवस्था के द्वारा धन का अपार अपव्यय करता है तथा धनलाभ के लिए वह धर्म-अधर्म की तनिक खबर नहीं रखता है ।

१ नागपुर २० अक्टूबर १९८३ के दैनिक नवभारत में कांग्रेसी सरकार की नृचना छपी थी- बन्दर मार्गे इनाम लो। प्रत्येक बन्दर मार्गे पर ५) तथा ५ ने अधिक बन्दर मार्गे पर १) की दर से पुरस्कार दिया जावेगा। जो व्यक्ति ५ ने कम बन्दर मार्गे पायेगा उसे कोई पुरस्कार नहीं दिया जायेगा।”

शान्तिन द्वारा निर्दोष जीवों की हत्या द्वारा पैना पाने के आकांक्षी व्यक्तियों का हृदय पथर का बन जाता है फिर वे अपनी क्रूरता द्वारा मानव समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं, बड़े-बड़े हत्याकांड ऐसी ही द्वारा हो जाते हैं। अतः शान्तिन को गहराई से मोचना चाहिए। देश को विपत्ति के गर्त में गिरने से बचना चाहिए। देश के पुगतेन गांव को याद करना चाहिए।

सन् १९८८ के ६ फरवरी के हितवाद में लन्दन का समाचार छपा था कि भारत की हाईकमिश्नर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने दयाप्रेमी अंग्रेजों का एक शिष्टमण्डल मिला था, उसने निवेदन किया था कि लन्दन के बन्दरगाह पर से दो वर्षों में एक लाख बन्दर अमेरिका भेजे गए थे- ‘The deputation pointed out that in last two years hundred thousand monkeys have passed through London airport for the United States’ दयाप्रेमी शिष्टमण्डल ने बन्दरों को न भेजे जाने की प्रार्थना की थी। उन बन्दरों का नाश वैज्ञानिक कार्यों में किया जाता था।

बम्बई के मुख्य मंत्री ब्राह्मण जातीय म्ब खेर ने मछली के मांस की स्तुति करते हुए उसे खाने को प्रेरणा की थी। वर्ष १९६० के आरम्भ में धार्मिक परिवार में जन्म धारण करने वाले गवर्नर श्रीप्रकाशजी ने अण्डा खाने का उपदेश दिया था। सामाजिक का महत्त्व बताने का प्रचार कार्य भारत शान्तिन का खाद्य विभाग करता है। स्वतन्त्र भारत में भयकर रूप से जीव-वध शान्तिन के कारण बढ़ता जा रहा है यह महानु दुःख की बात है। दया प्रचार का जोगदार प्रयत्न राष्ट्रहितार्थ आवश्यक है, अन्यथा हिंसा भयकर विपदाओं का हेतु बनेगी।

ये गणतंत्र शासन के वाहक जिनको पिता, बापू कहकर देशवासियों के समक्ष अपने को गाँधीभक्त सूचित करते हैं, उन गांधीजी के ही उपदेश पर यदि दृष्टि दे, जो उन्होंने सन् १९४६ में अमेरिकावासियों को दिया था, तो इनकी श्यामवृत्तियों में शुभ्रता का पदार्पण हो सकता है, “मेरा ख्याल है कि अमेरिका का भविष्य उज्ज्वल है। वह धन को उसके सिंहासन से हटाकर ईश्वर के लिए थोड़ी जगह खाली करे। लेकिन अगर वह धन की ही पूजा करता रहा, तो उसका भविष्य अन्धकारमय है, फिर लोग चाहे जो कहे। धन आखिर तक किसी का सगा नहीं रहा है। वह हमेशा बेबफा (बेईमान) दोस्त साबित हुआ है।” (१९-१०-१९६० नई दिल्ली, प्रेस्टन ग्रोवर के साथ बातचीत में)। भारत देश ने त्याग तथा त्यागी की पूजा की है। यदि उसका मार्गदर्शन करने वालों ने अपना रवैया न बदला, तो या तो वे देश को विनाश की स्थिति में पहुँचा देंगे अथवा जनता को अधर्म की ओर ले जाने वालों का साथ छोड़ना पड़ेगा।

मनुष्य जीवन अल्पकाल स्थायी है। शीघ्र ही सावधानीपूर्ण प्रवृत्ति का आश्रय करना श्रेयस्कर है। स्वामी विवेकानन्द उपनिषद् का यह वाक्य अपने श्रोताओं को सुनाया करते थे - “त्यागेन अमृतत्व आनश्नु” त्याग के द्वारा अमृतत्व (Immortality) की प्राप्ति होती है। समझ में नहीं आता कि गाँधीवादी भारत के भाग्यविधाताओं का ध्यान सादगी की साकार मूर्ति सेवाग्राम की कुटी की ओर क्यों नहीं जाता? लुई फिशर ने गाँधीजी के विषय में लिखा है- ‘Gandhi is the symbol of lifelong renunciation and dedication’ - गाँधीजी आजीवन त्याग तथा आत्मसमर्पण के प्रतीक रूप थे।

दो हजार वर्ष पूर्व ग्रीस देश सभ्यता तथा समृद्धि के शिखर पर था। उस देश की अप्रतिम विभूति सुकरात का जीवन सार्वजनिक शान्ति के मार्ग को सूचित करता हुआ प्रतीत होता है। जहाँ आज तरह-तरह की आवश्यकताओं को उत्पन्न करके उनकी पूर्ति हेतु कल, कारखानों तथा उनके लिए धन सग्रह के लिए भारत लालायित है, वहाँ सुकरात कहता था- “जितनी जरूरतों को तुम कम करोगे, उतना ही तुम परमात्मा के सदृश बनोगे।” “The fewer our wants, the more we resemble gods”

सुकरात ने आवश्यकताओं को अल्पतम करते हुए जीवन व्यतीत करने का अभ्यास कर लिया था। सुकरात बाजार में जाकर विविध विक्रय-योग्य वस्तुओं को

✓ He trained himself to live in the most frugal manner ‘How many things I can do without’ he would exclaim on looking at the goods exposed for sale in the market-places ‘The Paths of Peace’ by H Bellis

देखकर मोचता था इनमें सज्जन-सज्जन पदार्थों के बिना मग काम चल सकता है? जब समाज में त्यागी पुष्पों में वृद्धि होती है तब गण उन्नत होता है। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में लोकमान्य तिलक देवबधु चित्तरजनदान मोतीलाल नेहरू लाला लाजपत राय आदि महनीय विभूतियों के त्याग के फलस्वरूप गांधीजी ने भारत को विजय दिलाया था।

आज त्यागियों 'Selfless' का स्थान Selfish स्वार्थी लोगों ने ग्रहण किया है और वे स्वार्थी लोग मछली बेचने का (Sell Fish) धन्धा करने लगे।

इस हिमा के कारण देश की जनता सुखी नहीं है यद्यपि बहाने द्वारा तथा कल्पित आँकड़ों के आधार पर अथवा अन्य लोगों की सम्मतियों बताकर हमें बच्चों की तरह समझाया जाता है कि अब तुम्हारी हालत बहुत अच्छी हो गई है तुम उन्नत हो रहे हो। यह भी विनोदप्रद बात है। क्षीण शरीर व्यक्ति में यदि बल की वृद्धि होती है उसका वजन बढ़ता है, तो क्या उसे मालूम नहीं पड़ता? क्या उसे समझाया जाता है कि तुम अब स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रगति कर रहे हो? यदि देश भौतिक विकास में सुखी हो रहा है, तो उसका अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? क्यों महंगाई का ज्वालामुखी मचाने में लग रहा है। किमी ने व्यंग्यात्मक भाषा में कहा है-

देश हुआ आजाद अब कीमत भी आजाद।

जी भर बढ़ने दो उन्हें क्यों करते जग्याद ॥

वास्तव में, ज्ञान्ति और उन्नति का मार्ग आत्मा के गुणों को विकसित करना तथा विलासिता से विमुख होना है। जब मनुष्य भोग विलास की ओर कदम बढ़ाता है, तो वह कुछ काल के पश्चात् पतन को प्राप्त करता है। विलासपुरी का निवासी 'विक्रामनगर' से दूर होता हुआ 'विनाशपुर' के निकट पहुँचता है। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि विषयों के दाम दीपक के पास दौड़कर आने वाले पतंगा की दशा को प्राप्त करते हैं। विषयजनित आनन्द कृत्रिम (artificial) है। उसमें स्थायीपन नहीं है। वह विपत्ति प्रचुर भी है। स्वावलम्बन तथा सदाचार द्वारा उपलब्ध आनन्द अपूर्व होता है।

समंतभद्र स्वामी ने मधवनाथ भगवान के स्तवन में इन्द्रियजनित सुख की मीमांसा करते हुए लिखा है-

गतहृदोन्मेषचलं हि मौख्यम्, तृष्णामयाप्यायनमात्र हेतुः।

तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रम्, तापस्तदायामयतीत्यवादी ॥३॥

— भगवन्! आपने यह कहा है कि इन्द्रियो से उत्पन्न होनेवाला मुख त्रिजली की चपक के समान क्षणस्थायी है। वह मुख तृणा रूपी गेह का एक मात्र फल है। उसके सेवन करने से विषयो की लालसा बढ़ती है। यह तृणा की वृद्धि निरन्तर सतप्त करती है। उसी कारण यह सताप जगत् को कृषि वाणिज्यादि कार्यों में पवृत्त करके अनेक प्रकार के कष्टों से दुःखी बनाता है।

जिस ३० जनवरी १९४८ के दिन गोडसे ने गोली मारकर गांधी जी की जीवन-लीला समाप्त की थी, उमी दिन के प्रभातकाल में वे शायर के इस गीत को ध्यान से सुन रहे थे-

है वहारे बाग दुनिया चंद रोज ।

देख लो इसका तमाशा चन्द रोज ॥

— यह जगत् एक वगीचे के समान है, जिसमें सौगंध तथा सोन्दर्य थोड़ी देर निवास करते हैं। यह स्थायी आनन्द का स्थल नहीं है। इसका तमाशा कुछ समय पर्यन्त रहा है, उसे देख लो। वह आसक्ति के योग्य नहीं है। उपर्युक्त उद्गार गांधी जी की समाधि भूमि पर अंकित रखने योग्य है।

इस क्षणिक आनन्द तथा वैभव के पीछे मनुष्य तो क्या साम्प्रतिक संपत्ति का उत्तराधिकारी यह देश भी आँख बन्दकर सुख-प्राप्ति के मार्ग पर दौड़ लगा रहा है। भारतवासियों को- शासकों तथा शक्तिशालियों को महाभारत के शान्तिपर्व में प्रतिपादित भीष्म की पुण्य वाणी ध्यान में रखना चाहिए-

“धर्मेण निधनं श्रेयः, न जयः पापकर्मणा ।”

—धर्म (अहिंसात्मक जीवन) के साथ मृत्यु अच्छी है, पाप कार्यों के द्वारा विजय भी बुरी है। ✓

पाप की आधार शिला पर अवस्थित अभ्युदय वास्तविक आनन्द और शान्ति से दूर रहता है। किसी भवन की नींव में यदि मुर्दा डाल दिया जाये और ऊपर दया के देवता का मंदिर बनाया जाय, तो क्या उस स्थान पर भगवती अहिंसा का निवास होगा? दया के देवता के मंदिर की नींव में रक्त नहीं, प्रेम का अमृत सींचा जाना चाहिए। मनुष्य

✓ "Death through Dharma is better than victory through a Sinful act "
 — The Mahabharata Condensed Madras P401

का कर्तव्य है कि वह अपना 'स्व' अपने शरीर तथा परिवार को ही नहीं मानकर प्राणीमात्र को अपना सोचे तथा माने। सच्ची करुणा की सृष्टि में सम्पूर्ण जीव समान दिखते हैं। माता को सुस्वादु वस्तु अपने बच्चों को खिलाने में जितना आनन्द आता है, उतना आनन्द अकेले अपना पेट भरने में नहीं आता।

जो व्यक्ति नकली नहीं, असली आनन्द चाहता है, उसे अपने आपको समुद्र की तरह गभीर तथा विशाल बनाना चाहिए। रवि बाबू ने विश्वकवि की प्रतिष्ठा के अनुरूप ये शब्द कहे थे- “महाशान्ति महाप्रेम, महापुण्य महाप्रेम।” महान् प्रेम ही महान् पुण्य है, उसके समीप ही महा शान्ति का निवास रहता है। (योगसूत्र में लिखा है- “अहिंसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्यागः” (सूत्र ३५, द्वितीय पाद) अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर उसके सन्निधान होने पर (“सहजविरोधीनामहिंसाकुलादीना वैरत्यागः”) निसर्गविरोधी सर्प-नकुलादि जीवों में वैरभाव छूट जाता है।)

अहिंसा की सुव्यवस्थित रीति से श्रेष्ठ साधना का मार्गदर्शन जैनग्रन्थों में किया गया है। अहिंसा की सफल साधना करने वालों में चौबीसवे तीर्थंकर भगवान महावीर कैवल्यप्राप्ति के पश्चात् मगधदेश की राजधानी राजगृह के विपुलाचल पर आए थे। उस समय भगवान के समवसरण में विद्यमान पशुओं में अद्भुत मैत्री की ज्योति जगी थी। जिनसेन स्वामी ने महापुराण में उस मैत्री की एक मधुर झोंकी इस प्रकार दी है। सम्राट् श्रेणिक (बिम्बसार) ऋषिराज गौतम गणधर से कहते हैं-

सिंह-स्तनन्धयानत्र करिण्य. पाययन्यमू.।

सिंहधेनुस्तनं स्वैरं स्पृशन्ति कलभा इमे ॥२-१३॥

- प्रभो ! इधर ये हथिनियाँ सिंह के बच्चों को अपना दूध पिला रही हैं तथा सिंहिनी के स्तनों का दूध हाथी के बच्चे स्वेच्छा से पी रहे हैं।

सम्राट् श्रेणिक पुन कहते हैं -

तपोवनमिदं रम्यं परितो विपुलाचलम्।

दयावनमिवोद्भूतं प्रसादयति मे मन ॥२-१७॥

- नाथ! विपुलाचल के चारों ओर का यह तपोवन बड़ा रमणीय है। यह मुझे दयावन के रूप में उत्पन्न हुआ अत्यन्त प्रिय लगता है।

अहिंसा आध्यात्मिक तथा लौकिक उन्नति की जननी सदृश है। जिनेन्द्र भगवान

के एक हजार आठ नामों में 'महादय' शब्द आया है। उसका भाव है कि भगवान् महादया युक्त है। उनको 'महोदय' भी कहा है, क्योंकि उनका उदय अर्थात् उनकी उत्पत्ति भी महान् है। 'महान् दया' का 'महान् उदय' के साथ संबंध है। भगवान् को 'महादम' - महाइन्द्रिय विजेता भी कहा है, क्योंकि उत्पत्ति का आरम्भ इन्द्रियविजय तथा आत्म निर्मलता द्वारा सम्पादित होता है।

काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि विकारों के कारण ही यह जीव अविनाशी आनन्द को नहीं प्राप्त कर पाता। अवोध बालक मिट्टी के ढेर में अवर्णनीय सोन्दर्य तथा विभूति की कल्पना करके प्रसन्न होता है, पश्चात् ज्ञान के विकास होने पर उसे अपनी भूल तथा भोलेपन का पता चलता है, इसी प्रकार मोह रूपी अन्धकार के दूर होने पर मनुष्य को वस्तुस्थिति का सम्यक् अवबोध होता है। इस मोह के कारण लौकिक विद्या के महान् विद्वान् तथा सर्व प्रकार के वेभवादि सम्पन्न प्राणी अज्ञवत् चेष्टा करते हैं। जब यह जीव चित्तन अवस्था में पदार्थों के तथा अपने स्वरूप पर विचार करता है, तब यह सोचता है कि मैं अब तक गहरे अन्धकार में था, जो मैंने अपने आत्मस्वरूप को नहीं जाना।

विश्व के महापुरुष आत्मा के ज्ञान को सुख का मूल बीज बताते हैं। 'आत्मान विद्धि'। (Know Thyself) आदि शब्द उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं। सर्वथा एकाकी जीवन बिताने वाला चीनी महापुरुष कम्प्यूशस कहता था - "मैं पहले अपने को भलीभाँति जानना चाहता हूँ। मेरा अनुभव है कि अपने को जानना बड़ा कठिन कार्य है।" जैन महर्षि कुन्दकुन्द ने लिखा है -

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।

भाविय-सहावपुरिसो विसएसु विरज्जे दुक्खं ॥६५॥ मोक्षप्राप्त

- इस आत्मा का ज्ञान बहुत कठिनता से होता है। आत्म-बोध होने पर उसकी भावना कठिन कार्य है। आत्मा की भावना करने वाला पुरुष बड़ी कठिनता से विषयो से विरक्त होता है।

आत्मस्वरूप की उपलब्धि के लिए विशेष ज्ञान भी आवश्यक है। ऐसे जीव जिनके मन नहीं है, आत्मोपलब्धि के उद्योग से वंचित हो जाते हैं। मनुष्य जीवन में सहज ही सर्व प्रकार की अनुकूल सामग्री है, किन्तु यह जीव भूल जाता है कि यदि मैंने शीघ्र हित सम्पादन नहीं किया, तो जीवन सूर्य अस्तङ्गत हो जायगा। इमरसन ने लिखा

है- 'Life is too short to Waste' "जीवन इतना थोड़ा है कि उसमें मैं क्षणभंग भी बर्बाद नहीं किया जा सकता।" अतः आत्मविक्रम की ओर ध्यान जाना चाहिए। अमली आनन्द का भण्डार बड़े भवनो तथा धौतिक विक्रम-केंद्रों में नहीं है, आत्मा को महान् बनाने में व्यक्ति तथा गृह का हित है। पश्चिम के एक विद्वान् ने यह अधिप्राय व्यक्त किया है कि शानन के नागरिकों के घरो की छतों को ऊँचा करने में गृह की उतनी सेवा तुम नहीं कर सकते, जितनी कि उनकी आत्मा को विशाल बनाकर कर सकते हो। विद्वान् लेखक के शब्द इस प्रकार हैं - 'You will do the greatest services to the state if instead of raising the roofs of the houses you will raise the souls of the Citizens for it is better that great souls should dwell in small houses than that mean slaves should lurk in great ones' भौतिक विक्रम द्वारा प्राप्त सुख कृत्रिम है तथा अल्पकाल तक टिकता है। मार्ग जगत् अज्ञानवश उस सुख में ही मस्त हो रहा है। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है -

वपुः गृहं धनं दारा. पुत्रमित्राणि शत्रवः ।

नर्दथान्यन्वभावाणि मूढः स्वानि प्रपद्यते ॥

-शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु ये सब जीव में भिन्न स्वभावयुक्त हैं, किन्तु अज्ञानी जीव इन सब को अपना मानता है।

जिम्हने वास्तविक तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लिया है, वह विवेकी व्यक्ति भोग तथा मोह के मार्ग में विमुक्त होकर श्रेष्ठ त्याग को अंगीकार करता है। इस युग में आत्मविद्यारूप श्रेयोमार्ग का प्रदर्शन प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने किया था। उन्होंने प्रजापति के रूप में लोगों को लौकिक सुख और शान्ति के मार्ग पर लगाया था। जब उनकी दृष्टि मोह के अंधकार की न्यूनता होने पर विशेष विशुद्ध बनी तब उन्होंने महान् गज्य का परित्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण की थी। उनका श्रेष्ठ व्यक्तित्व वैदिक साहित्य में भी निरूपित किया गया है। ऋग्वेद तथा उपनिषदों में दिगम्बर स्वरूप युक्त परमहंस माधुओ का उल्लेख है। जाबाल उपनिषद् में कहा है, "यथाजातरूपधरो निर्गन्ध म परमहंसो नाम"। जब मिळ्न्दर भारत में आया था, तब उसने दिगम्बर माधुओं का दर्शन किया था, ऐसा मेगस्थनीज ने लिखा है।^१ भागवत में भगवान् ऋषभदेव को वामुदेव का अंश ब्रह्ते हुए उन्हें आत्मविद्या का प्रागामी बताया है। भागवत में उनके लिए 'वामुदेवाश्रम' शब्द आया है। उनसे नौ पुत्र आत्मविद्या में निपुण दिगम्बर श्रमण

1 When Alexander came to India he saw some naked saints in Taxila

हो गए थे। भागवत के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

नवाभवन्महाभागाः मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।

श्रमणा वातरशना आत्मविद्या-विशारदाः ॥२०, अ २, स्क. ११॥

वे दिगम्बर साधु सर्वत्र अव्याहत गति से विचरण करते थे।

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिध्यसाध्य-

गन्धर्व-यक्ष-नर-किन्नर-नाग-लोकान् ।

मुक्ताश्ररन्ति मुनि-चारण-भूतनाथ-

विद्याधर-द्विजगवो भुवनानि कामम् ॥२३॥

— एक समय महात्मा निमि ने बड़े-बड़े ऋषियों के द्वारा एक महान् यज्ञ कराया था, तब वहाँ नव दिगम्बर श्रमण पहुँचे थे। उन्हें देखकर राजा निमि तथा अन्य महान् विप्र लोग खड़े हो गए थे, उन दिगम्बर साधुओं का महान् सन्मान किया था तथा उनकी पूजा की थी। (श्लोक २४, २५, २६, अ २)।

(भागवत में लिखा है कि साधु का धर्म “शांति तथा अहिंसा” है— “भिक्षोर्धर्म शमोऽहिंसा” ॥४२, अध्याय १८, स्कन्ध ११)। इस श्रेष्ठ अहिंसा धर्म की चर्चा करना सरल है, उस पर निर्दोष रूप से आचरण करना महान् आत्माओं का काम है। इस अहिंसा की साधना के लिए दिगम्बर वृत्ति तथा नि सग अवस्था आवश्यक है। जैसे सरोवर में एक छोटा सा पाषाण खण्ड फेंकने पर लहरे उठती हैं, इसी प्रकार बाह्य कामिनी, कचनादि का जरा भी सबध मन को वीतरागता से गिराकर रागी, द्वेषी, मोही आदि विकार भाव सम्पन्न कराता है। इन्द्रियों के कारण ही जीव का मन चंचल होता है। गीता में कहा है— “इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरति प्रसभ मन ॥६०, अध्याय २॥ इन्द्रियाँ प्रमथन स्वभाव वाली है, वे बलपूर्वक मन को अपनी ओर खींचती हैं।

बाह्य पदार्थों का आश्रय पाकर आसक्ति उत्पन्न होती है, उससे कामना जागती है, इसके निमित्त से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से अविवेक, उससे स्मृति का नाश होता है, इसके द्वारा बुद्धि-विवेक का नाश होता है। इससे यह श्रेयोमार्ग से गिर जाता है—

ध्यायतो विषयान्मुंस. संगस्तेषूपजायते ।

संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६१, ६२, अ २॥

कोई लोग मोचने हैं मनोभावों की शुद्धि आवश्यक है। बाह्य नामग्रा में कुछ हानि नहीं पहुँचती। जगग्रह पाम में रहने में कोई हानि नहीं है। यह पारंगल्पना भ्रान्त है। डकैतों का बिचाव यदि बुरा है तो डकैतों का कार्य ज्यों न बुरा होगा। धोखे द्वारा मछली मारने की मनोदशा यदि त्याज्य है तो ज्यों मछली मारने का कार्य त्याज्य न होगा? परस्त्री-सेवन का चित्तन यदि निन्द्य है तो उक्त कार्य ज्यों न पातक रूप होगा? दैवी सम्पत्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है- 'दैवी सम्पत्तिमोक्षाय' (५ १६)। जैन शास्त्रों में उनम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, मत्त, नयम, तप त्याग, अकिञ्चन्य तथा ब्रह्मचर्य ये दम धर्म कहे गए हैं।^१ दिगम्बर जैन साधु में ये दश गुण पाए जाते हैं। इन्हीं गुणों का उल्लेख दैवी सम्पत्ति के रूप में गीता में पाया जाता है। वास्तव में ये गुण ही नर को नागयणरूपता प्रदान करते हैं। प्रत्येक सन्तुष्ट का ध्यान इन पद्यों पर जाना चाहिए -

अष्टचञ्चल-संशुद्धिर्ज्ञान-योग-व्यवस्थितिः ।

दानं दम्पश्च यज्ञश्च स्वाध्यायश्च आर्जवम् ॥

अहिंसा-अत्यमक्रोध-त्यागः शान्तिर्पशुनम् ।

दयाधृतेष्टलोलुपत्वं नार्दवं ह्रीश्चापलम् ॥

तेजः क्षमा धृति शौचमक्रोहो नातिमानिता ।

धृतिं संपदं दैवीमभिजातस्य धाम् ॥१-३, अ. १६॥

- हे अर्जुन ! अधय, अन्त ऋण की शुद्धता, ज्ञानयोग में दृढस्थिति, दान, इन्द्रियों का दम्पन, पूजा, स्वाध्याय, तप, भगलता, अहिंसा, मत्त, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निन्दा न करना, सर्वजीवों में दया, इन्द्रियों की लोलुपता का त्याग, कोमलता, लज्जा, चञ्चलता का त्याग, तेज, क्षमा, धैर्य, अन्तरंग तथा बहिरंग पवित्रता, शत्रुभाव का त्याग, अभिमान का अभाव, ये दैवी सम्पत्ति-प्राप्त पुरुष के लक्षण कहे गए हैं। गीता-श्रुतों के मनोमंदि में यदि दैवी सम्पत्ति का मूर्त्य प्रकाश प्रदान करे तो जीवन ज्योतिर्नय बन जाय। विद्वेष तथा हिमामूलक प्रवृत्तियों का अभाव हो जाय और आदर्श मानव की स्थिति प्राप्त हो सकती है। मत्कर्मों की परिकल्पना नहीं, उनके अनुरूप जीवन का निर्माण आवश्यक है। आत्मा का प्रतन करनेवाली मामग्री आमुग्री सम्पत्ति कही गई है। कोई भी व्यक्ति हो, कितना भी बड़ा तथा लोकमान्य हो; धर्म के क्षेत्र में भी निम्ने

१ १. उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-मत्त-शौच-नयम-तप-त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्म - ॥ तत्त्वार्थसूत्र अ १.६ ॥

होगा। जैन दिगम्बर मूर्तियाँ काम, क्रोध तथा लोभ रूप नरक के कारण त्रिविध दोषा म गहित हों, अकाम, अक्रोध तथा अलोभ वृत्ति की स्पष्ट प्रतीक हैं। जैन माधु जव दिगम्बर स्थिति को प्राप्त करते हैं, तब वे गीता की परिभाषा के अनुसार ब्राह्मी स्थिति सम्पन्न 'स्थितप्रज' मत्पुम्प के रूप में सम्मान के योग्य हो जाते हैं। उनका आदर न करके उनके प्रति अभद्र भावों को व्यक्त करना क्या स्वधर्म की पवित्र आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं है? दिगम्बर जैन मुनि परमशान्ति स्वरूप, सर्वकामनाओं में मुक्त तथा पाणिपात्र महातपस्वी होते हैं। उन परम ब्रह्मचर्य में समलकृत माधुओं का विहाग सुभिक्ष तथा समृद्धि का कारण कहा गया है। स्थित-प्रज का स्वरूप इन शब्दों में कहा गया है -

प्रजहाति यदा कामान्मवान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रजस्तदोच्यते ॥५५, अ. २॥

— हे अर्जुन! यह पुम्प मनोगत सर्व कामनाओं का त्याग करता है, उस काल में आत्मा के द्वाग ही आत्मा में मन्तुष्ट हुआ स्थितप्रज कहा जाता है।

गीत, उष्ण, क्षुधा, प्यास, दग, मशक, दिगम्बरत्व आदि की कठिनाइयों को सहन करने वाले जैन मुनिराज के विषय में गीता की यह उक्ति कितनी सत्य तथा उपयुक्त है यह विचारवान व्यक्ति मोच सकता है -

दुखेष्वनुद्विग्नमना० मुखेषु विगतम्पृह०।

'वीतराग-भय-क्रोध० स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६ अ. २॥

— जो दु खों में चवगता नहीं, मुखों में जिसकी तनिक भी डच्छा नहीं है, जो गग, भय तथा क्रोध से विमुक्त है, वह स्थितप्रज मुनि कहा गया है।)

सामान्य श्रेणी का मानव तो श्रेयोमार्ग में सलग्न साधुओं तथा तपस्वियों के जीवन में प्रकाश पाता हुआ गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, किन्तु उसकी आकाक्षा भर्तृहरि के शब्दों में डम प्रकार रहती है-

'एकाकी निम्पृहो ज्ञान्त. पाणिपात्रो दिगम्बर०।

१) 'कदाऽहं सभविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥८९॥ वैराग्यशतक

— भगवन्! मैं अकेला, म्पृहा गहित, ज्ञान्त, कर-पात्र में भोजन करने वाला तथा कर्मों का मूलोच्छेद करने में समर्थ दिगम्बर मुनि कव वनूगा?

१ कहीं-कहीं 'कदा शभो' भी पाठ मिलता है।

इस दिगम्बर अवस्था के प्राप्त होने पर मनुष्य अगणित चिन्ताओं तथा मनो-व्यथाओं से मुक्त होकर उस उच्च शांति को प्राप्त करता है, जिसकी बड़े से बड़े नरेश, वैभवशाली गृहस्थ, श्रेष्ठ गौरवशील राजनीतिज्ञ आदि स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते। दुनिया की उलझनों में फँसे व्यक्ति को क्षणभर भी चैन नहीं मिलती है। लोकोपकार, लोकसेवा आदि सत्कार्यों के द्वारा आनन्द और अभ्युदय मिलते हैं, किन्तु निःश्रेयस, निर्वाण-मुक्ति, अविनाशी सुख का उपाय विश्व से विमुख हो आत्मा की ओर उन्मुख होकर जीवन को वीतराग-वीतमोह बनाना है।

अध्यात्मविद्या के रसिक विद्वान् महाकवि बनारसीदासजी का आत्मोन्मुखता की ओर प्रेरणा देने वाला भजन मनन योग्य है। अध्यात्म का महत्त्व न आँकने के कारण कोई विदेशी आध्यात्मिकता में 'World Flight' - दुनिया से दूर भागने की कल्पना करके अकर्मण्यता का दर्शन करते हैं, किन्तु यदि उन्हें यह पता चल जाय कि साधु तपोवन में जाकर चुपचाप अकर्मण्य नहीं बैठता है, वह क्रोध, मान, माया लोभ, काम आदि अन्तरंग शत्रुओं से घोर सग्राम करता है, तब वे यह समझेंगे कि उस अवस्था को 'Spiritual Fight' आध्यात्मिक-सग्राम कहना सुसंगत होगा।

बनारसीदास जी कहते हैं-

“दुविधा कब जै है या मन की ॥दु ॥

कब निजनाथ निरजन सुमिरौ, तज सेवा जन-जन की ॥दु ॥१॥

कब रुचि सौं पीवै दृग चातक, बूँद अखय पद धन की ।

कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूँ न ममता तन की ॥दु ॥२॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर दिढता सुगुरु वचन की ।

कब सुख लहौ भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥दु ॥३॥

कब घर छाडि होहु एकाकी, लिये लालसा वन की ।

ऐसी दशा होय कब मेरी, हौ बलि-बलि वा छनकी ॥दु ॥४॥”

(गान्धी जी राजनैतिक नेता होते हुए भी गहरी आध्यात्मिक रुचि वाले सत्पुरुष थे, इसीसे उन्होंने इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल को एक पत्र लिखकर कहा था- “मेरी तीव्र इच्छा है कि मैं दिगम्बर साधु बनूँ, यद्यपि मैं अभी उस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सका हूँ।”) वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने के स्थान में जो व्यक्ति एक झोपड़ी में

रहकर अपनी आवश्यकताओं का न्यून करत हुए अपना जीवन व्यतीत करता था उस पुरुष की दृष्टि भौतिकता के मोतियाबिन्दु के गगन में विमुक्त हान में स्वच्छ थी।

देशवासियों का स्वदेशी मामूली का उपयोग करने का उपदेश देने वाले गाँधी जी आत्मा के लिए उसके देह को भी परदेशी मोचत थे। जहाँ 'स्व' शब्द आत्मा का वाचक बनता है, वहाँ जड़ देह उस चेतन्य ज्योतिर्मयी आत्मा में भिन्न ही ठहरेगी अतः उससे मुक्ति प्राप्त करना ही सच्चे अर्थ में स्वदेशी बनना कहा जायगा। उम्मी विगुद प्रकाश में अपने देश पर अपना शासन 'स्वराज्य' न हाकर अपनी आत्मा को भोग तथा विषयों के कुचक्र से छुड़ाकर आत्मा में अवस्थित होना 'स्वराज्य' है। उम स्वराज्य को जिनसेन स्वामी महापुराणकार के शब्दों में "धर्म-साम्राज्य-नायक" भी कहा जाता है। यरवदा जेल में बैठे हुए कैदी शरीरवाले गाँधीजी ने मनु १९३० में वे अनमोल शब्द लिखे थे- 'आत्मा के लिए स्वदेशी का अंतिम अर्थ सारे सम्बन्धों में आत्यंतिक मुक्ति है। देह भी उसके लिए परदेशी है।' ऐसी स्थिति को प्राप्त करने की क्षमता अपने हाथ से काते गए सूत से बने खादी के वस्त्र में नहीं है। वह वस्त्र भी परदेशी है। उसके लिए दिशारूपी वस्त्र धारणकर या तो दिगम्बर होना पड़ेगा अथवा वस्त्र मात्र रहित निगम्बर होना आवश्यक होगा। सहस्रनाम पाठ में परमात्मा के वाचक शब्दों में यह कहा है -

'दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रथेशो निरम्बर'

— भगवान् दिशारूपी वस्त्रों को धारण करने में 'दिग्वास' है, पवन रूपी करधनी से समलकृत होने से 'वातरशन' है मोह की ग्रन्थि (गाँठ) रहित होने के कारण निर्ग्रथों के ईश्वर है तथा अम्बर अर्थात् वस्त्ररहित होने से निरम्बर है।

इस प्रसंग में गाँधीजी के ये उद्गार बड़े अनुभवपूर्ण प्रतीत होंगे— 'आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा जो मन से और कर्म से दिगम्बर है। मतलब वह पक्षी की भाँति बिना घर के बिना वस्त्रों के और बिना अन्न के विचरण करेगा इस अवस्था को तो विरले ही पहुँच सकते हैं।' आज जो लोग भौतिक अभ्युदय को अपने जीवन का लक्ष्य बनाए हुए हैं तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति में कृतार्थता की कल्पना किए हैं भारत के उन कर्णधारों को अपने पूज्य बापू के इन शब्दों की गहराई हृदयगम करने का कष्ट करना चाहिए— 'सच्चे सुधार का सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है ✓ बल्कि उसको विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यो-ज्यो परिग्रह घटाइये त्यो-त्यो सच्चा सुख और सच्चा सतोष बढ़ता है।')

(गांधी वाणी पृ २५६)

जैन कवि की यह वाणी कितनी सप्राण, विशुद्ध तथा वास्तविक है-

चाह घटी चिन्ता हटी मनुआ बेपरवाह।
जिन्हें कछू नहि चाहिए वे शाहनपति शाह ॥

ऐसी पवित्र तथा परिशुद्ध स्थिति प्राप्त करने के लिए इस जीव को जडतत्त्व की आराधना को छोड़कर अनंत शक्ति के अक्षयभण्डार आनन्दमय आत्मा का आश्रय लेना होगा। जड पदार्थ की सगति से ही जीव की दुर्दशा होती है। अग्नि जब लोहे की सगति करती है, तब वह लुहार के द्वारा घनों की मार सहन करती है। परमानन्द स्तोत्र में लिखा है-

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पण्डितः ।

स सेवते निजात्मान परमानन्द-कारणम् ॥

—जो जीव को सदा आनन्दमय जानता है, परमार्थ दृष्टि से वह ज्ञानी है, पण्डित है। वह श्रेष्ठ आनन्द के कारण स्वरूप अपनी आत्मा की आराधना करता है।

सर्वज जिनेन्द्रदेव ने इस आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहा है। यह आत्मा स्वशरीर प्रमाण है। ससारी जीव कर्मों द्वारा बद्ध हैं, इससे कर्मों के अनुसार जितना छोटा-बड़ा शरीर प्राप्त होता है, जीव भी उसी प्रकार सकोच-विस्तार रूप होता है। आत्मा शरीर के बाहर नहीं है तथा वह शरीरव्यापी है, वह विश्वव्यापी नहीं है। यह जेनागम का कथन अनुभव तथा विज्ञानसम्मत है। अतः आत्मा का चिंतन करने वाले मानव को अपने शरीर प्रमाण ज्ञानस्वरूप आत्मा का विचार करना चाहिए। महान् योगी पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में आत्मा का स्वरूप इस प्रकार कहा है -

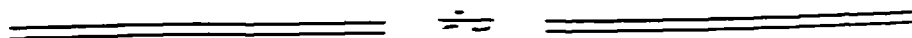
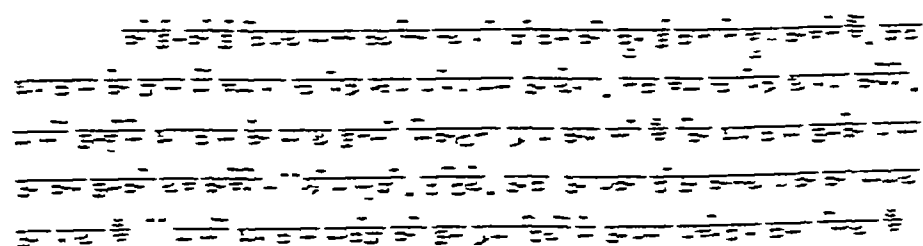
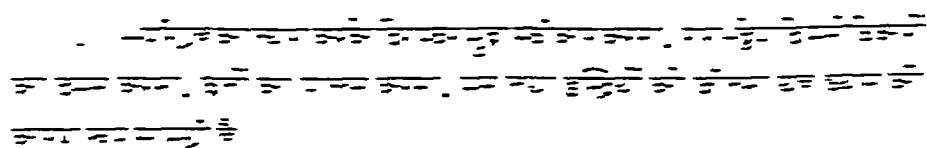
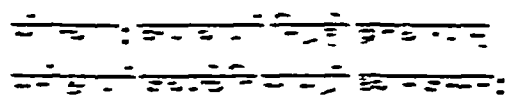
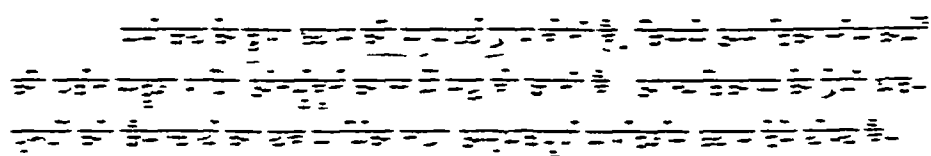
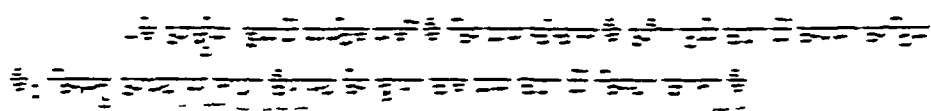
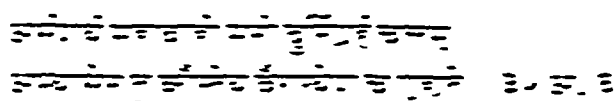
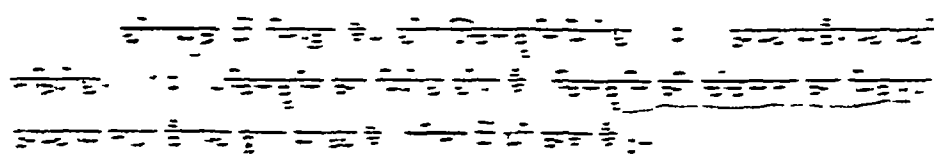
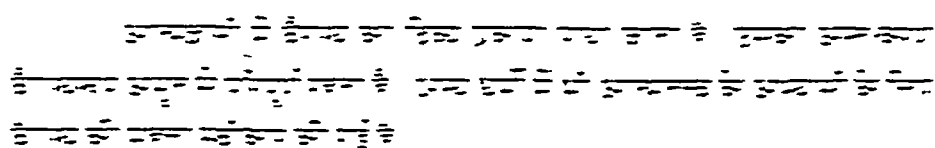
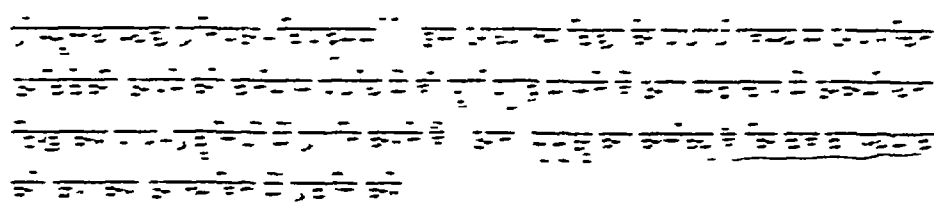
स्व-संवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।

अत्यन्त-सौख्यवान् आत्मा लोकालोकविलोकनः ॥

—यह आत्मा स्व को अर्थात् अपने आपको संवेदन (ज्ञान) के द्वारा भली प्रकार जान जाता है। यह शरीर प्रमाण है। इस आत्मतत्त्व का क्षय नहीं होता, यह अविनाशी आनन्द वाला है। यह लोक तथा अलोक का दर्शन करने की सामर्थ्य सम्पन्न है।

शुभचन्द्राचार्य ने लिखा है कि यह जीव पशु, मनुष्यादि की पर्यायो में पाया जाता है। उसका कारण यह कर्मोदय है- “सर्वोऽयं कर्मविक्रमः”। मैं अनन्तज्ञानादि सम्पन्न हूँ, इससे विषयी कर्मरूप विषयवृक्ष को क्यों न जड़मूल से उखाड़ूँ? “किन्तु

उनतीस



सत्कर्मों से विमुख हो दुष्ट प्रवृत्तियों में निमग्न होने वाले तथा उनमें विशेष प्रयत्नरत व्यक्तियों को महर्षि कुदकुद उपदेश देते हैं, “जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक पाप कार्यों में लगते हैं, वे ससार में दुःख भोगते हैं।”

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिस जीवो ।

मोहंधयार-सहियो तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

ऐसे प्रमादियों के प्रमुख को एक जैन कवि भजन में समझाते हैं—

आवै न भोगन तैं तोहि गिलान ॥टेक॥

तीरथनाथ भोग तजि दीने तिन तैं भय मन आन ।

तू तिनतैं कहूँ डरता नांही, दीसत अति बलवान ॥टेक॥

इस प्रसंग में उर्दू के एक शायर की उक्ति स्मरण योग्य है, जो यह बताती है कि आचरण के द्वारा जीवन बनता है। उच्च पद या नीच अवस्था मनुष्य के आचार पर आश्रित है।

अमल से जिदगी बनती है, जन्नत भी जहन्नूम भी ।।

ये खाकी अपनी फितरत में न नूरी है न नारी है ॥ ।

मोह के कारण अन्धा जीव विपरीत दृष्टि बन जाता है, उससे ही सब प्रकार के उपद्रव आरम्भ होते हैं। उस मोह को वश करने का उपाय यशोविजय उपाध्याय ने ज्ञानसार में इस प्रकार कहा है—

अहं ममेति मंत्रोयं मोहस्य जगदाध्यकृत् ।

अयमेव हि नजपूर्वः प्रतिमंत्रोपि मोहजित् ॥

— मोहरूपी जादूगर जिस मंत्र के द्वारा ससार को मूर्ख बनाता है वह मंत्र है ‘मैं ऐसा हूँ,’ (अहकार) ‘मेरा यह है’ (ममकार)। इस अहकार, ममकार के द्वारा यह अपना विनाश करता है। इस मोह के मंत्र में निषेध वाचक शब्द लगाकर ‘न मम’ ‘न अह’—यह जगत् मेरा नहीं है, मैं सुखी, दुःखी, धनवान, गरीब आदि नहीं हूँ, इस दृष्टि के द्वारा मोह का जादू दूर हो जाता है।

जैसे सुवर्ण पीतवर्ण है, उसी प्रकार का पीलापन पीतल में भी पाया जाता है, इसी प्रकार सर्वज्ञ शासन के द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक दृष्टि एवं इतर जनो द्वारा कही जाने वाली आत्मा की चर्चा में सामान्यतया आध्यात्मिकता का नाम मात्र से साम्य है।

रत्नत्रय की ज्योति से समलकृत आत्मदृष्टि मोक्षमार्ग है। उम आत्मा का क्या म्वरूप मुमुक्षु को श्रद्धान मे रखना चाहिए, इस सम्बन्ध मे कुदकुदम्बामी ने प्रवचनसार मे कहा है-

अरसमरुवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद् ।

जाण अलिगगहण जीव-मणिदिट्ठ-सठाण ॥१७२॥

— जीव को रस रहित, रूप रहित, गंध रहित, स्पर्श रहित, शब्द रहित, किसी चिह्न के द्वारा न ग्रहण करने योग्य तथा विशिष्ट आकार रहित जानो ।

नियमसार मे कहा है-

एगो मे सासदो आदा णाण-दसणलक्खणो ।

सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥१०२॥

— तत्त्वदृष्टि से विचारने पर ज्ञात होगा कि मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है तथा ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। इसके सिवाय शेष पदार्थ मुझसे भिन्न है। वे सयोग लक्षणवाले हैं। बाह्य पदार्थों का मेरी आत्मा के साथ तादात्म्य भाव नहीं है।

जो जीव का ध्यान राग, द्वेष, मोहादि विषधरो से व्याप्त जगत् की ओर खींचते हैं, वे इस आत्मा को जन्म-जरा-मरण के सकटों से नहीं छुड़ा सकते। भैया भगवतीदास जी ने प्रेमभरी वाणी में जीव को समझाते हुए प्रार्थना की है, कि वह जड़ शरीर तथा धन-धान्य, कुटुम्बादि के मोह का त्याग करके अपना उद्धार करे। उनके उद्बोधक शब्द हैं-

अहो जगत के राय मानहु एती बीनती ।

छांडहु पर-परजाय, काहे भूले भरम मे ॥

इस आध्यात्मिक प्रकाश की उपलब्धि के लिए मनुष्य को अपना अन्त करण सम्यग्दर्शन से समलकृत करना चाहिए। उसे सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी प्रभु का शरण ग्रहण करना होगा। यदि आराध्य विकारों का पुज होगा, तो उसका आश्रय ग्रहण करने से कैसे कल्याण होगा? सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान आवश्यक है। इनके लिए साधारण अहिंसापूर्ण जीवन प्रवृत्ति आवश्यक है। जैन आगम में इसे रत्नत्रय का मार्ग कहा है। उसकी श्रेष्ठ साधना इस युग में अत्यन्त कठिन है। शारीरिक परिस्थिति, बाह्य वातावरण तथा श्रेष्ठ मनोजय इसके लिए आवश्यक है। आध्यात्मिक प्रकाशप्रद सामग्री दुर्लभ है।

चारित्र-चक्रवर्ती श्रमणराज

यह भारत का सौभाग्य रहा, कि उसको चारित्र-चक्रवर्ती श्रमणराज आचार्य शान्तिसागर महाराज नाम के दिगम्बर जैन महर्षि के रूप में आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हुई थी। उन्होंने श्रेष्ठ अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि की समाराधना की थी तथा ३६ दिन पर्यन्त आहार-पान का परित्यागकर उच्च अहिंसा की साधना के हेतु कुथलगिरि की जैन तपोभूमि से १८ सितम्बर १९५५ के प्रभात में परलोक यात्रा की थी। वे चन्द्रमा के समान अत्यन्त शीतल थे तथा सूर्य की भाँति तपस्या के तेज से अलकृत थे। वह आध्यात्मिक ज्योति लोकोत्तर थी, जिसमें भानु तथा शशि दोनों की विशेषताएँ केन्द्रित थीं।

हमने इन श्रमणराज के समाधि लेने के पूर्व उनके पुण्य जीवन पर जो रचना बनाई थी, उसे 'चारित्र चक्रवर्ती' नाम से प्रगट किया था, क्योंकि वे चारित्ररूपी धर्मचक्र का प्रवर्तन कर रहे थे। उनका जीवन परोपकारपूर्ण समुज्ज्वल प्रवृत्तियों से समलकृत था। इसके पश्चात् गुरुदेव ने आत्मशुद्धि तथा रत्नत्रय-साधना को अपने जीवन का केन्द्र बिन्दु बनाया था, इसलिए उन्होंने जनसम्पर्क को छोड़कर आत्मारोपण के कल्याणपथ को अपनाया था। उन्होंने 'समाधिशतक' की इस उच्च शिक्षा द्वारा अपने जीवन को अनुशासित किया था -

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमः ।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥७२॥

— लोक सम्पर्क होने पर वचनालाप होता है, उससे मानसिक चंचलता होती है और चित्त में विभ्रम होता है, इसलिए योगी जनसम्पर्क का परित्याग करे।

वास्तव में वे परमयोगी हो गए थे, जिन्होंने शरीर-पोषण से पूर्ण विमुखता धारण कर आत्मोन्मुखता प्राप्त की थी। उन गुरुदेव ने सल्लेखना के श्रेष्ठ क्षणों में एकबार यह रहस्यपूर्ण बात बताई थी, कि वे अनन्त सिद्धों की निवासभूमि सिद्धशिला पर चिन्तनशक्ति द्वारा पहुँचकर अपनी आत्मा का ही ध्यान करते थे। अतः उनका जीवन आध्यात्मिक ज्योतिरूप में प्रतीत होता है, जो अपनी मुद्रा द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करते हुए सब प्राणियों को यह दिव्य प्रकाश प्रदान करता है, कि प्रत्येक भव्य आत्मचिन्तन पूर्वक सच्चे पुरुषार्थ का प्रश्रय ले रत्नत्रय के प्रसाद से परमात्मा की अवस्था को प्राप्त करता है। पुस्तक के उत्तरखण्ड का नाम आध्यात्मिक ज्योति रखना उचित लगा।

इस पुस्तक की मुद्रण व्यवस्था, प्रूफ सशोधन तथा महत्वपूर्ण सुझाव देना

आदि अत्यन्त श्रमपूर्ण कार्य मेरे अनुज प्रोफेसर मुशीलकुमार दिवाकर, एम ए वी कॉम, एल-एल वी ने बहुत श्रम कर मम्यक् प्रकार सम्पन्न किये। अनेक सम्मरणों के लेखन में छोटे भाई श्रेयासकुमार, वी एस-सी, अभिनन्दनकुमार दिवाकर एम ए एल-एल वी एडवोकेट ने भी गुरुभक्ति से प्रेरित हो कार्य किया था। चिन्जीव ऋषभ ने लेखनकार्य में बहुत परिश्रम उठाया। इस रचना का कुछ अंश लिखते समय स्व. प्रो. ताराचंद जैन, पथरिया (सागर) ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। श्रीगणपति रोटे कोल्हापुर ने माथ चलकर संस्मरण संग्रह करने में सहयोग किया था। ब्र. जिनदामजी समडोलीकर ने भी प्रवास का कष्ट उठाकर अपूर्व सहयोग दिया था। गुरुभक्त बन्धु श्री एम.एम. दोशी वकील फलटण तथा श्री गजानन मूग कोल्हापुर ने कुछ उपयोगी चित्र भेजे थे। इस प्रकार इनके पवित्र सहयोग द्वारा यह कार्य बन सका। लेखक इनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

१०८ चारित्र चूडामणि महामुनि वर्धमानसागर महाराज, आचार्य वीरसागर महाराज, उग्रतपस्वी नेमिसागर महाराज, वीतरागी आचार्य धर्मसागर महाराज, आचार्य पायसागर महाराज, आचार्य देशभूषण महाराज, आदिसागर महाराज (दक्षिण), आचार्य अनंतकीर्ति महाराज आदि अनेक निर्ग्रन्थ साधुओं ने, अनेक साध्वियों ने, त्यागियों ने, गृहस्थों ने अपने अमूल्य संस्मरण निबद्ध करने में सहयोग दिया था। संस्मरणों के लेखन में यथाशक्ति पर्याप्त सावधानी रखी गई है। फिर भी स्वयं के प्रमाद अथवा किन्हीं संस्मरणदाताओं की असावधानी से यदि कोई ऐसी बात छप गई हो, जो यथार्थ न हो, तो हमें जानकारी बंधु साधार सामग्री भेजने की कृपा करें, जिसके प्रकाश में आगामी संस्करण में समुचित मंजोधन कर विशुद्ध सत्य की रक्षा की जा सके।

दिवाकर-सदन

सिवनी (मध्यप्रदेश)

दिनांक १७-४-१९६२

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जयंती)

सुमेरुचंद्र दिवाकर



॥ ज्ञानामृतम् ॥

वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलम् ।
प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुष-कीर्तनात् ॥
अल्पकालमिदं जतोः शरीरं रोग-निर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीरं स्थास्तु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनं ॥२४-२६, प्रथम पर्व

महापुरुष का यशोगान करने से विशुद्ध ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, निर्मल कीर्ति का प्रसार होता है। पाप दूर भागता है। इस जीव की रोगभरी देह थोड़े दिन टिकनेवाली है, किन्तु महापुरुष की गुण-गाथा से उत्पन्न यश जब तक चन्द्र, सूर्य, तारे रहेंगे, तब तक विद्यमान रहेगा। अतः आत्मज्ञ पुरुष को सम्पूर्ण प्रयत्नो द्वारा महापुरुष का कीर्तन करके इस यशरूपी शरीर को स्थायी बनाना चाहिए। —(पद्मपुराण)

पूजार्थाऽऽज्ञैश्वर्यैर्बल-परिजन-काम-भोग-भूयिष्ठैः ।
अतिशयित-भुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

सद्धर्म (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) पूजा, धन, आज्ञा, ऐश्वर्य, बल, परिजन, पचइन्द्रियों के द्वारा सेव्यमान काम तथा भोग की प्रचुरता से त्रिभुवन में उत्कृष्ट तथा आश्चर्यप्रद अभ्युदय रूप फल प्रदान करता है।

यदि पाप-निरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य-सम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

यदि पापास्रव का निरोध है अर्थात् उसका सवर होता है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है? यदि पाप का आस्रव होता है, तब भी अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है?

श्रद्धान् परमार्थानामासागम-तपोभृताम् ।
त्रिमूढा-पोढ-मष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

सच्चे सर्वज्ञ-वीतराग-हितोपदेशी आप्त, जिनेन्द्रवाणी रूप आगम तथा तप को धारण करने वाले दिगम्बर ऋषियों का देवमूढता, गुरुमूढता रहित, नि शक्ति आदि अष्टाग युक्त तथा जाति कुलादि के अभिमान रहित श्रद्धान कर्मा सम्यग्दर्शन है।

- (ग्लनकण्ड श्रावकाचार)

सूत्रमौपासिक चास्य स्यादध्येय गुरोर्मुखात् ।

विनयेन ततोऽन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ॥११८, पर्व ३८॥

सबसे पहले गुरु के मुख से श्रावकाचार पढ़ना चाहिए, इसके अनन्तर विनयपूर्वक अध्यात्मशास्त्र तथा अन्य शास्त्र पढ़ना चाहिए।

-(महापुराण)

दुराचारार्जितं पापं सच्चरित्रेण नश्यति ॥४६, पर्व ७२॥

दुराचार अर्थात् नीच आचरण करने से बौधा गया पाप कर्म सम्यक् आचरण के द्वारा नष्ट हो जाता है।

दुर्विध. सधनः पुण्यात् पुण्यात्स्वर्गश्च प्राप्यते ।

तस्मात्पुण्यं विचिन्वंतु हतापत्-सपदैषिणः॥१५७, पर्व ७५॥

पुण्य से धनरहित धनवान बनता है। पुण्य से स्वर्ग प्राप्त होता है, अतएव आपत्ति का अभाव तथा सम्पत्ति की प्राप्ति की इच्छा करनेवालो को पुण्य का सग्रह करना चाहिए।

-(उत्तरपुराण)

पुण्यं जिनेन्द्र-चरणार्चनसाध्यमाद्यम् ।

पुण्यं सुपात्रगतदान-समुत्थमेतत् ॥

पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात् ।

पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥

पुण्य की उत्पत्ति जिनेन्द्र भगवान के चरणों की पूजा द्वारा सम्पन्न होती है, सुपात्र-दान द्वारा यह पुण्य प्राप्त होता है। व्रतो के पालन द्वारा तथा उपवास के द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्यार्थी पुरुषों को उपर्युक्त पूजा, पात्रदान, व्रत तथा उपवास द्वारा पुण्यार्जन करना चाहिए।

-(हरिवंशपुराण)

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम् ।

स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्रव ॥२४६॥

जिस योगी के पुण्य तथा पाप विना फल दिये निर्जीर्ण हो जाते हैं, उसके निर्वाण होता है, उसके पुन कर्मों का आगमन नहीं होता।

करोतु न चिरं घोर तपः क्लेशासहो भवान्।

चित्तसाध्यान् कपायारीन् जयेद्यत्तदज्ञता ॥२१२॥

तपस्या का कष्ट सहन करने की शक्ति न होने से बहुत समय पर्यन्त घोर तप नहीं करते हो, तो कोई बात नहीं है, किन्तु अपने परिणामों के द्वारा ही वश करने योग्य क्रोधादि कषायरूप शत्रुओं को यदि नहीं जीतते हो, तो यह तुम्हारी अज्ञानता है।

धर्मादवाप्त-विभवः धर्म प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु।

बीजादवाप्त-धान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव ॥२१॥

धर्म के द्वारा वेभव को प्राप्त करके धर्म की रक्षा करते हुए भोगों का अनुभव करो। जैसे किसान बीज के द्वारा धान्य प्राप्त करता हुआ बीज की रक्षा करता हुआ उसका उपभोग करता है।

परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य-पापयोः प्राज्ञाः।

तस्मात्पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः ॥२३॥

महान् ज्ञानियो ने कहा है कि पुण्य तथा पाप के कारण जीव के भाव ही हैं। इससे पाप का क्षय तथा पुण्य का संचय करना उचित है।

-(आत्मानुशासन)

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिसेति।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

रागद्वेष आदि की उत्पत्ति न होना अहिंसा है। उनकी उत्पत्ति होना ही हिंसा है, यह जिनवाणी का सार है।

-(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)

यदा मोहात् प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।

तदैव भावयेत्स्वस्थ-मात्मान शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

जब तपस्वी साधु की आत्मा में राग तथा द्वेष उत्पन्न हो, उसी समय राग-द्वेष विकार विमुक्त अपनी आत्मा की भावना करे, ऐसा करने से वे विकार क्षण भर में शान्त होते हैं।

सोऽह-मित्यात्त-मग्कारन्तग्मिन् भावनया पुन ।

तत्रैव दृढसग्काराल्लभते हात्मनि ग्थितिम् ॥२८॥

‘सोऽह’जो परमात्मा है, वह मे हें इस प्रकार का मग्कार, इस प्रकार की भावना तथा इसी में सुदृढ सस्कारों में आत्मा में ग्थिता प्राप्त होती है।

-(ममाधिगतक)

स्यात्सम्यक्त्व-ज्ञान-चाग्रिन्नरूप पर्यायार्थादिगतो मोक्षमार्ग ।

एकोज्ञाता सर्वदैवाद्वितीय म्याद द्रव्यार्थादिगतो मुक्तिमार्ग ॥२९ अ ॥

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चाग्रि रूप है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक अद्वितीय तथा सर्वदा ज्ञान स्वरूप आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। (तत्त्वार्थसार)

एकापि समर्थेय जिनभक्ति दुर्गति निवारयितुम्।

पुण्यानि च पूरयितु दातु मुक्तिश्चिन् कृतिन ॥

यह जिनेन्द्र भगवान की भक्ति अकेली ही दुर्गति-गमन को दूर करने में समर्थ है, वह पुण्य को प्रदान करती है। उस भक्ति द्वारा भाग्यशाली व्यक्ति को मुक्तिलक्ष्मी भी प्राप्त होती है। -(दशभक्ति)

एक सदा शाश्वतिको ममात्मा ।

विनिर्मल साधिगमस्वभाव ॥

बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता ।

न शाश्वता कर्मभवा स्वकीया ॥२६॥

मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है। वह पूर्ण निर्मल है तथा ज्ञान स्वभाव वाली है। उसके सिवाय अन्य सर्व पदार्थ बाह्य है। कर्मोदय से प्राप्त सामग्री शाश्वतिक नहीं है।

शरीरत कर्तुमनतशक्ति ।

विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ॥

जिनेन्द्र । कोषादिव खड्गयष्टिम् ।

तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति ॥२॥

१ हे जिनेन्द्र भगवान् । आपके प्रसाद से मेरी ऐसी शक्ति हो, कि तलवार से जिस

प्रकार म्यान अलग रहती है, उसी प्रकार मे अनन्त शक्ति युक्त तथा दोष रहित अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् कर सकूँ।
-(सामायिक पाठ)

एकोऽह निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः ।

बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥२७॥

‘मे’ एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानवान हूँ, योगीन्द्रो के ज्ञानगोचर हूँ। संयोग रूप से प्राप्त सर्वपदार्थ मुझसे सर्व प्रकार से भिन्न है।
-(इष्टोपदेश)

आदे हि कम्मगठी जा वद्धा विसय-राय- मोहेहि ।

त छिदंति कयत्था तव-संजम सीलयगुणेण ॥२७॥

जो कर्मों की गॉठ, विषयों की आसक्ति तथा मोहभाव के कारण आत्मा में बधी है, उसे कृतार्थ पुरुष तप, सयम और शीलरूप गुणों के द्वारा काट देते हैं।
-(अष्टपाहुड)

अवश्य यदि नश्यंति स्थित्वापि विषयाश्चिरम् ।

स्वय त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा ॥

यदि विषय-भोग की सामग्री अधिक समय तक स्थित रहकर भी अन्त में विनाश को प्राप्त होती है, तो उसका पहले ही स्वय त्याग करना उचित होगा। ऐसा करने से मुक्ति का लाभ होगा, अन्यथा ससार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। -(क्षत्रचूडामणि)

* * * *

मोह महातम दलन दिन तप-लक्ष्मी-भरतार ।

सो पारस परमेस मुझ होहु सुमति दातार ॥^१

तीन काल के जिनवरा तीन काल के सिद्ध ।

तीन काल के मुनिवरा वन्दो लोकप्रसिद्ध ॥

तीन भुवन में जे लसे, चेत्य, चेत्य-गृह सार ।

तिनको वन्दौ भावयुत, ये त्रिभुवन में सार ॥

१ हमारे परम धार्मिक, प्रशान्त परिणामी, आदरणीय बाबा रतनचन्द्रजी ने जो प्रकीर्णक तथा प्रबोधक पद्य हमें वाल्यजीवन में सिखाये थे, वे यहाँ दिये गए हैं, ताकि उनको स्मरण कर लोग आत्महित में प्रवृत्ति करें।

चौबीसी तीनो नमो, नमो तीस चोवीस ।
सीमधर आदिक नमो, विहरमान जिन बीस ॥

वृषभसेनको आदि दे, अतिम गौतम स्वाम ।
चौदहसौ बावन सुगुरु, तिनको सदा प्रणाम ॥

तुम माता तुम ही पिता, तुम सज्जन सुखदान ।
तुम समान इस लोक मे, और नहीं भगवान ॥

'पडूँ पग तरे आपके, पाप पग तरे दैन ।
हगे कर्म को सब तरे, देहु सब तरे चैन ॥

हार गए हो नाथ तुम, अधम अनेक उबार ।
धीरे-धीरे सहज ही, लीजे हमे उबार ।।

जहाँ जपै नमोकार वहाँ अघ कैसे आवे ।
जहाँ जपै नमोकार वहाँ व्यतर भग जावे ॥

जहाँ जपै नमोकार वहाँ सुख सम्पत्ति होई ।
जहाँ जपै नमोकार वहाँ दु ख रहे न कोई ॥

नमोकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवे निकट ।
भैया नित जपवो करो, महामन्त्र नमोकार है ॥

सुलझे पशु उपदेश सुन, सुलझे क्यो न पुमान ।
नाहर ते भये वीर जिन, गज पारस भगवान ॥

| आयु घटत है रात दिन, ज्यो करोत ते काठ ।
| हित अपना जल्दी करो, पडा रहे सब ठाठ ॥

| मन तू सडे शरीर मे, क्या माने सुख-चैन ।
| जहाँ नगारे कूच के, बजत रहत दिन-रैन ॥

“को काको दु ख देत है, देत करम झकझोर ।
‘उलझै सुलझे आपही, धुजा पवन के जोर ॥

ज्यो मतिहीन विवेक बिना नर साज मतग जो ईन्धन ढोवै ।
कचन भाजन धूरि भरै शठ मूढ सुधा-रस सो पग धोवै ॥
बेहित काग उडावन कारन डार उदधि मनि मूरख रोवै ।
त्यो नरदेह दुर्लभ्य बनारसि पाय अजान अकारथ खोवै ॥
आठनि की करतूति विचारहु कौन-कोन ये करते हाल ।
कबहुँक सिर पर छत्र फिरावे कबहुँक रूप करै बेहाल ॥
देवलोक सुख कबहुँ भुगते कबहुँ रच नाज को काल ।
ये करतूति करै कर्मादिक चेतन रूप तू आप सम्हाल ॥

प्रभु सुमरन को आलसी भोजन को तैयार ।
ज्ञानी ऐसे नरन कौं बार-बार धिक्कार ॥

रात गँवाई सोयकर, दिवस गँवाया खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥

तीन लोक का नाथ तू क्यो बन रहा अनाथ ।
रत्नत्रय निधि साथ ले क्यो न होय जगनाथ ॥



॥ अनुक्रम ॥

विषय	पृष्ठ
* आमुख	सात
* जानामृतम्	पैतीम
* दिव्य समाधि (मल्लेखना)	१
* पावन-स्मृति	७०
* श्रमणों के संस्मरण	
• तपोमूर्ति श्री वर्धमानमागर महागज	९
• आचार्य वीरमागर महागज	१८
• चागिर-चूडामणि नेमिसागर महागज	१-
• आचार्य पायमागर महाराज	३
• मुनि धर्ममागरजी महाराज (दक्षिण)	२६-
• उग्र तपस्वी नमिमागर महाराज	२६५
• मुनिगज आदिमागर महाराज	२८३
• आचार्य अनन्तकीर्ति महागज	२८६
• आचार्य देशभूषण महाराज	२९९
• आचार्य विमलमागर महाराज	३०३
* श्रावको के संस्मरण	
• मर मेठ हुकमचन्दजी, इन्दौर	३०६
• प वर्गाधरजी न्यायालका, इन्दौर	३०८
• मेठ चट्टाल जौतीचन्द मराफ, बागमती	३०९

विषय	पृष्ठ
● श्री मगनलाल नेमचंद गाधी, पढरपुर	३१२
● सेठ तुलजाराम चतुरचन्द्र, बारामती	३१३
● प मोतीचंद्र गौतमचन्द्र कोठारी, फलटण	३१४
● धर्मवीर तलकचंद वेणीचंद शहा वकील, फलटण	३२२
● श्री माणिकचन्द्र वीरचंद गाधी सराफ, फलटण	३२४
● श्री मुरलीधर बालकृष्ण जोशी गायनाचार्य	३३०
ऐलक वृषभसागरजी, हिवरखेडा	३३०
१ ● ऐलक कुलभूषणजी (दक्षिण)	३३३
६० ● क्षु सुमतिसागरजी, फलटण	३३५
६५ ● श्री अजितमती अम्मा	३३८
● श्री भाऊ साहब लाटकर	३३९
● ब्र जिनदास समडोलीकर	३३९
● श्रीमती लक्ष्मीदेवी पाटील	३४०
● श्री जनगोडा पाटील	३४०
● गजानन भाऊ मूग, कोल्हापुर	३४२
● भट्टारक लक्ष्मीसेन जी	३४६
● श्री धनपाल बापूराव चौगुले, अक्किवाट	३४८
● श्री गौतम रामचन्द्र शाह, म्हसवडकर	३५०
● क्षुल्लक महाबलजी	३५१
● श्री सुब्बैया शास्त्री, कारकल	३५२
● श्री जिनकुमार बैतूल	३५२

विषय	पृष्ठ
● ब्र प पन्नालालजी काव्यतीर्थ	३५६
● प कुन्दनलालजी, मिवनी	३५८
● श्री शान्तिनाथ भुजवली वैद्य, वागमती	३६४
● क्षु मिडिमागजी	३६७
● प अभयकुमार शान्नी, वागमती	३७०
● डॉ वालचन्द्र जीवगज शहा, फलटण	३७१
● श्री वावूगव मार्ले कोल्हापुर	३७६
● ब्र वडोवा वावाजी (क्षुल्लकजी)	३७६
● पाटील श्री वालगोंडा, कोगनोली	३७७
● श्री फूलचंद हीराचंद कोठाडिया, पृना	३७९
● प कन्हेदीलालजी न्यायतीर्थ	३७९
● श्री पार्श्वनाथ उपाध्ये	३८१
● मेठ रामचंद धनजी दावडा, नातेपुते	३८२
● श्री कालप्पाणा लेंगडे शाहपुर	३८३
● श्री गणपति गेटे, कोल्हापुर	३८३
● श्री मियाचंद गूचन्द फडे, अकलूज	३८४
* सर्वतोभद्र माधुराज	३८६-४१०
* आचार्य महाराज का अन्तिम अमर सन्देश	४११-४१४



आध्यात्मिक ज्योति

दिव्य समाधि

(सल्लेखना)

अपने सीमित साधनों के मध्य रहने वाले मानव को यह पता नहीं चलता कि आगे कसी विचित्र अघटित तथा अकल्पित घाते प्रत्यक्षगोचर हो जाती है। विधि सुघटित घटनाओं को विघटित करता है और अघटित घटनाओं का निर्माण करता है। ऐसी भी घटनाएँ प्रत्यक्षगोचर होती हैं जिनकी मनुष्य ने कभी चिन्ता भी नहीं की थी।

अघटित-घटितं घटयति, सुघटित-घटितं च जर्जरीकुरुते ।

विधिदेव तानि घटयति, यानि नरो नैव चिन्तयति ॥

श्रव आचार्य शान्तिमागरजी महाराज के चरणों के समीप रहने से मन में ऐसा विश्वास जम गया था कि आचार्य महाराज जब भी सल्लेखना स्वीकार करेंगे तब नियम सल्लेखना लेंगे, यम सल्लेखना नहीं लेंगे। ऐसा ही उनका मनोगत अनेक बार ज्ञात हुआ था। मुझे दृढ़ विश्वास था कि महाराज विचारक महापुरुष हैं, उनकी सल्लेखना नियम सल्लेखना के रूप में प्रारम्भ होगी, किन्तु भविष्य का रूप किसे विदित था? जिसकी स्वप्न में भी कल्पना न थी, वह साक्षात् हो गया। आचार्य शान्तिमागर महाराज ने यम सल्लेखना ले ली। उसे लिये चार दिन हो गए। कुथलगिरि से कोई भी समाचार मुझे नहीं मिला।

२२ अगस्त १९५५ को १ बजे मध्याह्न में फलटण से इन्द्रराज गाधी का तार मिला, 'Acharya Maharaj started Yama Sallekhana from four days, start first train Kunthalgiri' 'आचार्य महाराज ने चार दिन हुए यम सल्लेखना ले ली है। शीघ्र ही पहली ट्रेन से कुथलगिरि पहुँचिये।' मैं अवाक हो गया। चित्त धबड़ा गया। अकल्पित बात हो गई। तत्काल ही मैंने गुरुदेव के दर्शनार्थ प्रस्थान किया।

मैं २२ अगस्त को २ बजे दिन की मोटर से नागपुर ७ ॥ बजे रात को पहुँचा।

वहाँ से रेल से गेगाँव गया। पञ्चात् मोटर से देवलगाँव, वागरुल, जालना होते हुए ता २३ की रात को १० बजे कुन्थलगिरि पहुँचा। उस समय मूसलाधार वर्षा हो रही थी। एक घण्टा स्थान पाने की परेशानी के उपरान्त मुझ अकेले को स्थान मिल पाया।

प्रथम दर्शन

मैंने २४ अगस्त के प्रभात में पर्वत पर कुटी में आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शन किये और नमोस्तु निवेदन किया। महाराज बोले — “बहुत देर में आए। आ गए, यह बहुत अच्छा किया। बहुत अच्छा हुआ आ गए। बहुत अच्छा हुआ आ गए। बहुत अच्छा किया।” इस प्रकार चार बार पूज्यश्री के शब्दों को सुनकर स्पष्ट हुआ कि उन श्रेष्ठ साधुराज के पवित्र अतः करण में मेरे प्रति करुणापूर्ण स्थान अवश्य है।

मैंने कहा — “महाराज। श्रेष्ठ तपस्या रूप यम समाधि का महान् निश्चय करके आपने जगत् को चमत्कृत कर दिया है। आपका अनुपम सौभाग्य है। इस समय मैं आपकी सेवार्थ आया हूँ। शास्त्र सुनाने की आज्ञा हो या स्तोत्र पढ़ने आदि का आदेश हो, तो मैं सेवा करने को तैयार हूँ।”

पूर्णतया स्वावलम्बी अवस्था

महाराज बोले — “अब हमें शास्त्र नहीं चाहिए। जीवन भर सर्वशास्त्र सुने। खूब सुने, पढ़े। इतने शास्त्र सुने कि कण्ठ पूर्ण भर चुका है। अब हमें शास्त्रों की जरूरत नहीं है। हमें आत्मा का ही चिन्तन करना है। इस विषय में स्वयं सावधान हूँ। हमें कोई भी सहायता नहीं चाहिए।” महाराज की वीतराग भावपूर्ण वाणी को सुन मन बड़ा सन्तुष्ट हुआ। सचमुच में जिस महापुरुष के ये वाक्य हो “शास्त्र हृदय में भरा है” उन्हें ग्रन्थ के अवलम्बन की इस समय क्या आवश्यकता?

ता २५ अगस्त को अष्टमी थी। मैंने पूछा — “महाराज। नींद घटा दो घटा आती तो है न?”

महाराज — “निद्रा अति अल्प है।”

आत्मा का ध्यान

प्रश्न — “महाराज। आत्मध्यान का क्या हाल है?”

महाराज — आत्म-ध्यान सतत चालू आहे — आत्मध्यान निरन्तर चलता है।

वीरसागरजी को आचार्यपद

ता २६ शुक्रवार को आचार्य महाराज ने वीरसागर महाराज को आचार्यपद प्रदान किया। उसका प्रारूप आचार्यश्री के भावानुसार भेजे लिखा था। भट्टारक लक्ष्मीसेनजी कोल्हापुर आदि के परामर्शानुसार उसमें यथोचित परिवर्तन हुआ। अन्त में पुन आचार्य महाराज को बौचकर सुनाया, तब उन्होंने कुछ मार्मिक सशोधन कराए। उनका एक वाक्य बड़ा विचारपूर्ण था - “हम स्वयं के सन्तोष से अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य वीरसागर को आचार्य पद देते हैं।”

आचार्य वीरसागरजी को संदेश

आचार्य महाराज ने वीरसागर महाराज को यह महत्त्वपूर्ण मदेश भेजा था - “आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना, हमारी ही तरह समाधि धारण करना और सुयोग्य शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना, जिमसे परम्परा चरावर चले।”

उन्होंने यह भी कहा - “वीरसागर बहुत दूर है, यहाँ नहीं आ सकता अन्यथा यहाँ बुलाकर ही हम आचार्यपद देते।” उनके ये शब्द महत्त्व के थे - “वीरसागर को हमारा आशीर्वाद कहना और कहना कि शात भाव रखे, शोक करने की जरूरत नहीं है।”

उस समय महाराज का एक-एक शब्द अनमोल था। वे बड़ी मार्मिक बातें कहते थे। क्षु सिद्धसागर (ब्र भरमप्पा) को महाराज ने कहा था - “रेल, मोटर से मत जाना।” इस आदेश के प्रकाश में उच्चत्यागी अपना कल्याण सोच सकते हैं, कर्तव्य जान सकते हैं। शिष्यों को व्रत ग्रहण की प्रेरणा करते हुए वे बोले - “स्वर्ग में आवोगे तो हमारे साथी रहोगे।”

अद्भुत दृश्य

यम समाधि के बारहवें दिन ता २६ अगस्त को महाराज जल लेने उठे। उनकी चर्या में तनिक भी शिथिलता नहीं थी। पहले मन्दिर में भगवान का पचामृत द्वारा किया गया अभिषेक उन्होंने बड़े ध्यान से देखा। बाद में महाराज चर्या को निकले। हजारों की भीड़ उनकी चर्या देखने को पर्वत पर एकत्र थी। अद्भुत दृश्य था। नवधा भक्ति के बाद महाराज ने खड़े-खड़े अपनी अँजुली द्वारा थोड़ा सा जलमात्र लिया और पश्चात् वे क्षण भर में ही बैठ गये। कुछ क्षण बाद गमनकर अपनी कुटी में आए और पुन आत्मचिंतन में निमग्न हो गये। आत्मचिंतन उनका अत्यन्त प्रिय, अभ्यस्त कार्य था। ससार को वह कार्य बड़ा कठिन लगता है। वास्तव में, वे महान् योगी थे।

स्वाध्याय की प्रेरणा

एक दिन महाराज ने कहा था - “धर्म पर अविचल श्रद्धा धारण करो।” उन्होंने यह भी कहा था - “स्वाध्याय करो। यह स्वाध्याय परम तप है। ‘णहि सज्जायसम तवो कम्मं’। शास्त्र के अभ्यास से आत्मा का कल्याण होता है। गरीब लोग शास्त्र नहीं खरीद सकते। उनको शास्त्रों का दान करो। शास्त्रदान में महान् पुण्य है।”

आत्मध्यान का महामन्त्र

‘आत्मा का चितन करो’, यह बात दो तीन वर्षों से वे पुन पुन कहा करते थे। उन्होंने सन् १९५४ में फलटण में चातुर्मास के पूर्व सब समाज को बुलाकर कहा था, “तुम्हें हमारा चातुर्मास अपने यहाँ कराना है, तो एक बात सबको अगीकार करनी पड़ेगी।” सबने उनकी बात शिरोधार्य करने का वचन दिया। पश्चात् महाराज ने कहा “सब स्त्री-पुरुष यदि प्रतिदिन कम-से-कम पाँच मिनट पर्यन्त आत्मा का चितवन करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो हम तुम्हारे नगर में चातुर्मास करेंगे, अन्यथा नहीं।” श्रेष्ठ साधुराज के समागम का सौभाग्य सामान्य नहीं था। सब लोगो ने गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की थी।

आत्मानुभव की चर्चा का आधार

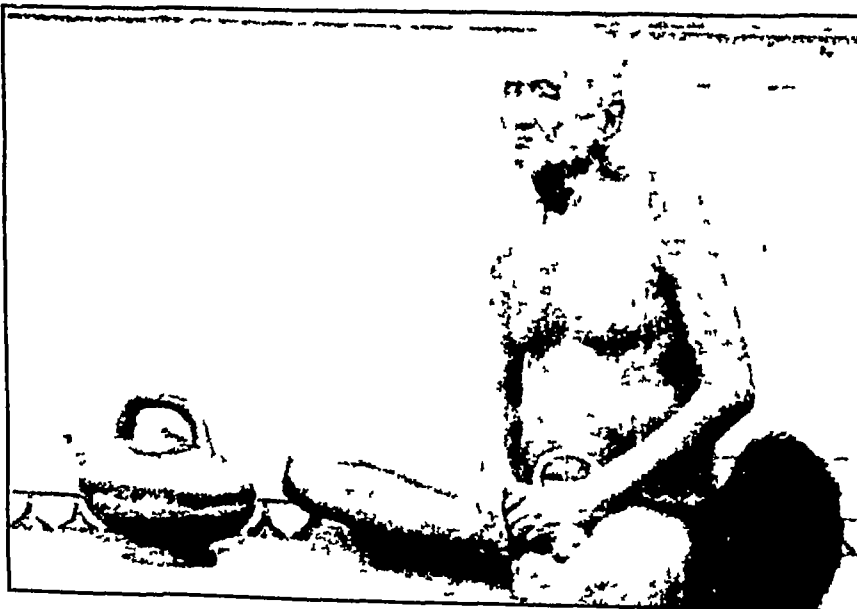
आत्मानुभव के विषय में एक दिन फलटण में आचार्य महाराज ने बड़ी सुन्दर चर्चा की। उसे सुनकर सभी लोग आनन्दविभोर हो गए थे। उस समय हृदय यही अनुभव करता था, कि यह कथन तत्त्व के अतस्तत्त्व को स्पर्श करने वाले सम्यक्ज्ञानी का है। शुक सदृश अध्यात्म ग्रन्थों का वाचन या निरूपण करने वालों का नहीं है। फिर भी मन में शका उत्पन्न हुई थी अतः मैंने धीरे से नम्रतापूर्वक पूछा - “महाराज! आप जो आत्मा के अनुभव की चर्चा कर रहे हैं, यह आगम के आधार पर कह रहे हैं या अनुमान से कह रहे हैं या अपने अनुभव से कह रहे हैं?”

महाराज ने कहा - “यह बात हम अपने अनुभव के आधार पर कह रहे हैं।” इतना कहने के बाद उनकी मुद्रा बहुत गम्भीर हो गई। मुझे अपूर्व आनन्द आया क्योंकि इस कलिकाल में आत्मतत्त्व का गमास्वादन करने वाले महायोगी जातिसागर जी हैं और उनके पावन चरणों में बैठने का मुझे सौभाग्य मिल रहा है।

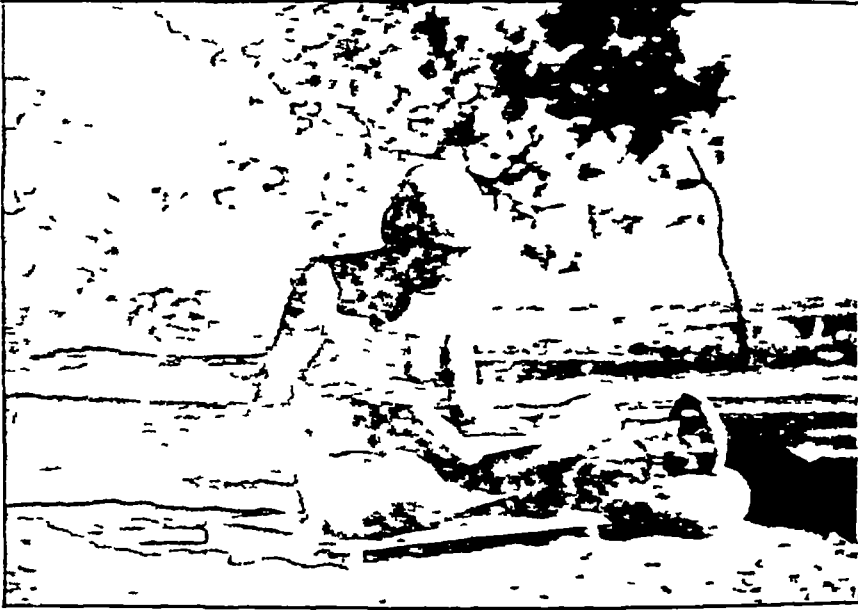
महाराज कहते थे - “निकट भव्य को आत्मस्वरूप का अनुभव होता है।



तपोरत श्रमणशिरोमणि



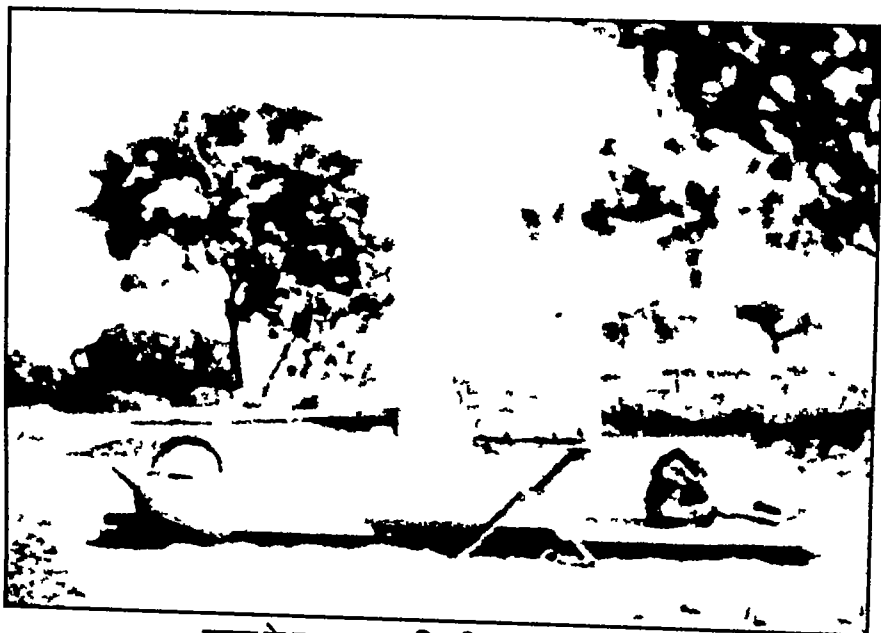
ध्यानरत साधुराज



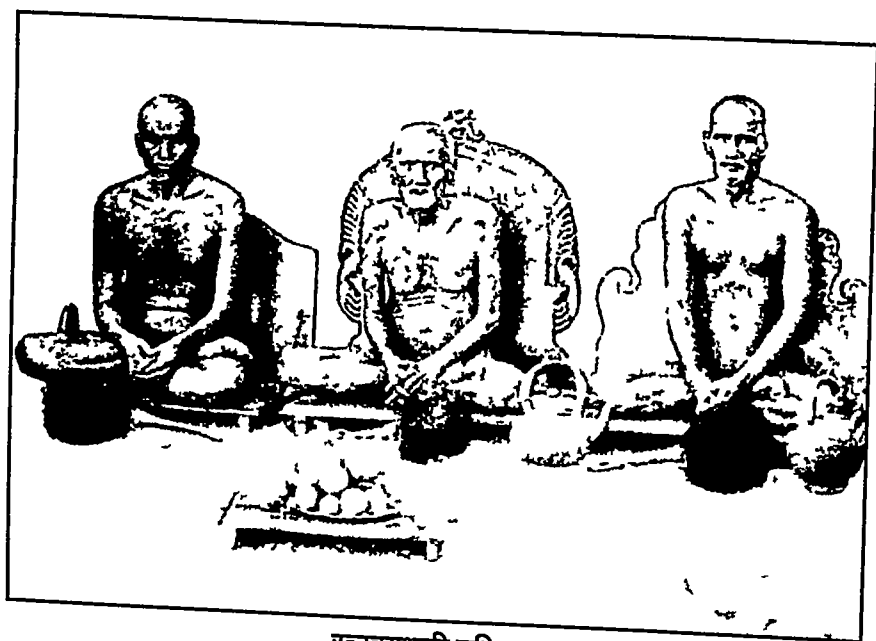
ज्ञानन्त गुरुदेव



एकलविहारी मिश्र-शराज



सयम के उपकरण - पिच्छी, कमण्डल, शास्त्र



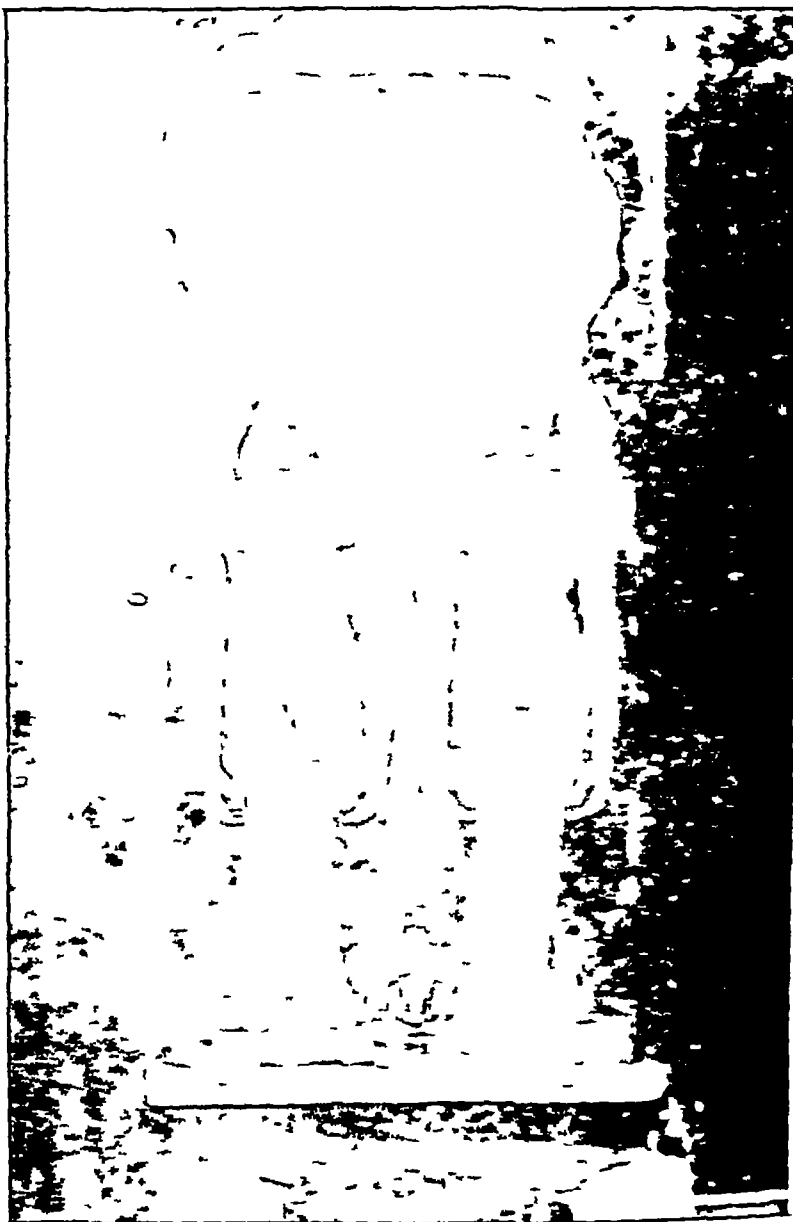
रत्नत्रयधारी मुनित्रय
(पायसागर महाराज, आचार्यश्री, नेमिसागर महाराज)



देखक आचार्य भी के रामदा शारन भवचन करेते हुए



आचार्यश्री तथा नेमिसागर मरारज का साली-दशन



ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ
 ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ ਤੇ ਸੁਖਾਵਾਦੀ



पूज्य आचार्यश्री - शास्त्रोद्धार घर्चा - प्रकरण मे रत



कुन्धलगिरि में रामाधिरथ आचार्य महाराज के दर्शनार्थ जाते हुए 'क्यू' में जनसमुदाय

जिसे ससार में बहुत समय तक परिभ्रमण करना है, उसे आत्मा का अनुभव नहीं होता है। अभव्य को भी आत्मा का अनुभव नहीं होता है।”

एक दिन महाराज को मैंने कुछ आध्यात्मिक सुन्दर श्लोक सुनाए, कारण (शास्त्र में लिखा है कि क्षपक के समीप मधुर वाणी से ऐसी बात सुनावे जिससे उसके भावों में वीतरागता के परिणाम की तथा विशुद्धता की वृद्धि हो। “प्रीणयेत् वचोमृतै”।)

आध्यात्मिक सूत्र

माघनदी आचार्य रचित आध्यात्मिक सूत्रों को मैं पढ़ने लगा। मैंने कहा - “महाराज देखिये। जिस आत्मस्वरूप के चिन्तन में आप सलग्न हैं और जिसका स्वाद आप ले रहे हैं, उसके विषय में आचार्य के सूत्र बड़े मधुर लगते हैं, ‘चिदानन्दस्वरूपोहम्’ (मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ), ‘ज्ञानज्योति-स्वरूपोहम्’ (मैं ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ), ‘शुद्धात्मानुभूति स्वरूपोहम्’ (मैं शुद्ध आत्मानुभूति स्वरूप हूँ), ‘अनतशक्ति स्वरूपोहम्’ (मैं अनन्तशक्ति स्वरूप हूँ), ‘कृतकृत्योहम्’ (मैं कृतकृत्य रूप हूँ)। ‘सिद्धस्वरूपोहम्’ (मैं सिद्धस्वरूप हूँ) ‘चैतन्यपुजस्वरूपोहम्’ (मैं चैतन्यपुज रूप हूँ)। इसे सुनकर महाराज ने कहा था - “यह कथन भी आत्मा का यथार्थ रूप नहीं बताता है।) अनुभव की अवस्था दूसरे प्रकार की होती है। जब आत्मा ज्ञानादिगुणों से परिपूर्ण है तब बार-बार ‘अह’ क्या कहते हो। मैं जो हूँ सो हूँ। बार-बार ‘मैं’ क्यों कहते हो?” यह कहकर वे गुरुदेव चुप हो गए। उक्त कथन महायोगी के अनुभव पर आश्रित है।

शान्त बनो

कुछ क्षण के पश्चात् अतः प्रेरणा से धीरे-धीरे उन क्षपकराज ने कहा - “कर्मों का नाश करना है तो शांत बनो। कर्मों का मूलोच्छेद शांत भाव से होता है। जब आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होकर रहता है, तब कर्म घबडाकर भागते हैं।”

आत्मभवन में निवास

मैंने जिनेन्द्र भगवान के स्तोत्र की चर्चा करते हुए उसके अपार सामर्थ्य पर कुछ प्रकाश डाला, तब महाराज कहने लगे: “हम स्तोत्र वगैरह सब पढ़ चुके हैं। उसे हम भली प्रकार जानते हैं किन्तु अब हम अपनी आत्मा के भीतर बैठ गए हैं। अब हमें अन्य बातों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। इस समय हम अपने घर में बैठे सदृश हैं।”

जलग्रहण का रहस्य

आचार्य महागज ने यम सल्लेखना लेते समय केवल जल लेने की छूट रखी थी। इस सम्बन्ध में मैंने कहा - “महाराज! यह जल की छूट रखने का कार्य आपका बहुत महत्त्व का है। वास्तव में आपने विवेकपूर्ण कार्य किया है। आपके जीवन भर के कार्यों में हमें विवेकपूर्ण प्रवृत्ति का ही दर्शन होता रहा है। गौतम स्वामी में पूछा गया था - भगवन्! ऐसा उपाय बताइये कि जिसमें पापों का भार न उठाना पड़े। तब उन्होंने कहा था - “विवेकपूर्वक कार्य करो इससे तुम्हें पापों का बोध नहीं होगा।” यह सुनकर महागज बोले - “हमने देखा है जल नहीं ग्रहण करने के कारण आठ-दस त्यागियों की बुरी हालत हुई है अतः हमने जल का त्याग नहीं किया है।”

उन्होंने यह भी कहा - “हमने पानी लेने की छूट इसलिए भी रखी है कि इसमें दूसरे त्यागी भाइयों का मार्ग-दर्शन होता है। नहीं तो हमारा अनुकरण करने पर बहुतों की असमाधि होगी।”

मर्म की बात

एक दिन महाराज कहने लगे - “आत्मचिन्तन द्वारा सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक्त्व होने पर दर्शन मोह का अभाव होते हुए भी चारित्र-मोहनीय कर्म बैठ रहा है। उसका क्षय करने के लिए समय धारण करना आवश्यक है। समय से चाग्रि मोहनीय नष्ट होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण मोह के क्षय होने में ‘अर्हन्त’ स्वरूप की प्राप्ति होती है।

जीवित समयसार

मैंने कहा - “महाराज! आपके समीप बैठने पर ऐसा लगता है कि हम जीवित समयसार के पास बैठे हैं। आप आत्मा और शरीर को न केवल भिन्न मानते हैं तथा

१ कथं चरे कथं चिद्धे कथमासे कथं नए।
कथं भुज्जं भासेज्ज कथं पाव ण वज्झइ ॥
जदं चरे जदं चिद्धे जदमासे जदं सए।
जदं भुज्जं भासेज्ज एव पाव ण वज्झइ ॥

- मूलाचार्य

प्रश्न - भगवन्! कैसे चलें? कैसे खड़े रहें? कैसे बैठें? कैसे शयन करें? कैसे भोजन करें? कैसे बोले? किस प्रकार पाप नहीं बँधता है?

उत्तर - यत्नपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक खड़े रहो, सावधानी से बैठो, सावधानी में शयन करो, सावधानी में भोजन करो। सावधानी पूर्वक सम्भाषण करो। ऐसा करने में पाप नहीं बँधता है।

कहते हैं किन्तु प्रवृत्ति भी उसी प्रकार कर रहे हैं। शरीर आत्मा से भिन्न है। वह अपना स्वभाव नहीं है। पर-भाव रूप है, फिर उसे खिलाने-पिलाने आदि का व्यर्थ क्यों प्रयत्न किया जाय? यथार्थ में इस समय आपकी आत्म-प्रवृत्ति अलौकिक है।”

आत्मा को भिन्न कहना तथा विषयो में प्रवृत्त होना कैसा?

महाराज बोले - “आत्मा को भिन्न बोलना और विषयो में लगना कैसा? आत्मचिन्तन है? शरीर से आत्मा भिन्न है अतः आत्मा का ही चिन्तन करना ठीक है। (शरीर की क्या बात? वह तो पर ही है। उसकी सेवा या चिन्ता क्यों करना? उसका क्यों ध्यान करना?) देखो! आत्मा के ध्यान से कर्मों का नाश होता है।”

हृदय में शान्ति का आवास

ऐसी मधुर चर्चा चल रही थी, कि मन्दिर में अभिषेक की बोली का बड़े जोर से हल्ला मचना शुरू हो गया। उसको सुनकर मैंने कहा - “महाराज! इस पूजन की बोली आदि को बन्द करने से गड़बड़ नहीं होगी। हल्ला नहीं होगा।”

महाराज बोले - “बाहर हल्ला हो, गड़बड़ी हो उससे हमें क्या है? जब भीतर शान्ति है, तब बाहर की गड़बड़ी हो उससे हमें क्या है? जब भीतर शान्ति है, तब बाहर की गड़बड़ी क्या करेगी? आत्मा में शान्ति है, तो हल्ला क्या बाधा करेगा?”

जीवन द्वारा उपदेश

यम सल्लेखना के तेरहवें दिन पूज्यश्री को प्रणाम कर मैंने निवेदन किया था - “हम लोगो का महान् सौभाग्य है, जो आप सदृश निरन्तर आत्मस्वरूप का चिन्तन करने में निमग्न साधुराज के पुण्य चरणों का आश्रय मिला है। आपने जीवन भर रत्नत्रय धर्म की समाराधना की है। अब आपका जीवन स्वयं रत्नत्रय धर्म का उपदेश देता है।” उनके पास पहुँचने पर मन में यह भाव पैदा होता था, कि इस कुटी के भीतर एक महान् आत्मा विद्यमान है, जो कर्मों का भीषणता से क्षय करती हुई अपूर्व विशुद्धता को प्राप्त कर रही है। वह आत्मा मृत्यु को चुनौती देकर और उसे आमन्त्रित करके अन्त में मृत्युञ्जय बनने का परम पुरुषार्थ कर रही है। मृत्यु के आगमन के पूर्व उसका नाम सुनते ही बड़े-बड़ों के होश ठिकाने आ जाते हैं, किन्तु आप मृत्यु को मित्र सदृश सोचकर उससे भेट करने को तैयार बैठे हैं।

क्षुल्लक दीक्षा का अपूर्व समारम्भ

ता २८ अगस्त सन् १९५५ रविवार को आचार्य महाराज के समक्ष उनकी सुन्दर रीति से वैयावृत्य तथा परिचर्या करने वाले ब्र भरमप्पा की क्षुल्लक दीक्षा का समारम्भ हुआ। ब्र भरमप्पा ने सर्व उपस्थित सघ से क्षमा माँगी। सघ ने उनकी दीक्षा की भावना की अनुमोदना की। आचार्य महाराज ने वीतरागता के भावो मे निमग्न रहते हुए भी ब्र भरमप्पा पर विशेष करुणावश दीक्षा समारम्भ मे उपस्थित रहने की कृपा की तथा अपने महान् सेवक भरमप्पा के मस्तक पर दीक्षा सम्बन्धी बीजाक्षर का न्यास किया। दीक्षा की विधि विद्वान् तथा सहृदय भट्टारक लक्ष्मीसेन जी कोल्हापुर द्वारा सम्पन्न हुई थी। कुछ समय के पश्चात् ब्र भरमप्पा के हाथ मे पिच्छी कमण्डल आ गये। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उनको 'सिद्धसागर' यह महत्त्वपूर्ण नाम प्रदान किया।

महाराज का आशीर्वाद

दीक्षा समारम्भ हो गया। इसके पश्चात् दूसरे दिन सायंकाल के समय पूज्यश्री ने कहा - "भरमा! तुमने दीक्षा ली है। हमारा विश्वास है कि तेरी कुगति नहीं होगी। घबडाना मत। मिथ्यामती साधु भी तपस्या के द्वारा देव पदवी को प्राप्त करते है तब तो तूने जिनेन्द्र कथित व्रत लिये है। निश्चय ही तेरी सद्गति होगी।" उन्होंने यह भी कहा था, मेरे सामने जो तेरा मूल्य है, वह चक्रवर्ती का भी नहीं है।

भक्तों को संयम-पालनार्थ प्रबल प्रेरणा

महाराज अपने भक्तो को संयम-धारणार्थ अधिक प्रेरणा देते रहते थे। उनके समीप बहुत वर्षों से आने-जाने वाले कुछ शिक्षित और सम्पन्न भक्तो को वे ब्रती बनने को कहा करते थे, परन्तु उन भक्तो के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती थी। महाराज निराश नहीं होते थे।

वे एक दिन कहने लगे - "नर्मदा नदी के पत्थर बहुत चिकने हो जाते हैं। पानी मे निरन्तर रहते-रहते उन पर भी जल टिकने लगता है, किंतु तुम लोगो के मन मे हमारी बात क्यो नहीं टिकती है।" पश्चात् महाराज बोले - "तुम ब्रती नहीं बनते हो, नहीं बनना चाहते हो और हम निरन्तर तुमको यह कहते रहते हैं। यथार्थ मे तुम तो बहुत अच्छे हो। हम ही अज्ञानी है।"

इसके बाद आचार्यश्री की करुणाप्रेरित यह वाणी निकली - "अरे! क्या देखते हो। व्रत पालोगे, तो स्वर्ग मे तुम हमारे साथी रहोगे। वहाँ भी मिलते रहोगे। हमे वहाँ

साथी चाहिए। देखो! अभी हम तुमको इतना आग्रह करते हैं। स्मरण रखो आगे फिर शातिसागर तुमको कहने नहीं आने वाला है। स्वर्ग में जाकर वहाँ से विदेह में पहुँच सीमधर स्वामी के दर्शन कर सकोगे। उनकी दिव्य ध्वनि सुन सकोगे। नदीश्वर आदि के अकृत्रिम जिनबिम्बों का दर्शन कर सकोगे। इससे तुमको सम्यक्त्व मिल सकेगा। वहाँ से चयकर मोक्ष जा सकोगे। सोचो! एक बार फिर से सोचो।”

महाराज की यह मार्मिक वाणी उन लोगों के मन पर असर कर गई और उन लोगों ने कठिन परिस्थिति होते हुए भी व्रत प्रतिमा धारण कर ली। कुथलगिरि में उन बन्धुओं से भेट हुई। उन्होंने अपनी कथा सुनाते हुए सयम धारण जनित शान्ति और सन्तोष को व्यक्त किया।

वृद्धव्रती को उपदेश

एक व्यक्ति ने, जो अधिक वृद्ध हो गए हैं, बताया था कि - महाराज ने हमें व्रत प्रतिमा दी थी तथा हमसे कहा था - “घबड़ाना मत। व्रतो को निर्दोष पालने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना। यदि दोष आ जावे, तो प्रायश्चित्त ले लिया करना। दोष आ जाने पर माह दो माह पर्यन्त णमोकार महामन्त्र की विशेष रूप से चार माला और जप लिया करना।”

अपने परिवार के जनगोडा पाटील को देशना

कुथलगिरि में महाराज के स्व छोटे भाई कुमगोडा पाटील के चिरजीव श्री जनगोडा पाटील जयसिंगपुर से सपरिवार आए थे। आचार्य महाराज के चरणों में उन्होंने प्रणाम किया। बाल्यकाल में जनगोडा आचार्य महाराज की गोद में खूब खेल चुका है, जब महाराज शातिसागर जी सातगोडा पाटील थे। उस समय का स्नेह दूसरे प्रकार का था, अब का स्नेह वीतरागता की ओर ले जाने वाला था। जनगोडा को महाराज ने कहा - “देखो! हमने यम समाधि ली है और अब शीघ्र जाने वाले हैं। तुमको भी सयम धारण करना चाहिए। इसके सिवाय जीव का हित नहीं होता है।” जनगोडा ने कहा - “महाराज क्या करूँ? जो आज्ञा हो, वह करने को तैयार हूँ।”

दीक्षा का सकल्प करो

महाराज बोले - “तुमको हमारी ही तरह दिगम्बर दीक्षा धारण करना चाहिए। इससे अधिक आनन्द और शांति का दूसरा मार्ग नहीं है।”

भावलिङ्गी श्रमण को मुनित्व सचमुच में आनन्द का भण्डार लगता है। जिनके

मन में सम्यक् ज्ञान तथा चेराग्य की ज्योति नहीं जगती है, उनको वह पद भयावह और कष्टपूर्ण प्रतीत होता है।

इष्ट बन्धु को धर्म में लगाना

सुभाषितकार कहता है “जो तुम्हारा इष्ट है, उसे धर्म की ओर उन्मुख करो - इष्ट धर्मेण योजयेत्।” इस नियमानुसार आचार्यश्री ने अपने पूर्व के स्नेहपात्र को श्रेष्ठ कल्याण की बात कही। जनगोडा के पिता कुमगोडा पर भी महाराज का बड़ा प्रेम था।

एक दिन महाराज ने मुझसे कहा “कुमगोडा का अभिमन्यु मरण हो गया। हम उसे ब्रह्मचर्य प्रतिमामात्र दे पाए। हमारा इरादा उसे भी वर्धमानसागर की तरह मुनि बनाने का था। वर्धमानसागर भी पहले गृहस्थी के जाल में था। जिस प्रकार सुनार चाँदी के तार को यन्त्र में जोर से खींचता है, उसी प्रकार हमने उसे सयम की ओर खींचकर लगाया है।” इस दृष्टि से महाराज ने जनगोडा को मुनि बनने को कहा।

जनगोडा ने कहा - “महाराज! कुछ वर्षों की साधना के पश्चात् मुनि बनने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।”

पश्चात् महाराज ने जनगोडा की स्त्री को बुलाकर पूछा - “यदि यह मुनि बनता है तो तुमको कोई आपत्ति तो नहीं है?” वह देवी बोली - “महाराज! कल के बदले यदि वे आज भी मुनि बनना चाहें, तो मेरी ओर से कोई भी रोक-टोक नहीं है।” यह बात सुनकर उन क्षपकराज को बहुत शांति मिली। महाराज ने उस वाई को व्रत प्रतिमा दी। उसी क्षण वे दम्पती व्रती श्रावक बन गए।

घराने में मुनिपद की परम्परा

महाराज ने जनगोडा से एक बात और कही थी - “तुम जब मुनि बन जाओ, तो अपने पुत्र को भी आगे मुनि पद धारण करने की कहना न भूलना। अपने घराने में मुनिपद धारण करने की परम्परा बराबर चलती जावे, यह ध्यान रखना।”

इस वर्णन को वाँचते समय वाचक के हृदय में ऐसा ही लगेगा, मानो वह ऐसे काल में पहुँच गया है जहाँ सयम की सुधाधारा से समाज का हृदय धुला करता था और महापुण्यशाली तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ पुरुषों का सन्दाव था। कर्म का विपाक विचित्र होता है। श्री जनगोडा पाटील का सन् १९५९ में स्वर्गवास हो गया। वे मुझसे कहते थे, शास्त्राध्ययन हेतु मैं बाहर जाकर शीघ्र दीक्षा लेने की तैयारी कर रहा हूँ।”

विनोद मे भी सयम की प्रेरणा

महाराज की प्रत्येक चेष्टा सयम की प्रेरणा प्रदान करती थी। उनके विनोद में भी आत्मा को प्रकाशदायिनी सामग्री मिला करती थी। २८ अगस्त को क्षुल्लक सिद्धसागरजी की दीक्षा हुई थी। नवीन क्षुल्लकजी ने महाराज के चरणों में आकर प्रणाम किया और महाराज से क्षमायाचना की।

महाराज बोले - “भरमा! तुमको तब क्षमा करेगे, जब तुम निर्ग्रन्थ दीक्षा लोगे।”

ऐसी ही कल्याणदायिनी मधुर वार्ता कोल्हापुर के एक पवित्र हृदय भक्त की है। उनका नाम बाबूराव मार्ले है। सम्पन्न होते हुए सयम पालना और सयमियों की सेवा-भक्ति करना उनका व्रत रहता है। वे दो प्रतिमाधारी थे। वारसी से महाराज कुथलगिरि को आते थे। महाराज का कमण्डलु हाथ में लेकर गुरुदेव के पीछे-पीछे चला करते थे। एक बार वे महाराज का कमण्डलु उठाने लगे, तो महाराज ने कह दिया - “तुम हमारे कमण्डलु को हाथ मत लगाना। उसे मत उठाओ।” ये शब्द सुनते ही मार्ले चकित हुए।

महाराज कहने लगे - “यदि दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा करने का इरादा हो, तो कमण्डलु लेना, नहीं तो हम अपना कमण्डलु स्वयं उठावेगे।”

वे भाई विचार में पड़ गये। महाराज के पवित्र व्यक्तित्व ने उस आत्मा के अंतःकरण पर प्रभाव डाला। वे बोले - “महाराज! कुछ वर्षों के बाद अवश्यमेव मैं क्षुल्लक दीक्षा लूँगा।” महाराज को सन्तोष हुआ। महाराज अपने परीक्षित भक्तों को प्रेरणा करते थे। वे जानते थे कि वह भव्य सयम को धारण करने की क्षमता संपन्न है।

कुतर्क का समाधान

यहाँ कोई यह कुतर्क कर सकता है, कि महाराज का ऐसा आग्रह करना अच्छा नहीं लगता। जिनको सयम या व्रत लेना होगा, वे स्वयं लेगे। ऐसी प्रेरणा तथा आग्रह ठीक नहीं है।

शान्तभाव से विचार करने पर विदित होगा कि सन्मार्ग पर चलने के लिए जीवन को प्रेरणा देना आवश्यक है। पतन की ओर किसी को उपदेश की जरूरत नहीं पड़ती है। जल की धारा स्वतः नीचे की ओर जाती है, उसे ऊँचा उठाने के लिए और ऊपर की भूमि पर पहुँचाने के लिए विशेष बल तथा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। यही हाल जीव की परिणति का है। उसे ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए सत्प्रयत्न तथा उद्योग अत्यन्त आवश्यक है।)

मार्मिक दृष्टि

एक बात ओर है, महागज में यह विशेषता थी कि आदमी की सृष्टि देखकर उसे पूर्णतया पहिचान जाते थे। इस प्रवीणता के कारण उनका अंत कर्ण पात्र-अपात्र का पहले ही विचार कर लिया करता था। पञ्चाव प्रान्त के एक शास्त्री जी सुनाते थे - “मैं महाराज के पास गया। मैंने उनसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा देने की प्रार्थना की। मुझे कई दिन तक लगातार उनके पीछे पड़ना पड़ा, तब योग्य मुहूर्त में गुरुदेव ने मुझे उक्त व्रत देकर मेरा जीवन मङ्गलमय बनाया।

जीव के सच्चे कल्याण की दृष्टि

मैंने भी देखा है कि महागज व्यक्ति की शक्ति, अवस्था, पात्रता आदि का भली प्रकार पूर्ण विचार करके ही व्रतादि देते थे। एक समय एक व्यक्ति बड़ा व्रत माँग रहा था, किन्तु महाराज ने उसे छोटा व्रत दिया। मैंने कहा - “महागज! आपने ऐसा क्यों किया? उसके भाव ऊँचे थे, तो आपको उसकी इच्छानुसार बड़ा व्रत देना था।”

महाराज बोले - “उसकी अन्तराङ्ग स्थिति को हम जानते हैं। वह बड़े व्रत का निर्वाह नहीं कर सकेगा। जबरदस्ती व्रत लेकर उसको भग्न करेगा, इससे उसकी आत्मा का अहित हो जायगा। हमें ऐसा काम करना है, जिससे उस जीव की भलाई तथा उत्कर्ष हो। हम दूर तक सोच कर व्रत देते हैं।

सप्तम प्रतिमा धारण

उक्त बाबूराव जी मार्ले ने महागज का कमण्डलु उठा लिया, तब महाराज बोले - “देखो! क्षण भर का भरोसा नहीं है। कल क्या हो जायगा यह कौन जानता है। तुम आगे दीक्षा लोगे, यह ठीक है किन्तु बताओ! अभी क्या लेते हो।”

उक्त व्यक्ति की अच्छी होनहार होने से उसने कह दिया - “महाराज मैं सप्तम प्रतिमा लेता हूँ।”

महाराज ने कहा - “अच्छा”। उन्होंने महाराज के चरणों में प्रणाम किया। महाराज ने पिच्छी सिर पर रखकर अपना पवित्र आशीर्वाद दिया। छोटे से विनोद का इतना मधुर पवित्र परिपाक हुआ। एक व्यक्ति धन वैभव के होते हुए भी गुरुदेव के प्रसाद से ब्रह्मव्रती हो गया और आगे वह क्षुल्लकव्रती होगा।

ओजपूर्ण वाणी

महाराज की वाणी में बड़ा बल था। सयम को धारण न करनेवाला भी हृदय से सयम का भक्त बन जाता था और उसके मन में भी सयम के प्रति हार्दिक ममता और प्रगाढ़ अनुराग जागृत हो जाता था। अत्यन्त परिचित ब्रह्म वडू को महाराज कहते थे - “अरे! तू सन्यासी हो जा। मेरे साधु का कलेवर और प्राणधारी गृहस्थ समान हैं। इतना ही नहीं साधु का मृत देह जो काम करता है, वह गृहस्थ भी नहीं करता है। मेरे पीछे तुझे कोई और कहने को आने वाला नहीं है। पीछी धारण कर मरो। ऐसे ही मत मरना। करने के कार्य में रुको मत! मेरा बेटा है, भाई है, धन है, आदि की बात मत सोचो।”

लक्ष्मी पुण्य की दासी है

महाराज की यह वाणी बहुत गहरी अनुभूति को प्रदर्शित करती है - “अरे! निर्दय होकर घर छोड़ना पड़ता है। निर्दय हुए बिना घर नहीं छूटता है। मेरे पीछे घर में सम्पत्ति रहेगी या नहीं रहेगी यह ख्याल भी मत करो। घर के व्यक्तियों का पुण्य होगा, तो रहेगी। पुण्य नहीं होगा, तो संपत्ति नहीं रहेगी। लक्ष्मी पुण्य की दासी है।”

भीरु स्वभाव वालों के प्रति उपेक्षा

उनके ये वाक्य भी पूर्ण सत्य हैं - “जो व्रत लेने वाले नहीं हैं, उनको हम नहीं कहते हैं। इसमें हमारा धन व्यर्थ में जाता है। ऐसे से हम नहीं बोलते।” व्रती की वीर से तुलना करते हुए पूज्यश्री कहते थे - “डरपोक आदमी, हरिण और गाँव की छिडिया अपना स्थान छोड़कर बाहर नहीं जाते हैं। वीर व्यक्ति अपना स्थान छोड़कर बाहर जाता है।”

वाहन में बैठनेवाले साधुओं को इशारा

जो साधु बनकर भी रेलगाड़ी आदि का मोह नहीं छोड़ते उनके बारे में विनोदपूर्ण भाषा में आचार्य महाराज कहते थे - “हम तो दरिद्र साधु हैं। हमें पैदल गमन किए सिवाय साध्य नहीं है। इसके सिवाय गत्यंतर नहीं है। रेल में जाने वालों को तो विद्या सिद्ध है। वे क्षण भर में यहाँ से वहाँ चले जाते हैं। अन्य धर्म के साधु भी तो रेल में नहीं बैठते और पैदल चलते हैं किन्तु यहाँ के जो साधु वाहन का उपयोग करते हैं, उनको क्या कहना?”

लोकोत्तर मनोभाव और वैराग्य

आचार्यश्री का हृदय लोकोत्तर था। उनकी मुद्रा क्षणभर में भी गम्भीर बन जाती थी। उनकी परिणति में विकार नहीं रहता था। एक समय मुनि वर्धमान स्वामी ने

महाराज के पास अपनी प्रार्थना भिजवाई - “महाराज! मैं तो बानवे वर्ष से अधिक का हो गया। आपके दर्शनो की बड़ी इच्छा है। क्या करूँ?” इस पर महाराज ने कहा - “हमारा वर्धमानसागर का क्या सम्बन्ध? गृहस्थावस्था में वह हमारा बड़ा भाई रहा है सो इससे क्या? हम तो सब कुछ त्याग कर चुके हैं। पंच परावर्तन रूप ससार में हम अनादिकाल से घूमते हैं। उसमें सभी जीव हमारे भाई-बन्धु रह चुके हैं। ऐसी स्थिति में किस-किस को भाई, बहिन, माता, पिता मानना। हमको तो सभी जीव समान हैं। हम किसी में भी भेद नहीं देखते हैं। ऐसी स्थिति में वर्धमानसागर बार-बार हमें क्यों दर्शन के लिए कहता है।”

उस व्यक्ति ने बुद्धिमत्तापूर्वक यह कहा - “महाराज! वे आपके दर्शन अपने भाई के रूप में नहीं करना चाहते हैं।”

महाराज बोले - “यदि ऐसी बात है, तो वहाँ से ही स्मरण कर लिया करे। यहाँ आने की क्या जरूरत है?”

कितनी मोहरहित, वीतरागतापूर्ण परिणति आचार्यश्री की थी। विचारवान व्यक्ति आश्चर्य में पड़े बिना न रहेगा। जहाँ अन्य त्यागी लौकिक सम्बन्धों और पूर्व सम्पर्कों का विचार कर मोही बन जाते हैं वहाँ आचार्यश्री अपने सगे ज्येष्ठ भाई के प्रति भी आदर्श वीतरागता का रक्षण करते हैं। वास्तव में वे पवित्र साधु थे। उनकी साधुत्व की कल्पना प्रारम्भ से ही उज्ज्वल थी।

साधु को धन देने वाला भी दुर्गति का पात्र है

सन् १९२५ की बात है। उस समय पूज्यश्री नसलापुर में विराजमान थे। मुनि नेमिसागर जी उस समय गृहस्थ थे। उनके हृदय में सत्य, श्रद्धा और सद्गुरु के प्रति निर्मल भक्ति का भाव नहीं उत्पन्न हुआ था।

श्री नेमण्णा ने महाराज से पूछा था - “साधु किसको कहते हैं?”

महाराज ने कहा था - “जिसके पास परिग्रह न हो, कषाय न हो, दुनिया की झड़्डटे न हों, जो स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहता हो उसे साधु कहते हैं।”

धन के लालची साधुओं का वर्णन करते हुए महाराज ने कहा था - “हाल में ऐसे भी साधु बहुत होते हैं, जो पैसा रखते हैं। कमडलु में पैसे डलवाते हैं। ऐसे साधु को पैसा देने वाला पहले दुर्गति को जाता है। तुम पैसा देकर के पहले स्वयं क्यों दुर्गति को जाते हो?” इससे आचार्यश्री की स्फटिक सदृश विशुद्ध दृष्टि स्पष्ट होती है।

सल्लेखना के लिए मानसिक तैयारी

यम सल्लेखना लेने के दो माह पूर्व से ही उनके मन में शरीर के प्रति गहरी विरक्ति का भाव प्रवर्धमान हो रहा था। इसका स्पष्ट पता इस घटना से होता है। कुथलगिरि आते समय एक गुरुभक्त ने महाराज की पीठ में दाद रोग को देखा। उस रोग से उनकी पीठ और कमर का भाग विशेष व्याप्त था।

दाद रोग की दवा

भक्त ने कहा - “महाराज! इस दाद की दवाई क्यों नहीं करते? दवा लगाने से यह शीघ्र ही दूर हो जायगा।”

महाराज बोले - “अरे! इसमें बहुत दवाई लगाई गई। तेजाब तक लगाया गया, किन्तु यह बीमारी हमारा पिण्ड नहीं छोड़ती है। हमारे पास एक दवाई है उसे लगावेंगे, तो यह रोग नष्ट हो जायगा और शरीर रोगमुक्त हो जायगा।”

भक्त बोला - “महाराज! अभी दवा क्यों नहीं लगाते? आगे लगावेगे, ऐसा क्यों कहते हैं? बताइये, कौन दवा है? मैं लगा दूँगा।”

महाराज बोले - “अरे! वह दवा तू नहीं जानता। मैं उसे दो माह में लगाकर इस शरीर को पूरा ठीक कर दूँगा।”

शरीर से गहरी विरक्ति

इसके अनन्तर महाराज की मुद्रा गम्भीर हो गई और वे कहने लगे - “यह शरीर हमें बहुत दिनों से खूब तन्त्र करने लगा है। पहले दाँतो ने तकरार की - झगडा किया। वे सब चले गए। इसके बाद आँख ने गडबड शुरू की। धीरे-धीरे एक आँख की ज्योति मन्द हो गई। बाद में दूसरी भी जाने को तैयार हो रही है। देखो! हमने जीवन में किसी की गुलामी नहीं की। फिर भी इस आँख की खूब दवा की। सुबह-शाम दवा लगाते थे। दवा लगाते-लगाते हम थक गए। अब शरीर की हमको फिकर नहीं है। थोड़े दिनों में इस शरीर को छोड़कर नवीन नीरोग और स्वच्छ शरीर धारण करेंगे, तब कमर की दाद वगैरह अपने आप दूर भाग जायगी।”

आचार्यश्री की इस वाणी में उनकी यम-सल्लेखना के बीज अकुरित पाए जाते थे। गुरुदेव की वाणी सुनकर बेचारा भक्त चुप हो गया। महाराज की अनासक्ति अद्भुत थी।

शरीर से भेद-बुद्धि

एक बार उन्होंने मुझसे कवलाना में पूछा था - “क्यों पडितजी! चूल्हे में आग जलने से तुम्हें कष्ट होता है या नहीं?” मैंने कहा- “महाराज! उससे हमें क्या बाधा होगी। हम तो चूल्हे से पृथक् हैं।”

महाराज बोले - “इसी प्रकार हमारे शरीर में रोग आदि होने पर भी हमें कोई बाधा नहीं होती।” यथार्थ में वे पहिले ही घर में पाहुने सदृश रहते थे और अहिंसा महाव्रती निर्ग्रन्थराज बनने पर तो वे शरीर के भीतर ही पाहुने सदृश हो गए थे। (जब देह अपना नहीं है। उसका गुण, धर्म आत्मा से पृथक् है, तब देह के अनुकूल या विपरीत परिणाम होने पर सम्यक्ज्ञानी सत्पुरुष क्यों राग या द्वेष को धारण करेगा? यह तत्त्व बौद्धिक स्तर (Intellectual level) पर तो प्रत्येक विचारक के चित्त में जँच जाता है) किन्तु अनुभूति की दृष्टि से जब तक सम्यग्दर्शन अतः करण में आविर्भूत नहीं होता है, तथा सम्यक् चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है तब तक इस ओर जीव की प्रवृत्ति नहीं होती है। शास्त्र में इस कलिकाल में सम्यक्त्व की सख्या दो-चार कही है।^१ वह ऐसी आत्माओं को लक्ष्य करके कहा है।

सल्लेखना का निश्चय गजपथा में १९५१ में हुआ था

सल्लेखना का तो निश्चय उन्होंने गजपथा में सन् १९५१ में किया था, किन्तु यम-सल्लेखना को कार्यरूपता कुथलगिरि में प्राप्त हुई। महाराज ने सन् १९५२ में बारामती चातुर्मास के समय पर्यूषण में मुझसे कहा था कि “हमने गजपथा में द्वादशवर्ष वाली सल्लेखना का उत्कृष्ट नियम ले लिया है। अभी तक हमने यह बात जाहिर नहीं की थी। तुमसे कह रहे हैं। इसे तुम दूसरों से भी कहना चाहो, तो कह सकते हो।” इसके बाद से महाराज की सयम साधना, उपवामादि बड़े उग्र रूप से हो चले।

कुथलगिरि चातुर्मास में विशेष तपस्या

सन् १९५३ में अर्थात् दो वर्ष पूर्व कुथलगिरि में उनका चातुर्मास था, तब

१ विद्यन्ते कति आत्मबोधविमुखा सदेहिनो देहिन ।

प्राप्यन्ते कतिचित् कदाचित्पुनर्जिज्ञासमाना कचित् ।

आत्मज्ञा परमप्रमोदसुखिन प्रोन्मीलदतर्दृशो ।

द्वित्रा स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पचषट् दुर्लभा ॥

-संस्कृत टीका कार्तिकेयानुप्रेक्षा

उनके उपवास वृहत् रूप में चल रहे थे। मैं व्रतो में पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि पचमी से महाराज ने पाँच दिन का मौन और पच उपवास का नियम कर लिया है। मैंने महाराज से कहा - “आपके चरणों में लाभ लेने की लालसा से भारत के बड़े-बड़े स्थानों के निमन्त्रण को छोड़कर आपकी सेवा में सदा की भाँति आया हूँ। आपका मौन देखकर मैं चकित सा हो गया। कम-से-कम धर्मशास्त्र की चर्चा के लिए तो मौन का बन्धन न हो।”

पाँच दिन के पश्चात् महाराज ने आहार किया और पुनः पाँच उपवास की प्रतिज्ञा कर ली, किन्तु इस समय उन्होंने मौन नहीं लिया। महाराज बोले - “हमने सोचा पंडित इतनी दूर से हमारे पास आया है। तुम्हारा ख्याल करके हमने मौन नहीं लिया।” मैंने उनके पावन चरणों को प्रणाम किया और कहा - “महाराज! आपने बड़ी दया की। इससे शेष व्रत के काल में आपके अमूल्य अनुभवों का लाभ हम सबको मिल सकेगा।”

‘भगवती आराधना’ से समाधि का प्रकाश-लाभ

महाराज ने अपनी तपस्या का कारण समाधिमरण की तैयारी बताया था। इसके पश्चात् मैंने ‘भगवती आराधना’ ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ा, तब ज्ञात हुआ कि आचार्य महाराज की नैसर्गिक प्रवृत्ति पूर्णतया शास्त्रसंगत रहा करती है।

मुनिपद के लिए आदर्श

महापुराण में सम्राट् भरत के विषय में कथित जिनसेन स्वामी की एक बात इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। भरतेश्वर की प्रवृत्ति तथा उस महापुरुष की शरीर रचना आदि को विविध शास्त्र पारंगत लोग प्रत्यक्ष देखकर अपना-अपना सशय दूर किया करते थे। भरतेश्वर मूर्तिमान् आयुर्वेद शास्त्र के समान दिखते थे - “आयुर्वेदो नु मूर्तिमान्”
-१६-१४५

अन्येऽपि कला-शास्त्र-संग्रहेषु कृतागमाः ।

तमेवादर्शमालोक्य सशयांशाद् व्यरंसिषु ॥१६-१५०॥

इसी प्रकार यह कथन उचित है कि मुनि-धर्म के शास्त्रों को पढ़ते समय आचार्य महाराज की प्रवृत्ति का विचार करते ही शका दूर हो जाती थी। महाराज की प्रत्येक चेष्टा शास्त्र के अनुकूल थी।

न्यायपक्ष ग्रहण

ऐसी पुण्य जीवनी होते हुए भी दूसरे व्यक्ति की युक्तिपूर्ण बात को स्वीकार

करने में वे सकोच नहीं करते थे। महत्ता इस बात में नहीं है कि यदि मुख से अयोग्य बात निकल गई हो, तो उसको ही ठीक सिद्ध करने में अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया जाय।

भ्रान्त विचार

किन्हीं-किन्हीं की यही धारणा रहती है कि मुख से जो भी बात निकल जाय, उसे ही ठीक सिद्ध करने में पांडित्य की प्रतिष्ठा है। एक समय महाराष्ट्र के एक बड़े नगर में महाराज विराजमान थे। मै पर्यूषणपर्व में वहाँ तत्त्वार्थ-सूत्र पर विवेचन करता था। शास्त्र की एक शका का ठीक समाधान मेरे ध्यान में नहीं आया। मैंने कहा इस विषय पर मैं अभी कुछ नहीं कह सकता, पीछे शास्त्र देखकर कुछ कह सकूँगा। मेरे इस व्यवहार को देख शास्त्र के समाप्त होने पर एक वृद्ध शास्त्री जी बहुत अप्रसन्न हुए और कहने लगे पंडिताई की रक्षा के लिए तुम्हें कुछ भी उत्तर देकर उसका समर्थन करना चाहिए था। मैंने नम्रता से कहा, “पंडितजी! मुझ में ऐसी पंडिताई इसलिए नहीं है कि मैं यथार्थ में पंडित नहीं हूँ।”

विचारपूर्ण प्रवृत्ति

आचार्य महाराज का कवलाना में दूसरी बार चातुर्मास हो रहा था। अन्नपरित्याग के कारण उनका शरीर बहुत अशक्त हो गया था। उस समय उनकी देहस्थिति चिंताप्रद होती जा रही थी। एक दिन महाराज आहार के लिए नहीं निकल रहे थे। मैं उनके चरणों में पहुँचा।

महाराज बोले “आज हमारा इरादा आहार लेने का नहीं हो रहा है।” मैंने प्रार्थना की “महाराज! ऐसा न कीजिए। शरीर कमजोर है। चर्या को अवश्य निकलिये। यदि शरीर को थोड़ा जल भी मिल जायगा, तो ठीक रहेगा। यह शरीर रत्नत्रय साधन में सहायता देता है, इसलिए इसके रक्षण का उचित ध्यान आवश्यक है।” मेरे आग्रह करने पर महाराज ने विचार बदल दिया और क्षण भर में वे चर्या को निकल गये।

भूल-संशोधन में निरन्तर तत्पर

मैंने देखा है कि विरुद्ध पक्ष की युक्तियुक्त बात को वे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते रहे हैं। उनके मुख से मैंने बहुत बार यह सुना “यदि बालक भी हमें हमारी भूल बतायेगा, तो हम भूल को स्वीकार कर लेंगे।” माता सत्यवती से प्रसूत साधुराज की ऐसी प्रवृत्ति पूर्णतया स्वाभाविक तथा उचित भी थी।

समाधिमरण के स्वार्थी प्रेरक

कुथलगिरि में आचार्यश्री को यम-सल्लेखना तप में समारूढ देखकर तथा विविध साधनों से यह ज्ञातकर हृदय में व्यथा हुई कि कुछ स्वार्थी तथा विवेकहीन भक्तों ने पूर्व में सल्लेखना लेकर यम से युद्ध छेड़ने के गुरुदेव के विचार व्यक्त करते समय उत्साहवर्धक रागभेरी बजाना प्रारम्भ कर दी। इससे उनकी उस तपस्या की ओर बहुत शीघ्र प्रवृत्ति हो गई। सत्यशोधक के नाते लेखक का यह कटु कर्तव्य है कि 'शत्रोरपि गुणाः वाच्या, दोषाः वाच्या गुरोरपि' की नीति का संरक्षण करे।

समाधिमरण के बाद वर्तमान पर्याय की समाप्ति हो जाती है। जीव पर्यायान्तर को धारण करता है। अतः आचार्यश्री फिर दर्शन न देंगे। इस सर्वविदित तत्त्व को भी कुछ लोग भूलकर महाराज को सदा समाधिमरण धारण करने की प्रेरणा दिया करते थे।

पहले भी प्रेरणा

महाराज ने मुझे सुनाया था कि एक बार वे बहुत बीमार हो गए थे। शरीर इतना अशक्त हो गया था कि करवट भी बदलना कठिन था। लघुशका निमित्त उठकर दूर जाना असम्भव हो गया था। उस प्रसङ्ग में एक ब्रह्मचारी जी ने महाराज से बहुत आग्रह किया था - “महाराज! आप समाधि ले लीजिये। अब आप अधिक दिन नहीं टिकेंगे।”^१

महाराज ने उत्तर दिया था - “हमने बाल्यकाल से जिनेन्द्र के धर्म की शरण ली है। हमें अपने जीवन के बारे में धोखा नहीं होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हमें तुम्हारी सलाह की जरूरत न पड़ेगी।” कदाचित् पूज्यश्री के मन पर उन महोदय की वाणी असर कर देती या उन अविवेकी व्यक्ति की भ्रांति और भी प्रेरक निमित्त बननेवाले पुरुष मिल जाते और महाराज उनके कथनानुसार प्रवृत्ति करते, तो दस बारह वर्ष पूर्व ही यह आध्यात्मिक निधि लुट गई होती। समाज का भाग्य था कि इतने वर्ष ये महापुरुष समाज को सत्य-प्रदर्शन करते रहे।

सशक्त शरीर होते हुए यम सल्लेखना ग्रहण

इस यम सल्लेखना के प्रकरण में कुछ जिम्मेदार धर्मबन्धुओं से कुथलगिरि में अनेक बातें ज्ञात हुईं। यम सल्लेखना लेने के पश्चात् २७ वें दिन आचार्य महाराज ने मुझे

१ इन्होंने ही कुथलगिरि में समाधिमरण लेने को महाराज से अनेक बार आग्रह किया। ऐसी अमङ्गल सलाह देने वाले का नाम न देना उचित लगता है। अब इनका मरण हो गया।

समाधि की प्रेरणा का रहस्य

वे नीरा ग्राम तरफ आए। वहाँ से उनका भाव मुक्तागिरि की तरफ बिहार करने का हुआ और वे रवाना होने को तैयार थे क्योंकि वीरसागर महाराज ने एक बार मुक्तागिरि को समाधियोग्य स्थान सुझाया था। इस विषय में उनका पत्र नीरा में आया था। कुछ लोग महाराज के पास आए और उन्होंने स्मरण दिलाया - “महाराज! आप वहाँ कहाँ जाते हैं? आपके नेत्रों की ज्योति मद हो रही है। आपको समाधिमरण लेना है।” कहते हैं उनमें मुख्य सत्पुरुष तो वे थे, जो १२ वर्ष पूर्व ही पूज्य गुरुदेव को समाधिमरण के लिए प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान कर चुके थे। इन प्रेरकों की इच्छा उन गुरुराज को मुक्तागिरि गमन से विमुख कराकर कुथलगिरि ले जाने की थी। इस पद्धति से क्षेत्र के लिए विपुल धन-लाभ की उनकी अतरंग की भावना थी।

समाधिमरण लेने की चर्चा की जाने पर पूज्यश्री ने कहा “अच्छा अभी हम कुछ दिन यहाँ नीरा में ही निवास करेंगे।” इसके अनंतर मुक्तागिरि के व्यवस्थापकों आदि ने गुरुदेव के समीप आने का प्रयत्न नहीं किया और कुथलगिरि के पक्षकारों ने आकर गुरुदेव का उस ओर प्रस्थान करा दिया। बारामती में जब महाराज थे, तब भी कुछ व्यक्ति आकर नेत्रों की चर्चा का आश्रय ले समाधिमरण के लिए महाराज के स्वयं-विरक्त मन को प्रेरणाप्रद बातें कहने में सकोच नहीं करते थे।

विपरीत निमित्तों का जमघट

हमें ज्ञात हुआ है कि जब पूज्य महाराज कुथलगिरि पहुँच गए, तब वहाँ पूना से एक वैद्य बुलाया गया। वैद्य ने नेत्रों की पूर्ण जाँच के पश्चात् भयंकर अवस्था न बताकर रोग को उपचार से साध्य कहा। उस समय महाराज ने वैद्य की दवा एक माह के लगभग लगाने की भावना दर्शाई।

इसके ही अनंतर कुछ लोगों ने एक विवेकशून्य नेत्र-विशेषज्ञ डाक्टर को बुलाया, जिसने कहते हैं, महाराज के समक्ष कह दिया, कि अब आपके नेत्र ठीक नहीं हो सकते। उनकी शक्ति समाप्तप्राय हो गई है। रक्तवाहिनी नसे (Veins) काम नहीं कर रही हैं। उस वाणी को सुनते ही महाराज का मन पूर्ण बदल गया और उन्होंने यम से युद्ध लेने के लिए यम-सल्लेखना का सुदर्शनचक्र चलाने का विचार किया।

उस समय, ऐसा पता चला है कि एक निकटवर्ती, प्रभावशाली, विचारशील भक्त सज्जन ने महाराज से प्रार्थना की, कि अभी आप यम-सल्लेखना न लीजिए। चातुर्मास

के समक्ष श्रीफल रखकर प्रतिज्ञा की थी, कि आपका उत्तर तरफ विहार करने का भाव है, तो जहाँ आप यात्रार्थ जाने को कहेंगे, वहाँ चलने की सर्व व्यवस्था तथा सेवा करने को हम लोग तैयार हैं।” ऐसे अनेक प्रकरण हैं, जिनसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि पूज्यश्री की बलवती भावना उत्तर की तरफ जाने की थी।

महाराज का इरादा

वे हमसे यह भी कहते थे कि - “अब पहले की तरह बड़े समुदाय के साथ जाने का हमारा भाव नहीं है। थोड़े से लोगों के साथ जाने की इच्छा है।” उस समय मैंने कहा था - “महाराज! अबकी बार यदि आप यात्रार्थ गए तो सिवनी होकर के ही जाएँ, ऐसी प्रार्थना है?”

सिवनी के मंदिर

महाराज ने कहा था - “क्या बताये, पहले हमारी तुम्हारी ‘ओलख’ (पहिचान) नहीं थी, नहीं तो जब जबलपुर आए थे, तब सिवनी के मन्दिरों के दर्शनार्थ अवश्य आते।”

सिवनी के मंदिरों के फोटो देखकर महाराज ने कहा था - “बहुत सुन्दर मन्दिर है।” उत्तर जाते समय हम सिवनी होते हुए जावेगे।”

अविवेक का कार्य

उपर्युक्त विवेचन का ध्येय किसी के दोषों का उद्घावन नहीं है। यह तो समझ का फेर है। गुरुदेव का जीवन किसे प्रिय नहीं था, किन्तु किन्हीं अदूरदर्शी भाइयों के भ्रान्त विचार तथा मिथ्या भक्ति ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि असमय में ही गुरुदेव का स्वर्गारोहण कुथलगिरि से हो गया।

आचार्यश्री की सेवा में रहनेवाले हजारों व्यक्तियों का अनुभव रहा है, कि आचार्य महाराज के साथ में कभी भी कोई कष्ट नहीं हुआ। कुथलगिरि में सघपति सेठ गेदनमल जी जवेरी बम्बई वालों से हमने आचार्य महाराज के प्रभाव के बारे में चर्चा चलाई थी, तो वे कहने लगे - “हम महाराज के साथ हजारों मील पैदल गए हैं। उनके प्रभाववश कभी भी कष्ट नहीं हुआ।” औरों का भी यही अनुभव रहा है।

प्रकृति का रोष

कुथलगिरि की कथा इससे निराली रही है। प्रकृति का भीषण प्रकोप रहा है।

वर्षा की भीषणता के कारण यात्री घबड़ाते थे। प्रबन्ध की भी अद्भुत स्थिति थी। गातिमय वातावरण का अभाव अधिक दृष्टिगोचर होता था। कलह तथा विरोध की अद्भुत बाते यत्र तत्र सुनने में तथा अनुभव में आती थीं। महाराज के शव के रखने को जो विमान पहले बना था, वह बड़ी ही विचित्र बनावट का था। पश्चात् सघपति सेठ गेदनमलजी के कड़े रुख के कारण उन महापुरुष के शरीर की श्मशान-यात्रा के अनुरूप दूसरा विमान बनवाया गया था। यह विषय भी कटु विवादस्वरूप बन गया था। दुर्भाग्य से अभक्त जनों का नेतृत्व उस समय दिखता था।

लेखक का कर्तव्यपालन हमें प्रेरित करता है कि हम सत्य के प्रकाश में सकोच छोड़कर वास्तविकता का चित्रण करें। कुथलगिरि की अमगलमय प्रवृत्तियों की स्मृतियाँ आज भी मनोव्यथा उत्पन्न करती हैं। पाठक इस घटना के विषय में स्वयं सोचें कि कैसी-कैसी बातें वहाँ हुई थीं।

अविवेक की चरम सीमा

महाराज का शरीरांत तो ता १८ सितम्बर को हुआ था; किन्तु ऐसी अद्भुत व्यवस्था रही कि आठ दिन पूर्व ही दाहस्थल पर महाराज की चिता रच दी गई थी। हजारों यात्री इस अद्भुत विवेक को देखकर दुःखी हो रहे थे कि गुरुदेव जीवित है, फिर क्यों उनकी चिता पहले ही रच दी गई? कुछ लोगो ने हमसे कहा था कि ऐसा अनर्थ तो रुकवाइये। हमने उत्तर दिया था कि इस स्थल का अद्भुत रज-ढङ्ग देखकर बुद्धि काम नहीं करती है। फिर भी कुछ बन्धुओं से चर्चा की ओर उन्होंने पूर्व निर्मित चिता की सामग्री स्थानान्तर करके रखवा दी थी।

अविवेक के शासनवश सल्लेखना के अन्तिम समय के कुछ पूर्व हजारों लोगों को आचार्य महाराज के दर्शन में रोक करने से दर्शन के बिना ही लौट जाना पड़ा। आसाम, बङ्गाल, पंजाब, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, मलाबार, मध्यप्रदेश, मध्यभारत आदि के हजारों लोग - ऐसे लोग जिन्होंने जीवन में अपने धर्मगुरु का कभी भी दर्शन नहीं किया था - विपुल द्रव्य खर्च कर बड़ी भक्ति से वहाँ पहुँचे थे। हजारों गरीब तो ऐसे भी थे जो अपने घर की वस्तुओं को बेचकर, कर्जा तक लेकर उन साधुराज के दर्शन द्वारा अपना जन्म सफल करने आए थे, किन्तु उनको अत्यन्त दुःखी हो निराश लौटना पड़ा। उनकी मनोव्यथा का मूल्य कौन आँक सकता है?

मिथ्या परिकल्पना

अहकारी और अविवेकी स्वयंभू व्यवस्थापक आदेश भर दे देते थे कि महाराज

का दर्शन नहीं हो सकता। उनके ध्यान में विघ्न आयेगा। मैंने कई लोगों से कहा था - “अभिषेक के समय लाउड स्पीकर में हजागे की बोली करते समय धनसचय की पूर्ति होने से वह हल्ला ध्यान में बाधक नहीं होता था, किन्तु मौनभाव से चुप रहने की शपथ लेकर जाने वाले लोगो को कुटी खोलकर यदि गुरुदेव के दर्शन का अवसर दिया जाय, तो क्या बाधा है?”

विवेक का जागरण

अनेक भाइयों के सत्प्रयत्न से तथा भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज के विशेष उद्योग से अन्त में महाराज के पास की कुटी अलग कर दी गई और सब लोग उनका दर्शन करके कुछ शांति प्राप्त कर सके। यदि ऐसा विवेक पहिले जग जाता तो हजारों श्रावको को दूर-दूर से आकर निराश न लौटना पड़ता।

निदनीय दुष्ट भावना

जब महाराज के दर्शन लोगों को हो रहे थे, तब एक सुशिक्षित प्रवचक सज्जन ने उलाहना देते हुए मुझसे कहा - “आप लोग अभी भी दर्शन करा रहे हैं। आप लोग शीघ्र ही महाराज का प्राण लिये बिना न रहेंगे।” उन चिरपरिचित क्षेत्रप्रवचक की वाणी दिल में तीर की तरह चुभी थी। हम सदा से प्रत्यक्ष में, परोक्ष में गुरुदेव की पूजा करते रहे हैं, फिर भी ये हमें उनके जीवन का शत्रु सोचते थे। तब दूसरों के विषय में क्या कहा जाय? पहले वे व्यक्ति महाराज के तीव्र विपक्षी रहे हैं। अब तो वे काल-कवलित हो गए।

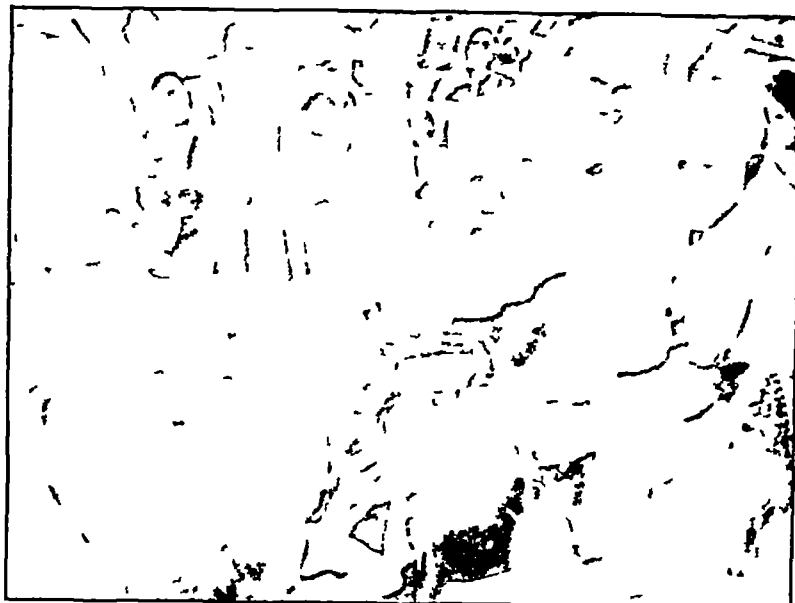
अंतराय कर्म

सामायिक के पश्चात् आचार्य महाराज का भक्ति पाठ आदि का कार्यक्रम बराबर चला करता था। महाराज अपनी क्रियाओं में आश्चर्यप्रद रीति से सजग रहते थे। मैं सोचता था, जब लोग कुछ इधर उधर की बातों में पूज्यश्री के क्षणों को लेते हैं, तब ऐसे समय यदि समाधिशतक आदि की उद्बोधिनी सामग्री उनको सुनाई जाय, तो क्षपकराज की सुन्दर सेवा होगी। उनके पास में रहने वाले लोग अद्भुत थे। बड़ी कठिनाई से वहाँ कुटी में प्रवेश हो पाता था और वहाँ मौनी बनने का सकेत प्राप्त होता था।

शास्त्र की बड़ी सुन्दर बातें, महाराज को सुनाने योग्य दृष्टिपथ में आती थीं, जिनसे उनके हृदय को विशेष प्रेरणा प्राप्त होती, किन्तु वहाँ महाराज के निकटवर्ती मडल की दृष्टि में यह बात महत्त्व विहीन दिखती थी।



आचार्यश्री जिनेन्द्रदर्शन को जाते हुए



आचार्यश्री आहार ले रहे हैं



आचार्यश्री आहार के बाद



श्री गुरुदेव की समाधि
नं. ११, ७७, ७८, ७९

समाधि के ३५ वे दिन का अद्भुत चित्र



ଦିନନନ୍ଦ କଲ୍ୟାଣ

जब कभी सौभाग्य मिला, तब चर्चा द्वारा गुरुदेव के हृदय की ऐसी अनुपम बातें सुनने में आई, जिनको शास्त्र का अपूर्व मर्म कहा जा सकता है। महाराज के आसपास धनसचय के हेतु हल्ला को शांति मानने वाले और धर्म की वीतरागतापूर्ण चुनी सामग्री को व्यर्थ की बातें सोचने वाले अद्भुत विवेकी वर्ग से मेरा यही कहना था कि इस अवसर पर आगत हजारों व्यक्तियों को धर्मलाभ का मौका भाषण, उपदेशादि द्वारा कराने का प्रबन्ध जरूरी है, परन्तु बहुत कम सुनवाई हो पाती थी। वहाँ अधेर नगरी का रूप दिखता था।

आर्षवाणी की अपार शक्ति

जो सोचते हैं शास्त्र क्या करेगा? वे इस एक श्लोक को ही देखें कि इस एक पद्य में ही आत्मा को सामर्थ्य प्रदान करने वाली कितनी जोरदार सामग्री भरी है। ऐसी सामग्री के सुनाए जाने से मन को अधिक निर्मलता प्राप्त हुए बिना नहीं रहती।

जिनवाणी रूप भोजन

‘मृत्यु के साथ युद्ध करो’ वाले क्षपकराज के शरीर को भोजन नहीं मिलता है, उनकी आत्मा के लिए अमृतमय भोजन सदृश ऐसी जिनवाणी की सामग्री होती है - आचार्य समझाते हैं “अरे क्षपक! कृमि समुदाय से परिपूर्ण शरीररूपी पिंजरे के नष्ट होते समय तुझे डरना नहीं चाहिए। तेरा शरीर तो ज्ञान रूप है, पुद्गल शरीरात्मक नहीं है। कहा भी है -

कृमिजाल-शताकीर्ण, जजरि देहपंजरे।

भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः॥ - मृत्युमहोत्सव ॥९॥

अद्भुत आत्म-सामर्थ्य

वहाँ की सामग्री को ध्यान में रखने पर मेरी तो यह धारणा है कि यदि आचार्य शातिसागर महाराज के स्थान पर अन्य व्यक्ति ने समाधि ली होती, तो उनके भावों में स्थिरता रहना बहुत कठिन बात थी। आचार्यश्री की सारी जीवनी अपूर्व थी, तपोमयी थी। अगणित सकटों के मध्य में भी वे आध्यात्मिक स्थिरता को कायम रख सकते थे। उनकी शक्ति और अभ्यास असामान्य रहे हैं।

एक समय महाराज ने कहा था - “हम बीच बाजार में भी बैठकर आत्मध्यान कर सकते हैं।” उस समय मैंने पूछा था - “महाराज! बाजार का हल्ला आदि आपके ध्यान में विघ्न उपस्थित नहीं करेंगे, यह कैसे हो सकता है?”

लगता है कि उनका वैराग्य-भान-पूर्ण हृदय उ० अनुपम गुणा में भी पूर्णतया अनान्य
 गृह आन्धधितनजनिन अपन आध्यात्मिक आनन्द का सम्मान करता होगा, किन्तु इसी
 आत्मा के कल्याण की अपूर्ण मायों उ० जीवन के निर्णय बोल में नहीं है, अतः
 विचार है कि उनके जीवन की माधुर्यापूर्ण बातों भान आत्माओं को मया मत्तन
 बताती होगी। इसमें उनकी चर्चा भी सर्वदा श्रमभूतभिन्न होगी।

क्षीण नाडी

उपवास को एक माह में अधिक मधुर हो गया था। एक दिन महाराज की
 प्रकृति विशेष क्षीण दिखने लगी। उनका सर्वज्ञान रूप में दर्शन भी मन्द हो गया। उस
 समय एक वैद्यगज महाराज के पास गया और उनकी कुटी में रात्रि जाकर उनकी नाड़ी
 देखने लगा। आचार्य महाराज बोल उठे - “तुम यद्यपि हो? कोई रोग है न? इस
 नगर में कोई रोग नहीं है। अब हम नरिषी हो जाने वाले हैं।”

भट्टाक लक्ष्मीमेनजी में महत्त्वपूर्ण वार्तालाप

मत्तार्थमेव उपवास के दिन भट्टाक लक्ष्मीमेन स्वामी चोलापुर संस्थान में
 आचार्य महाराज से पूछा, “महाराज! नाति तो है?”

महाराज - “पूर्ण नाति है। नरिषी में भी नाति है।”

भट्टाक जी - “आप पुण्यवान हैं। आपका पुण्य-प्रभाव से ही नाति है।”

महाराज - “बाबा! हमारा पुण्य नहीं है। भगवान् देवभूषण कुलभूषण न
 प्रभाव से ऐसा है।” ऐसी पवित्र श्रद्धा गुरुदेव की थी।

धर्म का अवलंबन

एक विद्वान् ने महाराज से कहा “आपका अभाव में हम लोग निरवलंबन हो
 गए।”

महाराज - “क्यों? धर्म का अवलंबन तो है। धर्म पर चलने में सबका बल्ल्याण
 होता है।”

धर्मसंरक्षण का ध्यान

ग व सेठ गजकुमारमिह जी इटीर न ३-९-५५ को महाराज के पास जा
 उनको प्रणाम किया। गुरुदेव बोले - “धर्म के संरक्षण का काम तुम्हारा है।”

सेठजी - “महाराज! आपके आशीर्वाद से जो मुझसे बन सकेगा, करूँगा।”

विवेकपूर्ण दानशीलता

कुथलगिरि में आने वाले हजारो भाई ऐसे थे, जो अकेले आए थे। उनके भोजन का प्रबन्ध करने की उदारता बारसी के उदार हृदय विवेकी तथा दानशूर सेठ बालचंद लालचंद भूमकर ने की थी। श्री भूमकर की दानशीलता सचमुच में अपूर्व थी। श्रेष्ठ साधुराज शातिसागर महाराज की सल्लेखना अलौकिक थी। उन गुरुदेव के दर्शनार्थ हजारो भाई आते-जाते थे। श्रीभूमकर ने यह सूचना करदी थी कि जिस भाई का प्रबन्ध न हो वे सब हमारे खास भोजनालय में पधारकर भोजन करें। यह बुद्धिमत्ता पूर्ण दानशीलता सराहनीय है। इस सबध की चर्चा भट्टारक जिनसेन स्वामी ने आचार्य महाराज से की, तब महाराज बोले - “भूमकर ने बहुत पुण्य का काम किया है। अन्नदान से जीव सुखी होता है।” शास्त्र में कहा है -

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानतः।

अन्नदानात् सुखी नित्यं, निर्व्याधि भेषजाद्भवेत्॥

आत्महित में सर्वदा सजग

मैंने सल्लेखना के बीसवें दिन सुयोग पाकर कहा - “महाराज! समतभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में एक बड़ी सुन्दर बात कही है। (१) शीतलनाथ भगवान की स्तुति में वे कहते हैं - “भगवन्! जगत् के प्राणी अपनी आजीविका तथा सुखोपभोग के योग्य सामग्री अर्जन करने में दिन व्यतीत करके रात को श्रान्त हो सो जाते हैं, किन्तु आप दिनरात प्रमाद का त्यागकर आत्महित के विशुद्ध पथ में सजग रहते हैं।” इसी प्रकार आप भी चौबीसो घंटे आत्मकल्याण में निमग्न हैं। धन्य है आपका जीवन और आपकी आत्म साधना।”

अपने विषय में

महाराज बोले - “हमारा शरीर बहुत चलने वाला था। आँख ने गड़बड़ी कर दी। समय निर्दोष पालने में विघ्न देखकर हमने समाधि धारण की।”

इतने में एक भाई ने कह दिया - “महाराज! आप तो तीर्थंकर होगे।”

महाराज - “तीर्थंकर हो या केवली हो, कुछ भी हो। मोक्ष मिलेगा, तो ठीक है।” कुछ क्षण के पश्चात् गुरुदेव बोले - “हमें उसकी भी लालसा नहीं है।”

महाराज की शरीर-स्थिति

मैने कहा - (“महाराज! आपका यह शरीर हमारी दृष्टि से कल्याणदायी तथा ममत्व की वस्तु तो है ही, यह आपके लिए भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। यह रत्नत्रय का साधक शरीर जब तक रहेगा, तब तक आपका महाव्रती का जीवन है। आप छठे, सातवे गुणस्थान का आनंद लेते रहेंगे। इसे छोड़ने में शीघ्रता की, तो आपकी भी हानि है। आपको अविरत नामका चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त होगा। अतः आपको जलग्रहण नहीं छोड़ना चाहिए।”)

महाराज - “हमने जल का त्याग कहाँ किया है?”

मैने कहा - “आपने ४ दिन से जल लेना बंद कर दिया है। इससे सब लोग चिंतामग्न हो गए हैं। आगे जल लेने की हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान दीजिये।”

जल-परित्याग का हेतु

हमारा तर्क तो महाराज को अनुकूल लगा, किन्तु अब विचित्र स्थिति में जल लेना सामान्य बात नहीं थी। महाराज की क्रियाएँ अन्त तक आगम के अनुसार ही रही हैं। कोई सोच सकता है कि वे बैठे-बैठे कुटी के भीतर जल ले सकते थे, किन्तु ऐसी बात साधुओं के शिरोमणि शान्तिसागर महाराज के विषय में नहीं सोचना चाहिए। डरकर या घबड़ाकर जिनेन्द्रवाणी के विरुद्ध प्रवृत्ति करना उनके जीवन में तो क्या स्वप्न में भी नहीं पाया गया। जलग्रहण करने के लिए वे उसी प्रकार शरीर-शुद्धि करके जाते थे, जैसे समाधि के पूर्व में जाया करते थे। अब भी वे पूर्ववत् ही नवधा भक्ति होने के बाद खड़े-खड़े अँजुलियो में केवल उष्ण जल लेते थे।

अब शरीर इतना अशक्त हो गया कि कम से कम पन्द्रह मिनट पर्यन्त शारीरिक श्रम के पश्चात् शुद्ध जल की दो-चार अँजुलियाँ लेना असम्भव हो गया था। जल लेने में उनकी जितनी शक्ति का व्यय होता था उसका बहुत अल्प अंश जलग्रहण द्वारा उनको प्राप्त होता था। इन अनेक बातों को सोचकर उन विवेकमूर्ति मुनिनाथ ने फिर आगे जल नहीं लिया।

अद्भुत तेजपुञ्ज शरीर

उनका शरीर आत्मतेज का अद्भुत पुञ्ज दिखता था। तीस से भी अधिक उपवास होने पर देखनेवालों को ऐसा लगता था, मानो महाराज ने दस-पाँच ही उपवास

किये होंगे। उनके दर्शन में जडवादी मानव के मन में आत्मबल की प्रतिष्ठा अंकित हुए बिना नहीं रहती थी।

निकट से निरीक्षण

देशभूषण-कुलभूषण भगवान के अभिषेक का जब उन्होंने अन्तिम वाग दर्शन किया था, उस दिन शुभोदय में महाराज के ठीक पीछे मुझे खड़े होने का मोभाग्य मिला था।

मैं महाराज के अत्यन्त क्षीण शरीर को ध्यान में देख रहा था। उनके शरीर के तेज की दूसरों के शरीर से तुलना करता था, तब उनकी देह विशेष दीप्तियुक्त लगती थी। मुखमण्डल पर तो आत्मतेज की ऐसी ही आभा दिखती थी, जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व प्राची दिशा में विशेष प्रकाश दिखाता है। उनके हाथ, पैर, वक्ष स्थल उस लम्बे उपवास के अनुरूप क्षीण नहीं लगते थे, फिर भी बहुत समय से महान् तपस्या के कारण क्षीणता युक्त शरीर और उस पर यह महान् सल्लेखना का भार, ये सब अद्भुत सामग्री, आत्म-शक्ति और उस तेज को स्पष्ट करते थे।

एकाग्रचित्त हो अभिषेक-दर्शन

मैंने देखा कि महाराज एकाग्रचित्त हो जिनेन्द्र भगवान की छवि को ही देखते थे। इधर उधर उनकी निगाह नहीं पड़ती थी। मुख से थके माँदे व्यक्ति के समान शब्द नहीं निकलता था। तत्त्व दृष्टि से विचार किया जाय, तो कहना होगा कि शरीर तो पोषक सामग्री के अभाव में शक्ति तथा सामर्थ्य रहित हो चुका था, किन्तु अनन्तशक्ति पुञ्ज आत्मा की सहायता उस शरीर को मिलती थी, इससे ही वह टिका हुआ था और आत्मदेव की आराधना में सहायता करता था।

अनेकान्तिक दृष्टि

सल्लेखना के ३० वें उपवास के लगभग महाराज ने मन्दिर जाकर भगवान के अभिषेक का दर्शन किया। अन्तिम क्षण के पूर्व में जिनेन्द्र देव के पचामृत अभिषेक के गन्धोदक को भक्तिपूर्वक ग्रहण किया। इधर श्रेष्ठ समाधि धारण रूप निश्चय दृष्टि और इधर जिनेन्द्र भक्ति आदि रूप व्यवहार दृष्टि इस बात को व्यक्त करती थी कि आचार्य महाराज की जीवनी अनेकान्त भाव को घोषित करती थी।

शिक्षाग्रहण

आज अपने आपको परम आध्यात्मिक समझने वाले व्यक्तियों को आचार्यश्री।

के जीवन रूपी मानस्तम्भ के द्वारा अपने अध्यात्मज्ञान का अहकार दूर करना श्रेयस्कर है। वे भले आदमी कम-से-कम इतना तो सोच सकते हैं कि जब साधु शिरोमणि शातिसागर महाराज सदृश सत्पुरुष को जिन-दर्शनादि द्वारा आत्मशुद्धि में सहायता प्राप्त होती थी और इसीलिए जीवन भर इन मङ्गलप्रवृत्तियों का उन्होंने परित्याग नहीं किया, तब साधारण श्रेणी का व्यक्ति, जो प्रायः आरम्भ और विषयो की सेवा में काल व्यतीत किया करता है, यदि जिन-दर्शन पूजा आदि व्यवहार धर्म को छोड़ता है अथवा उसका तिरस्कार करता है, तो आगम के प्रकाश में वह अपने उत्कर्ष तथा कल्याण के पथ पर कुठाराघात करता है। आज के समय में, समाज के मध्य निश्चय और व्यवहार पक्ष की रस्साखिचाई के संघर्ष में, आचार्य शान्तिसागर जी की जीवनी पूर्ण समाधानप्रद सामग्री प्रस्तुत करती है।

मुनिबन्धु को संदेश

करीब १२ वर्ष की वय वाले मुनिबन्धु चारित्र चूडामणि श्री १०८ वर्धमान सागर महाराज के लिए पूज्यश्री ने संदेश भेजा था, “अभी १२ वर्ष की सल्लेखना के छह सात वर्ष तुम्हारे शेष हैं। अतः कोई गड़बड़ मत करना। जब तक शक्ति है, तब तक आहार लेना। धीरज रखकर ध्यान करना। हमारे अन्त पर दुःखी नहीं होना और परिणामों में बिगाड़ मत लाना।”

शेडवाल

आचार्यश्री ने यह भी कहा - “शक्ति हो तो समीप में विहार करना। नहीं तो थोड़े दिन शेडवाल बस्ती में और थोड़े दिन शेडवाल के आश्रम में समय व्यतीत किया करना।” उन्होंने यह भी कहा था - “अपने घराने के पिता, पितामह आदि सभी सल्लेखना करते आए हैं, इसी प्रकार तुम भी उस परम्परा का रक्षण करना। इससे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त होता है। अच्छे भाव से ध्यान करते गए, तो स्वर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं है।”

भट्टारक युगल को उपदेश

कुथलगिरि में आचार्यश्री के समीप भट्टारक लक्ष्मीसेन जी कोल्हापुर मठ वाले थे। भट्टारक जिनसेन स्वामी भी सदा की भौति गुरुदेव की सेवा में विद्यमान रहते थे। एक दिन पूज्य महाराज ने दोनों भट्टारकों को यह महत्वपूर्ण बात कही थी - “धर्म का रक्षण करो, समाज का रक्षण करो और साधु-संतों का रक्षण करो।”

कल्याण का त्रिविध मार्गदर्शन

आचार्यश्री ने यमसल्लेखना लेते हुए तीन बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें कही थीं -
“(१) जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर विश्वास करो। (२) स्वाध्याय का प्रचार करो।
(३) जैनधर्म का प्रचार करो।” आचार्य महाराज की ये तीनो बातें इस युग की दृष्टि से
रत्नत्रय सदृश है।

आज का युग

आज के युग में जो भी व्यक्ति लक्ष्मी का कृपापात्र बना, या जिसके पास
लौकिक ज्ञान का थोड़ासा अंश आया, वह अहंकार-मूर्ति तुरन्त ही अपने को महान्
जानी मानकर, जिनागम पर सन्देह करना प्रारम्भ कर देता है। हमें ऐसे सत्पुरुषों के दर्शन
का अनेक जगह सौभाग्य मिला करता है, जो भद्रता के नाते आगम के विषयों से स्वयं
को अत्यन्त अपरिचित बताते हुए भी उन ऋषिवाक्यों को सदोष कहने में सकोच नहीं
करते हैं।

स्वच्छ जीवन का पोषण

शास्त्रों से परिचित धन के लोलुपी कुछ भाई भी ऐसे लोगों की हॉ में हॉ
मिलाकर वीतरागवाणी को सकलक बनाने की दु खद चेष्टा करते हैं। विद्वत्ता का गौरव
भूलकर वे लोग द्रव्य के दास बनकर आगम की आज्ञा के लोप करने पर प्राप्त होने वाले
नरक-तिर्यच गति के दु खों को भूलकर अपने मालिकों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का पोषण
करने लगे हैं। इस स्थिति में उन श्रीमानों की भी परमार्थ दृष्टि से बड़ी दुर्गति होती है।
कारण, धन का मद उनको विवेकहीन बनाकर वानर सदृश चंचल बनाता है और ये
विद्वान् कहे जाने वाले उनको अपनी मोहमयी वाणी रूपी मदिरा पिलाकर, उनको
निरर्गल बना देते हैं। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि नर-जन्म और श्रावक
का कुल पाने वाले व्यक्ति को वीतराग की वाणी के प्रति श्रद्धा धारण करना चाहिए।

जिनागम की श्रद्धा

समझदार आदमी जिनागम का जैसा-जैसा व्यवस्थित अभ्यास या स्वाध्याय
करता जाएगा, वैसा-वैसा उसका विश्वास विशुद्ध होगा और उसकी श्रद्धा बलवती होती
जाएगी। पहले लोगों की शास्त्र स्वाध्याय तथा चर्चा में रुचि रहा करती थी, किन्तु आज
लोगों का झुकाव लौकिकता की ओर अधिक रहा करता है। ऐसे लोग शास्त्र को पढ़कर
विषयपोषण की सामग्री खोजते फिरते हैं। समाज के अत्यन्त वृद्ध, करुणाशील, अनुभवी

तथा तपस्वी धर्मगुरु ने स्वर्गयात्रा करने के पूर्व जो उक्त बात कही है, उसके अनुसार प्रवृत्ति करना हमारे लिए हितकारी है।

स्वाध्याय प्रचार

दूसरी बात महाराज ने स्वाध्याय-प्रचार की कही थी। आज जन साधारण के हाथ में जब अल्प मूल्य में उपयोगी साहित्य मुद्रित होकर आवे, तो स्वाध्याय का प्रचार हो, लेकिन ग्रन्थ-विक्रेता महाशय जिन-वाणी को बहुमूल्य में बेचकर सुखोपभोग की सामग्री इकट्ठी करना चाहते हैं। शास्त्रों को बेचकर धनी बनने वालों की दुःखद कथा सुनाते हुए एक अनुभवी समाजनेता ने बताया था कि ऐसा करने से बहुत से अर्थलोलुप आगम विक्रेताओं पर किस-किस प्रकार से असाता का पहाड़ टूटा है, फिर भी उनकी आँखों पर पट्टी बँधी हुई है, अतः आवश्यक है कि समाज का विचारक वर्ग इस बात की व्यवस्था करे ताकि ज्ञानसंवर्धक तथा जीवन को विमल बनाने वाला जैन साहित्य कम-से-कम मूल्य में समाज तथा जनता को प्राप्त हो सके। समाज के सहृदय विद्वानों, कार्यकर्ताओं तथा दानियों को गीता प्रेस सदृश उद्योग करना चाहिए, जिससे अल्प अथवा उचित मूल्य में सुन्दर तथा मनन करने योग्य साहित्य का प्रकाशन सम्भव हो सके। यह धारणा अनुचित है कि अधिक मूल्य रखने से उसका विशेष महत्त्व होता है। यह लालची परिकल्पना ठीक नहीं है, ज्ञानप्रसार में बाधक है।

निर्लोभ दृष्टि

कई लोग बिना आगा-पीछा सोचे जघन्य श्रेणी का साहित्य छापकर उसे बॉटने में धर्मप्रभावना की कल्पना करते हैं। निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने वाले इस सुझाव से सहमत होंगे कि जो भी धर्म प्रभावना करने वाला साहित्य प्रकाश में आवे उससे स्वार्थ-पोषण का सम्बन्ध न हो। तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलंक स्वामी ने लिखा है कि जो शास्त्र को बेचकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, वे आगे वज्रमूर्ख हुए बिना न रहेंगे। हमारा परम कर्तव्य है कि जीव को अनन्त कल्याण प्रदान करने वाली जिनवाणी को जन-जन की वाणी बनावें। शास्त्रदान का फल कैवल्य ज्योति की प्राप्ति है। आगमविरोधी साहित्य का प्रकाशन तथा दान कार्य मिथ्यात्व पोषक होने से कुगति-प्रदाता है।

धर्म प्रचार

आचार्य महाराज की तीसरी बात बहुत महत्वपूर्ण है - “जैनधर्म का प्रचार

कग। ' आचार्य महागज का कथन साम्प्रदायिकता का माहवग नहीं था। वे जानते थे कि जनधर्म की गहनतरी 'धर्मदेगाना के प्रभाव में यह जीव अनन्त मग्ग के मन्नाप में मुक्त होकर अविनाशी गति प्राप्त करके भिद परमात्मा बनता है' इसलिए वे मममन जीवों के कल्याण की भावना में मग्गज का कहते हैं - 'जैन धर्म का प्रचार करग। ' इस युग में एक आत्मा ने महागज गतिमागर्जी के रूप में गहनतरी की आगधना तथा उज्ज्वल तपस्या द्वारा जा वीनगग नामन की प्रभावना की वह लाखों लोगों न कर सकें। बड़े-बड़े दानों या विद्वान् भी न कर सकें। कुन्दकुन्द स्वामी न कहा है "मूत्र जगम्य हिदकगे धम्मो तित्थकरहि आक्खादो" - तीर्थङ्गदेव कथित धर्म विष्वक्कल्याणकारी है। वर्तमान युग में भोगामक्ति के म्हागेग में पीडित विद्वान् लोगों में गतिदार्थी धर्मपान की तीव्र पिपामा है। वंभव प्रदर्शन के स्थान पर आज मत्माहित्य प्रकाशन तथा प्रचार की जग्गत है। मुलझे हुए पक्काण्ड म्मर्थ विद्वानों को प्रचारार्थ विदेग भजना चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि चरित्रहीन व्यक्ति प्रभावना का अपात्र है। मलिन जीवन क्या प्रकाश देगा ?

यदि धर्म की प्रभावना करने वाला व्यक्ति म्हाचार म्मपन्न हो सुश्रद्धा ममलकृत हा अध्ययनशील हो तो उसकी वाणी आज के ज्ञानपिपानु चितनप्रधान जगत् में मन पर प्रभाव डाल सकती है। आज धर्मप्रभावना के लिए उद्यत पाय ऐसे मत्पुरुषों के दर्शन होते हैं जा श्रावक के कर्तव्य-देवदर्शन पूजन मद्दृश कार्यों में पूर्णतया विमुख रहते हैं। अमयम का मुकुट उनके मम्नक पर गोभायमान रहता है। अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने की तथा उमें उचित भिद करने की उनमें भिदहम्नता रहती है। ऐमों से धर्म की प्रभावना होती है या तिग्मकार होता है यह विवेकी व्यक्ति अपने हृदय पर हाथ रखकर विचार कर सकता है।

एक चरित्रवान् विद्वान् बताते थे कि किम्बी नगर में लोकशाम्मज जैन भाइयों का मम्मेलन हुआ था। उसके अध्यक्ष बने थे विलायत में प्रमाण-पत्र प्राप्त एक सज्जन। धर्म प्रभावना की चर्चा तथा तत्त्वचिन्ता में श्रान्त हो वे लोग स्वयं को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए गत्रि में विजली के आलोक में बैठकर भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोडकर आहार करते रहे। उनको देखकर समाज के भले और भोले लोगों पर यह प्रभाव पडा था कि ऐसे नाविकों की नौका में यदि बैठ गए तो नाविक तथा यात्री नौका के साथ में नदी के तल में जाकर अनन्त निद्रा का आनन्द लेंगे।

जिनशासन प्रेमी का कर्तव्य

सद्धर्म की प्रभावना तथा प्रचार के लिए तत्पर व्यक्ति को रत्नत्रय समलकृत होना चाहिए। शराब पीने वाला किस प्रकार मद्य-त्याग का उपदेश देकर लोगों को प्रभावित कर सकता है?

अतः यह आवश्यक है कि धर्म-प्रचार के योग्य इस युग में समाज वीतराग शासन की लोक में प्रतिष्ठा-वृद्धि निमित्त सत्पुरुषों का निर्माण करे। ज्ञानवान सयम को धारण करे और सयमी व्यक्ति सरस्वती के प्रति विरक्ति का भाव त्याग उसकी आराधना करे, ऐसे लोगों द्वारा ही धर्म का प्रसार होता है। भगवती आराधना में लिखा है, “श्रेयोर्थिना जिनशासनवत्सलेन कर्तव्य-एव नियमेन हितोपदेशः” - “जिनशासन के प्रेमी कल्याण चाहने वाले सत्पुरुष को नियम रूप से हित का उपदेश देना चाहिए। स्वाध्याय रूप अतरंग तप का एक भेद धर्मोपदेश कहा गया है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहते हैं, “वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाभ्यां-धर्मोपदेशाः” (अ १ सूत्र २५) - धर्म प्रभावना तीर्थकरपद दायिनी षोडशभावनाओं में परिगणित है। सम्यक्त्व के आठ अंगों में प्रभावना अंग कहा गया है। मिथ्यात्व रोग से पीडित व्यक्तियों को अनेकान्त विद्यापान रूप अमृतपान कराने का काम सच्चरित्र, गहन अध्ययनशील तथा वक्तृत्व शक्ति समलकृत व्यक्तियों का काम है। चरित्रहीन, मायावी, लोभी, अध्ययन शून्य व्यक्ति के कार्य को शून्य ही उपलब्ध होता है। यह धर्मप्रचार की बात श्रावक, श्रमण सब के विचार योग्य है।

त्यागियों के लिए विचारणीय

आचार्य शातिसागर महाराज की धर्मप्रचार की बात त्यागियों के बहुत काम की है। कारण इस धर्म प्रभावना द्वारा यह जीव धर्म तीर्थकर की पदवी तक को प्राप्त करता है। प्रायः देखने में आता है कि त्यागी लोग व्रत लेने के बाद स्वाध्याय से इस तरह विमुख रहते हैं, जिस प्रकार वे सासारिक प्रपच की बातों से अलग रहते हैं। उनमें से कुछ लोगों से बात करने का मौका आया, तो वे शिवभूति साधु को अपना आदर्श बताते हैं, जिन ने ‘तुष-माष-भिन्न’ अर्थात् छिलका और दाल भिन्न-भिन्न है इतने ज्ञान द्वारा कैवल्य को प्राप्त किया था। आश्चर्य है कि शास्त्रों से अनुचित स्वार्थ की सिद्धि की जाती है। उचित तो यह था कि उससे आत्मा के लिए प्रेरणा प्राप्त करनी थी। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि अभीक्षण ज्ञानोपयोग के द्वारा यह जीव सुरेन्द्र-वद्य जिनेन्द्र की पदवी पाता है। स्वाध्याय को महान् तथा अपूर्व तप कहा गया है।

सयमविरोधी भावना

कोई-कोई सम्यक्त्व की चर्चा के विषय में महान् प्रेम दिखाते हुए सयमी के प्रति तिरस्कार की भावना व्यक्त करते हैं और अपना आदर्श अन्तर्मुहूर्त में सिद्धि प्राप्त करनेवाले चक्रवर्ती भरत को कहते हैं। ऐसे लोग यह स्मरण रखने की कृपा नहीं करते हैं कि चक्रवर्ती भरत सदृश अल्पतम काल में सिद्धि आदिनाथ भगवान् से लेकर वीर भगवान् तक चौबीस तीर्थकरो में किसी को न मिली, तब क्या हमें तीर्थकरो से भी अपने को बड़ा और विशुद्धि का भंडार सोचना चाहिए? यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भरतेश्वर के जीव ने पूर्व जन्मों में महान् तप द्वारा अपनी आत्मा को सशक्त बनाया था।

आज के लोगो में युक्तिसंगत बात को शिरोधार्य करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। वैज्ञानिक अनुसंधानों आदि के प्रभाववश प्रायः शिक्षित वर्ग के अन्तःकरण पर मूढता से प्रसूत तथा विज्ञान विरुद्ध धर्म की मान्यताओं का भार नहीं लादा जा सकता है। जैनधर्म का कथन अनुभव, युक्ति तथा विज्ञान के पूर्णतया अनुरूप है। उसके तत्त्व का निरूपण करने वाले निस्पृह, सहृदय और सच्चरित्र व्यक्ति होने चाहिए और ऐसे धर्मसेवकों के सहायक विवेकी धनिक चाहिए। विद्वानों में संयम चाहिए और त्यागियों में विद्या का रस उत्पन्न होना चाहिए। इस प्रकार की सामग्री का समागम होने पर जैनधर्म की प्रभावना हो सकती है। धीर-वीर विवेकी व्यक्ति आज भी वीर शासन का चमत्कार विज्ञजगत् को बताकर विश्वहित कर सकते हैं।

ज्ञान और चारित्र का संगम

उत्तरपुराण में गुणभद्रस्वामी ने लिखा है कि विद्वत्ता के साथ सयम तथा सदाचरण का समागम आवश्यक है -

विद्वत्त्वं सच्चरित्रत्वं मुख्यं वक्तरि लक्षणम्।

अबाधितस्वरूप वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥६१-७॥

जिस प्रकार ज्ञान तथा दर्शन जीव के अबाधित लक्षण हैं, उसी प्रकार विद्वत्ता तथा सदाचार वक्ता के मुख्य लक्षण हैं।]

जैनधर्म की समृद्ध अतीत अवस्था की झोंकी देखने पर ज्ञात होता है कि उस समय प्रकाण्ड धर्माचार्य थे, जो ज्ञान के पारगामी थे और श्रेष्ठ सयम के धारक थे। ऐसे महान् आचार्यों का कार्य आज का गृहस्थ यदि करना चाहता है, तो उसमें कम से कम सज्जन मनुष्य के सामान्य गुण तो होने ही चाहिए और उसे सामान्य श्रावक के सदाचार

की परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए। हमारा तो विश्वास है कि सयम का शत्रु, सद्धर्म की ध्वजा की इज्जत कभी भी नहीं बढ़ा सकता। स्याद्वाद के ध्वज को हाथ में उठाने वालों को पापी, पाखंडी और प्रतारणा में प्रवीण न होकर मार्दव, सत्य तथा सयम आदि सद्गुणों का प्रगाढ़ प्रेमी होना चाहिए। आज के अनुकूल युग में हमें जैनधर्म की प्रभावना के कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

असाधारण व्यक्तित्व

आचार्य महाराज का व्यक्तित्व असाधारण रहा है। सारा विश्व खोजने पर भी वे अलौकिक ही लगेंगे। ऐसी महान् विभूति के अनुभवों के अनुसार प्रवृत्ति करने वालों को कभी कष्ट नहीं हो सकता। एक दिन महाराज ने कहा था - “हम इन्द्रियों का तो निग्रह कर चुके हैं। हमारा चालीस वर्ष का अनुभव है। सभी इन्द्रियाँ हमारे मन के आधीन हो गई हैं। वे हम पर अपना हुकम नहीं चलाती हैं। अब प्राणी सयम का पालन करना हमारे लिए कठिन हो गया है, कारण नेत्रों की ज्योति मन्द हो रही है, अतः सल्लेखना की शरण लेनी पड़ेगी। मुझे समाधि के लिए किसी को णमोकार तक सुनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।”]

पुरातन सेवक की स्मृति

पहले नसलापुर के जैनबन्धु श्री हनगोडा ने बड़ी भक्तिपूर्वक महाराज की सेवा की थी। सल्लेखना के १९ वे दिन सहसा महाराज को उसकी स्मृति आ गई कि अब हनगोडा ८० वर्ष के हो गए। यहाँ महाराज को उसकी याद आई, उधर वह एक दिन पूर्व ही कुथलगिरि आ गया था। वह महाराज की सेवा में पहुँचा।

अमृत वाणी

उन्होंने परम करुणा-भाव पूर्वक उससे कहा - “तुमने हमारी बहुत सेवा की।” यह कहकर उसे उन्होंने आशीर्वाद दिया। वह फूट-फूटकर गुरुचरणों की ममता के कारण रोने लगा। महाराज ने सान्त्वना के ये शब्द कहे - “अरे! यह ससार असार है। दुःख करने में सार नहीं है।” गुरुदेव की वाणी सुनकर वह गुरुचरणों का प्रेमी ग्रामीण कुटी के बाहर आ गया।

अभिषेक

चौरासी वर्ष की आयु में लम्बे उपवासों के होते हुए भी महाराज की स्मृति आदि पूर्ववत् शुद्ध रही है। वे भगवान का अभिषेक देख रहे थे। वह समाधि का १८ वॉ

दिन था। महाराज ने प्रवधको म कहा - “जब तुम लाग पूजा की बोली द्वाग हजार रुपया वसूल करत हो तब अभिषेक के लिए केंगर दूध दही आदि के परिमाण में क्यो कमी करते हो?” दूसरे दिन में बड बेभव पूर्वक अभिषेक होन लगा। उम अभिषेक को ध्यानपूर्वक देखने पर हृदय को बडा मतोप मिलता था।

विचारणीय दृष्टि

“यदि वह घी, दूध, दही आदि के द्वाग किया गया जिनेंद्र का अभिषेक आचार्यश्री की अत्यन्त विरक्त तथा यम-मल्लेखना के शिखर पर समाम्द आत्मा को आगम विपरीत प्रतीत होता तो वे देह की क्षीण अवस्था में क्यो बहुत समय बैठकर अभिषेक दर्शन में अपना बहुमूल्य समय देते? आचार्यश्री की प्रवृत्ति आगमविम्वद्ध कभी नहीं रही है।” अतः इस कार्य में हमारा कर्तव्य है कि क्षपकगज की जीवनी से अपने कल्याण की बात ग्रहण करें और पक्ष-मोह को छोड़ें। उनके चरणों का अनुगमन करना श्रेयस्कर है। हमें आगमपथी बनना चाहिए।

वैराग्य-भाव की पराकाष्ठा

गुरुदेव से प्रार्थना की गई थी- “महागज! अभी आहार लेना बन्द नहीं कीजिए। चौमासा पूर्ण होने पर मुनि आर्थिका आदि आकर आपका दर्शन करेंगे। चौमासा होने से वे कोई भी गुरु दर्शन हेतु नहीं आ सकेंगे।” महागज ने कहा - “प्राणी अकेला जन्म धारण करता है अकेला जाता है - ‘येसी एकला जासी एकला’। कोई किसी का साथी नहीं है - ‘साथी कुणि न कुणाचा’। क्यो मैं दूसरों के लिए अपने को रोकूँ? हम किसी को न आने को कहते हैं, न जाने को कहते हैं।”

सघपति - “महाराज! जो आपके शिष्य है वे अवश्य आवेंगे।”

महाराज - “उनके लिए हम अपनी आत्मा के हित में क्यो बाधा डालें?”

इसके पश्चात् महाराज के मन में कुथलगिरि पर्वत के शिखर पर जाने का विचार आया। यह ज्ञात होते ही भट्टारक जिनसेन स्वामी ने कहा - “महाराज! आज का दिन ठीक नहीं है। आज तो अमावस्या है।”

सामान्यत आचार्यश्री के जीवन में सभी महत्त्व के कार्य मुहूर्त आदि के विचार के साथ हुआ करते थे किन्तु उस समय उनका मन समाधि के लिए अत्यन्त उत्सुक हो चुका था। वैराग्य का सिन्धु वेग से उद्वेलित हो रहा था। इससे वे बोल उठे - “महावीर भगवान अमावस्या को ही तो मोक्ष गए हैं। इसमें क्या है?”

भगवान की कृपा

महाराज की महावीर भगवान के प्रति अपार भक्ति रही है। जब भी कोई महत्त्व का धार्मिक कार्य उनके प्रयत्न से सम्पन्न हो जाता था, तब वे कहा करते थे - “महावीर भगवान की कृपा है, उससे ऐसी बात बन गई।” अपने कार्य को महत्त्व देना और अहकार की बातें करना मैंने उनमें कभी नहीं पाया।

वीरवाणी

एक दिन महाराज ने कवलाना में कहा था - “आज महावीर भगवान हमारे बीच में नहीं हैं, तो क्या हुआ? उनकी वाणी तो विद्यमान है। उससे हम अपनी आत्मा का अच्छी तरह कल्याण कर सकते हैं।”

सुन्दर प्रायश्चित्त

महाराज का अनुभव और तत्त्व को देखने की दृष्टि निराली थी। एक बार महाराज बारामती में थे। वहाँ एक सम्पन्न महिला की बहुमूल्य नथ खो गई। वह हजारों रु की थी। इससे बड़ों बड़ों पर शक हो रहा था। अन्त में खोजने पर उस महिला के पास ही वह आभूषण मिल गया। यह बात जब महाराज को ज्ञात हुई, तब महाराज ने उस महिला से कहा - “तुम्हें प्रायश्चित्त लेना चाहिए। तुमने दूसरों पर प्रमादवश दोषारोपण किया।”

उसने पूछा - “क्या प्रायश्चित्त लिया जाय?”

महाराज ने कहा - “यहाँ स्थित जिन लोगों पर तुमने दोष की कल्पना की थी, उन सबको भोजन कराओ।”

महाराज के कथनानुसार ही कार्य हुआ।

वर्धमान महाराज से मार्मिक बातचीत

शेडवाल जाते हुए वर्धमानस्वामी को आचार्यश्री के दर्शन का सौभाग्य मिला। उन्होंने आचार्य महाराज से कहा था - “महाराज! आपने तो १२ वर्ष की समाधि का नियम लिया है। मुझे आपका क्या आदेश है?”

महाराज - “तुम भी हमारी तरह नियम ले लो।”

उन्होंने १२ वर्ष की समाधि का नियम ले लिया। पश्चात् आचार्यश्री ने कहा - “तुम अब विशेष ध्रमण मत करो। जहाँ समय ठीक पले, वहाँ काल व्यतीत करो। अब

अधिक भ्रमण ठीक नहीं है। अब बुढ़ापा बहुत आ गया है।” उम समय वर्धमान स्वामी की अवस्था लगभग ९३ या ९४ वर्ष की थी। वहाँ जब दोनों भाई अथवा परमार्थ की भाषा में दोनों गुरु शिष्य मिलते थे, तब वे एकान्त में समय तथा धर्म की ही बातें करते थे। धन्य था उन साधुयुगल का पवित्र जीवन।

स्थायी लोककल्याण की उमङ्ग

कुभोज बाहुबली क्षेत्र पर आचार्यश्री पहुँचे। उनके पवित्र हृदय में सहसा एक उमङ्ग आई कि इस क्षेत्र पर यदि बाहुबली भगवान की एक विशाल मूर्ति विराजमान हो जाय, तो उससे आसपास के लाखों की सख्या वाले ग्रामीण जैन कृषक वर्ग का बड़ा हित हो। महाराज ने अपना मनोगत व्यक्त किया ही था कि शीघ्र ही अर्थ का प्रबन्ध हो गया और मूर्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हो गया।

उस प्रसङ्ग पर आचार्य महाराज ने ये मार्मिक उद्गार व्यक्त किए थे - “दक्षिण में श्रमणवेलगोला को साधारण लोग कठिनता से पहुँचते हैं, इससे सर्व साधारण के हितार्थ बाहुबली क्षेत्र पर २८ फुट ऊँची बाहुबली भगवान की मूर्ति विराजमान हो। मेरी यह हार्दिक भावना थी। अब उसकी पूर्ति हो जायगी, यह सन्तोष की बात है।” महाराज की इस भावना का विशेष कारण है। महाराज मिथ्यात्वत्याग को धर्म का मूल मानते रहे है। भोले गरीब जैन अज्ञान के कारण लोकमूढता, देवमूढता, गुरुमूढता के फन्दे में फँस जाते हैं। इससे उन्होंने दक्षिण में विहार करते समय मिथ्यात्व के त्याग का जोरदार उपदेश दिया था। जो गृहस्थ मिथ्यात्व का त्याग करता था, वही महाराज को आहार दे सकता था। दक्षिण में लोग प्रायः स्वतः ही शुद्ध आहार पान करते हैं, इससे उनको आहार-पान के विषय में उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी।

महाराज लोगो को कहते थे - “कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र का आश्रय कभी मत ग्रहण करो। कुगुरु की वन्दना मत करो। उनकी बात भी मत सुनो। यह ससार बढ़ाने का कारण है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। मिथ्यात्व महापाप है। झूठ, चोरी, सप्तव्यसन आदि सभी कुकृत्य पाप हैं, परन्तु मिथ्यात्व से बड़ा पाप दूसरा नहीं है। इस विशाल मूर्ति की भक्ति द्वारा साधारण जनता का अपार कल्याण होगा। सचमुच में मूर्ति कल्पवृक्ष है।”

सबकी शुभ कामना

आचार्य महाराज वास्तव में लोकोत्तर महात्मा थे। विरोधी या विपक्षी के प्रति

भी उनके मन में सद्भावना रहती थी। एक दिन उनके पास से सिवनी आते समय मैंने कहा था - “महाराज! आशीर्वाद हेतु प्रार्थना है।”

महाराज ने कहा - “तुम्हें ही क्यों, जो भी धर्म पर चलता है, उसके लिए हमारा आशीर्वाद है। जो हमारा विरोध करता है, उस पर भी हमारा प्रेम है, उसे भी हमारा आशीर्वाद है कि वह सद्बुद्धि प्राप्त कर आत्मकल्याण करे।”

विशाल हृदय

सल्लेखना के समय कुथलगिरि में हमें महाराज के विशाल हृदय और लोकोत्तर भाव का दर्शन हुआ। जो लोग महाराज के प्रति कलुषित प्रवृत्ति वाले रहे थे वे लोग भी उन साधुराज के लिए विशेष धर्म-प्रेम के पात्र थे।

चंदन तुल्य जीवन

वे चंदन के वृक्ष के समान थे, जो सर्पराज को भी आश्रय देता है। चंदन के साथ उनका सादृश्य सार्थक है। स्वर्गारोहण के उपरान्त उनका देह (शरीर) चंदन, कपूरादि से भस्म हुआ था। उस समय समझ में आया कि चंदन के समान ये सदा सुवास देते थे। इससे चंदन की लकड़ी द्वारा ही उन सद्गुणों के पुंजरूप, आत्मा के आश्रय-स्थल शरीर को दाह योग्य समझा गया था। वे चंदन के समान ही गुण धर्म वाले थे। जिस घर में इनका जन्म हुआ था, वहाँ चंदन का वृक्ष है।

सच्चा साम्य भाव

कुथलगिरि में महाराज के अत्यन्त निकट आने-जाने वाले कई व्यक्तियों की भयंकर विरोधियों के रूप में प्रसिद्धि रही है। उनके विरुद्ध कृत्यों से महाराज भी सुपरिचित थे। सामान्य श्रेणी का साधु ऐसे व्यक्तियों को अपने पास भी न प्रवेश देता, किन्तु धन्य हैं, वे आचार्यशिरोमणि साधुराज श्रीशातिसागरजी कि जिन्होंने राग तथा द्वेष का त्याग करके भक्तों-अभक्तों, मित्रों-अमित्रों आदि सभी पर साम्य भाव धारण किया था। कुथलगिरि के पर्वत पर वे साम्य भाव से समलकृत लोकोत्तर महापुरुष लगते थे। ऐसे महापुरुषों की गभीरता और उच्चता को राग-द्वेष के पक में लिप्त मानव नहीं जान सकता है। वे असि या पुष्पमाला में भेद नहीं करते थे। सर्पराज को भी वे उसी स्नेह से कृतार्थ करते थे, जिस करुणा द्वारा वे भक्तजनों को उपकृत करते थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि दुष्ट व्यक्ति तथा साधु पुरुष समान हो गए। वे स्वभावानुसार भिन्न ही रहते हैं और अपनी-अपनी कषायानुसार भावी जीवन का निर्माण करते हैं। श्रेष्ठ महात्मा राग द्वेष की मलिनता

मे ऊँच उठकर साम्य भाव रूप वीतगगता को प्राप्त करते हैं। यह वीतगगता ही मोक्ष की जननी है। वीतगग और वीतगगता के आश्रय से जीव का उत्कर्ष होता है। मगग और सगगता की समागधना से आत्मा का पतन होता है। इससे आत्मा समाग में परिभ्रमण करती है। महागज के विषय में यह ग्लोक पूर्णतया चरितार्थ होता था। कारण, वे मच्ची तथा शाश्वतिक शातिदायिनी जननी समाधि की गोद में विराजमान थे -

साम्य मे सर्वभूतेषु, वैर मम न केनचित् ।

आशा सर्वा परित्यज्य, समाधिमहमाश्रये ॥३॥

- मैं सपूर्ण आशाओं को त्यागकर समाधि का शरण ग्रहण करता हूँ। सपूर्ण प्राणधारियों के प्रति मेरे हृदय में समता भाव है। किसी भी जीव के प्रति मेरे मन में विरोध नहीं है।

आचार्यश्री की दृष्टि

आचार्यश्री की समाधि का निकट में निरीक्षण करने पर उक्त पद्य की अक्षरशः अन्वर्थता दिखी। उनका आत्मविश्वास सामायिकपाठ के इस पद्य में निबद्ध है -

‘एको मे शाश्वतश्चात्मा, जानदर्शनलक्षणः।

शेषा वहिर्भवां भावाः, सर्वे संयोगलक्षणाः ॥१०॥

“मेरी आत्मा का स्वरूप ज्ञान और दर्शन है। मेरी आत्मा अकेली है। वह अविनाशी है। इसके सिवाय बाह्य पदार्थ मुझ से भिन्न हैं। उनका मेरे साथ संयोग मात्र है। वे मेरे साथ तादात्म्य नहीं है।”

आगम का सार

आचार्य महाराज ने सल्लेखना के २६वें दिन के अमर संदेश में कहा ही था - “जीव अकेला आहे, अकेला आहे! जीवाचा कोणी नाही रे बाबा! कोणी नाही।” - जीव अकेला है, अकेला है। जीव का कोई नहीं बाबा, कोई नहीं है। इसके सिवाय गुरुदेव के ये बोल बड़े अनमोल रहे - “जीवाचा पक्ष घेतला तर पुद्गलाचा घात हो तो। पुद्गलाचा पक्ष घेतला तर जीवाचा घात हो तो। परन्तु मोक्षाला जाणारा जीव हा एकटा च आहे पुद्गल नाही।” - ‘जीव का पक्ष ग्रहण करने पर पुद्गल का घात होता है, पुद्गल का पक्ष ग्रहण करो, तो आत्मा का घात होता है, परन्तु मोक्ष को जाने वाला जीव अकेला ही है, पुद्गल साथ में मोक्ष नहीं जाता है।’

तपोग्नि द्वारा लोकोत्तरता की अभिवृद्धि

अग्नि में तपाया गया सुवर्ण जिस प्रकार परिगुद होता है, उसी प्रकार सल्लेखना की तपोग्नि द्वारा आचार्य महाराज का जीवन सर्व प्रकार से लोकोत्तर बनता जा रहा था। दूरवर्ती लोग उस विशुद्ध जीवन की क्या कल्पना कर सकते हैं?

प्रथम मूर्ति

सल्लेखना की बेला में महाराज केवल प्रथममूर्ति दिखत थे। उस समय वे नाम निक्षेप की दृष्टि से नहीं, अन्वर्थता की अपेक्षा भी गान्ति के मिथु जातिसागर थे। वे पूर्णतया अलौकिक थे।

जिनेश्वर के लघु नंदन

ससार मृत्यु के नाम से घबड़ाता है और उमके भय से नीच से नीच कार्य करने को तत्पर हो जाता है, किन्तु जातिसागर महाराज मृत्यु को चुनौती दे, उससे युद्ध करते हुए जिनेश्वर के नंदन के समान शोभायमान होते थे। उनका मकल्प था 'Death thou shalt die' - अग्नि मृत्यु तेरी मृत्यु होगी। समाधि में मफल मयमी एक दिन मृत्युजय बनता ही है।

मृत्युजय बनने का मार्ग

ससार के देव-दानव-मानव आदि प्राणियों पर मृत्युराज का आतंक है। ऐसा कौन है, जिस पर यम का शासन न हो? ऐसे अद्भुत पराक्रम वाले यम को पछाड़कर अपने प्रकृति सिद्ध अधिकार अमृतत्व को प्राप्त करने की श्रेष्ठ कला जिनेन्द्र के शासन में बसाई गई है। अहिंसा की पूर्णता जब जीवन में प्रतिष्ठित हो जाती है, तब यह प्राणी अमृतत्व का अधिकारी बनता है। सुख्यवस्थित, सुसम्बद्ध तथा निर्दोष रूप से अहिंसा का प्रतिपादन तथा प्रतिपालन अनैकान्त शासन में ही हुआ है। इससे अमृतत्व की उपलब्धि का एक मात्र उपाय जिनेन्द्रदेव की वीतराग देशना का अनुकरण करना है। एकान्तवादी की अमृतत्व की कल्पना विषयान द्वारा नीरोगता पाने सदृश विवेक शून्य है।

जैन शास्त्र कहते हैं कि मृत्यु विजेता बनने के लिए मुमुक्षु को मृत्यु के भय का परित्याग कर उसे मित्र सदृश मानना चाहिए। इसी मर्म को हृदयस्थ करने के कारण आचार्य शातिसागर महाराज ने अपने जीवन की सध्या बेला पर समाधिपूर्वक-शान्त भाव सहित प्राणों का परित्याग करके रत्नत्रय धर्म की रक्षा का सुदृढ़ सकल्प किया था। वे मृत्यु को उपकारी मित्र सोचते थे, "मृत्यु मित्र उपकारी मेरी"।

आत्मोक्त आचरण

उन्होंने जब भी जल लिया था, तब दिगम्बर मुनि की आहार ग्रहण करने की विधिपूर्वक ही उन्ने ग्रहण किया था। खड़े होकर, दूमे का आश्रय न ले, अपने हाथ की अंगुलियों द्वारा थोड़ासा जलमात्र लिया था। चाग मितम्बर को उक्त स्थिति में उन्होंने चार छह अंगुली जल लिया था, परन्तु बीस दिन से अनाहार गरीब को खड़े रखकर जल लेने की क्षमता भी उम्र देह में नहीं रही थी। वास्तव में तो चौरासी वर्ष के वृद्ध तपस्वी के गरीब द्वारा ऐसी साधना इतिहास की दृष्टि में भी लोकोत्तर मानी जायगी ॥

आत्मबल का प्रभाव

गरीबरूपी गाड़ी तो पूर्णतः शक्तिशून्य हो चुकी थी; केवल आत्मा का बल गरीब को खींच रहा था। यह आत्मा का ही बल था, जो मेरी प्रार्थना पर मल्लेखना के

२६वे दिन आठ सितम्बर को सायंकाल के समय उन साधुराज ने २२ मिनट पर्यन्त लोककल्याण के लिए अपना अमर सन्देश दिया था, जिससे विश्व के प्रत्येक शांतिप्रेमी को प्रकाश प्राप्त होता है।

चिन्तापूर्ण शरीर स्थिति

ता १३ सितम्बर को सल्लेखना का ३१ वाँ दिन था। उस दिन गुरुदेव की शरीर-स्थिति बहुत चिन्ताजनक हो गई और ऐसा लगने लगा कि अब इस आध्यात्मिक सूर्य के अस्तगत होने में तनिक भी देर नहीं है। यह सूर्य अब क्षितिज को स्पर्श कर चुका है। भूतल पर से उसका दर्शन लोगो को नहीं होता, हाँ शैलशिखर से उस सूर्य की कुछ-कुछ ज्योति दिखाई पड़ रही है। उस समय महाराज की स्थिरता अद्भुत थी। उनकी सारी ही बातें अद्भुत रही हैं। जितने काम उस विभूति के द्वारा हुए वे विश्व को चकित ही तो करते थे।

ता १३ को महाराज का दर्शन दुर्लभ बन गया। हजारों यात्री आए थे, किन्तु उनकी शरीर की स्थिति को देखकर जन-साधारण को दर्शन का लाभ मिलना असंभव दिखने लगा। उस दिन बाहर से आगत टेलीफोनो के उत्तर में हमने यह समाचार भेजा था - “महाराज की प्रकृति अत्यन्त क्षीण है। दर्शन असंभव लगता है। नाडी कमजोर है। भविष्य अनिश्चित है। आसपास की पचायतो को तार या फोन से सूचना दे दीजिये, जिससे दर्शनार्थी लोग यहाँ आकर निराश न हो।” अन्य लोगो ने भी आसपास समाचार भेज दिए कि अब यह धर्म का सूर्य शीघ्र ही लोकान्तर को प्रयाण करने को है। जैसे-जैसे समय बीतता था, वैसे-वैसे दूर-दूर के लोग अहिंसा के श्रेष्ठ आराधक के दर्शनार्थ आ रहे थे। बहुभाग तो ऐसे लोगों का था, जिनके मन में दर्शन के प्रति अवर्णनीय ममता थी। कारण, उन्होंने जीवन में एक बार भी इन लोकोत्तर साधुराज की प्रत्यक्ष वन्दना नहीं की थी। उस समय धार्मिक जनता में अपार चिन्ता बढ़ रही थी।

अन्तिम दर्शन

कुछ बेचारे तो दुःखी हृदय से लौट गये और कुछ लोग इस आशा से कि शायद आगे दर्शन मिल जाँय, ठहरे। अन्त में सत्रह सितम्बर को सुबह महाराज के दर्शन सबको मिलेंगे, ऐसी सूचना ता १६ की रात्रि को लोगो को मिली। इस सम्बन्ध में कोल्हापुर के भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी ने महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया था, जिसके फलस्वरूप दर्शन में अन्तराय बनने वाले व्यक्तियों को सद्बुद्धि प्राप्त हुई। बड़े व्यवस्थित ढङ्ग से तथा शांतिपूर्वक

एक-एक व्यक्ति की पक्ति बनाकर लोगा ने आचार्यश्री का दर्शन किया। महाराज तो आत्मध्यान में निमग्न रहते थे। वास्तव में ऐसा दिखता था मानो वे लेटे-लेटे सामायिक कर रहे हों। बात यथार्थ में भी यही थी।

पीठ का दर्शन

जब मैं पर्वत पर पहुँचा, तब महाराज करवट बदल चुके थे, इससे उनकी पीठ ही दिखाई पड़ी। मैंने सोचा - “सचमुच में अब हमें महाराज की पीठ ही तो दिखेगी। उन्होंने अपना मुख परलोक की ओर कर लिया है। उनकी दृष्टि आत्मा की ओर हो गई है। इस जगत् की ओर उन्होंने पीठ कर ली है।” पर्वत से लौटकर नीचे आए लोगों को बड़ा सन्तोष हो गया कि जिस दर्शन के लिए वे हजारों मील से आए, वह कामना पूर्ण हो गई। कई लोग दूर-दूर से पैदल भी आए। आने वालों में अजैन भी थे। सब को दर्शन मिल गए, इससे लोगों के मन में सन्तोष था, किन्तु रह-रहकर याद आती थी कि यदि ऐसी व्यवस्था पहले हो जाती, तो निराश लौटे लोगों की भी कामना पूर्ण हो सकती थी। वास्तव में अन्तराय कर्म का उदय आने पर समझदार व्यक्तियों का विवेक भी साथ नहीं देता और अनुकूल सामग्री भी प्रतिकूलता धारण करने लगती है।

मुझे आशा नहीं थी कि अब पर्वत पर पुनः गुरुदेव के पास पहुँचने का सौभाग्य मिलेगा। मैं तो किसी-किसी भाई से कहता था - “गुरुदेव तो हृदय में विराजमान हैं, वे सदा विराजमान रहेंगे। उनके भौतिक शरीर के दर्शन न हुए तो क्या? मेरे मनोमंदिर में तो उनके चरण सदा विद्यमान हैं। उनका दर्शन तो सर्वदा हुआ ही करेगा।”

कुछ समय के पश्चात् मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक व्यक्ति मेरे पास आया और उसने कहा कि पर्वत पर आपको बुलाया गया है।

परलोक यात्रा के पूर्व

मैं पैंतीसवें दिन पर्वत पर लगभग तीन बजे पहुँचा और महाराज की कुटी में गया। वहाँ मुझे उन क्षपकराज के अत्यन्त निकट लगभग दो घंटे रहने का अपूर्व अवसर मिला। वे चुपचाप लेटे थे, कभी-कभी हाथों का संचालन हो जाता था। अखण्ड सन्नाटा कुटी में रहता था। महाराज की श्रेष्ठ समाधि निर्विघ्न हो, उस उद्देश्य से मैं भगवान की जाप करता हुआ, उनके शरीर को देखता था।

मेरी विचारधारा

मन में विविध प्रकार के विचार आ रहे थे। मैं सोचता था - “धन्य है ये

महापुरुष, धन्य है इनकी पवित्र श्रद्धा, धन्य है इनकी लोकोत्तर तपस्या।” मुझे तो ऐसा लगा कि मैं जीवित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के समीप बैठ हूँ। शरीर मात्र भी परिग्रह से पृथक्, रत्नत्रय की ज्योति से समलकृत वह आत्मा “सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि” रूप सूत्रांश का स्मरण कराती थी।

बार-बार मन में यह विचार आता था कि इस क्षीण शरीर में कितनी बलवान् आत्मा है। वह मृत्यु से अलौकिक युद्ध कर रही है। वह कर्मों की निर्जरा कर रही है। इस आत्मा की दर्शन-विशुद्धता अलौकिक है। महाराज का सशक्त शरीर तो और भी दिन रहता, किन्तु जिनाज्ञानुसार इन्होंने अमर सल्लेखना ली। छोटे-छोटे जीवों के प्राण-रक्षण की प्रतिज्ञा रूप प्राणी-सयम की ये सचमुच में प्राण-पण से रक्षा कर रहे थे। ऐसी ही रत्नत्रय से समलकृत पराक्रमी आत्मा गणधर, तीर्थकर आदि की आध्यात्मिक पदवी को प्राप्त करती है।

महाकवि टेनीसन ने लिखा है -

Self-reverence, Self-knowledge Self-control,
These three alone lead life to Sovereign power।

-आत्म-श्रद्धा, आत्मबोध तथा आत्म-सयम ये तीनों ही जीवन को श्रेष्ठ शक्ति प्रदान करते हैं। परावलम्बन का त्यागकर वे पूर्णतया स्वाश्रयी हो गये थे। वे सच्चे आत्मयोगी थे।

महाकवि के उपर्युक्त वाक्य महाराज के जीवन में मूर्तिरूप हो गए थे।

राजा महाबल की तुलना

स्वर्ग प्रयाण करने के चौदह घंटे पूर्व जो मैंने दो घंटे पर्यंत क्षपकराज की शरीर स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण किया था, उसकी तुलना महापुराण में वर्णित महाबल राजा की बाईस दिन पर्यंत चलने वाली समाधि से की जा सकती है। पचम काल में महान् बल युक्त शरीर सम्पन्न ये साधुराज भी तो महाबल थे। अग्नि में जैसे वनस्पति भी जल जाती है, उसीप्रकार तपोग्नि में महाराज का शरीर भी दग्ध सदृश हो गया था। महाबल राजा का जीव दसवें भव में ऋषभनाथ तीर्थकर हुआ है। महाबल राजा ने स्वकृत और परकृत दोनों प्रकार की परिचर्या से रहित श्रेष्ठ प्रायोपगमन सन्यास मरण का नियम लिया था।

महापुराण का चित्रण

आचार्य महाराज ने इगिनी-मरण लिया था, उसमें दूसरे के द्वारा अपने शरीर

की परिचर्या और सेवा का परित्याग किया जाता है। स्वयं शरीर की सेवा का त्याग नहीं होता। महाकवि जिनसेन ने महाबल की मानसिक और शारीरिक अवस्था का जो चित्रण किया था, वही रूप इन साधुराज के विषय में भी था। आचार्य लिखते हैं - “कठिन तपस्या करनेवाले महाबल महाराज का शरीर तो कृश हो गया था, परन्तु पञ्च परमेष्ठियों के स्मरण के कारण उनके भावों की विशुद्धि बढ़ रही थी। निरन्तर उपवास करने के कारण उन महाबल के शरीर में शिथिलता अवश्य आ गई थी, किन्तु ग्रहण की गई प्रतिज्ञा में रचमात्र भी शिथिलता नहीं आई थी। सो ठीक है, क्योंकि प्रतिज्ञा में शिथिलता नहीं करना ही महापुरुषों का व्रत है। रक्त, मास आदि के क्षययुक्त तथा रसरहित शरीर शरदकालीन मेघों के समान क्षीण हो गया था। उस समय वह राजा देवों के समान रक्त, मासादि रहित शरीर को धारण कर रहा था। राजा महाबल ने मरण का प्रारम्भ करने वाले व्रत धारण किए हैं, यह देखकर उसके दोनों नेत्र मानो शोक से ही कहीं जा छिपे थे। अर्थात् नेत्र भीतर घुस गए थे। वे पहले के विलासों से विरत हो गए थे। महाबल के दोनों गालों के रक्त, मास, चमड़ा आदि सब सूख गए थे, तथापि उन्होंने अपनी अविनाशिनी कान्ति का परित्याग नहीं किया था।”

ऐसी ही स्थिति हमने महाराज गातिसागरजी के शरीर की देखी थी। शरीर की क्षीणता का तो क्या वर्णन किया जा सकता है? अस्थिपजर मात्र शेष था। दीप्ति अपूर्व थी। रत्नत्रय की अतरंग दीप्ति वृद्धिगत हो रही थी। इसका ही सभ्यत्व प्रभाव शरीर पर प्रगट हो रहा था।

शरीर की अवस्था

महाबल राजा का वर्णन करते हुए आचार्य लिखते हैं - “समाधि-मरण ग्रहण के पूर्व जो कष्ट अत्यन्त स्थूल थे तथा बाहु-बन्ध की रगड़ से अत्यन्त कठोर थे उस समय वे अतिशय कोमलता को प्राप्त हो गए थे। उसका उदर कुछ भीतर की ओर झुक गया था और त्रिवली भी नष्ट हो गई थी, इसलिए ऐसा जान पड़ता था, मानो पवन के न चलने से तरंग रहित सूखता हुआ सरोवर ही हो। जिस प्रकार अग्नि में तपाया हुआ सुवर्ण-पाषाण अत्यन्त शुद्धि को धारण करता हुआ, अधिक प्रकाशमान होने लगता है, उसी प्रकार वह महाबल भी तप रूपी अग्नि से तृप्त हो अत्यन्त शुद्धि को धारण करता हुआ अधिक प्रकाशमान हो रहा था।”

“महाबल राजा असह्य शरीर के सताप को लीला मात्र में ही सहन कर लेता था तथा कभी किसी विपत्ति से पराजित नहीं होता था। इससे उसके साथ युद्ध करते

समय परीषह भी पराजित हुए थे। परीषह उसे अपने कर्तव्य मार्ग से च्युत नहीं कर सके थे।” आचार्य जिनसेन लिखते हैं -

त्वगस्थीभूतदेहोपि यद्व्यजेष्ट परीषहान्।

स्व-समाधि-बलाद् व्यक्तं स तदासीन्महाबलः ॥५-२४४॥

-यद्यपि उसके शरीर में चमड़ा तथा हड्डी मात्र शेष बचे थे तथापि उस महाबल ने आत्मा की समाधि के बल से अनेक परीषहों को जीत लिया था, इस कारण उस समय यह यथार्थ में “महाबल सिद्ध हुआ था।”

अपूर्व समाधि

यहाँ आचार्य महाराज की भी यही स्थिति थी। महाबल राजा ने बाईस दिन पर्यन्त सल्लेखना की थी, आचार्य महाराज की सल्लेखना तो छत्तीस दिन तक रही। में उनके समीप बैठा था, वह पैतीसवाँ दिन था। हीन सहनन को धारण करने वाले व्यक्ति का यह निर्मलतापूर्वक स्वीकृत समाधिमरण युग-युग तक अद्वितीय माना जायगा। आचार्य महाराज का मन तो सिद्ध भगवान के चरणों का विशेष रूप से अनुरागी था। वह सिद्धालय में जाकर अनन्त-सिद्धों के साथ अपने स्वरूप में निमग्न होता था।

महत्त्वपूर्ण चित्रण

महाबल के विषय में महाकवि जिनसेन ने यह महत्त्वपूर्ण कथन किया है -

मूर्ध्नि लोकोत्तमान् सिद्धान् हृदयेऽर्हतः।

शिरः कवचमस्त्रं च स चक्रे साधुभिस्त्रिभिः ॥५-२४५॥

-उसने अपने मस्तक पर लोकोत्तम सिद्ध परमेष्ठी को, हृदय में अर्हन्त को विराजमान किया था। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु इन तीन परमेष्ठियों के ध्यान रूपी टोप, कवच तथा शस्त्र धारण किए थे।

चक्षुषी परमात्मानं अद्राष्टामस्य योगतः।

अश्रौष्टं परम मंत्र श्रोत्रे जिह्वा तमापठत् ॥५-२४६॥

[ध्यान के द्वारा उसके दोनों नेत्र केवल परमात्मा का ही दर्शन करते थे, कान परममंत्र को ही सुनते थे और जीभ उसी महामन्त्र का पाठ करती थी।]

क्षपकराज की श्रेष्ठ अवरथा

आचार्य महाराज के समीप अखड गाति थी, जो सम्भवत उन शांति के सागर की मानसिक स्थिति का अनुसरण करती थी। उनके पास कोई भी शब्दोच्चार नहीं हो रहा था। शरीर चेष्टारहित था। श्वासोच्छ्वास के गमनागमन कृत देह में परिवर्तन दिख रहा था। यदि यह चिह्न शेष न रहता, तो देह को चैतन्य शून्य भी कहा जा सकता था। प्रतीत होता था कि वे म्यान से जैसे तलवार भिन्न रहती है, उसी प्रकार शरीर से पृथक् अपनी आत्मा के चिन्तवन में निमग्न थे। उस आत्म-समाधि में उनको जो आनन्द की उपलब्धि हो रही थी, उसकी कल्पना आर्तध्यान, रौद्रध्यान के जाल में फँसा हुआ गृहस्थ क्या कर सकता है? महान् कुशल वीतराग योगीजन ही उस परमामृत की मधुरता को समझते हैं। जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति सूर्य के प्रकाश के विषय में कल्पना नहीं कर सकता, उसी प्रकार मोहान्ध गृहस्थ भी महाराज की अन्तरङ्ग अवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। बाह्य सामग्री से यह अनुमान होता था कि महाराज उत्कृष्ट योग-साधना में सलग्न हैं। घबडाहट, वेदना आदि का लेश नहीं था।

दुर्भाग्य की बात

लगभग दो घण्टे पश्चात् मैं बाहर गया। महाराज की समस्त स्थिति बार-बार मन के आगे घूमती रहती थी। सोचा था, पश्चात् भी महाराज के पास जाकर स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करूँगा, किन्तु ऐसा होना असम्भव था। दुर्भाग्यवश वहाँ जो लोग प्रबन्ध कर रहे थे, वे यह सोच ही नहीं सकते थे कि ऐसे बहुमूल्य क्षणों में आचार्य महाराज के पास कैसे लोगो को रहना चाहिए। महाराज की जीवन भर उज्ज्वल सेवा करने वाले बड़े-बड़े व्यक्तियों को ये मूढमति प्रहरी भीतर नहीं जाने देते थे। उस समय विचित्र कर्म-विपाक देखकर आश्चर्य होता था। मन बहुत दुःखी भी होता था। भवितव्यता के विरुद्ध किसका वश चलता है।

प्रभात में स्वर्ग प्रयाण

जैसे ३५ दिन बीते, ऐसे रात्रि भी व्यतीत हो गई। नभोमण्डल में सूर्य का आगमन हुआ। घड़ी में छह बजकर पचास मिनट हुए थे। चारित्र-चक्रवर्ती साधुराज ने स्वर्ग को प्रयाण किया।

कारण ?

यह समाचार सुनते ही मन में विचार आया कि रात्रि को यमराज अनेक बार

आया किन्तु उसने सोचा कि इन माधुगज के जीवन में सूर्यपकटा के दिना अन्धकार में कभी यात्रा नहीं की, तब इस महाप्रयाण का कार्य अन्धकार में करना इनकी चिरकालीन आदत के प्रतिकूल होगा, अतः मानों चमराज रुका गया और नभामण्डल में प्रभाकर को देखते ही उन्हें ले गया। वह दिन रविवार का था। अमृतसिद्धियोग था। १८ सितम्बर, भादो सुदी द्वितीया का दिन था। उस समय हस्त नक्षत्र था।

मैं तुरन्त पर्वत पर पहुँचा। कुटी में जाकर देखा। वहाँ आचार्य महागज नहीं थे। चारित्र चक्रवर्ती गुप्तेव नहीं थे। आप्यात्मिकों के चूड़ामणि नहीं थे। धर्म के सूर्य नहीं थे। उनकी पावन आत्मा ने जिस शरीर में ८४ वर्ष निवास किया था, वेबल वरः पौदगलिक शरीर था। वही कुटी थी। वरः अमर ज्योति नहीं थी। हृदय में बड़ी वर्णनातीत वेदना हुई।

गहरी मनोवेदना

प्रत्येक के हृदय में गहरी पीड़ा उत्पन्न हो गई। बन्ध के मूल कारण बन्धु का यह वियोग नहीं था। अकारज बन्धु, विश्व के बन्धु आचार्य परमेश्वरी का यह निर वियोग था। इस मनोव्यथा को कोन लिख सकता है, कह सकता है, बता सकता है। कण्ठ के रंध्र जाने से रोया भी नहीं जाता था। वाणी विहीन हृदय फूट-फूटकर रोता था। आसपास की प्रकृति रोतीसी लगती थी। पर्वत का पापाण भी गेता सा दिखता था। आज कुथलगिरि ही नहीं, वरन् भाग्यवर्ष सचमुच अनाथ हो गया, उसके नाथ चले गए। उसके म्वच्छद जीवन पर समय की नाथ लगाने वाले सदा के लिए चले गए।

आँखों से अश्रु का प्रवाह बह चला। आज हमारी आत्मा के गुरु सचमुच में यहाँ से स्वर्ग प्रयाण कर गये। शरीर की आकृति अत्यन्त सौम्य थी, शांत थी। देखने पर ऐसा लगता था कि आचार्य शान्तिसागर महागज गहरी समाधि में लीन हैं, किन्तु वहाँ शान्तिसागर महाराज अब नहीं थे। वह राजहम उड़कर सुरेन्द्रों का साथी बन गया था।

निधि लुट गई

समाधिमरण की सफल साधना से बड़ी जीवन में कोई निधि नहीं है। उस परीक्षा में आचार्यश्री प्रथम श्रेणी में भी प्रथम आए, इस विचार से तो मन में सन्तोष होना था, किन्तु उस समय मन विह्वल बन गया था। जीवन से भी अधिक पूज्य और मान्य धर्म की निधि लुट गई, इस मोह तथा ममतावश नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी।

उनके पद्मासन शरीर को पर्वत के उन्नत स्थल पर विराजमान कर सब लोगों को दर्शन कराया गया। उस समय दर्शकों को यही लगता था कि महाराज तो हमारे नेत्रों के

समक्ष साक्षात् बैठे है और पुण्य दर्शन दे रहे है। पर्वत पर साधुओ आदि ने दशभक्ति का पाठ पढा, कुछ सस्कार हुए।

बाद मे विमान मे उनकी तपोमयी देह को विराजमान किया गया। यहाँ उनका मानव शरीर काष्ठ विमान मे विराजमान किया गया था। परमार्थत महाराज की आत्मा सयम-साधना के प्रसाद से स्वर्ग के श्रेष्ठ विमान मे विराजमान हुई होगी।

निर्ग्रन्थ का शरीर भी मङ्गलमय

निर्ग्रन्थ साधु का प्राणरहित शरीर भी मङ्गलरूप कहा गया है, क्योंकि उस शरीर के कण-कण द्वारा जीवन भर मे म अर्थात् पाप को गलानेवाले अथवा मग्न अर्थात् पुण्य को लाने वाले कार्य हुए। इससे उसे मङ्गलमय कहना युक्तिसङ्गत भी है। तिलोत्पण्णत्ति मे लिखा है -

सूरिउवज्जयसाहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं ॥१-२०॥

-आचार्य, उपाध्याय तथा साधु का शरीर द्रव्यमङ्गल है।

चरणो को प्रणामांजलि

विमान स्थित आचार्य परमेष्ठी के द्रव्यमङ्गल रूप शरीर के पास पहुँच चरणो को स्पर्श कर मैंने प्रणाम किया। चरणो मे चन्दन लगा था। चरण की लम्बी गज रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। चाँदी के पुष्प भी चरणो पर रखे दिखाई दिए। मुझे अन्य लोगो के साथ उस विमान को कन्धा देने का प्रथम अवसर दिया गया।

‘ॐ सिद्धाय नमः’ की उच्चध्वनि

धर्मसूर्य के अस्तगत होने से व्यथित भव्य समुदाय ॐ सिद्धाय नमः ॐ सिद्धाय नमः का उच्चस्वर से उच्चारण करता हुआ विमान के साथ बढ़ता जा रहा था। थोड़ी देर मे विमान क्षेत्र के बाहर बनी हुई पाडुक शिला के पास लाया गया। पश्चात् पावन पर्वत की प्रदक्षिणा देता हुआ विमान पर्वत पर लाया गया।

महाराज का शरीर जब देखो, ध्यान मुद्रा मे ही लीन दिखता था। दो बजे दिन के समय पर्वत पर मानस्तम्भ के समीपवर्ती स्थान पर विमान रखा गया। वहाँ शास्त्रानुसार शरीर के अंतिम सस्कार, लगभग पद्रह हजार जनता के समक्ष, कोल्हापुर जैन मठ के भट्टारक श्रीलक्ष्मीसेन स्वामी ने कराए। आचार्यश्री के पावन शरीर के पृष्ठ भाग का दूध, दही आदि के घडो से सेठ गोविन्द जी रावजी दोसी के परिवार घराने द्वारा अभिषेक हुआ।

अंतिम संस्कार

(पृष्ठ भाग का ही अभिषेक क्यो किया जाय, इस विषय मे आचार्यश्री ने पहले मुझे बताया था कि यदि सामने के भाग का भी अभिषेक कराया जाय और कदाचित् क्षपक के शरीर में सूक्ष्म रूप से प्राण रहे आवे, तो उसकी प्रतिज्ञा भंग होने का प्रसंग आ जायगा। (इससे पिछले भाग का ही अभिषेक करना चाहिए।))

प्रदीप्त अग्नि

अभिषेक होते ही चदन, नारियल की गरी, कपूरादि द्रव्यो से पद्मासन बैठे हुए उस शरीर को ढाँकने का कार्य शुरू हुआ। देखते-देखते आचार्यश्री का मुखमंडल भर जो दृष्टिगोचर होता था कुछ क्षण बाद वह भी उस दाह्य द्रव्य मे दब गया। विशेष मंत्र से परिशुद्ध की गई अग्नि के द्वारा शरीर का ४ बजे शाम को दाह संस्कार प्रारंभ हुआ।^१ कपूरादि सामग्री को पाकर अग्नि को वृद्धिगत होते देर न लगी। अग्नि पवन का सहयोग पाकर सभी दिग्दिगन्त को पवित्र बना रही थी। देह का दाह संस्कार हो रहा था।

हमे भी समाधिलाभ हो

उसे देखकर लोगो के हृदय में विविध भाव उत्पन्न हो रहे थे। ज्ञानी-जन सोचते थे - हे साधुराज! जैसी तुम्हारी सफल सयम पूर्ण जीवन यात्रा हुई और श्रेष्ठ समाधि रूप अमृत तुमने प्राप्त किया, ऐसा ही जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से हमे भी अपना जन्म कृतार्थ करने का अवसर प्राप्त हो।

जीवन की स्मृति

धीरे-धीरे लोग पर्वत से नीचे उतर आए। रात्रि को लगभग ८ बजे पर्वत पर हम पुन पहुँचे। अग्नि वेग से जल रही थी। हम वहीं लगभग दो घंटे बैठे। उठने का मन ही नहीं होता था। आचार्यश्री के जीवन की पुण्य घटनाओ तथा सत्संगो की बार-बार याद आती थी। मनमे गहरी वेदना उत्पन्न होती थी कि इस वर्ष का (सन् १९५५ का) पर्यूषण पर्व इन महामानव के समीप बिताने का मौका ही न आ पाया। अग्नि की लपटे मेरी ओर आती थीं। मैं उनको देखकर चकित था तथा विविध विचारो मे निमग्न हो जाता था।

^१ आचार्य महाराज के शरीर को भस्मीभूत करने में इस प्रकार सामग्री लगी थी - पच्चीस मन चदन, डेढ़ मन घी, तीस मन नारियल तथा तीन बोरा कपूर आदि।

गांधी जी के शरीरदाह मे पन्द्रह मन चदन, दो मन धूप, चार मन घी, एक मन नारियल तथा पन्द्रह सेर कपूर लगा था।

मात्वना के विचार

अब महाराज के दर्शन और मत्स्य का मौभाग्य मदा के लिए ममाप्त हो गया। इस कल्पना में अतः कण में अमह्य पीडा होती थी। उम समय महापुगण का यह कथन याद आता था कि आदिनाथ भगवान के मोक्ष होने पर तत्त्वजानी भगत शोक-विह्वल हो रहे थे। उनको दुःखी देखकर वृषभमेन गणधर ने मात्वना देते हुए कहा था - “अरे भक्त! निर्वाण-कल्याणक होना आनन्द की बात है। उसमें शोक की कल्पना ठीक नहीं है, ‘तोषे विषाद कुतः’ पहले उनका गरीर नेत्रगोचर होता था, अब वह भीतरी जानचक्षुओं द्वारा देखा जा सकता है। तुम उनका मदा दर्शन कर सकते हो।

प्रागक्षिगोचर. सप्रति चेतमि वर्तते भगवान्।

तत्र कः शोकः पश्यैनं तत्र सर्वदा ॥

इसी प्रकार गुरुदेव की ३६ दिन की लम्बी ममाधि श्रेष्ठ गति में पूर्ण हो गई। यह महान् सतोष की बात माननी चाहिए। शोक की बात सोचना अयोग्य है। ऐसे विचार आने पर मनोवेदना कम होती थी।

शिष्यों को संदेश

स्वर्गयात्रा के पूर्व आचार्यश्री ने अपने प्रमुख शिष्यों को यह संदेश दिया था कि हमारे जाने पर शोक मत करना और आर्तध्यान नहीं करना।

आचार्य महाराज का अमर संदेश तो हमें निर्वाण-प्राप्ति के पूर्व तक का कर्तव्य-पथ बता गया है। उन्होंने समाज के लिए जो हितकारी बात कही थी, वह प्रत्येक भव्य के काम की वस्तु है। उमका मूल्य त्रिलोक भर के पदार्थ नहीं है। उसके द्वारा सभी श्रेष्ठ ऋद्धि, सिद्धि, वैभव आदि मिलते हैं। वे वाक्य थे - “सम्यक्त्व धारण करो।” वैसे उनका सारा जीवन ही हमारे लिए, आपके लिए, विश्व के लिए संदेश है।

अमर ज्योति के विषय में आगम

आचार्यश्री की आत्मा का क्या हुआ यह बात भौतिक नेत्रों से अगोचर होती हुई भी आगम चक्षु के द्वारा देखी जा सकती है। जिनवाणी का कथन है कि इस शरीर को छोड़कर जीव तीनसमय के भीतर दूसरे स्थान में पहुँचकर नवीन शरीर निर्माण के योग्य मामग्री को ग्रहण करने लगता है।

गोम्मटसार में लिखा है - “जिसने देवायु का बध किया है, वही जीव अणुव्रत

तथा महाव्रत को धारण करता है।^१ अतः महाव्रती आचार्य महाराज का स्वर्ग में पहुँचना पूर्णतया सुसंगत बात है। तिलोयपण्णत्ति के निम्नलिखित कथन को ध्यान पूर्वक पढ़ने से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि सभवतः आचार्य महाराज देवताओं के ऋषि लौकान्तिक हुए होंगे। उन्होंने निर्दोष रीति से जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन वैराग्य रस से भरा हुआ था।

लौकान्तिक कौन होता है ?

तिलोयपण्णत्ति का कथन इस प्रकार है -

✓- जो सम्यग्दृष्टि श्रमण, स्तुति और निन्दा में, सुख और दुःख में, बन्धु और रिपु में समान है, वही लौकान्तिक होता है।

✓- जो देह के विषय में निरपेक्ष, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निरारभ और निर्दोष है, वे ही श्रेष्ठ श्रमण लौकान्तिक होते हैं।

✓- जो श्रमण संयोग और वियोग में, लाभ और अलाभ में तथा जीवित और मरण में समदृष्टि होते हैं, वे ही लौकान्तिक होते हैं।

✓- सयम, समिति, ध्यान एवं समाधि के विषय में जो निरन्तर उद्यत रहते हैं तथा तीव्र तपश्चरण धारण करते हैं, वे श्रमण लौकान्तिक होते हैं।

✓- पच महाव्रत सहित पच-समितियों का चिरकाल तक आचरण करने वाले और पाँचो इन्द्रिय-विषयो से विरक्त ऋषि लौकान्तिक होते हैं।

(तिलोयपण्णत्ति गाथा ६४७ से ६५१ तक - आठवाँ अधिकार पृ ८६३ भाग २)

अनुमान

आचार्यश्री के चरणों में बहुत समय व्यतीत करने के कारण तथा उनकी सर्व प्रकार की चेष्टाओं को सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करने के फलस्वरूप ऐसा मानना उचित प्रतीत होता है कि वे लौकान्तिक देव हुए होंगे। वे अलौकिक पुरुषरत्न थे, यह उनकी जीवनी से ज्ञात होता है। माता के उदर में जब ये महापुरुष आए थे, तब सत्यवती माता के हृदय में १०८ सहस्रदल युक्त कमलों से जिनेन्द्र भगवान की वैभव सहित पूजा करने की मनोकामना उत्पन्न हुई थी। आज के जडवाद तथा विषयलोलुपता के युग में उन्होंने

^१ चित्तिरिवि खेत्ताइ आउगबधेण होदि सम्मत्त।

अणुवद-महब्बदाइ ण लहइ देवाउग मुत्त ॥ - गोम्मटसार की ६५१ ॥

रत्नत्रय धर्म की प्रथाचना की है और वर्धमान भगवान के शासन को वर्धमान बनाया है, उससे तो ये भाविजिनेश्वर या जिनेश्वर के नन्दन मद्दुश लगते रहे हैं। हमारी तो यह धारणा है कि लौकान्तिक देवर्षि की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् ये धर्म तीर्थंकर होंगे। कुन्दकुन्द ऋषिराज की वाणी महत्त्वपूर्ण है -

अज्जवि तिरयण मुद्धा अप्पा झाए वि लहड डंढत्तं ।

लोगंतिग देवत्तं तत्थ चुआ णिच्चुदि जंति ॥

- मौक्ष पाहुड ७७

आज के पञ्चम काल में रत्नत्रय की निर्दोष आराधना करने वाली आत्माएँ इन्द्रपद अथवा लौकान्तिक देव बना पाकर वहां से चयकर निर्वाण को पाती हैं।

भट्टारक जिनमेन स्वामी का स्वप्न

कोल्हापुर के भट्टारक जिनमेनजी को ७-७-५३ को प्रभात में स्वप्न आया था कि आचार्य गातिसागर महाराज तीसरे भव में तीर्थंकर होंगे। भट्टारक महाराज की बात सुनकर आचार्य महाराज ने भी कहा था कि “१२ वर्षपूर्व हमें भी ऐसा ही स्वप्न आया था कि तुम पुष्करार्ध द्वीप में तीर्थंकर पद धारण करेंगे।”

जैनागम में वर्णित अष्टांग महानिमित्त ज्ञान में स्वप्न ज्ञान का समावेश है। स्वप्न द्वारा भविष्य का बोध होता है। जो स्वप्न वातादि विकारों में उद्भूत होते हैं, उनकी मत्थता सब गकार्य रहती है। जिनेन्द्र की जननी गर्भ में तीर्थंकर के अवतरण के पूर्व मंगलमय मोलह स्वप्न देखती है। पाश्चात्य लोग भी इस विषय को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। १४ अप्रैल सन् १८६५ को अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने उच्च मरकाजी पदाधिकारियों की बैठक बुलाकर उनसे कहा कि उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण खबर अवश्य ही सुनने को मिलेगी। उन्होंने बताया कि उन्होंने स्वप्न देखा कि वे ऐमी नाव में बैठे हैं, जिसमें पतवार नहीं है। इस स्वप्न की बात बताने के ५ घंटे बाद ही “जान विल्डीज वूथ की बन्दूक में उनकी हत्या हो गई।” (नवभारत टाइम्स बम्बई, २० नवम्बर १९५५ पृ ८)

संभावित शंका

यह शंका की जा सकती है कि केवली श्रुतकेवली के चरण-मूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ होता है, तब आज उक्त दोनों विभूतियों के अभाव में किम प्रकार तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकेगा?

समाधान

यथार्थ में शका उचित है, किन्तु इस भव में तीर्थकर प्रकृति का वध न करके लौकान्तिक पदवी को छोड़कर पुनः नर पदवी धारण करके तो तीर्थकर प्रकृति का वध हो सकता है। विदेह में तीर्थकर पंचकल्याणक वाले होते हैं, तीन कल्याणक वाले भी होते हैं, दो कल्याणक वाले भी होते हैं। गृहस्थावस्था में यदि तीर्थकर प्रकृति का वध किसी चरम शरीरी आत्मा ने किया, तो उनके तीन कल्याणक होंगे। यदि निर्ग्रन्थ ने वध किया, तो ज्ञान और मोक्ष रूप दो ही, कल्याणक हो सकेंगे।

इस अपेक्षा से सोचा जाय, तो वे सभी भाग्यशाली हो जाते हैं, जिन्होंने ऐसी प्रवर्धमान पुण्यशाली आत्मा के दर्शनादि का लाभ लिया हो। सबसे बड़ा भाग्य तो उनका है, जो गुरुदेव के उपदेशानुसार पुण्य जीवन व्यतीत करते हैं।

देव पर्याय की कथा

औदारिक शरीर परित्याग के अतर्मुहूर्त के भीतर ही उनका वैक्रियिक शरीर परिपूर्ण हो गया और वे उपपाद शय्या में उठ गए। लगभग ७ वज्रकर ३५ मिनट पर उनका दिव्य शरीर परिपूर्ण हो गया। उस समय उन्होंने विचार किया होगा कि यह आनन्द और वैभव की सामग्री यहाँ कैसे आ गई? अवधिज्ञान से उनको ज्ञात हुआ होगा कि मैंने कुथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर यम सल्लेखना पूर्वक अपने शरीर का सयम सहित त्याग किया, उससे मुझे यह देव पर्याय प्राप्त हुई है। इस ज्ञान के पश्चात् वे आनन्दपूर्ण वाद्यध्वनि तथा जयघोष सुनते हुए सरोवर में स्नान करते हैं और आनन्दपूर्वक जिन भगवान की अकृत्रिम रत्नमय प्रतिमाओं के दर्शन-पूजन अभिषेकादि में मग्न हो जाते हैं। यह बात स्मरणीय है कि जिन प्रतिमा को स्थापना जिन कहते हैं। समवसरण के भगवान भाव जिन हैं। स्थापना जिन का अभिषेक होता है। आगम में कहा है -

णाम जिणा जिणणामा ठवणजिणा तहय ताह पडिमाओ।

दव्वजिणा जिणजीवा भावजिणा समवसरणत्था ॥

- अष्टपाहुड टीका पृ ९५

जिनेन्द्र का नाम नामजिन्, उनकी प्रतिमा स्थापना जिन, जिनेन्द्र होने वाले द्रव्य जिन तथा समवसरणस्थ भाव जिन हैं।

आगम का कथन

तिलोचपण्णत्ति में लिखा है कि “वे देव तीन छत्र, सिंहासन, भामडल और

चामरादि से सुन्दर जिन प्रतिमाओं के आगे जय जय शब्द को करते हैं। उक्त देव भक्तियुक्त मन से सहित होकर सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनेन्द्र प्रतिमाओं की स्तुति करके पश्चात् उनका अभिषेक प्रारंभ करते हैं।”

(आठवाँ अधिकार भाग २-५८२ से ५८४ तक)

स्वयं अभिषेक करना

“उक्त देव क्षीर समुद्र के जल से पूर्ण एक हजार आठ सुवर्ण कलशों के द्वारा महाविभूति के साथ जिनाभिषेक करते हैं।” अब तक महाराज प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक देखा करते थे। आज वे सुरराज बनकर रत्नबिम्बों का स्वयं अभिषेक कर रहे होंगे, ऐसा प्रतीत होता था। तिलोत्पण्णत्ति के ये शब्द भी महत्त्वपूर्ण हैं —

“सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षय के निमित्त सदा मन में अतिशय भक्ति से सहित होकर जिनेन्द्रों की पूजा करते हैं।” ५८८ ॥ यहाँ “कम्मक्खवणनिमित्त” शब्द ध्यान देने योग्य है।

“मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के सबोधन से ये कुलदेवता हैं, ऐसा मानकर नित्य जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।” ५८९ ॥

आगम वाणी

महापुराण में कहा है - राजा महाबल की समाधि के उपरान्त ललिताग देव रूप में उत्पत्ति हुई थी। इस कथन के प्रकाश में आचार्य महाराज के विषय में हम अपने मनोमंदिर में कल्पना का भव्य चित्र खींच सकते हैं - “श्रीप्रभ विमान में उपपाद शय्या पर उस देव का जन्म हुआ। मेघरहित आकाश में श्वेत बादलों सहित बिजली की तरह उपपाद शय्या पर शीघ्र ही वैक्रियिक शरीर शोभायमान होने लगा। अतर्मुहूर्त में ही यौवन-पूर्ण, सुलक्षण-सपन्न तरुण के समान वे उपपाद शय्या से उठे। दैदीप्यमान कुडल, केयूर, मुकुट, बाजूबंद आदि आभूषण पहिने हुए, माला सहित, उत्तम वस्त्रों को धारण कर वे शोभायमान हो रहे थे। उनके नेत्र टिमकार रहित थे। उस समय कल्पवृक्षों द्वारा पुष्पों की स्वयमेव वर्षा हो रही थी। दुदुभि ध्वनि हो रही थी। सुर समुदाय आकर प्रणाम कर रहा था। उस समय वह देव चकित हो सोचता है - मैं कौन हूँ, ये सब कौन हैं? मैं कहाँ से आया? यह शय्या तल किसका है?” तत्काल भवप्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। उससे ज्ञात होता है -

अये तपः फलं दिव्यम् अयं स्वर्गो महाद्युति ।

इमे देवास्समुत्सर्पद-देहोद्योता प्रणामिन ॥५-२६७॥

अहो! यह हमारे तप का मनोहर फल है। यह दैदीप्यमान स्थल स्वर्ग है। ये प्रणाम करते हुए दैदीप्यमान शरीर वाले देवता लोग है।

इतने में देवतागण स्तुति करते हुए कहते हैं -

प्रतीच्छ प्रथमं नाथ सज्ज मज्जन-मगलम्।

ततः पूजा जिनेन्द्राणां कुरु पुण्यानुबधिनीम् ॥५-२७३॥

-हे नाथ! स्नान की सामग्री तैयार है। पहले मगल-स्नान कीजिए। इसके अनंतर पुण्यानुबधिनी जिनेन्द्र भगवान की पूजा कीजिए।

इसी प्रकार का परिणाम उस तपस्वी जीव का देव पर्याय में हुआ, जिसका छह बजकर पचास मिनट पर १८ सितम्बर सन् १९५५ के प्रभात में कुथलगिरि पर देहान्त हुआ था, जिसकी आचार्य शातिसागर महाराज कहकर लोग पूजा करते थे।

इस जिनेन्द्र-पूजा के पश्चात् वे अपने प्रासाद में पहुँचकर सिंहासन पर शोभायमान हुए होंगे।^१

यह भी संभव है कि वे शीघ्र ही देवपद-प्राप्ति के उपरान्त पूर्व सस्कारों की प्रेरणा से विदेह क्षेत्र में गए हों और वहाँ देवों के कोठों में बैठकर देवाधिदेव सीमधर भगवान के समवसरण में उन्होंने दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया हो। अब वे धर्मवृक्ष के अमृत तुल्य मधुर फलों का रसास्वादन कर रहे हैं। हमारी भौतिक दृष्टि से आचार्य महाराज नहीं हैं, उनका शरीर अग्नि में भस्म हो गया, किन्तु आगम के प्रकाश से विदित होता है कि उनकी आत्मा अमर लोक में है और आगे वे तपश्चर्या द्वारा 'जरामरणोज्झित' सिद्ध भगवान बनेंगे।

स्वर्ग का आनन्द

आचार्यश्री पहले लोगों को व्रत प्रदान करते समय कभी-कभी कहते थे -
“इससे तुमको स्वर्ग में अवर्णनीय आनन्द मिलेगा। सभी इन्द्रियों को सुखप्रद सामग्री

१ आणदतूर-जयशुदिरवेण जम्म वि बुज्झ स पत्त।

दङ्खण सपरिवार गयजम्म ओहिणा णत्वा ॥५५१॥

धम्म पससिदूण णहादूण दहे भिसेयलकार।

लद्धा जिणाभिसेय पूज कुव्वति सद्विड्डी ॥५५२॥

-त्रिलोकसार वैमानिक लोकाधिकार।

(संचित कर्म के प्रभाव से अतिशयित वैक्रियिक रूप दिव्यबध होने के कारण देवों के शरीर में वर्ण, रस, गंध और स्पर्श बाधा रूप नहीं होते।) ॥५६९॥ (तिलोपपण्णत्ति भाग २, अध्याय ८)

इस वैक्रियिक शरीर के सम्बन्ध में जस्टिस जुगमदर लाल जैनी बार-एट-ला के शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

The gods have Vaikriyaka body which they can change at will Milton rightly mentions this as the body of the angels in his Paradise Lost The Christian, Mohammedan and other systems of religion hold a similar view Cabalistic and Mystic systems of ancient Greece, Egypt, Assyria and Babylon also had some sort of faith in this phenomenon of changeable bodies Popular magic, even of the black kind, connected with wizard's lore and witchcraft, also recognised that men can change themselves into animals etc Fables and fictions in the East and the West, all the world over are familiar with this theory of physical trans-figuration The famous Fasana-e-ajayaba (The wonderful tale) of urdu literature richly illustrates this, as the Prince Jane-slam could change himself into monkey and back to his human form again

Thus the changeability of form is a well-known phenomenon The gods in Jainism have all a body, which they can change at will, it is their Vaikriyaka body They possess it universally like their antipodean analogues to the denizens of the nether world, the embodied mundane souls of the hell The body has no flesh, blood and bones and there are no filthy excretions from it It is very lustrous and bright It may be compared to a cloud shot with the shining glory of a rising or setting sun now looking like one living being now changing itself into another form "

The Bright ones in Jainism, page 3

आठ सागर की स्थिति वाले देवों का आहार आठ हजार वर्षों के बाद होता है। आहार के समय उनके कण्ठ में अमृत झर जाता है, उससे उनको सर्व प्रकार की शांति और आनन्द प्राप्त होता है। इस विषय में सर्वज्ञ भगवान ने यह बात कही है - "जो देव

जितने मागरोपम काल तक जीवित रहता है, उमके उतने ही हजार वर्षों में आहार होता है।”
(ति प ५५२-८, ५ ८५२)

उत्तर शरीर सहित वहिर्गमन

इनका मूल शरीर स्वर्ग में रहता है। इनके शरीर की विक्रिया बाहर जाती है। आगम में कहा है - “गर्भ और जन्मादि कल्याणको में देवों के उत्तर शरीर जाते हैं। उनके मूल शरीर सुखपूर्वक जन्मस्थानों में चेष्टा करते हैं - “जम्भणट्ठाणेसु मुह मूल-सरीराणि चेद्दति।”
(ति प ५९५-८, ५, ८५७)

लौकान्तिकों की विशेषता

अन्य देव तो आमोद, प्रमोद, क्रीडा आदि द्वारा अपना सागरो का समय पूर्ण करते हैं।

लौकान्तिकों के बारे में तिलोयपण्णत्ति में लिखा है - “देवर्षिनाम वाले वे देव सब देवों से अर्चनीय, भक्ति में तल्लीन और सर्वकाल म्वाध्याय में निमग्न रहते हैं - “भक्तिपसत्ता सज्झायसाधीणा सव्वकालेसु” (६४५)

त्रिलोकसार में नेमिचद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लिखा है -

ते हीणाहियरहिया, विसयविरत्ता य देवरिसिणामा।

अणुपिक्ख दत्तचित्ता, सेससुराणच्चणिज्जाहु ॥५३९॥

- वे देवताओं के ऋषि हीनाधिकता रहित, विषयों से विरक्त, अनुप्रेक्षाओं की भावना में लीन तथा शेष देवताओं के द्वारा वदनीय होते हैं। वे देवर्षि यही चाहा करते हैं कि कब उनको इस स्वर्ग के मनोज्ञ कारागार से मुक्ति मिले और वे नरपर्याय प्राप्त कर पुनः अविनाशी मुक्ति की प्राप्ति के लिए तपश्चर्या के पथ में प्रवृत्त हों।

निर्विकल्प समाधिजन्य आनन्द का अभाव

स्वर्ग में सब सुख है, किन्तु वहाँ सयमानुगामिनी निर्विकल्प समाधिजन्य शान्ति नहीं है। यह बात आज शातिसागर महाराज की आत्मा के अनुभव में आती होगी। आत्मोत्थ आनन्द की समता इन्द्रियजनित सुख कभी नहीं कर सकता है। एक आनन्द स्वाभाविकता की ज्योति धारण करता है और दूसरा इन्द्रियजनित सुख विभाव परिणतिरूप है। इस कारण सम्यग्दृष्टि लोग स्वर्ग के सुखों में भी अनासक्त रहते हैं। पचाध्यायी में लिखा है -

शक्रचक्रधरादीना केवल पुण्यशालिनाम् ।

तृष्णाबीजं रतिस्तेषां सुखावाप्तिः कुतस्तनी ॥

-महान् पुण्यशाली इद्र, चक्रवर्ती आदि का सुख तृष्णा का बीज है। उनके सच्चे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

भक्तों की आकांक्षा

आचार्यश्री की यमसमाधि के समय एक भक्त ने महाराज से कहा था - “आप देव, देवेन्द्र होंगे। वहाँ से यहाँ कभी आकर हम लोगों को अवश्य सबोधने की कृपा कीजिए।” इस प्रलाप को सुनकर महाराज चुप रहे थे। इस काल में स्वर्ग से कल्पवासी देव यहाँ नहीं आते हैं, ऐसा शास्त्र में कहा गया है, अतः आगम के प्रकाश में उक्त प्रार्थना वस्तुतः सारशून्य ही है।

पदचिह्न

एक बात और ध्यान देने की है कि वे अपना पावन उपदेश दे गए। अपनी जीवनी द्वारा श्रेष्ठ रत्नत्रय धर्म का पालन किस प्रकार हो सकता है, यह बता गए। बस, उनके पद-चिह्नों को देखकर जो जीव आगे बढ़ेगा, वह शान्ति, समृद्धि, वैभव के साथ शिवपुरी का नागरिक भी बन सकेगा। ससार के दुःखों से सत्रस्त भव्यात्माओं की वह वाणी चिरस्मरणीय है “बाबा नो! भीऊनका। आत्म चिंतन करो - वत्स! डर मत। आत्मा का चिंतन कर।”

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यश्री नेमिचंद्र के ये शब्द चारित्र्यचक्रवर्ती आचार्य शातिसागर महाराज सदृश उज्ज्वल आत्माओं में सुघटित होते हैं -

विविह-तव-रयण-भूसा णाणसुई सीलवत्थ-सोम्मंगा ।

जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छीय ॥५५५ - (त्रिलोकसार)

-जो विविध तप रत्न भूषण धारी, पवित्र ज्ञान वाले, शील रूप वस्त्र से सौम्य शरीर वाले होते हैं, सुरलक्ष्मी तथा सिद्धिलक्ष्मी भी उनके ही आधीन रहती है।

सल्लेखना का संक्षिप्त विवरण

आचार्य महाराज ने कुथलगिरि में १४ अगस्त रविवार को नियम-सल्लेखना का निश्चय व्यक्त किया था। उन्होंने यह सल्लेखना आठ दिन के लिए ली थी। ता. १७ दिन बुधवार को उन्होंने यम सल्लेखना रूप अपनी प्रतिज्ञा कर ली। उस दिन अमावस्या

थी। उमी दिन वे पहाड पर आ गए। वहाँ उन्होंने ता २० अगमन को केवल जल लिया था। ता २३ को पुन जल ग्रहण किया था। ता २४ को उन्होंने जल नहीं लिया। उन्होंने ता २५ में ता २८ पर्यन्त चार दिन लगातार जल लिया था। ता. २८ गविवार को ब्र धर्मप्या को क्षुल्लक दीक्षा दी। पञ्चात २९, ३०, ३१ तथा १ मितम्बर, इन चार दिनों में उन्होंने जल नहीं लिया। पञ्चात २, ३ तथा ४ तार्गख को उन्होंने जल लिया। वही उनका अन्तिम जलग्रहण का दिन था। उन्होंने गविवार १४ अगमन में आहार त्यागकर केवल जलग्रहण करने की छूट गृह्य थी। ४ मितम्बर का गविवार आया। उन दिन जल लेकर उन्होंने जल भी छोड़ दिया और एक गविवार को छोड़कर दूसरे गविवार को ८४ वर्ष में सुक्षित गरीर को भी छोड़कर स्वर्ग को प्रयाण किया था।

मृत्यु से छुट्ट की तैयारी

महागज का जीवन बड़ा व्यवस्थित और नियमित रहा है। यम-ममाधि के योग्य अपने मन को बनाने के लिए उन्होंने खूब तैयारी की थी। लोण्ड में जब आचार्य महागज फलटण आए, तब उन्होंने जीवन भर को अन्न का परित्याग किया था। कुथलगिरि पहुँचकर उन्होंने अधिक उपवास शुरू कर दिए थे। श्रावण वदी प्रथमा ने उन्होंने अवमौढ्य तप का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया था। महागज ने एक ग्राम पर्यन्त आहार को घटा दिया। वे कहने लगे - “यदि प्रति दिन दो ग्राम भी आहार लें, तो यह गरीर बहुत दिन चलेगा। यदि केवल दूध लेंगे तो यह गरीर वर्षों टिकेगा।”

पल्लेखना का मूल कारण

जब प्राणी मयम नहीं पाल सकता है, तब इस गरीर के रक्षण द्वारा अमयम का पोषण क्यों किया जाय? इस धारणा ने इस पुण्य भावना ने, उन माधुगज को यम-ममाधि की ओर उत्साहित किया था।

नस्तत्त्व निरूपण का रहस्य

— प्रश्न - “भेद विज्ञान ही तो सम्यक्त्व है, अत आत्मतत्त्व का ही विवेचन करना आचार्यों का कर्तव्य था, परन्तु अजीव आम्बर, बंधादि का विवेचन क्यों किया जाता है?”

उत्तर - आचार्यश्री ने इस प्रश्न का यह समाधान प्राप्त हुआ था, “रित की राजि में किमी का मोती गिर गया। वह गेत के प्रत्येक कण को देखता फिरता है। ममस्त वालुका का जोधन उसके लिए आवश्यक है, इसी प्रकार आत्मा का सम्यक्त्व रूप गत्त

खो गया है। उसके अन्वेषण के लिए अजीब, आस्रव, बधादि का परिज्ञान आवश्यक है। इस कारण सप्त तत्त्वों का निरूपण मध्यमत्वी के लिए हितकारी है।”

आत्मा का ध्यान

प्रश्न - “आप पाप कात कर रहे हैं - “आत्मा का ध्यान करो”, किन्तु यह कार्य बड़ा कठिन प्रतीत होता है। मैं शुद्ध, दृढ़, ज्ञायक स्वभाव, टकोत्कीर्ण रूप हूँ, यह कथन बार-बार कहते-कहते चुकवाणीवत् बन जाता है। अतः कैसे आत्मा का ध्यान किया जाय?”

उत्तर - “शरीर प्रमाण आत्मा है। उसके बाहर उसका सद्भाव ज्ञात नहीं होता है। सम्पूर्ण देह में आत्मा है। उसका चिंतन करो। आत्मा को बाहर मत भटकने दो। भीतर चिंतन करने में बाहर का विकल्प दूर हो जायगा। आत्मा का निर्विकल्प चिंतन थोड़े समय तक ही हो पाता है। प्रारम्भ में बाहर के पदार्थों का पता कुछ-कुछ चलता है, शब्दादि का बोध भी होता है, किन्तु पश्चात् तोष के छूटने पर भी उसका पता नहीं चलता है।” यह कथन अनुभवी ऋषिराज का है। अतः महत्त्वपूर्ण है।

आत्मा की खोज सरल है

तिल में तेलवत् इस शरीर में आत्मा व्याप्त है। अपनी आत्मा क्या अपने को नहीं मिलेगी? समुद्र में मछली की खोज कठिन है, किन्तु लोटे के पानी में वह पड़ी हो, तो उसे पाना सरल है, इसी प्रकार अपने शरीर में विद्यमान आत्मा की खोज भी सरल है। प्रतिदिन आत्मा का चिंतन करो। कम-से-कम दो घड़ी प्रमाण मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना इन नवकोटि से सावद्य दोष का त्याग करो।

आत्मध्यान से लाभ

इस ध्यान द्वारा गृहस्थ होते हुए भी तुम महान् निर्जरा करोगे। २४ घंटे में आधा घंटा, पन्द्रह मिनट आत्मा का ध्यान करो। इससे असख्यात गुणी निर्जरा होती है। इसके सिवाय भगवान् ने मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं कहा है।

पुरुषार्थ के लिए प्रेरक उदाहरण

महाराज ने यह उदाहरण दिया था - “एक राजा था। उसके बुढ़ापे में एक ही पुत्र हुआ। उसे बड़े लाड-प्यार से पाला। उसने खेलकूद में समय नष्ट कर दिया और कुछ भी विद्या नहीं सीखी। एक दिन गजाने दीक्षा ले ली और पुत्र को राजा बना दिया। अशिक्षित पुत्र राजा हो गया।

एक बार उम गज्य पर दूसरे गज्य का आक्रमण हो गया। उम समय एक पत्र ऐसा आया जिसे गजा के मित्राय दूसरे को पढ़ने की आज्ञा नहीं थी, अतः वह जम्गी पत्र इस नवीन गजा के पास लाया गया। निरक्षर होने के कारण उसे पाते ही इसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। उस समय मन का मताप दूर करने को चतुर मंत्री ने इनको बाहर चलने को कहा। वे बाहर भ्रमणार्थ गए। वहाँ देखा-पानी खींचने की कोमल गम्भी में कठोर काले पाषाण में गड्ढा हो गया है। इसी प्रकार उद्योग में अज्ञानी पुरुष ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। जैसे नरम डोरी से कठोर ज्योम पाषाण में गड्ढा पड़ गया। इससे प्रेरित हो उसने विद्या का अभ्यास किया। इसी प्रकार प्रयत्न द्वारा क्या मेरी आत्मा मुझे न मिलेगी? गजा को विद्या मद्दश प्रयत्नरत व्यक्ति में आत्मा का ध्यान भी बनेगा। पुनर्प्राप्ति ही सिद्धि पाता है।

जैसे विषयोपभोग की सामग्री हेतु गृहस्थ दिन-रात प्रयत्नरत रहता है इसी प्रकार धर्म के विषय में भी उद्योगी रहना चाहिए। विषयोपभोगी धर्मविमुख व्यक्ति ससार-सागर में डूबता है। आचार्य कहते हैं -

जह जीवो कुण्ड रडं पुत्तकलत्तेमु कामभोगेमु।
तह जड जिणिट धम्मे तो लीलाए मुह लहटि ॥

इस गाथा का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है -

जैसे रमणी विषय सुत ममता के आधार।
वैसा यदि जिनधर्म हो जीघ्र होय भव पार ॥

पावन-स्मृति

प्रातः स्मरणीय आचार्य महाराज तो स्वर्गीय निधि बन गए। अब पावन स्मृति मात्र शेष है। उनके पुण्य जीवन के सस्मरण बड़े मधुर, मार्मिक तथा शान्तिदायक हैं। हमने अपने स्मरणों के साथ अनेक धर्ममूर्ति मुनियों त्यागियों, श्रावकों आदि के स्मरणों का सकलन किया है। इन स्मरणों के माध्यम से उन महान् तपोमूर्ति गुरुदेव के जीवन की एक झलक प्राप्त होती है। इनके द्वारा मोहमलिन मन को विशुद्धता प्राप्त होती है।

कुंथलगिरि पर्यूषण

कुंथलगिरि में आचार्य जातिमागर महाराज के चातुर्मास में पर्यूषण पर्व पर ता

१२ सितम्बर सन् १९५३ से ता २६ सितम्बर सन् १९५३ तक रहने का पुण्य सौभाग्य मिला। उस समय आचार्यश्री ने ८३ वर्ष की वय में पचोपवास मोनपूर्वक किए थे। इसके पूर्व में भी दो बार पचोपवास हुए थे। करीब १८ दिन का मौन रहा था। भाद्रपद के माह भर दूध का भी त्याग था। पचरस छोड़े तो चालीस वर्ष हो गए। नेमिसागर मुनिराज ने भादो भर एक उपवास एक पारणा वाला क्रम रखा। आचार्यश्री ने जन्म भर को अन्न का त्याग कर दिया था।

घोर तप का करना

प्रश्न - “महाराज! घोर तपस्या करने का क्या कारण है?”

उत्तर - “हम समाधिमरण की तैयारी कर रहे हैं। सहसा आँख की ज्योति चली गई, तो हमें उसी समय समाधि की तैयारी करनी पड़ेगी। कारण, उस स्थिति में समिति नहीं बनेगी, अतः जीवरक्षा का कार्य नहीं बनेगा। हम तप उतना ही करते हैं, जितने में मन की शांति बनी रहे।”

निर्वाणभूमि का प्रभाव

प्रश्न - “महाराज! पाँच-पाँच उपवास करने से तो शरीर को कष्ट होता होगा?”

उत्तर - “हमें यहाँ पाँच उपवास एक उपवास सरीखे लगते हैं। यह निर्वाण-भूमि का प्रभाव है। निर्वाण-भूमि में तपस्या का कष्ट नहीं होता है। हम तो शक्ति देखकर ही तप करते हैं।”

मौन से लाभ

प्रश्न - “महाराज! मौन व्रत से आपको क्या लाभ पहुँचता है?”

उत्तर - “मौन करने से ससार से आधा सम्बन्ध छूट सा जाता है। सैकड़ों लोगों के मध्य घिरे रहने पर भी ऐसा लगता है, मानो हम अपनी कुटी में ही बैठे हो। उससे मन की शांति बहुत बढ़ती है। मन आत्मा के ध्यान की ओर जाता है। वचनालाप में कुछ-न-कुछ सत्य का अतिक्रमण भी होता ही है, मौन द्वारा सत्य का संरक्षण भी होता ही है। चित्तवृत्ति बाहरी पदार्थों की ओर नहीं दौड़ती है।”

लम्बे उपवासों के सम्बन्ध में महाराज का अनुभव

प्रश्न - “उपवास से क्या लाभ होता है? क्या उससे शरीर को त्रास नहीं होता है?”

उत्तर - “आहार का त्याग करने से शरीर को कष्ट क्यों नहीं होगा? लम्बे उपवासो के होने पर शरीर में शिथिलता आना स्वाभाविक बात है। फिर उपवास क्यों किया जाता है, यह पूछो तो उसका उत्तर यह है कि उपवास द्वारा मोह की मन्दता होती है। उपवास करने पर शरीर नहीं चलता। जब शरीर की सुधि नहीं रहती है, तो रुपया-पैसा, बाल-बच्चों की भी चिन्ता नहीं सताती है। उस समय मोह-भाव मन्द होता है, आत्मा की शक्ति जागृत होती है। अपने शरीर की जब चिन्ता छूटती है, तब दूसरों की क्या चिन्ता रहेगी?”

इस विषय के स्पष्टीकरणार्थ महाराज ने एक कथा सुनाई - “बन्दर का अपने बच्चे पर अधिक प्रेम रहता है। एक बार एक बेंदरिया का बच्चा मर गया, तो वह उस मृत बच्चे को छाती से चिपकाये रही। उस समय हमने देखा, कुछ बन्दरों ने जबरदस्ती उसके बच्चे को छीनकर नदी में डाल दिया था। बन्दर को पानी में तैरना नहीं आता है। यह हमने प्रत्यक्ष देखा है। इतना प्रेम मृत बालक पर बेंदरिया का था।”

दूसरी घटना महाराज ने बताई - “एक समय एक हौज में पानी भरा जा रहा था। एक बेंदरिया अपने बच्चे को कंधे पर रखकर उस हौज में थी। जैसे-जैसे पानी बढ़ता जाता था, वह गर्दन तक पानी आने के पूर्व बच्चे को कंधे पर रखकर बचाती रही, किन्तु जब जल की मात्रा बढ़ गई और स्वयं बेंदरिया डूबने लगी, तो उसने बच्चे को पैरों के नीचे दबाया और उस पर खड़ी हो गई, जिससे वह स्वयं न डूबने पावे। इतना ममत्व स्वयं के जीवन पर होता है। उस शरीर के प्रति मोह का भाव उपवास में छूटता है। यह क्या कम लाभ है?”

उपवास की मर्यादा

प्रश्न - “उपवासो में आपको आकुलता होती है या नहीं?”

उत्तर - “हम उतने ही उपवास करते हैं, जितने में मन की शांति बनी रहे, जिसमें मन की शांति भग हो, वह काम नहीं करना चाहिए।”

कष्ट में पंच परमेष्ठी का नाम-स्मरण

प्रश्न - “महाराज! एक ने पहले उपवास का लम्बा नियम ले लिया। उस समय उसे ज्ञान न था, कि वह उपवास मेरे लिए दुःखद हो जायगा। अब वह कष्टपूर्ण स्थिति में क्या करे?”

उत्तर - “व्रतादि के पालन करने पर जब कष्ट आवे, तो पंचपरमेष्ठी का लगातार

ही दूर ही जायगी और शांति मिलेगी।

प्रश्न - "महागज जो - कोई वा माचत है, नि सकल जल भनल मिदान्त में रखने वाला की कार्यवाही में आपने दूध का त्याग का दिया और लाने लाने उपवास लिये थे। इसमें क्या मत्प है?"

ममाधि की तैयारी

उत्तर - "हमने कहा दिया है कि उपवास का कारण ममाधि की तैयारी है। पोंडणकाण व्रत के कारण हमने भादों भर के लिए दूध रखा व सिवाय दूध का त्याग किया था। हमें मजद जल का जग भी विकल्प नहीं है। हम मन्ना भर का भी विकल्प नहीं है। अब तो हमें अपनी आत्मा का ही हवाला है। दुनिया भर की बातों का विचार करने में क्या प्रयोजन है? लिखने वाले गी को मजद पद के स्थान में तिर्यचो, नार्गिया को भी सजद लिखते हैं, तो भी हमें उसकी चिन्ता नहीं है। हम जो बतना चा, गो बत दिया, अब हम वा-वा हममें नहीं पड़ते है।"

प्रतिष्ठा ग्रंथों में बहुभाग लोप करना अयोग्य है:

पुन महागज ने कहा - "मजद जल न गाने में क्या मिदान्त का लोप हो गया? प्रतिष्ठा ग्रन्थ का वात सा भाग काट करके मचीन मनामीत ग्रन्थ के आधार पर प्रतिष्ठा का कार्य तुम्हारी तरफ किया जाता है। ग्रन्थ का ग्रन्थ काट डाला जाय, किन्तु तुम पंडित लोग इस विषय में अब तक क्यों चुप बैठे रहें? आश्चर्य है कि तीन अक्षर के न गये जाने पर तो दुनिया भर में हल्ला मचाया गया, किन्तु ग्रन्थ का ग्रन्थ काटकर प्रतिष्ठा जैसे महान कार्य की संप्राणता में क्षति पहुँचाते देखकर भी आप लोग चुप बैठे रहें?"

१. ममाधिमर्ण के भक्तप्रत्याख्यान नामक ग्रन्थ भेद क सम्बन्ध में मूलाराधना टीका में इस प्रकार वर्णन किया है-

"भक्तप्रत्याख्यान के १० वर्ष उत्कृष्ट कारा में पारल चार वर्ष तो विविध कायगतेषों का करे। आगे के चार वर्ष ग्मादित्याग द्वारा क्षीण का। आगे के दो वर्ष को आचाम्ना (काजी आहार) और निर्विकृति (रस, व्यजनादि गृहित भोजन) द्वारा वितार। एक वर्ष को आचाम्ना द्वारा व्यतीत करे। शेष छह माह को मध्यम तप द्वारा वितार। अंतिम छह माह को उत्कृष्ट तप द्वारा व्यतीत करे। (पृष्ठ ८७५)

इस कथन से यह ज्ञात हो जाता है कि आचार्य महागज कठोर समय-साधना में क्यों मलग रहने लगे थे।

महाराज ने कहा - “विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए।”

आत्मध्यान का अधिकारी

ध्यान के बारे में महाराज ने बड़े अनुभव की बात कही - “ऐसा आत्मा का ध्यान निकट ससारी जीव के ही होता है। जिसका भवभ्रमण अधिक शेष है, उससे ऐसा ध्यान नहीं बनेगा।”

जिनप्रभाव की महिमा

प्रश्न - जिन भगवान का नाम, भाव को बिना समझे भी जपने से क्या जीव के दुःख दूर होते हैं? यदि जिनेन्द्र गुणस्मरण से कष्टों का निवारण होता है, तो इसका क्या कारण है?

उत्तर - जिस प्रकार अग्नि के आने से नवनीत द्रवीभूत हो जाता है, उसी प्रकार वीतराग भगवान के नाम के प्रभाव से सकटों का समुदाय भी दूर होता है। जिनेन्द्र भगवान एक प्रकार से अग्नि हैं, क्योंकि उनके द्वारा कर्मों का दाह किया जाता है।

आचार्यश्री का समर्थन कल्याणमन्दिर के इस पद्य से होता है -

“आस्तां अचित्यमहिमा जिन संस्तवस्ते, नामापि पाति भवतो भवतो जगति।”

हे जिनेन्द्र! आपके स्तवन की महिमा अचित्य है। आपका नाम मात्र भी जगत् के जीवों का रक्षक है।

इस कारण अज प्राणी भी ‘णमो अरिहताण’ के जप द्वारा कल्याण को प्राप्त करता है। सुभग नाम के गोपाल ने ‘णमो अरिहताण’ की जाप मात्र से सुदर्शन सेठ के रूप में जन्म धारण कर मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रकार वीतराग भगवान के नाम में भी अचित्य और अपार शक्ति है।

पूजा में आह्वान आदि का रहस्य

प्रश्न - आचार्य परमेष्ठी या साधु परमेष्ठी के प्रत्यक्ष होते हुए उनका आह्वान आदि करना कैसे उचित होगा?

उत्तर - आह्वान आदि तन्दुल में नहीं किया जाता। पूजक अपने मन में उक्त आह्वान आदि करता है।

पाप का फल कष्ट

पाप के द्वारा ऊँचे आसन पर अधिष्ठित व्यक्ति भी अवर्णनीय कष्ट को भोगता है। इस विषय में महाराज ने दक्षिण के एक भट्टारक के बारे में यह बताया था कि हीन आचरण के कारण उनके शरीर में कीड़े पड़ गये थे। शरीर से असह्य दुर्गन्ध निकलती थी। मरने पर उस कमरे में घुसने की कोई हिम्मत नहीं करता था, जहाँ मृत शरीर पड़ा था। एक शीशी चन्दन का तेल वहाँ छिड़का गया। लोगो ने नाक में पट्टी बाँधी और अपने शरीर में चन्दन का तेल खूब लगाकर बड़ा साहस कर उम शरीर को बाहर निकाला था। पापोदय से ऐसी स्थिति होती है।

विदेह में द्रव्य मिथ्यात्व नहीं है

प्रश्न - विदेह में मिथ्याधर्म का मद्भाव नहीं कहा है, इसका क्या कारण है?

उत्तर - विदेह में द्रव्य मिथ्यात्व नहीं है। कारण, वहाँ विद्यमान तीर्थंकर द्वारा मोक्ष का सच्चा मार्ग बताया जाता है। वहाँ नित्य चतुर्थ काल रहता है, इसलिए जैसे काल परिवर्तन के कारण भरतादिक क्षेत्र में द्रव्य मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है, वैसे वहाँ नहीं होता। भरतादि क्षेत्र में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के परिवर्तनवश मिथ्याधर्मों का आविर्भाव और विलय हुआ करता है।

मार्मिक समाधान

प्रश्न - 'कूटलेखक्रिया' को किस प्रकार अतिचार कहा जायगा?

उत्तर - जैसे आजकल राजकीय कानून के प्रहार से बचने के लिए गृहस्थ देता है हजार रुपया, किन्तु रसीद लिखवाता है उससे अधिक की, ताकि कचहरी में मुकदमा करने में असल रकम आपत्ति से मुक्त रही आवे। व्रती गृहस्थ का भाव धन के अपहरण का नहीं है, किन्तु कार्य तद्रूप सा दिखता है, इससे इसे अतिचार कहा है। यदि वह गृहस्थ लेख के अनुसार असल से अधिक द्रव्य लेता है, तो वह अनाचार दोष हो जायगा।

प्रश्न - दर्शनविशुद्धि भावना युक्त क्षयोपशम सम्यक्त्वी और उससे रहित क्षायिक सम्यक्त्वी में कौन महान् है?

उत्तर - तीर्थंकर प्रकृति का बंध करनेवाला क्षयोपशम सम्यक्त्वी महान् है। कारण, वह स्वयं ससार समुद्र के पार जाते हुए अगणित प्राणियों को भी मोक्ष में पहुँचाता है।

प्रश्न - केवली भगवान के तेरहवें गुण-स्थान में योग का क्या कारण है?

उत्तर-चोगमी लाख उत्तम गुणों की पूर्णता न होने में कर्मों का आस्रव होता है।

दयापूर्ण दृष्टि

लोग महाराज को आहार देने में गड़बड़ी किया करते हैं, इस विषय में मैंने श्रावको को जब समझाया कि जिस घर में महाराज पड़गाहे जाँय, वहाँ दूसरों को बिना अनुज्ञा के नहीं जाना चाहिए, अन्यथा गड़बड़ी द्वारा दोष का सचय होता है। मैं लोगों को समझा रहा था, उस प्रसंग पर आचार्यश्री ने मार्मिक बात कही थी।

महाराज बोले - “यदि हम इस गड़बड़ी को बंद करना चाहे, तो एक दिन में सब ठीक हो सकता है। यदि एक घर के भोज्य पदार्थ का नियम ले लिया, तब क्या गड़बड़ी होगी? लोगों का मन न दुखे और हमारा काम हो जाय, हम ऐसा कार्य करते हैं।”

प्रमादी साधु की कथा

विपरीत परिस्थिति में भी क्षमा भाव न छोड़ना मुनि का धर्म है। इस प्रसंग में एक मुनि की बात महाराज ने बताई, जिनके हाथ में किसी मूढ़ स्त्री ने खौलती खीर डाल दी। उस खीर को उन्होंने उस स्त्री के ऊपर ही उछाल दिया, वह औरत चिल्ला उठी, तब उन मुनिराज ने कहा - “तूने हमारे हाथ में खौलती खीर डालते समय नहीं सोचा, इनका क्या हाल होगा?”

एक बार आचार्यश्री के हाथ में दक्षिण में उबलता दूध एक गृहस्थ ने डाला था, उससे वे मूर्च्छित हो गए थे, किन्तु उनमें जरा भी अशांति का आविर्भाव नहीं हुआ था। सचमुच में आचार्य शातिसागर महाराज का नाम सार्थक था।

वृद्धा की समाधि

कुथलगिरि में लोणद की करीब ६० वर्ष वाली बाई ने १६ उपवास किए थे, किन्तु १५ वें दिन प्रभात में विशुद्ध धर्मध्यान पूर्वक उसका शरीर तब हो गया।

महाराज ने उसके कुटुम्बियों से कहा था - “हम खातरी से (निश्चय से) कहते हैं, उस बाई ने देव पर्याय पाई। इतने उपवास से प्राप्त विशुद्धता और निर्वाण भूमि का योग सामान्य लाभ नहीं है। इसके विषय में तुम लोगों के शोक करने का क्या मतलब?”



आचार्यश्री की विशिष्ट मुद्रा

महाराज के थोड़े से प्रबोधपूर्ण शब्दों ने कुटुम्बियों का साग दुःख धो दिया था। पूज्यश्री की वाणी अपूर्व थी।

नेमिसागर महाराज का केशलोच

व्रतों के बाद कुवार वदी दशमी, शनिवार १७ अक्टूबर १९५३ को मुनि नेमिसागरजी का केशलोच हुआ। नेमिसागरजी का केशलोच बहुत जल्दी हो गया। उस समय मैंने पूछा - “महाराज! आपको केशों को उखाड़ते देखकर लोगों की आँखों में पानी आ जाता है, किन्तु आपके मुख पर तनिक भी विकृति नहीं आती, इसका क्या कारण है? क्या कष्ट नहीं होता?”

उत्तर में उन्होंने कहा - “हमें कोई कष्ट नहीं होता। केशलोच करते बहुत दिन बीत गए। इससे अभ्यास भी हो चुका है।”

उस समय आचार्य महाराज का मार्मिक भाषण हुआ था।

आचार्य महाराज का भाषण

अपने उपदेश में आचार्य महाराज ने कहा था - “भव्यो! यह जीव चतुर्गति ससार में परिभ्रमण करता चला आ रहा है। देवगति में कल्पवृक्षों द्वारा मनोवाञ्छित पदार्थ मिलते हैं। उपपाद शय्या में सुखपूर्वक जन्म होता है। परिपूर्ण आयु रहती है। बुढ़ापा नहीं होता, किन्तु उसमें बड़ा दोष यह है कि वह सुख अविनाशी नहीं है। नरक में जीव मार-मारी और वैर-भाव आदि के कारण दुःख पाता है। उसका वर्णन कोन कर सकता है? तिर्यच पर्याय में बैल, हाथी, भैंसा आदि प्राणी पराधीनता वश पीड़ा पाते हैं। बहुत से जीव भूख से मर जाते हैं। उनसे शक्ति से अधिक काम लिया जाता है, इससे उन्हें अपार वेदना होती है। उन जीवों में भय की मात्रा भी बहुत होती है। हरिण को व्याघ्र का भय रहता है। मेढक को सर्प मारता है। मछली को मछली मार कर खा जाती है। मनुष्य गति में भी स्थायी आनन्द नहीं मिलता। स्थिर सुख तो पाँचवीं गति मोक्ष में है। वहाँ पच इन्द्रिय बिना सुख कैसे? भूखे को अन्न देते हैं, किन्तु क्षुधा की वेदना नहीं है, तो पकवान से क्या प्रयोजन? जहाँ इन्द्रिय हैं, वहाँ उसे तृप्त करने का दुःख होता है। एक इन्द्रिय को तृप्त करते ही दूसरी इन्द्रिय का दुःख उपस्थित होता है। सिद्धों में असली सुख होता है। वैसा सुख दूसरी जगह नहीं। वहाँ जन्म-मरण नहीं है। होटल में भोजन के पैसे लेने के बाद स्थान नहीं मिलता है, ऐसे ही देवपर्याय तक में आयु पूर्ण होने के अनन्तर जीव को क्षण भर भी स्थल नहीं मिलता।

मनुष्य पर्याय के दुःख

मनुष्यो में भोजन, वस्त्र, मन्त्र, धन आदि का दुःख रहता है। श्राम्त को दसगुनी चिता रहती है। उसके शत्रु भाई बंधु तक बनते हैं। धन को सम्हालने का काम कष्ट नहीं होता।

मोक्षप्राप्ति के अनन्तर ही मन्त्रा सुख मिलता है। उस सुख के लिए क्या करना चाहिए? राजा माडलिक नरेश, चक्रवर्ती को राज्य की मालिकी का सुख है, किन्तु उनका शत्रु आयु कर्म है। इतना वैभव नवनिधि, १४ गन् छोड़कर जाना पड़ता है, इसका महान् दुःख है। आयु पूर्ण होने पर एक मिनट भी मन्त्रा अस्मभव है।

महा सुख

इस प्रकार विचारने पर नरक में दुःख, स्वर्ग में दुःख तिर्यच में दुःख मनुष्य में दुःख, चारों गतियों में दुःख ही दुःख है। खग सुख निड पर्याय में है।

मोक्ष का सुख कैसे मिलता है? आचार्य कहते हैं - सम्यक्दर्शन - ज्ञान - चारित्राणि मोक्षमार्ग। पहले मार्ग का वर्णन करना चाहिए। सम्यग्दर्शन जाने के लिए पहले उसके मार्ग का वर्णन करना चाहिए।

सम्यक्त्व

सम्यग् दर्शन क्या है? मिथ्यात्व क्या है? यह जानना चाहिए। महागज ने कहा - “कौन मिथ्यात्वी है? हाथ उठाओ।” उन्होंने पुन कहा, “सम्यक्त्वी कौन है - हाथ उठाओ।” इस पर सन्नाटा छा गया। महागज के मुखमंडल पर मधुर स्मित आ गया। वे बोले “केवली भगवान, अवधिजानी, मन पर्ययजानी जानते हैं कि कौन सम्यक्त्वी है।” पंचाध्यायी में कहा है, “सम्यक्त्व वस्तुतः सूक्ष्मं, अस्ति वाचामगोचरं” - “सम्यक्त्व यथार्थ में सूक्ष्म गुण है। वह वाणी के अगोचर है। वह केवली मन पर्ययजानी, अवधिजानी के ज्ञानगोचर है। जो दूसरे के सम्यक्त्वी होने का प्रमाण पत्र देता है, वह मिथ्या प्रलाप करता है। पद्मपुराण में कहा है “सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि सुदुर्लभं” - सम्यक्त्व-रत्न साम्राज्य-प्राप्ति से भी सुदुर्लभ है।

मोक्षपाहुड में कुंदकुद स्वामी ने कहा है -

हिसारहिए धम्मे अट्टारहणेसवजिए देवे।

णिगंथे पव्वयणे सहहणं होटि सम्मत्तं ॥

- अहिंसा रूप धर्म, अठारह दोष रहित देव तथा निर्ग्रन्थ वाणी मे श्रद्धा
सम्यक्त्व है।

✓ उपाय

“उस सम्यक्त्व का उपाय क्या है? प्रशम, सवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य ये
चार गुण सम्यक्त्वी के है। कषाय का उपशात होना प्रशम है। उसका क्षय १२ वे गुणस्थान
मे होता है। केवलज्ञान होने पर कषाय नष्ट हो जाता है। कषाय रूप अग्नि यदि कर्मशत्रु
पर लगा दी जाय, तो आत्मा का कल्याण हो जाय।”

✓ सवेग

उन्होंने कहा - “अग्नि पर राख डालने पर वह घात नहीं करती। इसी प्रकार
कषायो के उपशम होने पर होता है।” प्रसगवश महाराज ने कुथलगिरि दिवगत लोणद
की बाई का उल्लेख करते हुए कहा, “वह भोली सौम्य, सरल बाई थी। ‘फार चागली
होती’ - १६ दिन के पूर्व वह मर गई। क्या तुम नहीं मरोगे? यह अनित्य भावना सदा
करना चाहिए। इसे सवेग गुण कहा है।”

✓ अनुकम्पा

अनुकम्पा मे एक इन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक पर दया की जाती है। किसी जीव
को दुख नहीं देना चाहिए। खरा करुणाभाव मनुष्य पर्याय में होता है। तिर्यचो मे करुणा
नहीं होती। वहाँ जीव जीव को खाता है। नरक में करुणा कहाँ है? देवो मे हिंसा का
सम्बन्ध नहीं है, इसलिए वहाँ जीव-दया का प्रश्न नहीं उठता। यह स्मरण रखना चाहिए
कि ऋण, हत्या और बैर कभी नहीं छूटते, इसलिए बैर-विरोध छोड अनुकम्पा धारण
करनी चाहिए।

✓ आस्तिक्य

आस्तिक्य नाम का गुण महान् कठिन है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे प्रगाढ़
श्रद्धा होना उसका स्वरूप है।

प्रसङ्गवश महाराज ने कहा - “दशाध्याय सूत्र में द्वादशांग का सार भरा है।
गणधरदेव १२ सभा मे स्थित जनता को धर्म बताते थे। कुदकुदस्वामी ने कहा है-
“जिसके भेद-विज्ञान है, उसे सम्यक्त्वी जानना चाहिए। प्रत्येक शरीर मे आत्मा पृथक्
है। भाव मिथ्यात्व के कारण जीव अजीव को एक मानता है। जडवस्तु आत्मा से अन्य
है। दोनो को एक बोलना मिथ्यात्व है।”

महाराज ने कहा - “प्रथमानुयोग मे बताया है, पहले राजाओ की दीक्षा होती थी। आज गरीब ने दीक्षा ली, तो सोचा जाता है कि उसका पेट नहीं भरता होगा। कालदोष से साधु की उत्पत्ति का मूल्य नहीं है। दिगम्बर अवस्था मोक्ष नहीं है। यह मोक्ष का निमित्त है। मिट्टी से घड़ा बनता है, कुम्भकार निमित्त है। अग्नि सस्कार भी आवश्यक निमित्त है। इसी प्रकार दिगम्बर पर्याय निमित्त है। इसके बिना केवलज्ञान नहीं है।”

भेद विज्ञान

“भेद विज्ञान बिना सम्यक्त्व नहीं होता। आत्मा का अनुभव होने पर अन्तर्मुहूर्त मे कोटि वर्ष पर्यन्त की गई तपस्या से अधिक निर्जरा होती है। आत्मा को कर्मों का निग्रह करना चाहिए।”

गृहस्थ का कर्तव्य

गृहस्थ क्या करे? प्रतिदिन आत्मा का चिन्तन करो। कम से कम दो घड़ी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से सावद्य दोष का परित्याग करो। इस शरीर मे तिल मे तैलवत् सर्वत्र आत्मा है। कौनसा भाग खाली है? राजपुत्र द्वारा विद्या-प्राप्ति के लिए किये गये उद्योग सदृश पहले आत्मा का ध्यान करो। इसमे मुनि की मुद्रा अन्तिम वेष है। आरम्भ, मोह, कषाय के क्षयार्थ यह वेष आवश्यक है। जो इस मुद्रा को धारण नहीं कर सकते, वे गृहस्थ होते हुए आत्मा का ध्यान कर निर्जरा करते हैं। चौबीस घन्टे मे कम-से-कम पन्द्रह मिनिट पर्यन्त आत्मा का ध्यान करो। इससे असख्यात गुणी निर्जरा होती है। इस आत्मा का ध्यान न करने से तुम अनत ससार मे फिरते रहे इसके सिवाय मोक्ष का दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा भगवान ने कहा है। इससे अविनाशी, सुखपूर्ण, मोक्ष की प्राप्ति के लिए आत्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिए।

१७ अक्टूबर, १९५३, कुवार बदी दशमी - शनिवार

मैने महाराज को समाचार सुनाया - “महाराज! सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर के पैर की हड्डी टूट गई थी। आपरेशन के उपरान्त उस हड्डी की जगह प्लास्टिक का उपयोग किया गया है।”

महाराज ने कहा - “सचमुच मे आज के जगत् मे अद्भुत वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं।” कुछ क्षण के अनन्तर अत्यन्त गम्भीर मुद्रा मे सहसा उनके मुँह से ये शब्द निकल पडे - “लेकिन जरा दियासलाई लगते ही वह प्लास्टिक भस्मीभूत होता जाता

मन्त्र मध्यन्धी चर्चा

प्रश्न - हा ही हं हं हं हं हं हं ' गन्धी का क्या भाव है ?

उत्तर - ये ७ दिशाओं के भुजियों के बानर मन्त्र है ।

उपयोगी मन्त्र - "ॐ अगत-मिद-माधुभ्यो नमः" - ३७ अक्षरों का मन्त्र है अपने में मान फल होता है, उतना फल छोटे मन्त्र की अपेक्षा आप द्वारा सम्पन्न होगा ।

महाराज ने कहा - "हमने धर्ममकट आने पर ही उमरकान में सेवा लागू आप किया था, अपने स्वाम्य लाभार्थ हमने कभी भी आप नहीं किया ।"

इस वर्ष हमने महाराज में विनोदता देखा । उनकी दृष्टि में अर्चन परीक्षण था । महाराज का हृदय वैराग्य और म्योन्मुखता में अधिक आतपीत हो गया था ।

महाराज के जाप का मन्त्र

मन्त्र - (१) ॐ हा ही हं हं हं हं हं हं अ मि आ उ मा मागनीग्वामी धर्ममकटनिवाणाय मिदाशिपतय न्वाहा ।

(२) ॐ अगत मिद माधुभ्यो नमः ।

प्रश्न - महाराज इस मान् तपस्या में गरीब का कष्ट होता है या नहीं ?

उत्तर - (उम समय महाराज का मोन था - पाँच दिन का उपवास भी था, इसलिए उन्होंने सकल द्वारा अपने हृदय की ओर हाथ दिखाते हुए या मृचित किया - "आत्मा की शक्ति पर भरोसा है ।") मैं यही शब्द कहते, तो महाराज ने मिर हिला का इसका समर्थन किया । लोगों के बहुत पत्र आते थे । सब उन्हें नमोस्तु लिखते थे । एक दिन उन्होंने ममुदाय रूप यह आदेश हमें दे दिया - "जो हमें नमस्कार लिखे उसे हमारा आशीर्वाद लिख दो ।"

पाँच उपवास के समय मोन की स्थिति में महाराज को मास्टर गो वा बीडकर मधुर स्वर में आध्यात्मिक पद सुना रहे थे । हमने समन्तभद्राचार्य का "सुश्रद्धा " वाला श्लोक सार्थ सुनाया । उस समय उनके मुखमंडल पर आनन्द की ज्योति जग गई ।

मौनवृत्ति

एक दिन महाराज ने कहा था - “पहले सोचा था तुम यहाँ ब्रतों में आवोगे, इससे मौन नहीं लेना चाहिए, पञ्चात् आत्मा की प्रवृत्ति उम ओर हो गई, इसमें मौन ले लिया था।” फिर कहने लगे - “लोगों के साथ वचनालाप करने में माग क्या है? जिनके कान पर शब्द पड़ते हैं, उनके हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं दिखता है। हमारा विचार ता आगे भी ऐसा ही मौन धारण का होता है।”

ईर्यासमिति का भाव

१६ सितम्बर १९५३ भादो सुदी ८ की बात थी। नेमिसागर महागज पहाड़ पर जा रहे थे। मैंने पूछा - महाराज! आप लम्बा प्रवास करते समय कैसे ईर्यासमिति का पालन कर सकते हैं? उत्तर में उन्होंने बताया - “हम एक घन्टे में तीन मील चलते हैं। मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध में चर्चा जाकर सिद्धाग्रह निमित्त हम चले थे। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त सामायिक का काल छोड़कर १० घन्टे चलते थे। उपवास था इससे ३० मील तक चले गये थे।”

ईर्यासमिति का भाव स्पष्ट करने के लिए उन्होंने पर्वत पर बिना रुके हुए चढ़कर बताया, जिससे यह ज्ञात होता था कि शिखरजी की पहाड़ी पर इन साधुओं को जाते हुए, अल्पकाल में जीवरक्षा होते हुए, लम्बा विहार कैसे होता था? असल बात यह है कि ये आत्मयोगी साधु चलते समय बीच में विश्राम लेना या रुकना नहीं जानते। इससे समय वचता है और अधिक यात्रा होती है।

वास्तुशास्त्र-निपुण

पर्वत पर एक शांति कुटीर बनी। उसके निर्माण के समय बड़े-बड़े कान्ट्रेक्टरों से महाराज की जो बात होती थी उससे स्पष्ट होता था कि वे वास्तुशास्त्र में भी पूर्ण प्रवीण हैं।

अद्भुत तेज-सम्पन्न शरीर

भादो सुदी नवमी को महाराज शास्त्र सभा में से बीच में ही कुछ काल के लिए उठ गए। उनके सिवाय सभी पुरुष तथा महिला मण्डली शास्त्र में बैठी थी, किन्तु ऐसा लगा कि मानो वहाँ विपुल तेज वाली आत्मा नहीं है। इससे मन में सूनापन-सा लगता था। थियॉसोफी (Theosophy) वाले जिसे ओजशक्ति (Aura) कहते हैं, वह महाराज की गजब की वृद्धिगत मालूम पड़ती है।

ज्ञान सत्ता का दोष

देश के वर्तमान अनेक वातावरण पर महाराज ने कहा - "इसमें मुख्य दोष प्रजा का नहीं, ज्ञानसत्ता का है। गांधीजी ने मनुष्य सामान्य पर दया के द्वारा लोक में चर और सफलता प्राप्त की और जगत को नवित कर दिया। इससे तो धर्म का गुण दिखाई देता है। यह दया यदि जीव मात्र पर ही जाय तो उमर में मनुष्य फल अमर्यादित हो जायगा। आज जो सरकार जीवों के घात में लग गयी है, यह अमंगल रूप कार्य है।"

शुभ चिह्न

एक दिन महाराज कहने लगे - "दिन को न सोना शुभ चिह्न है। सचपति गेंदनमल का हमारा करीब ३० वर्ष का परिचय है। वे कभी भी दिन का नहीं सोते, चाहे रात को कितने ही जगे हों।"

जन्मांतर का अभ्यास

महाराज ने कुन्थलगिरि के मन्दिर में भगवान के समीप में सचपति सेठ गेंदनमलजी के समक्ष हमसे कहा था कि हमें ऐसा लगता है - "इस भव के पूर्व में भी हमने जिनमुद्रा धारण की होगी।"

हमने पूछा - “आपके इम कथन का क्या आधार है?”

उत्तर - “हमारे पास दीक्षा लेने पर पहले मूलाचार ग्रन्थ नहीं था, किन्तु फिर भी हम अपने अनुभव में जिस प्रकार प्रवृत्ति करते थे, उसका समर्थन हमें शास्त्र में मिलता था - ऐसा ही अनेक बातों में होता था। इससे हमें ऐसा लगता है कि हम दो तीन भवपूर्व अवश्य मुनि रहे होंगे।”

गृहस्थ जीवन की चर्चा

अपने विषय में पूज्यश्री ने कहा - “हम अपनी दूकान में ५ वर्ष बैठे। कोई आकर यठि अनाज वगैरह ले जाता था तो हम उसे नहीं रोकते थे। हम तो घर के स्वामी के बदले में बाड़ी-वाहरी आदमी की तरह रहते थे।”

दुर्ध्यानो का अभाव

उनके ये शब्द बड़े अलौकिक हैं - जीवन में हमारे कभी भी आर्तध्यान रौद्रध्यान नहीं हुए। घर में रहते हुए भी हम सदा उदास भाव से रहते थे। हानि, लाभ, इष्टविशेष, अनिष्टसंयोग आदि के प्रसंग आने पर भी हमारे परिणामों में कभी क्लेश नहीं हुआ।

साधुत्व की तैयारी

हम घर में ५ वर्ष पर्यन्त एकासन और ५ वर्ष पर्यन्त धारणा पारणा अर्थात् एक उपवास, एक आहार करते रहे।

मित्र का चरित्र

रुद्रप्पा नामक मित्र के बारे में उन्होंने बताया - “वह श्रीमत का पुत्र था। वह अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके घर में चुपचाप बैठा करता था। वह और किसी से भी बात नहीं करता था। हम से बात करता था और हम पर बड़ा स्नेह करता था। वह पक्का सत्यभाषी था।”

अपना स्वभाव

महाराज ने अपने विषय में कहा - “हम कहते थे तो बिना दस्तखत कराए लोग हजारों रुपया दे देते थे। हमारा कभी भी किसी से झगडा नहीं होता था। हम कर्म भी दूसरे की निंदा के काम में नहीं पड़े। पिता की मृत्यु के बाद शीघ्र ही हमने दीक्षा ली थी। ५ वर्ष पर्यन्त हमने केवल दूध और चावल लिया था।” महाराज ने यह भी बताया - “पहले मुनि लोग अपने साथ बस्त्र रखते थे।”

निमित्त कारण भी बलवान है -

महाराज ने कहा था - “निमित्त कारण भी बलवान है। सूर्य का प्रकाश मोक्षमार्ग में निमित्त है। यदि सूर्य का प्रकाश न हो तो मोक्षमार्ग ही न रहे। प्रकाश के अभाव में मुनियों का विहार आहार आदि कैसे होंगे?” उन्होंने कहा - “कुम्भकार के बिना केवल मिट्टी से घट नहीं बनता। इसके पश्चात् उसका अग्निपाक भी आवश्यक है।”

आत्मचिंतन द्वारा निर्जरा

सन् १९५४ के पर्यूपण में फलटण में महाराज ने अपने उपदेश में कहा - “पाँच से पंद्रह मिनट पर्यन्त आत्मचिंतन करो। इससे निर्जरा होती है। इससे सम्यक्त्व होगा। दान पूजा में पुण्य होता है। जन्म पर्यन्त आत्मा का चिंतन करो।”

शास्त्रदान की प्रेरणा

महाराज कहा करते थे - “शास्त्रदान करो। इसमें बड़ी शक्ति है। शास्त्रदान से केवली होता है। शास्त्र के व्यापार से ज्ञानावरण का वध होता है। शास्त्र के शब्द अंजन चोर के कान में पड़े थे। उससे उसकी सद्गति हुई। शास्त्र के द्वारा सब जीवों का हित होता है।

मार्मिक विनोद

आचार्यश्री सदा गंभीर ही नहीं रहते थे। उनमें विनोद भी था, जो आत्मा को उन्नत बनने की प्रेरणा देता था। कुथलगिरि में अध्यापक श्री गो वा वीडकर ने एक पद्य बनाया और मधुर स्वर में गुरुदेव को सुनाया। उस गीत की पक्ति थी। “ओ नींद लेने वाले, तुम जल्द जाग जाना।” उसे सुनकर महाराज बोले - “तुम स्वयं सोते हो और दूसरों को जगाते हो।” ‘बगल में बच्चा, गाँव में टेर’ - कितनी अद्भुत बात है। यह कहकर वे हँसने लगे।

चातुर्मास के पश्चात् विहार करते समय

सन् १९५३ में कुथलगिरि में चातुर्मास के उपरान्त महाराज का एकदम प्रस्थान हो गया। उनके मन की बात को साथ के मुनि नेमिसागर महाराज भी नहीं जानते थे। आचार्यश्री ने एकदिन कहा था - “हम किसी की नहीं सुनते हैं। हमारा अंतःकरण जैसा कहता है, वैसा हम करते हैं।” सचमुच में लोकोत्तर पुरुषों की अंतरात्मा (inner voice) जो कहती है, तदनुसार उनकी प्रवृत्ति होती है। पुण्य जीवन होने के कारण उनकी पवित्र आत्मा के द्वारा सदा सम्यक् पथ-प्रदर्शन होता है। जाते-जाते वे बोले -

“आम्हीं जात नाही पुन येये यऊ। मी हे स्थान पमट केन आहे” - “मैं नहीं जा रहा हूँ। पुन यहाँ आऊगा। मुझे यह स्थान पमन्ट आ गया है।” अपन जाने का काण मुनिनाथ ने कहा - “मुनि एक स्थान पर निगन्त नहीं रहते। स्थानान्तर में जाना जर्म है।”

नदी प्रवाह मट्टश

इम प्रमग में मुनि नेमिमाग महागज ने कहा - “जिम प्रकार नदी का प्रवाह एक जगह स्थिर नहीं रहता है, उमी प्रकार मुनियों का भी मतत विहाग होता रहता है।” इस पर एक चतुर भक्त ने कहा- “महागज! आप नदी हैं कहाँ? आप तो सागर हैं। सागर तो एक जगह रहता है।” यह बात सुनते ही आचार्यश्री के मुखमडल पर मधुर स्मित की आभा आ गई। उन्होंने कहा- “हम जीव फि यहाँ आवेंगे।” उनकी वाणी पूर्ण सत्य रही।

आत्मभवन का निर्माता

आचार्यश्री के पास बैठनेवाले छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों को विशेष स्फूर्ति प्राप्त होती थी। जब महाराज मौन से बैठते थे, तब भी उनके समीप रहने से मन को प्रसन्नता प्राप्त होती थी। महागज बोलते कम थे, किन्तु जो शब्द निकलते थे, वे नपे तुले रहा करते थे।

एक दिन कुथलगिरि की धर्मशाला में एक जगह ब्र भरमप्पा सीमेंट लगाने में तन्मय थे। एक व्यक्ति बोला - “महाराज! भरमप्पा गौड़ी - कारीगर है।” दूसरा कहने लगा - “महाराज को अच्छा न लगेगा, ऐसी बात मत कहो।” वीडकर जी ने कहा “महाराज! आपके सत्सङ्ग से भरमप्पा आत्ममंदिर की इमारत बनाने का उद्योग कर रहा है। इससे वह कारीगर तो है ही।” महाराज हँस पड़े। वास्तव में महाराज ने ब्र जी को क्षुल्लक दीक्षा देकर अन्त में आत्मभवन का शिल्पी बना दिया था।

गुरुदेव की हम पर कृपा

कुथलगिरि में सल्लेखना धारण करने के कुछ दिन पूर्व पूज्यश्री ने हमारी याद की थी और लोगों से कहा था - “ज्यां ठिकाने आमचा चातुर्मास होतो, त्या ठिकाण चा एक ही भाद्रपद चुकीत नाहीत” - जिस स्थान पर हमारा चातुर्मास होता है, वहाँ एक भी भाद्रमास में आने में यह नहीं चूका है।” उनका विश्वास था कि मैं भाद्रपद में उनके समीप ही पर्यूषण व्यतीत करूँगा, किन्तु पर्यूषण के तीन दिन पूर्व ही वे महर्षि स्वर्गीय निधि वन गए। सबका सौभाग्यसूर्य अस्तगत हो गया।

जीर्णोद्धार की प्रशंसा

एक धार्मिक व्यक्ति ने पाँच मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। उसके बारे में आचार्यश्री कहने लगे - “जिनमन्दिर का काम करके इसने अगले भव के लिए अपना सुन्दर भवन अभी से बना लिया है।”

जीव बन्ध तथा मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ है

आचार्यश्री किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए बड़े सुन्दर दृष्टांत देते थे। एक समय वे कहने लगे - “यह जीव अपने हाथ से सकटमय ससार का निर्माण करता है। यदि यह समझदारी से काम ले, तो उस ससार को शीघ्र समाप्त भी स्वयं कर सकता है। एक बार चार मित्र देशाटन को निकले। रात्रि का समय जंगल में व्यतीत करना पड़ा। प्रत्येक व्यक्ति को तीन-तीन घंटे पहरें देने को बाँट दिये गए। प्रारम्भ के तीन घंटे उसके भाग में आए, जो बढई का काम करने में प्रवीण था। समय व्यतीत करने को बढई ने लकड़ी का टुकड़ा काटा और एक शेर की मूर्ति बना दी। दूसरा व्यक्ति चित्रकला में निपुण था। उसने उस मूर्ति को सुन्दरतापूर्वक रंग दिया, जिससे वह असली शेर सरीखा जँचने लगा। तीसरा साथी मन्त्रवेत्ता था। उसने उस शेर में मन्त्र द्वारा प्राण संचार का उद्योग किया। शेर के शरीर में हलन-चलन होते देख मात्रिक झाड़ पर चढ़ गया। उसके पश्चात् तीनों साथी भी वृक्ष पर चढ़ गए। शेर ने अपना रौद्ररूप दिखाना प्रारम्भ किया। चौथा साथी बड़ा बुद्धिमान तथा तार्त्रिक था। उसने अपने मित्रों से सारी सकट की कथा का रहस्य जान लिया। उसने मात्रिक मित्र से कहा - “डरने की कोई बात नहीं है। तुमने ही तो काष्ठ के शरीर में अपने मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा की थी। तुम अपनी शक्ति को वापिस खींच लो, तब जडरूप व्याघ्र क्या करेगा?” मात्रिक ने वैसा ही किया। व्याघ्र पुनः जडरूप हो गया।

“इस दृष्टान्त का भाव यह है कि जीव स्वयं रागद्वेष द्वारा सकट रूप शेर के शरीर में प्राणप्रतिष्ठा करता है। यह चाहे तो रागद्वेष को दूर करके कर्मरूपी शेर को समाप्त भी कर सकता है। रागद्वेष के नष्ट होने पर कर्म क्या कर सकते हैं? रागद्वेष के नष्ट होते ही शीघ्र ससार-भ्रमण दूर होकर जीव मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त करता है।”

कथा द्वारा शिक्षा

आचार्य महाराज बड़वानी की वदनार्थ विहार कर रहे थे। साथ में तीन सम्पन्न गुरुभक्त तरुण भी थे। वे बहुत विनोदशील थे। उन तीनों को विनोद में तत्पर देखकर

आचार्यश्री ने एक शिक्षाप्रद कथा कही -

“एक बड़ी नदी थी। उसमें नाव चलती थी। उम नौका में एक ऊँट मवार हो गया। एक तमाशेवाले का बन्दर भी उसमें बैठे था। इतने में एक बनिया अपने पुत्र सहित नाव में बैठने को आया। चतुर धीवर ने कहा - “इस समय नौका में तुम्हारे लडके को स्थान नहीं दे सकते। यह बालक उपद्रव कर बैठेगा, तो गडबडी हो जायगी।”

“व्यापारी ने मल्लाह को समझा-बुझाकर नाव में स्थान जमा लिया। नौका चलने लगी। कुछ देर बाद बालक का विनोदी मन न माना। उसने बंदर को एक लकड़ी से छेड़ दिया। चंचल बंदर उछलकर ऊँट की गर्दन पर चढ़ गया। ऊँट के घबड़ाने से नौका उलट पडी और सबके सब नदी में गिर पड़े।” ऐसी ही दशा विना विचारकर प्रवृत्ति करने वालों की होती है। अधिक गप्पो में और विनोद में लगोगे, तो उक्त कथा के समान कष्ट होगा। गुरुदेव का भाव यह था कि जीवन को विनोद में ही व्यतीत मत करो। जीवन का लक्ष्य उच्च और उज्ज्वल कार्य करना है।

त्याग की प्रेरणा

आचार्य महाराज सन् १९२४ के लगभग अकलूज में पधारे थे। वहाँ एक सम्पन्न, धार्मिक तथा प्रभावशाली जैन बधु थे। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति देखकर महाराज ने कहा - “पहले राजा लोग दीक्षा लेते थे। उनका अनुकरण जनता किया करती थी। आज तुम्हारे सरीखे श्रीमत लोग यदि दीक्षा ले, तो दूसरे पुरुष भी तुम्हारी त्याग वृत्ति का अनुकरण करेंगे।”

वे जैन भाई कहने लगे - “महाराज! मेरा ध्येय दूसरा है। मैं धन कमाना और दान देना अपना कर्तव्य मानता हूँ।”

महाराज - “अरे भाई! कीचड़ में गिरना और गंगा स्नान करना, चोरी करना और दानशाला का संचालन करने से क्या लाभ? दीक्षा लेकर नरभव को सफल करना चाहिए।”

सुलझी हुई मनोवृत्ति

एक समय एक महिला ने भूल से आचार्य महाराज को आहार में वह वस्तु दे दी, जिसका उन्होंने त्याग कर दिया था। उस पदार्थ का स्वाद आते ही वे अतराय मानकर आहार लेना बन्दकर चुपचाप बैठ गए। उसके पश्चात् उन्होंने पाँच दिन का

उपवास किया और कठोर प्रायश्चित्त भी लिया। यह देखकर वह महिला महाराज के पास आकर रोने लगी कि मेरी भूल के कारण आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा।

महाराज ने उस बहिन को बड़े शान्त भाव से समझाते हुए कहा - “तू क्यों खेद करती है। मेरे अन्तराय का उदय आने से ऐसा हुआ है। तूने तो, यदि यथार्थ में देखा जाय तो मेरा उपकार किया है। तेरे कारण ही मुझे इस शान्ति तथा आनन्दप्रदाता व्रत लेने का सुअवसर मिला। व्रत में कष्ट नहीं होता, आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है।”

यथार्थ में आचार्य महाराज निसर्गसिद्ध (Born Saint) साधु रहे हैं। जिस तपस्या को देखकर लोग घबड़ाते थे, उससे उनके मन को शांति और आत्मा को बल प्राप्त होता था। आचार्यश्री अपनी शक्ति के भीतर ही तप करते थे, जिससे सकलेश-भाव की प्राप्ति न हो।

त्याग और स्वावलम्बन

समाज में त्याग के क्षेत्र में अद्भुत प्रवृत्ति है। बहुत से ऐसे भी त्यागी मिलते हैं, जो एक भी प्रतिमा रूप व्रत नहीं लेते हैं; किन्तु भोली समाज के बीच बड़े त्यागी के नामसे पूजा-प्रतिष्ठा का रसास्वादन करते हैं। शरीर में शक्ति सामर्थ्य रहते हुए भी हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं और समाज द्वारा भरण-पोषण की अपेक्षा करते हैं।

सप्तम प्रतिमा वाला सच्चाई से व्यापार कर सकता है

आचार्य महाराज ने एक गृहस्थ को सातवीं प्रतिमा के व्रत दिये। वह व्यापारी था। महाराज ने उससे कहा - “तुम व्यापार कर सकते हो। न्यायपूर्वक और सत्य रीति से तुमको व्यापार करना चाहिए।” इससे उन लोगों को प्रकाश मिल सकता है, जो नैष्ठिक बनने के पूर्व ही त्यागी-उदासीन का रूप धारण कर स्वावलम्बन की प्रवृत्ति से विमुख हो जाया करते हैं।

मौलिक विचार

महाराज के विचारों में मौलिकता रहती थी, उनकी अनेक विषयों में दक्षता देख कर आश्चर्य होता था। वास्तव में बात यह है कि जैसे उनका चरित्र अपूर्व था, उसी प्रकार उनका क्षयोपशम भी असाधारण रहा है। भारत के कोने-कोने से आगत हजारों व्यक्तियों के नाम आदि उनको ऐसे ही याद रहते थे, जैसे किसी बुद्धिमान तरुण को सब बातें याद रहती हैं।

अद्भुत स्मृति

महाराज ने मुझसे कहा था - “जिस चीज को हम एक बार ध्यान से देख लेते हैं, उसे नहीं भूलते हैं।” जब हम महाराज की जन्मभूमि भोज में पहुँचे थे और इनके विषय में परिचायक सामग्री का संग्रह कर रहे थे, तब यह ज्ञात हुआ था कि महागज बाल्यकाल से ही असाधारण स्मृति शक्ति समन्वित रहे हैं। उनकी प्रतिभा शास्त्राभ्यास, धारणा शक्ति आदि के कारण देश के बड़े से बड़े शास्त्रज्ञ तथा लोकविद्या के निष्णात लोग उन साधुराज के पास से ज्ञान सवर्धक सामग्री का सचय करते थे। उनकी तर्कशक्ति भी महान् थी। श्रेष्ठ कानूनवेत्ता भी उनकी तर्कशक्ति को प्रणाम किए बिना नहीं रहता था।

बाल विवाह प्रतिबंधक कानून के प्रेरक

भारत सरकार के द्वारा बाल-विवाह कानून-निर्माण के बहुत समय पहले ही आचार्य महाराज की दृष्टि उस ओर गई थी। उनके ही प्रताप से कोल्हापुर राज्य में सर्व प्रथम बाल विवाह प्रतिबंधक कानून बना दिया था। इसकी मनोरंजक कथा इस प्रकार है। कोल्हापुर के दीवान श्री लड्डे दिगम्बर जैन भाई थे। लड्डे की बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा महाराष्ट्र प्रान्त में व्याप्त थी। वहाँ आचार्यश्री विराजमान थे। दीवान बहादुर श्री लड्डे प्रतिदिन सायंकाल के समय महाराज के दर्शनार्थ आया करते थे। एक दिन लड्डे महाशय ने आकर आचार्यश्री के चरणों में प्रणाम किया। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा - “तुमने पूर्व में पुण्य किया है, जिससे तुम इस राज्य के दीवान बने हो और दूसरे राज्यों में तुम्हारी बात का मान है। मेरा तुम से कोई काम नहीं है। एक बात है, जिसके द्वारा तुम लोगो का कल्याण करा सकते हो। कारण, कोल्हापुर के राजा तुम्हारी बात को नहीं टालते।” दीवान बहादुर लड्डे ने कहा - “महाराज! मेरे योग्य सेवा सूचित करने की प्रार्थना है। महाराज - “छोटे-छोटे बच्चों की शादी की अनीति चल रही है। अबोध बालको-बालिकाओं का विवाह हो जाता है। लड्डे के मरने पर बालिका विधवा कहलाने लगती है। उस बालिका का भाग्य फूट जाता है। इससे तुम बाल-विवाह प्रतिबंधक कानून बनाओ। इससे तुम्हारा जन्म सार्थक हो जायगा। इस काम में तनिक भी देर नहीं हो।” कानून के श्रेष्ठ पंडित दीवान लड्डे की आत्मा आचार्य महाराज की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। मन ही मन उन्होंने महाराज की उज्ज्वल सूझ की प्रशंसा की। गुरुदेव को उन्होंने यह अभिवचन दिया कि आपकी इच्छानुसार शीघ्र ही कार्य करने का प्रयत्न करूँगा।

दीवान श्री लट्टे की कार्य-कुशलता

गुरुदेव के चरणों को प्रणामकर लट्टे साहब महाराज कोल्हापुर के महल में पहुँचे। महाराजा साहब उस समय विश्राम कर रहे थे, फिर भी दीवान का आगमन सुनते ही बाहर आ गए। दीवान साहब ने कहा - “गुरु महाराज ‘बाल-विवाह-प्रतिबंधक कानून’ बनाने को कह रहे हैं।”

राजा ने कहा - “तुम कानून बनाओ। मैं उस पर सही कर दूँगा।” तुरन्त लट्टे ने कानून का मसौदा तैयार किया। कोल्हापुर राज्य का सरकारी विशेष गजट निकाला गया, जिसमें कानून का मसौदा छपा था। प्रातः काल योग्य समय पर उस मसौदे पर राजा के हस्ताक्षर हो गए। वह कानून बन गया। दोपहर के पश्चात् सरकारी घुडसवार सुसज्जित हो एक कागज लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ आचार्य शातिसागर महाराज विराजमान थे।

लोग आश्चर्य में थे कि अशांति और उपद्रव के क्षेत्र में विचरण करने वाले ये शस्त्रसज्जित शाही सवार यहाँ शांति के सागर के पास क्यों आए हैं। महाराज के पास पहुँचकर उस शस्त्रालकृत घुडसवार ने उनको प्रणाम किया और उनके हाथ में एक राजमुद्रा अंकित वद पत्र दिया गया। लोग आश्चर्य में निमग्न थे कि महाराज के पास सरकारी कागज आने का क्या कारण है। क्षण भर में कागज पढ़ने से ज्ञात हुआ कि उसमें महाराज को प्रणाम पूर्वक यह सूचित किया गया था कि उनके पवित्र आदेश को ध्यान में रखकर कोल्हापुर सरकार ने बाल-विवाह प्रतिबंधक कानून बना दिया है। महाराज के मुखमंडल पर एक अपूर्व आनंद की आभा अंकित हो गई।

प्रगतिशील विचारक

भारत सरकार ने जब बाल-विवाह कानून पास किया था, तब समाज के स्थितिपालक दल के लोग उसको अयोग्य बताकर विरोध करते थे। सुधारक कहे जाने वाले भाई उसका स्वागत कर रहे थे। इस प्रसंग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उक्त कानून के विचार के जन्मदाता आचार्य महाराज थे। यथार्थ में वे बड़े प्रगतिशील तथा उज्ज्वल मौलिक विचारक थे। उन सरीखा सुधारक कौन हो सकता है, जिन्होंने असयम तथा मिथ्यात्व के विषयों में निमग्न जगत् को रत्नत्रय की अमृत औषधि पिलाई। उन्होंने किसी का भय नहीं किया। पंचम काल का भी विचार नहीं किया। उनका साहसी तथा जिनेन्द्रभक्त हृदय यह कहता था - “यह पंचमकाल का बाल्यकाल है। इससे इसका जोर नहीं चलेगा। यदि प्रयत्न किया जाय, तो धर्म तथा सत्कार्यों के क्षेत्र में नियम से

सफलता प्राप्त हो सकती है। डरकर घर में बैठने से काम नहीं चलेगा।" सचमुच में उन महापुरुष ने पंचमकाल के कलक को मिटाकर धार्मिक प्रवृत्ति को नवजीवन प्रदान किया। युगधर्म कहकर जहाँ जन-समुदाय पापाचार और विषयो की अध आराधना की ओर जा रहा था, वहाँ ये महापुरुष उस उद्वेलित लोकप्रवृत्ति रूप सिंधु के विरुद्ध खड़े हो गए और इन्होंने ऐसे-ऐसे महान् कार्य किए, जिसको सोचकर जगत् को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता। वे उन सभी प्रवृत्तियों तथा सुधारों के समर्थक थे, जिनके द्वारा सम्यक्त्व का पोषण होता है, समय का संवर्धन होता है। महाराज की विशिष्ट विचारकता के कारण वे स्थितिपालको के प्राण थे तो सुधारको के श्रद्धाभाजन भी थे।

दिव्य दृष्टि

आचार्यश्री का राजनीति से तनिक भी संबंध नहीं था। समाचार पत्रों में जो राष्ट्रकथा आदि का विवरण छपा करता है, उसे वे न पढ़ते थे, न सुनते थे। उन्होंने जगत् की ओर पीठ कर दी थी। आज की भौतिकता के फेर में फँसा मनुष्य क्षण-क्षण में जगत् के समाचारों को जानने को विह्वल हो जाता है। लंदन, अमेरिका आदि में तीन-तीन घंटे की सारे विश्व की घटनाओं को सूचित करने वाले बड़े-बड़े समाचार-पत्र छपा करते हैं। आत्मा की सुध-बुध न लेने वाले लोग अपना सारा समय शारीरिक और लौकिक कार्यों में ही व्यतीत करते हैं। आचार्यश्री के पास ऐसा व्यर्थ का क्षण नहीं था, जिसे वे विकथाओं की बातों में व्यतीत करे। फिर भी उनकी आत्मा कई विषयों पर ऐसा प्रकाश देती थी कि विशेषज्ञों को भी उनके निर्णय से हर्ष हुए बिना नहीं रहता था। सन् १९४० में द्वितीय महायुद्ध छिड़ा। आचार्यश्री के कानों में उसके समाचार पहुँचे, तब उन्होंने सहज ही पूछा यह युद्ध आरंभ किसने किया? उनको बताया गया कि युद्ध की घोषणा सर्वप्रथम जर्मनी ने की है। महाराज का शुद्ध मन बोल उठा - "इस युद्ध में जर्मनी निश्चय ही पराजित होगा।" कुछ काल तक जर्मनी की विजय अवश्यभाविनी मानने वाले लोगों को भी यह दिखा कि आचार्यश्री का अंतःकरण सत्य बात को पहले ही सूचित कर चुका था।

पुण्यवान जवाहरलाल

गांधीजी की प्रतिष्ठा देश भर में व्याप्त थी। उस समय महाराज बोले - "गांधी जी अच्छे आदमी हैं। उनसे अधिक पुण्यवान जवाहरलाल है। वह राजा बनने लायक है। गांधीजी ने केवल मनुष्य की दया को ही ठीक माना है।" मैंने पूछा था - "महाराज राजनीति की बातों से तो आप दूर रहते हैं, फिर आपने जवाहरलाल जी के बारे में उक्त बातें कैसे कही थीं।"

महाराज ने कहा - “हमारा हृदय जेसा बोलता है, वेसा हमने कह दिया। रंभ न गांधी को जानते, न जवाहर को पहचानते।”

आचार्य महाराज सचमुच मे श्रेष्ठ तपस्वी होने के साथ ही माध अपूर्व पुण्यात्मा भी थे। उनके पुण्य चरणों को सभी सम्प्रदाय वाले पणाम करते थे। बड़े-बड़े राजा महाराजा, करोड़पति, सेठ-साहूकार, सैनिक सभी वर्ग के लोग उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे।

संघपति का अनुभव

संघपति सेठ गेदनमलजी तथा उनके परिवार का आचार्यश्री के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। गुरुचरणों की सेवा का चामत्कारिक प्रसाद अभ्युदय तथा समृद्धि के रूप में उस परिवार ने अनुभव भी किया है। सेठ गेदनमलजी ने कहा था- “महाराज का पुण्य बहुत जोरदार रहा है। हम महाराज के साथ हजारों मील फिरे है, कभी भी उपद्रव नहीं हुआ है। हम बागड प्रान्त में रात-रात भर गाड़ियों में चलते थे, फिर भी कोई विपत्ति नहीं आई। बागड प्रान्त में ग्रामीण ऐसे भयकर रहते हैं कि दस रुपये के लिए भी प्राण लेने में उनको जरा भी हिचकिचाहट या सकोच नहीं होता था। ऐसे अनेक भीषण स्थानों पर हम गए हैं कि जहाँ से सुख-शांतिपूर्वक जाना असम्भव था, किन्तु आचार्य महाराज के पुण्य-प्रताप से कभी भी कष्ट नहीं देखा।

“वर्षा का भी अद्भुत तमाशा बहुत बार देखा। हम लोग महाराज के साथ-साथ रहते थे। वर्षा आगे रहती थी, पीछे रहती थी, किन्तु महाराज के साथ मे पानी ने कभी कष्ट नहीं दिया। उनकी हर प्रकार की पुण्याई के दर्शन किये थे।”

“उनकी तपस्या के मन्दिर का कलश देखना और बाकी रहा था। वे कुथलगिरि के पहाड पर बैठकर जो हजारों लोगो को दर्शन देते थे और सबको आशीर्वाद देते थे, वह तो उनके समवसरण सदृश लगता था। उनका यह प्रभाव भी अब देखने का सोभाग्य मिल गया।”

तपस्या द्वारा पुण्य

लोगो की आदत है कि जब कभी पुण्य की महिमा का दर्शन होता है, तो उनका मन उस प्रकार के पुण्य एव वैभव के लिए लालायित हो जाया करता है। प्रभु से वे प्रार्थना कर बैठते हैं, भगवन्! हमें भी ऐसा ही पुण्य प्राप्त हो। वे लोग अपने कर्मों को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते हैं और इसके ही कारण उनकी कामना पूर्ण नहीं होती है।

फोड़े उष्णता के कारण आ गए। शरीर के भीतर की स्थिति को कोन बतावे? शरीर की ऐसी कठिन परिस्थिति में भी वे सागर की भाँति गम्भीर ही रहे आए।

दसवे दिन अन्तराय कर्म का उदय कुछ मन्द पड़ा। उस दिन के दातार गृहस्थ ने महाराज को जल दिया। महाराज ने जल ही जल ग्रहण किया और वे बैठ गए। पश्चात् गम्भीर मुद्रा में उन साधुराज ने कहा - “शरीर को पानी की जरूरत थी और तुम लोग दूध ही डालते थे। चलो! अच्छा हुआ। कर्मों की निर्जग हो गई।” साधुओं का मूल्य आँकने वाले सोचें, ऐसी तपस्या कहाँ है?

शिथिलाचारी का पतन

आज के युग में ऐसी तपस्या एक दिन भी कठिन दिखती है। लगभग आठ वर्ष हुए उत्तर प्रान्त में एक प्रख्यात तपस्वी साधु को रात्रि के समय पिपासा की असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई, तो कुछ शिथिलाचारी पंडितों ने उनसे कहा - “यह आपत्ति का काल है। इस समय आपको जल ले लेना चाहिए।” होनहार विचित्र थी। उन विवेकभ्रष्ट पंडितों तथा उसी प्रकृति के कुछ धनिकों की प्रेरणा पाकर उन साधु ने प्यास की पीड़ा को सहन करने की असमर्थतावश अपनी महान् प्रतिज्ञा को भ्रष्ट कर दिया। कुछ समय के पश्चात् परलोक प्रयाण किया।

प्रतिज्ञापालन

इस घटना की खबर जब आचार्य शातिसागर महाराज को मिली, तब वे एक तपस्वी के रूप से प्रसिद्ध जीव के पतन को देख विविध प्रकार के विचारों में निमग्न हो गए।

आचार्य महाराज ने मुझसे कहा था - “कभी भी व्रत को भग नहीं करना चाहिए। प्राण जाते हुए भी प्रतिज्ञा की रक्षा करना चाहिए।” पुराणों में हम पशुओं आदि का भी उच्च विकास देखते हैं, क्योंकि उन जीवों ने व्रत का पालन करने में आश्चर्यकारी स्थिरता रखी है।

प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि समयधारक को व्रतों से डिगने की बात कभी न कहे। इस प्रकार की प्रणाली से स्व तथा पर की निश्चय से दुर्गति हुए बिना नहीं रहती है। पाप पक्ष का समर्थन करके सयमी का पतन कराने वाले व्यक्ति को यमराज का सगा-सम्बन्धी सोचना उचित है। कृत, कारित तथा अनुमोदना में भी समान फल होता है। पापोदय से शास्त्रज्ञ भी इस तत्त्व को भूल जाता है।

शरीरनिस्पृह साधुराज

महाराज भेद-ज्ञान-ज्योति के धनी थे। वे शरीर को पर-वस्तु मानते थे। उनके प्रति उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। एक दिन पूज्य गुरुदेव से प्रश्न पूछा गया - “महाराज! आपके स्वर्गारोहण के पश्चात् आपके शरीर का क्या करे?”

उत्तर - “मेरी बात मानोगे क्या?”

प्रश्नकर्त्ता - “हों महाराज! आपकी बात क्यों न मानेगे?”

महाराज - “मेरी बात मानते हो, तो शरीर को नदी, नाला, टेकड़ी आदि पर फेंक देना। पशु-पक्षी इसे भक्षण कर लेंगे। चैतन्य के जाने के पश्चात् इसकी क्या चिन्ता करना?”

यह बात सुनते ही प्रश्नकर्त्ता ने विनयपूर्वक कहा - “महाराज! क्षमा कीजिए। ऐसा तो हम नहीं कर सकते, शास्त्र की विधि क्या है?”

तब उनको दूसरी विधि कही थी कि मृत शरीर को विमान पर पद्मासन से बिठाकर देह का दहन कार्य किया जाता है। फिर बोले - “हमारे पीछे जैसा दिखे वैसा करो।”

पार्श्वमती अम्मा

आचार्य महाराज के लोकोत्तर जीवन-निर्माण में उनके माता-पिता की श्रेष्ठता को भी एक कारण कहना अनुचित न होगा। पश्चिम के विद्वान, व्यक्ति की उच्चता में माता को विशेष कारण कहते हैं। माता सत्यवती की जीवनी लोकोत्तर थी। जिस जननी ने आचार्य शातिसागर और महामुनि वर्धमानसागर सदृश दो दिगम्बर श्रेष्ठ तपस्वियों को जन्म दिया। आज के युग में ऐसी माता की तुलना के योग्य कौन जननी हो सकती है? माता सत्यवती से क्षुल्लिका पार्श्वमती अम्मा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वे कहती थीं “माता सत्यवती बहुत भोली, मदकषायी, साध्वी तथा अत्यन्त सरल स्वभाव वाली थीं। प्रति दिवस एकासन करती थी। पति की मृत्यु के पश्चात् केश कटवाकर माता ने वैधव्य दीक्षा ली थी। सफेद वस्त्र पहनती थीं। यथार्थ में माता पिच्छी रहित आर्यिका सदृश थीं। माता की आदत शास्त्र चर्चा करने की थी। महाराज तथा कुमगोडा माता को शास्त्र सुनाते थे। माता बहुत उदार थी। उनके घर में सदा अतिथि सत्कार हुआ करता था।”

मातगौडा का मधु चित्र

“अतिथि-मत्कार तथा माधु की वेयावृत्य कर्णे में महागज बहुत प्रवीण थे। माधु को म्वय आहार देते थे। उनमें विनय बहुत थी। महागज की प्रवृत्ति देखकर सब का मन यह बोलता था कि ये नियम में महामुनि बनेंगे। वे माता की आज्ञा का पालन करते थे। बड़ों की बात का आदर करते थे। उनके विषय में जनता कहती थी - “मातगौडा फार चागला, फार मगल, फार मज्जन आहे” - मातगौडा (आचार्य महागज का गृहस्थावस्था का नाम) बहुत अच्छे अत्यन्त मगल तथा अधिक सज्जन हैं।

जीवन चर्या

“भोजवामी महागज को देवता मद्दुश मानते थे। वे घर में कम बोलते थे। उनका सबध वैग-विगेध पूर्ण बातों से तनिक भी नहीं रहता था। मधु भाषा बोलते थे। छेदकरी या पीडादायिनी वाणी नहीं बोलते थे। वे मौन से भोजन करते थे। घर में रहते हुए भी वे घी, नमक, शक्कर तथा हरी शाक नहीं खाते थे। सध्या को पानी तक नहीं पीते थे। घर त्यागने के पाँच छ वर्ष पहले में वे एक दिन के बाद से भोजन करते थे। सबेरे मंदिर जाकर दर्शन, सामायिक करते थे। दम बजे स्नान करके मंदिर को पूजा करने जाते थे। वे पूजा करते थे। भगवान का अभिषेक उपाध्याय करता था। हमारे तरफ अभिषेक उपाध्याय (पुजारी) ही करता है। महाराज रात्रि को सब लोगों को शास्त्र सुनाते थे। चातुर्मास के समय अधिक लोग शास्त्र सुनने आते थे। जैन तथा जैनैतरो की दृष्टि में महाराज सत्पुरुष माने जाते थे। भोज ग्राम की जनता भी बहुत धार्मिक है।

“महाराज का कुमगौडा पर बहुत प्रेम था। महाराज के घराने में तपस्वी होते चले आए हैं। घर के सब लोग महाराज की आज्ञा में रहते थे। वे इनको साधु सद्गुण मानते थे। ये कभी भी खेल-तमाशे में नहीं जाते थे। धार्मिक कीर्तन को अवश्य देखते थे।”

उक्त पार्श्वमती माताजी के भोज में आठ चातुर्मास हो चुके हैं। उन्होंने यह भी कहा था - “मैं महाराज को ‘अण्णा’ (बड़ा भाई) कहती थी।” भोज के आस-पास की जनता बहुत धार्मिक है। लोग सर्व प्रकार सुखी तथा सपन्न हैं। भोज में लगभग तीन सौ घर जैनियों के हैं।

वेषभूषा

महाराज बड़ी, धोती, फेटा, दुपट्टा रखते थे। दीक्षा लेने के १५ या २० वर्ष पूर्व से उन्होंने जूता पहनना छोड़ दिया था।

महाराज के सब से बड़े भाई देवगोड़ा (वर्धमानसागरजी) थे। दूसरे भाई आदिगोड़ा थे। महाराज से छोटी बहिन कृष्णावाई थी। कुमगोड़ा सबसे छोटे भाई थे। सब भाई-बहिन मिलकर वे ५ व्यक्ति थे।

देवगोड़ा की सत्यनिष्ठा

वर्धमानसागर महाराज का चरित्र भी बड़ा मधुर रहा है। वे अत्यन्त सरल और दयालु रहे हैं। उनके विषय की एक मधुर चर्चा ज्ञात हुई थी। उनके घर का बँटवारा हो चुका था। सपत्ति के निमित्त को लेकर एक मुकदमा न्यायालय के समक्ष पेश हुआ। यदि ये इतनी बात कह देते कि हमारे घर का बँटवारा नहीं है, तो इनको बहुत धन का लाभ होता। वकील ने इनको खूब समझाया था कि आज पेशी पर तुम इतना अवश्य कहना कि हमारा बँटवारा नहीं हुआ है। ये जब अदालत में पहुँचे, तो यह कह बैठे कि हमारा बँटवारा हो चुका है। इससे ये असफल हो गए। कचहरी से लोटने पर वकील इनसे बोला- “आपको कितना समझाया था कि यह न कह देना कि हमारा बँटवारा हो गया है, किन्तु आपने एक न मानी।” वे बोले - “क्या करे। जो ठीक-ठीक बात थी, वह कह दी। नुकसान हो गया, तो हो जाने दो। हम खोटी बात नहीं कहेंगे।”

तपस्विनी बहिन

महाराज की बहिन कृष्णावाई के बारे में कुथलगिरि में ज्ञात हुआ कि वह बहुत तपस्विनी थी। ९ वर्ष की अवस्था में कृष्णावाई विधवा हो गई थी। यथार्थ में वह बाल ब्रह्मचारिणी रही हैं।

भीम के सस्मरण

महाराज के भाई के पौत्र का नाम भीमगोड़ा है। कुथलगिरि में भीम ने हमें बताया कि वह कृष्णावाई को आजी कहता था। भीम ने बताया आजी मुझे अण्णा कहती थी, मेरा नाम नहीं लेती थी। कारण, हमारे बाबा-प्रपितामह का नाम भीम था। आजी उनका नाम लेने में सकोचवश मुझे अण्णा कहती थी। घर के सभी लोग मुझे ‘अण्णा’ कहते हैं।

महाराज के परिवार की यह पद्धति रही है कि पुत्र-पौत्रादि के नाम पिता, पितामह आदि के नामानुसार रखे जाते थे, ताकि उन पूज्य पूर्वजों की स्मृति सदा हरी-भरी रही आवे। क्षत्रचूडामणि ने बताया है कि महाराज सत्यधर के पुत्र मोक्षगामी जीवधर स्वामी हुए हैं। जीवधर स्वामी ने रानी गधर्वदत्ता से उत्पन्न अपने पुत्र का नाम सत्यधर

रखा था, ताकि उनकी स्मृति विलुप्त न हो। इससे उस प्रात की पद्धति का परिजान होता है।

भीम ने सुनाया था - “आजी (माता सत्यवती) आचार्य श्री को ‘महाराज’ कहती थी। आजी का सारा समय धर्मध्यान में व्यतीत होता था। आजी ने तीन दिन पर्यन्त सल्लेखना ग्रहणकर शरीर त्याग किया था।”

भीम ने कुथलगिरि में अपने सगे दादा आचार्य महाराज के दर्शन किए थे। भीम ने कहा - “महाराज ने हम से अधिक बात नहीं की। उन्होंने हमें अपना पवित्र आशीर्वाद दिया था।”

आठवें दिन आहार लेने वाले मुनि

कठिन तपस्या करने वाले और भी मुनिराज दक्षिण में हुए हैं। वोरगाँव के मुनि आदिसागर आठ दिन के बाद आहार लिया करते थे। जब वे भोज आते थे, तो उनको आहार देने का सौभाग्य ‘सातगौडा’ को ही प्रायः प्राप्त होता था। वे अद्भुत प्रवृत्ति के थे। ‘एक-तारा’ वाद्य द्वारा भजन गाते थे, इत्यादि।

अविचल निश्चय

मध्यप्रदेश के अर्थमन्त्री तथा भूतपूर्व मुख्यमन्त्री मध्यभारत शासन श्री मिश्रीलाल जी गगवाल ने अपने सार्वजनिक भाषण में इन साधुराज की सुन्दर शब्दों में स्तुति करते हुए कुथलगिरि में कहा था - “आचार्य महाराज में निर्भीकता रोम-रोम में भरी हुई है। उनके तर्क के समक्ष आदमी बेजुबान - मूक हो जाता है। वे महान् ज्ञानी और अनुपम त्यागी हैं। तूफान, आँधी कुछ भी आवे, वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे हैं। उनकी श्रद्धा अविचल रही है। उन्होंने मृत्यु को निमन्त्रण दिया है और हमारे समक्ष ही हँसते-हँसते मृत्यु से लड़ रहे हैं।” श्री गगवाल ने जो आचार्यश्री के विषय में प्रकाश डाला था, वह उनके निकट सम्पर्क तथा परिचय के आधार पर ही कहा था। यह भाषण १७ सितम्बर का था। ता. १८ के प्रभात में महाराज स्वर्गीय निधि बन गए थे।

एकान्तवास से प्रेम

आचार्य महाराज को एकान्तवास प्रारम्भ से ही प्रिय लगता रहा है। भीषण स्थल में भी वे एकान्त निवास को पसन्द करते थे। वे कहते थे - “एकान्त भूमि में आत्मचित्तन और ध्यान में चित्त खूब लगता है।” पूज्यपाद स्वामी ने कहा है- योग साधना में तत्पर योगी, एकान्तवास को पसन्द करता है। “इच्छत्येकान्त सवास निर्जन।”

प्रशान्त वातावरण मे निर्विघ्न रूप से आत्मचितन तथा आत्मध्यान का कार्य होता है।
जनसम्पर्क आत्मनिमग्नता मे बाधक होता है।

जब महाराज बडवानी पहुँचे थे, तो बावनगजा (आदिनाथ की मूर्ति) के पास के शातिनाथ भगवान के चरणो के समीप अकेले रात भर रहे थे। किसी को वहाँ नहीं आने दिया था। साथ के श्रावको को पहले ही कह दिया था, आज हम अकेले ही ध्यान करेंगे।

मनोबली महर्षि

पूज्यश्री की यह विशेषता रही है कि जहाँ एकान्त रहता था, वहाँ उनका ध्यान बढ़िया होता था, किन्तु जहाँ एकान्त नहीं रहता था, वहाँ भी उनका ध्यान सम्यक् प्रकार से सम्पन्न हुआ करता था। उनका अपने मन पर पूर्ण अधिकार हो चुका था। इन्द्रियों उनकी आज्ञाकारिणी हो गई थीं। अतः जैसा उनकी आत्मा आदेश देती थी, वैसी ही स्थिति इन्द्रिय तथा मन उपस्थित कर देते थे।

आदर्श ज्ञान

दर्पण जितना स्वच्छ होता है, उतना ही निर्मल प्रतिबिम्ब बाहर के पदार्थ का उसमें स्वतः दिखाई पड़ता है। आचार्यश्री का अन्तःकरण आदर्श सदृश था। जिनका सारा जीवन आदर्श रहे, उनका हृदय भी सहज ही आदर्श दर्पण रूप हो, यह पूर्ण स्वाभाविक है। उनकी चित्तवृत्ति मे अनेक बाते स्वयमेव प्रतिबिम्बित हुआ करती थी।
प्रतिमाजी

यह उस समय की बात है जब पूज्यश्री का वर्षायोग जयपुरनगर मे व्यतीत हो रहा था। कुडची (दक्षिण) के मंदिर के लिए ब्रह्मचर्य पचो की ओर से मूर्ति लेने जयपुर आए। महाराज के दर्शन कर कहा - “स्वामिन्! पचो ने कहा है कि पूज्य गुरुदेव की इच्छानुसार मूर्ति लेना। उनका कथन हमे शिरोधार्य होगा।”

महाराज ने कहा - “वहाँ महावीर भगवान् की मूर्ति विराजमान होगी, ऐसा हमें लगता है, किन्तु तुम तार देकर पचो से पुनः पूछ लो।” महाराज के कहने पर पचो को तार दिया गया। वहाँ से उत्तर आया - “भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमाजी लाना।”

महाराज ने कहा - “क्यों! हम कहते थे न कि पचो का मन स्थिर नहीं है। अच्छा हुआ, खुलासा हो गया। हमने तुमसे महावीर भगवान् की मूर्ति के विषय मे कहा था। कारण, हमें वहाँ के मंदिर मे महावीर भगवान् की प्रतिमा दिखती थी।”

सत्यवाणी

शिल्पी ने कुछ समय बाद भगवान पार्श्वनाथ ग्वामी की प्रतिमा बनादी, किन्तु मूर्ति का फण खडित हो गया। यह समाचार जब कुडची के पचो को मिला, तब उन्होंने तार भेजकर लिखा जो मूर्ति तैयार मिले, उसे ही भेज दो। तदनुसार मूर्ति ग्वाना की गई। वह मूर्ति महावीर भगवान की ही थी, जिसमें सिंह का चिह्न था।

दिव्यज्ञान

मूर्ति को देखते ही सबको आश्चर्य हुआ कि आचार्य महाराज ने पहले ही कह दिया था कि हमें तो महावीर भगवान की मूर्ति दिखती है। ऐसे ही ज्ञान को दिव्यज्ञान कहते हैं।

हमारी कर्तव्य-विमुखता

आज के राजनीतिक प्रमुखों की क्षण-क्षण की वार्ता जिस प्रकार पत्रों में प्रगट होती है, वैसी यदि सूक्ष्मता से इन महामना मुनिगज की वार्ताओं का संग्रह किया गया होता, तो वास्तव में विश्व विस्मय को प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। इस पापप्रचुर पचमकाल में सत्कार्यों के प्रति बड़े-बड़े धर्मात्माओं की प्रवृत्ति नहीं होती है। वे कर्तव्य-पालन में भूल जाते हैं।

कई वर्षों से मैं प्रमुख लोगों से, जैन महासभा के कार्यकर्ताओं आदि से, पत्र द्वारा अनुरोध करता था कि आचार्य महाराज के उपदेशों को रेकार्ड किया जाना चाहिए, किन्तु आज करते हैं, कल करते हैं, ऐसा करते-करते वह आध्यात्मिक सूर्य हमारे क्षेत्र की अपेक्षा अस्तगत हो गया, यद्यपि उस सूर्य का उदय स्वर्गलोक में हुआ है।

रिकार्ड भाषण

आचार्य महाराज का २६ वे दिन मंगलमय भाषण रेकार्ड हो सका, उसकी भी अद्भुत कथा है। नेता बनने वाले लोग कहते थे, अब समय चला गया। महाराज इतने अशक्त हो गए हैं कि वाणी का रेकार्ड तैयार करना असंभव है।

मैंने कहा - “सचमुच में उपदेश नहीं मिलेगा, ऐसा ९९ प्रतिशत समझकर भी यत्र तो लाना चाहिए। शायद एक प्रतिशत की संभावना सत्य हो जाय।” कुछ भाइयों के प्रयत्न से रिकार्ड की मशीन लेकर इंजीनियर आ गया। उस समय महाराज के पास प मकखनलालजी मुरैना और मैं पहुँचे। उनसे कुछ थोड़े से शब्दों में सारपूर्ण बात कहने की प्रार्थना की।

उस समय महाराज के थके शरीर से ये शब्द निकले - “अरे! पहले लाये होते, तो दसो उपदेश दे देते।”

इन शब्दों का क्या उत्तर था। मस्तक लज्जा से नत था। सचमुच में ऐसी भूल का क्या इलाज हो सकता है। धर्म प्रभावना के महत्त्वपूर्ण कार्यों में ऐसी अज्ञतापूर्ण चेष्टाएँ हुआ करती हैं।

मन में आया देखो! पूज्यश्री की जयती मनाने में, उनके लिए गजट का विशेषांक निकालने में धार्मिक संस्था जैन महासभा ने पैसे को पानी मानकर खर्च किया, किन्तु इस दिशा में जगाए जाने पर भी समर्थ भक्तों के नेत्र न खुले। यथार्थ में देखा जाय, तो इसमें दोष किसी का नहीं है। जब दुर्भाग्य का उदय आता है, तब हितकारी और आवश्यक बातों की तरफ ध्यान नहीं जाता है।

अमर संदेश

मैंने महाराज से कहा था - “महाराज! दो चार मिनट ऐसा उपदेश रिकार्ड हो जाए, जिसमें लोगों के मन में धार्मिक भावना जगे।” महाराज ने कहा - “यत्र लाओ।” यत्र लाया गया।

महाराज ने नेत्रों को बन्द किया। आँखें बन्द किये हुए उन महापुरुष ने २२ मिनट पर्यन्त ऐसा उपदेश दिया उसमें जिनागम का सार आ गया और अनुभव के स्तर पर कल्याण की सब बातें आ गईं। उस महत्त्व की बेला में महाराज की कुटी में उनके सामने की तरफ बैठने का मुझे सुयोग मिल गया था। उस समय महाराज की वीतरागता उसवाणी द्वारा बाहर आ रही थी। ऐसा लगता था, मानों हम किन्हीं ऋद्धिधारी महर्षि के मुख से उद्गत अमृत वाणी का रसपान ही कर रहे हों। बोलते-बोलते महाराज कुछ क्षण रुक जाते थे।

आज के युग के वक्ता भाषण देते-देते पानी पिया करते हैं। महाराज का यम-सल्लेखना व्रत था। वह उपवास का छब्बीसवाँ दिन था। वे अपने क्षीण तथा शुष्क कण्ठ में बल लाने को ‘ॐ सिद्धाय नमः’ रूप जिनवाणी का अमृतपान कर लेते थे। और अपना विवेचन जारी रखते थे।

ॐ सिद्धाय नमः

महाराज की कुटी में बहुधा जब कभी महाराज के मुख से कोई शब्द सुनाई पड़ता था, तो वह ॐ सिद्धाय नमः ही था। सिद्ध बनने के सत्सकल्प वाले सत्पुरुष के

मुख से मिट्टी को प्रणामाजलि अर्पित करने वाली वाणी ही पूर्णतया उपयुक्त थी। जब महाराज ने सर्व प्रकार का आहार छोड़ दिया, तब उनकी दृष्टि ज्ञानमुधा रस पान करने वाले अशरीरी सिद्धों की ओर रहना स्वाभाविक थी।

सिद्धलोक में आत्मा का ध्यान

वे एक बार कहते थे, हम तो अनंत सिद्धों के साथ बैठकर सिद्धलोक में अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं। उनकी दृष्टि से सिद्ध भगवान ही तो सर्वत्र दिखेंगे। बाह्यदृष्टि से उन्होंने सिद्धक्षेत्र कुथलगिरि को समाधि का आश्रमस्थल बनाया था।

सल्लेखना के लिए उपयुक्त क्षेत्र

मैंने एक दिन पूज्य गुरुदेव से कहा था - “महाराज! आपने कुथलगिरि में अपनी अमर सल्लेखना का स्थान चुना, इसका कारण मुझे यह लगता है कि देशभूषण, कुलभूषण भगवान वालब्रह्मचारी थे। आप भी उनके समान रहे हैं। आप के जीवन में तो हमें दोनों प्रभुओं का समन्वय प्रतीत होता है। आप देश के भूषण हैं और सम्यक्त्वी जीवों के कुल के भूषण हैं। आपकी ममाधि के कारण इस क्षेत्र को नवीन प्राण प्राप्त हो गया। आप के चरणों का सान्निध्य पाकर हमारा जीवन धन्य है।” मैंने यह भी कहा था - “महाराज! जिनेन्द्र भगवान से हमारी प्रार्थना है कि आप सदृश सद्गुरु के चरणों का शरण भव-भव में प्राप्त हो।”

महाराज ने कहा था - “तुम्हारे मन में भक्ति है। इससे तुम ऐसा बोलते हो।”

अप्रतिम साधुराज

वास्तव में विचार किया जाय, तो यह बात प्रत्येक विचारक सोचेगा कि इस काल में ऐसे सद्गुरु का अव दर्शन सचमुच में दुर्लभ है। पचमकाल के कलुषित वातावरण में प्राचीन साधुओं की तपस्या तथा पवित्रता को अपनी जीवनी द्वारा बताने वाले महाराज शातिसागरजी के समकक्ष होने की सामर्थ्य किसमें हो सकती है। सचमुच में अलंकार शास्त्र की भाषा में शातिसागर महाराज शातिसागर महाराज सदृश थे।” ऐसा कहना ही पूर्ण सत्य होगा, जिस प्रकार पूज्यपाद स्वामी कहते हैं - “स्वर्ग में देवताओं का सुख, स्वर्ग में देवताओं के समान है - “नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव।”

-इष्टोपदेश (५)

युग के श्रेष्ठ मानव

इस युग ने राजनैतिक क्षेत्र में जगत् को प्रभावित करने वाला गांधी सदृश तेजस्वी पुरुष दिया। काव्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ समान विश्व कवि दिया, तो अध्यात्म के क्षेत्र में साधु-समाज के शिरोमणि महाराज को दिया, जिनकी पुण्यकथा विश्वविदित है।

विविध मनो-विकल्प

कुथलगिरि में भारत के कोने-कोने से पंद्रह-बीस हजार तक लोगो का समुदाय इन साधुराज के पावन दर्शन को इस जगल की पहाड़ी पर आता जाता था। सब आकुलित थे कि अब इस अपूर्वसूर्य का दर्शन आगे न होगा। भौतिक सूर्य जाने के बाद पुन दर्शन देता है, किन्तु यह धर्म सूर्य पुन यहाँ दर्शन नहीं देगा।

कल्पना

सल्लेखना की वेला में उन साधुराज की चर्चा स्वर्गलोक में अवश्य हो रही होगी। सौधर्मेन्द्र अपनी सुधर्मा सभा में बैठकर चर्चा कर रहे होंगे कि इस काल में उत्कृष्ट तप और इन्द्रिय विजय करने वाला महासाधु शातिसागर के रूप में भरतखंड में जिनधर्म की प्रभावना करता रहा है। अब हमारे स्वर्गलोक की वह शीघ्र ही श्रीवृद्धि करेगा। वह सुर समाज बड़ी सजधज से इन अप्रतिम साधुराज के स्वागत के लिए हृदय से तैयारी कर रहा होगा। सचमुच में ससार की दशा निराली है। पूर्णिमा की रात्रि को चंद्रमा अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से विश्व को धवलित करता है। प्रभात होते ही वह अस्तगत होता है और प्रताप पुज प्रभाकर उदित होता है। विश्व में भाग्यचक्र इस प्रकार बदलता रहता है। अब १८ सितम्बर १९५५ के प्रभात से सुर समाज का भाग्य जागा कि मध्यलोक की विभूति स्वर्गलोक में पहुँच गई।

स्वर्ग में साथी

स्वर्ग में वे अनेक महापुरुषों के साथी हो गए, जिन्होंने पूर्व में उनकी ही तरह जिनदीक्षा लेकर जिनधर्म की उज्ज्वल आराधना की थी। महर्षि कुदकुद, समतभद्र, अकलक, जिनसेन, गुणभद्र आदि महापुरुषों ने रत्नत्रय की समाराधना द्वारा देव पदवी प्राप्त की होगी, इसमें सदेह की क्या बात है। सयम और समाधि के प्रसाद से आचार्य शातिसागर महाराज भी उन श्रेष्ठ आत्माओं की मधुर मैत्री का रसास्वाद करते होंगे। उन्होंने तो सीमधर स्वामी आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरों के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य

प्राप्त किया होगा। वहाँ से चय कर वास्तव में वे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक होंगे। इस सम्बन्ध में दृढतापूर्वक कथन तो प्रत्यक्षवेदी मुनियों का ही हो सकता है। हम लोग तो अनुमान प्रमाण के आधार से ही सोच सकते हैं।

सयमी का महत्त्व

आचार्य महाराज की दृष्टि में सयम तथा सयमी का बड़ा मूल्य रहा है। एक दिन वे अपने क्षुल्लक शिष्य से कह रहे थे - “तेरे सामने मैं चक्रवर्ती की भी कीमत नहीं करता। लोग सयम का मूल्य समझते नहीं हैं। जो पेट के लिए भी दीक्षा लेते हैं, वे तप के प्रभाव से स्वर्ग जाते हैं, तूने तो कल्याणार्थ सयम धारण किया है। तू निश्चय से स्वर्ग जायगा, इसमें रत्ती भर शका मत कर।”

प्रिय शिष्य को हितोपदेश

एक बार महाराज अपने एक भक्त गृहस्थ को समझा रहे थे - “तुम घर में रहते हुए भी एकान्त में रहा करो। जहाँ भीड़ हो, वहाँ नहीं रहना। ध्यान, स्वाध्याय करना। दीक्षा लेना। घर में नहीं मरना। मनुष्य भव बार-बार नहीं मिलता है। मोह ने जीव को पछाड़ दिया है। अब उस मोह को पछाड़ना चाहिए। अतः सल्लेखना लेकर ही मरण करना।”

मोह मल्ल को पछाड़ने की कला के ज्ञाता

आचार्य महाराज के भक्त ब्रह्मचारी जिनदास भरडी (बेलगाँव) वाले वहाँ कुथलगिरि में भी आये थे। वे ब्रह्मचारीजी नामांकित पहलवान रहे हैं। राजदरबारों के समक्ष भी कुश्ती में वे यशस्वी हुए हैं। मैंने पूछा - “ब्र जी! अब कुश्ती नहीं लड़ते।” वे बोले - “अब हमने मेहनत करना बंद कर दिया। अब हमारे गुरु शातिसागर महाराज हैं। हम उनके पास कुथलगिरि आए हैं। वे हमें कर्मों से कुश्ती लड़ने का दाव पेच सिखावेंगे। कारण, आचार्य महाराज मोहमल्ल को पछाड़ने की कला में अत्यन्त दक्ष हैं।”

महान् आध्यात्मिक उद्योगपति

आचार्य महाराज आध्यात्मिक उद्योगपति थे। आज का उद्योगपति वह होता है, जिसके तत्त्वावधान में बड़े-बड़े कारखाने चलते हैं। महाराज का उद्योग पुद्गल के बधन काटने का था। वे मोहारि-विजय के उद्योग में निरन्तर उद्यत रहते थे। उनके जीवन में विविधता थी। वे आत्मचित्तक थे, किन्तु जिनेन्द्र के पुण्य नाम स्मरण करने में भी वे

असाधारण थे। सल्लेखना लेने के पूर्व वे अपने पंच परमेष्ठी वाचक विशिष्ट मंत्र की १८ कोटि जाप पूर्ण कर चुके थे।

भयंकर ज्वर में भी जाप

उनका जाप का कार्यक्रम निर्बाध गति से चला करता था। भयंकर ज्वर चढ़ा है। थर्मामीटर के हिसाब से ज्वर १०४ या १०५ डिग्री को पहुँच चुका है, किन्तु ये मनोवली मुनिराज अपने जाप के काम में निमग्न रहते थे। एक बार महाराज फलटण से लोणद गए थे, कारण फलटण के हीरक जयती के समय से महागज को ज्वर आने लगा था। उस समय की स्थिति का ज्ञान होने से मैंने पूज्यश्री से पूछा था - “महाराज! ऐसी ज्वर की भीषण स्थिति में तो आपका जप कार्य स्थगित होता होगा?”

महाराज - “उस समय भी हम बराबर जाप करते थे। उस समय भी जाप में बाधा नहीं पड़ती थी।”

धर्मवृक्ष की छाया

शरीर के श्रान्त होते हुए भी उनका मन धार्मिक प्रवृत्तियों के विषय में सदा नव-स्फूर्ति पूर्ण रहता था। आदत मनुष्य के दूसरे स्वभाव (Second nature) सदृश मानी जाती है। जिनेन्द्र भगवान को हृदय में विराजमान कर उनकी जन्मजन्मांतर से की गई आराधना का ही यह सुफल रहा है कि वे आत्मकल्याणकारी कार्यों में सदा सफल रहे। इस धर्मवृक्ष की शरण को ग्रहण करने वालों को सदा कल्पनातीत सुफल मिले हैं तथा आगे मिलते रहेंगे।

उपवासों की संपत्ति

उनके द्वारा जीवन में किए गए उपवासों की गणना करना कठिन है। कोई न कोई व्रत चलता ही जाता था। एक उपवास, एक भोजन तो उनके लिए बहुत ही सामान्य बात थी। वह क्रम प्रायः चलता था।

महाराज एक दिन कहते थे - “उपवास से शरीर में प्रमाद नहीं रहता। और समय यदि हम दस मील चलते, तो उपवास के दिन शरीर हल्का रहने के कारण सहज ही पंद्रह मील चले जाते थे।” उनको हमने कभी भी प्रमादपूर्ण अवस्था में नहीं देखा। यथार्थ में प्रमत्त गुणस्थानवर्ती होते हुए भी उनकी चेष्टाएँ सदा अप्रमत्त थीं।

उनकी एक पुस्तक से ज्ञात हुआ कि उन्होंने तीस-चौबीसी भगवान के ७२० उपवास किए थे। $30 \times 24 = 720$ उपवास तीस-चौबीसी व्रत में होते हैं। व्रतों के

१२३४ उपवास हुए थे। सोलहकारण व्रत को १६ वर्ष किया। उसमें उनका एक उपवास, एक आहार का क्रम चलता रहता था। सिंहविक्रीडित सदृश कठोर तप उन्होंने किया। आष्टाहिक व्रत, दशलक्षण व्रत, क्रवलचाद्रायण व्रत, कर्मदहन व्रत, श्रुतपचमी व्रत आदि उन्होंने किये थे। गणधरो के चौदहसौ बावन उपवास करने का क्रम चल रहा था, उसमें दो सौ उपवास हो पाए थे। तपस्या के द्वारा मन की मलिनता दूर होती है। आत्मा विशुद्धता प्राप्त करती है। महान् तपस्या के कारण विपत्ति की स्थिति में उनका मन उनकी आज्ञा के आधीन रहता था। सच्चा साधुत्व तो तभी है, जब विपत्ति के समय वह अपनी प्रतिज्ञा से न डिगे। सकट के समय भी महाराज में अद्भुत स्थिरता, आत्मविश्वास तथा दृढता का दर्शन होता था। कवि का यह कथन सत्य है -

भक्ति भाव भादो नदी, सबै चली घहराय।

सरिता सोई जानिए, जेठ मास ठहराय ॥

धर्मसूर्य

महाराज का जीवन तपोमय था। उन्होंने धर्म का सूर्य बनकर स्व तथा पर का प्रकाशन किया। जिस प्रकार प्रभापुज भास्कर भी कुछ जीवों की दर्शन शक्ति में बाधक बन जाता है, इसी प्रकार ऐसी भी आत्माएँ मिलेगी, जो इस तेजोमय विभूति के महत्त्व को स्वीकार करने में अक्षम हों। जिन जीवों को कुयोनियों में परिभ्रमण करना है, उनकी आत्मा सत्कार्यों से द्वेष करती है। अच्छी बातों के बारे में अनुभूति की क्षमता उनमें नहीं रहती है, जैसे पक्षाघात लकवा पीडित व्यक्ति के अङ्गों में संप्राणता की शून्यता आ जाती है।

आश्चर्यप्रद योगीश्वर

महाराज कोगनोली में क्षुल्लक के रूप में थे। वे मंदिर में बैठे थे। वहाँ एक बड़ा सर्प आया। उसने उस पाट को घेर लिया, जिस पर वे बैठे थे। वह १२ बजे से ३ बजे दिन तक वहाँ रहा आया। महाराज भी आसन पर चुपचाप बैठे रहे। उपाध्याय वहाँ आया, तो महाराज ने उसे पास में आने से मना किया। कारण सोंप पास में फिर रहा था। महाराज शांत थे, इनमें ऐसी महानता थी। ये महान् साधु बने, महाव्रती हुए, आचार्य हुए, चारित्र चक्रवर्ती हुए, इनकी गहराई और ऊँचाई को कौन नाप सकता है? आज का समुद्र अधिक से अधिक पाँच मील गहरा कहा जाता है और सबसे ऊँचा कहा जाने वाला हिमालय भी पाँच मील के लगभग है, किन्तु आचार्य महाराज इतने उन्नत और गम्भीर

रहे हैं कि उनका माप नहीं किया जा सकता। एक शास्त्रकार का कथन है कि महापुरुष मेरु से भी अधिक उन्नत और सागर से भी अधिक गम्भीर होते हैं। यह उक्ति आचार्यश्री के पूर्ण जीवन को देखते हुए अत्युक्ति नहीं लगती है।

आचार्यश्री का प्रभाव

कूपजल - आचार्य महाराज कटनी चातुर्मास के पश्चात् जबलपुर आते समय जब बिलहरी ग्राम पहुँचे, तो वहाँ के लोग पूज्यश्री की महिमा से प्रभावित हुए। वहाँ के सभी कुएँ खारे पानी के थे। एक स्थान पर आचार्य महाराज बैठे थे। भक्त लोगों ने उसी जगह कुआँ खोदा। वहाँ बढियाँ और अगाध जल की उपलब्धि हुई। आज भी गाँव के लोग इन साधुराज की तपस्या को याद करते हैं।

बालक सुरक्षित - प जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने बताया कि कटनी की जैन शिक्षासंस्था के २० फुट ऊँचे मजिले पर एक ३ वर्ष का बच्चा बैठा था। एक समय और बालकों ने आचार्य महाराज का जयघोष किया। वह बालक भी मस्त हो महाराज की जय कहकर उछला और नीचे ईट, पत्थर के ढेर पर गिरा। सुयोग की बात जिस कोने पर वह गिरा, उस जगह पत्थर आदि का अभाव था। सब कह बैठे यह आचार्य महाराज के पुण्यनाम का प्रभाव है।

वृक्ष का चमत्कार - कटनी में एक प्राणहीन सरीखा आम का वृक्ष था। वह फल नहीं देता था। एक बार उस वृक्ष के नीचे आचार्यश्री का पूजन हुआ। तब से वह डाल फल गई, जिसके नीचे साधुराज विराजमान हुए थे। इस घटना से सभी कटनीवासी परिचित हैं।

सिंह की दृष्टि तत्त्व पर रहती है। वह लाठी प्रहार करने वाले या बन्दूक मारने वाले पर प्रहार करता है। इसी प्रकार महाराज सकट के समय दूसरों को दोष न देकर, अपने कर्मों को ही उस विपत्ति का कारण मानते थे। दूसरों पर दोष रखकर अपने को उज्ज्वल बताने की लौकिक प्रवृत्ति उनमें नहीं पाई जाती थी।

संवेग भावना

एक बार महाराज, नेमिसागर महाराज तथा ब्र बडू रतू सागली की तरफ जा रहे थे। मार्ग में तीन हरिजन स्त्रियों ने इन मुनियुगल को देखा और तिरस्कारपूर्वक इन दिगम्बर साधुओं का महान् उपहास किया। उस समय महाराज ने आपस में चर्चा करते

हुए कहा - “हमने अनादिकाल से मसाग भर की हँसी की। अब हमारी हँसी हो रही है, यह उसका ही तो फल है। इसमें हमारा क्या नुकसान है?”

कुछ समय के पश्चात् कुछ मुसलमान आ गए। उनकी डॉट से वे नीच नारियाँ चुपके से चली गईं।

मुनियो के अकेले रहने से हानि

साधुओं को अपने मन को सदा सावधान रखना आवश्यक है। न जाने कब इन्द्रिय रूपी डाकू आक्रमण कर उनकी सयमनिधि को लूटने को तैयार हो जाँय? आचार्यश्री सदा कहा करते थे कि मुनियो को सघ मे रहना चाहिए। शत्रु भी यदि साधु बने, तो उसे भी सघ मे विहार करने को कहना चाहिए।

आज मुनियो मे स्वतन्त्र विहार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आचार्य महाराज की दृष्टि से मुनियो का कल्याण तथा धर्म संरक्षण इसमें है कि वे सघ बनाकर रहें। ऐसे प्रसंग पर जब मनुष्य का पतन दुर्बलतावश होता है या दुष्टों का समागम होता है, तब सघस्थ साधु सुरक्षित रहता है और उसे अपनी धार्मिक मर्यादा में स्थिर रहने की बहुत प्रेरणा मिलती है।

बालक का समाधान

आचार्य महाराज सन् १९५३ में बारसी में विराजमान थे। उत्तर भारत का एक बालक अपने कुटुम्बियों के साथ गुरुदेव के दर्शन को आया। वह बच्चा लगभग ५ वर्ष का था। उसने पहले महाराज का सौपयुक्त चित्र देखा था। इससे वह महाराज से बोला - “तुम्हारा सौप कहाँ है?” महाराज बच्चे के आशय को समझ गए। वे मुस्कराते हुए बोले - “वह सौप अब यहाँ नहीं है। वह तो चला गया।”

महान् जिनेन्द्रभक्ति

कुथलगिरि में आचार्यश्री की इच्छानुसार मैसूरराज्य से एक १५ फुट ऊँची प्रतिमा लाने का विचार चला था। बाहुबली स्वामी की एक सुन्दर मूर्ति मिल गई है। उस प्रतिमा की फोटो आचार्यश्री के समक्ष एक सितम्बर १९५५ को दिखाई गई। वह उपवास का १९ वाँ दिन था। फोटो देखते ही उनके नेत्रों से आनदाश्रु की धारा प्रवाहित हो गई। महाराज बोले - “मेरी इच्छा पूर्ण हो गई।” सच्चे सम्यक्त्वी को जिस प्रकार वीतराग की छवि आनंद देती है, उसी प्रकार का आनंद इन साधुराज का था। महाराज को विश्वास दिलाया गया था कि शीघ्र ही मूर्ति कुथलगिरि आ रही है, किन्तु उनके दिवंगत होने के बाद भी वह मूर्ति नहीं आ पाई। इसका रहस्य क्या है, यह अज्ञात है।

इन्द्रियो का गुलाम दुःखी है

एक व्यक्ति ने महाराज के समक्ष प्रश्न किया - “महाराज! आपके बराबर कोई दुःखी नहीं है। कारण, आपके पास सुख के सभी साधनों का अभाव है।” महाराज - “वास्तव में जो पराधीन है, वह दुःखी है। जो स्वाधीन है, वह सुखी है। इन्द्रियों का दास दुःखी है। हम इन्द्रियों के दास नहीं हैं। हमारे सुख की तुम क्या कल्पना कर सकते हो?”

विशुद्ध जीवन का प्रभाव

आचार्यश्री ऐसे निरीह और निस्पृह तपस्वियों में थे, जो अपने तप के द्वारा प्राप्त फल या विशेष सामर्थ्य के विषय में पूर्णतया निरपेक्ष रहते थे, फिर भी कुछ लोगो ने साधुराज के उज्ज्वल व्यक्तित्व द्वारा लाभ उठाया है।

मस्तक पीडा निवारण

वेडणी ग्राम के एक धनिक बधु विपुल द्रव्य खर्च करते-करते थक गए थे, किन्तु उनके सिर की पीडा नहीं जाती थी। उसने आचार्य महाराज के चरणों में नम्र भाव से विनती की और अपनी दारुण व्यथा सुनाई। दयार्द्र भाव से आचार्यश्री ने उस व्यक्ति के सिर पर अपनी पिच्छी रख दी। तत्काल वह हमेशा के लिए उस पीडा से छूट गया। वास्तव में जड़ प्रयोग जहाँ हार जाते हैं, वहाँ पर योगियों का चर्मत्कार जगत् को चकित कर देता है।

सर्पदश का जीवन-रक्षण

फलटण के श्री तलकचद देवचद गांधी के यहाँ के दस वर्ष के बालक को साँप ने काट लिया। आचार्य महाराज के समक्ष वह बालक लाया गया। उसे ध्यान से देखकर महाराज ने कहा - “चिन्ता मत करो। यह ठीक हो जायगा।” इसके पश्चात् वह बालक निर्विष हो गया।

कुष्ठ रोगी

नसलापुर में एक व्यक्ति पापोदय से गलित कुष्ठ की बीमारी से दुःखी हो रहा था। वह महाराज की सेवा में पहुँचा। उसने बहुत अनुनय-विनय की। गुरुदेव ने उसे ब्रह्मचर्य व्रत देते हुए कहा - “तू छहमाह के भीतर ठीक हो जायगा।” महाराज की वाणी के अनुसार वह स्वस्थ हो गया।

मृगी रोगी

एक व्यक्ति मृगी के रोग के कारण अपार व्यथा पा रहा था। सभी लोगों को ऐसा लगता था कि वह व्यक्ति न जाने कहाँ गिरकर मृगी के कारण मर जायगा। उसने महाराज की सेवा में रहकर बहुत दिन गुरुदेव के प्रसादार्थ प्रार्थना की। एक समय महाराज बाहर जा रहे थे। वह उनके पीछे लग गया और अपनी विनय स्वामी की सेवा में सुनाई।

आचार्यश्री ने कहा - “तू पूजन किया करना। थोड़े समय में ठीक हो जायगा।” थोड़े समय में वह उस भीषण व्याधि के कुचक्र से बच गया। महाराज के हृदय से निकली हुई वाणी का अद्भुत प्रभाव देखा गया है।

वानर वृन्द पर प्रभाव

शिखरजी की तीर्थ वदना से लौटते हुए महाराज का सघ सन् १९२८ में विध्यप्रदेश में आया। विध्याटवी का भीषण वन चारों ओर था। एक जगह सघ पहुँचा, वहाँ ही आहार बनाने का समय हो गया। श्रावक लोग चिन्ता में थे कि इस जगह वानरों की सेना का स्वच्छन्द शासन तथा संचार है, ऐसी जगह किस प्रकार भोजन तैयार होगा और किस प्रकार इन साधुराज की शास्त्रानुसार आहार की विधि संपन्न होगी? उस स्थान से आगे चौदह मील तक ठहरने योग्य जगह नहीं थी।

सघपति सेठ गेदनमलजी जवेरी आचार्यश्री के समीप पहुँचे। उन्होंने कहा- “महाराज! यहाँ तो बदरो का बड़ा कष्ट है। हम लोग किस प्रकार आहारादि की व्यवस्था करेंगे।”

महाराज बोले - “तुम लोग शीरा, पूड़ी उड़ाते हो। बदरो को भी शीरा पूड़ी खिलाओ।” इसके बाद वे चुप हो गए। उनके मुख मडल पर स्मित की आभा थी। वहाँ सघ के श्रावको ने कठिनता से रसोई तैयार की, किन्तु डर था कि महाराज के हाथ से बदर ग्रास लेकर न भागे, तब तो अतराय आ जायगा। इस स्थिति में क्या किया जाय? लोग चिंतित थे।

अस्तु, चर्या का समय आया। शुद्धि के पश्चात् आचार्य महाराज जैसे ही चर्या के लिए निकले कि सैकड़ों बदर स्वयमेव अत्यन्त शान्त हो गए और चुप होकर महाराज की चर्या की सारी विधि देखते रहे। बिना विघ्न के महाराज का आहार हो गया। इसके क्षण भर पश्चात् बदरो का उपद्रव पूर्ववत् प्रारंभ हो गया। गृहस्थ बदरो को रोटी खाने को देते जाते थे और स्वयं भी भोजन करते जाते थे। ऐसी अपूर्व दशा महाराज के आत्म-विकास तथा आध्यात्मिक प्रभाव को स्पष्ट करती है।

आत्मध्यान का उपाय

एक दिन आर्थिका विशालमती अम्मा ने पूज्य गुरुदेव से पूछा - “महाराज! आप आत्मा का ध्यान करो, यह कहते हैं। किस प्रकार आत्मा का ध्यान किया जाय?”

महाराज ने सूत्ररूप में एक महत्त्व की बात कही - “गप वसाला सीखा - पूर्ण चुपचाप रहना सीखो।” इन थोड़े सारपूर्ण शब्दों में योगिराज ने योगविद्या का रहस्य कह दिया। चुप बैठकर अतर्जल्प बन्द करना सामान्य बात नहीं है।

अनुभवपूर्ण कथन

इस विषय को समझाते हुए महाराज ने कहा था - “स्त्रियों को अपने हृदय में स्फटिक की मूर्ति विराजमान करके उसका ध्यान करना चाहिए। पुरुषों को अपने शरीर में विद्यमान आत्मा के भीतर ही देखना तथा विचारना चाहिए। कायगुप्ति, वचन गुप्ति तथा मनगुप्ति पालन करना चाहिए। अतर्जल्प को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करते-करते मुक्ति मिलेगी।”

योगिराज का अपूर्व अनुभव

उन्होंने यह अनुभव की बात कही थी - “सबरे आठ बजे सूर्य की तरफ पीठ करके खड़े हो जाओ। कायोत्सर्ग होकर १५ मिनट पर्यन्त आत्मा का ध्यान करो। कुछ अभ्यास के बाद तुमको शरीर बराबर स्फटिक की मूर्ति दिखाई पड़ेगी।”

शिक्षण के विषय में आदर्श विचार

आचार्य महाराज की आदत रही है कि जो भी काम किया जाय, वह श्रेष्ठ हो। वे सख्या (quantity) के स्थान पर गुण (quality) को महत्त्व देते थे। श्रीशातिसागर अनाथाश्रम शेडवाल के सचालक महोदय को महाराज ने कुथलगिरि में कहा था - “शेडवाल आश्रम में पाँच छात्र रहे, तो भी अच्छी तरह उसे चलाना। अधिक सख्या का मोह मत करना। कार्य अच्छा होना चाहिए।”^१

१ विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ‘विश्वभारती’ विद्यालय में पहले केवल पाँच ही विद्यार्थी थे। उनमें एक कविवर का पुत्र था, “During the first year Rabindranath had only five pupils, one of whom was his own son”। कविवर के समक्ष एक विशेष आदर्श था। सख्या का मोह न था। आज वह संस्था विश्वविद्यालय बनकर अत्यन्त समृद्ध स्थिति में है। जो लोग सख्या की ममता के बीमार हैं, उनको आचार्य महाराज तथा लौकिक-जगत् में विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्र की दृष्टि से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

शिक्षण के विषय में महाराज की दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट थी कि विद्यार्थी को ऐसा ज्ञान दिया जाय, जिससे वह आत्मा का कल्याण करते हुए अपने नरभव को सफल बना सके। जिसके द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण न कर सके, ऐसी पढाई, ऐसे तत्त्वदर्शी मुनिनाथ को कैसे पसन्द आ सकती थी? जिन महात्मा ने ससार-सुखो का परित्याग करके परमार्थ की सिद्धि में जीवन लगा दिया, उन पुरुषरत्न की दृष्टि विषयासक्त साक्षरो से भिन्न होना स्वाभाविक है।

महाराज के विचारानुसार धार्मिक समाज के विपुल धन द्वारा पोषित बड़े-बड़े विद्यालय तक योग्य चरित्रनिष्ठ विद्वान बनाने के क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। आज सस्थाओं से जो छात्र विद्वान बनने का प्रमाण-पत्र लेकर बाहर आते हैं, उनमें बहुतों का समय से तनिक भी प्रेम नहीं रहता, न सयमियों की सेवा-भक्ति के लिए उनके मन में सद्भावना रहती है।

जिनेन्द्र-भक्ति को भी वे समाज के सपूत विपत्ति मानते हैं। ऐसे स्वच्छन्द ज्ञाताओं की, चरित्रभ्रष्ट कथित त्यागियों तथा धनिकों से खूब पटती है। इससे अधर्म की ओर लोगो का झुकाव होता है। इस कारण आचार्यश्री उस शिक्षा को कल्याणप्रद कहते थे, जो 'चारित्त खलु धम्मो' की हृदय से प्रतिष्ठा करती है। ऐसी पाप-पोषिणी-विद्या, जिसे सीखकर पश्चात् जन्मान्तर में जीव नरक या तिर्यच पर्याय की शोभा बढ़ावे, धर्मगुरु को कैसे इष्ट हो सकती है?

कर्णधारो का कर्तव्य

आज वास्तव में समाज के कर्णधारो का कर्तव्य है कि अपने ज्ञानकेन्द्रों की बारीकी से जाँच करके उनको इस रूप में चलावे कि आचार्यश्री के दृष्टिकोण से उसकी अनुकूलता हो।

महान् आचार्य जिनसेन स्वामी ने बताया है कि आदिनाथ भगवान ने अपने परिवार के बालक-बालिकाओं को विविध शास्त्रों में निपुण बनाया था, किन्तु उनकी दृष्टि से लोकविद्या के साथ परमार्थ विद्या का भी शिक्षण आवश्यक है। आदिपुराण के ये शब्द विशेष हितप्रद हैं -

राजविद्यापरिज्ञानादैहिकार्ये दृढा मतिः ।

धर्मशास्त्र-परिज्ञानमतिलोकद्वयाश्रिता ॥ पर्व ४२-३४

-राजविद्या के ज्ञान से लौकिक वस्तुओं के विषय में बुद्धि सुदृढ़ बनती है, किन्तु धर्मशास्त्र के परिज्ञान से उभय ताकों के विषय में बुद्धि को दृढ़ता प्राप्त होती है।

(१) “आचार्य यतिवृषभ कहते हैं कि आगम के अध्ययन से ‘अण्णाणस्म विणासो - ‘अज्ञान का विनाश, “ण्ण-दिवायरस्स उण्णत्ती” ज्ञान दिवाकर की उत्पत्ति, “देवमणुस्सादीहि-सततमव्भाच्चप्पयागणि” - देव तथा मनुष्यों के द्वारा सदा पूजा एवं “पडिसमय-असखेज्ज-गुणसेट्ठिकम्मणिज्जरण” प्रति समय उत्पन्न होने वाली असंख्य गूणश्रेणि रूप कर्मनिर्जरा का प्रत्यक्ष लाभ होता है। आगामी काल में श्रेष्ठ अभ्युदय तथा सिद्धत्व की प्राप्ति होती है।

परमार्थ ज्ञान

लौकिक ज्ञान का सिंधु परमार्थ ज्ञान के बिन्दु की महत्ता को भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इस भोगपधान युग की दृष्टि अनर्थ के जनक अर्थ की आराधना में अत्यधिक सलग्न पाई जाती है, इससे तीर्थङ्गों की पुण्य सम्स्कृति का अवबोध कराने वाली विद्या की भी दृष्टि अर्थ की समाराधना में तत्पर पाई जाती है। यथार्थ में जगत् का कल्याण अर्थ की अन्ध आराधना में नहीं है। सपत्ति मत्पात्रों का अनुगमन करती है। लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम हुए विना द्रव्य की उपलब्धि नहीं होगी। वादीभसिंह सूरि ने लिखा है - “पात्रता नीतमात्मान स्वयं यान्ति हि मपद ” - जो आत्मा अपने को सत्पात्र बनाता है, उसके समीप मपत्ति स्वयमेव आती है।

ज्ञानधन के विषय में पंडित टोडरमल जी

जिन विद्याप्रेमियों की दृष्टि लक्ष्मी की चकाचोंध से चकित हो उठी हो, उन्हें पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी सचेत करते हुए कहते हैं - ‘‘रे पापी! धन किछू अपना उपजाया तो न हो है। भाग्यतें होय है, मो ग्रन्थाभ्यास आदि धर्मसाधन ते जो पुण्य उपजे ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है, तो शास्त्राभ्यास किए कैसे न होगा? अर न होना है, तो शास्त्राभ्यास न किये कैसे होगा? तातें धन का होना न होना उदयाधीन है। शान्ताभ्यासविधे काहे कौं शिथिल हूजे। बहुरि सुन, धन है सो तौ विनाशीक है, भयसयुक्त है, पापते निपजे है, नरकादिक का कारण है। अर यहु शान्ताभ्यास रूप ज्ञान-धन है जो अविनाशी है, भयरहित है, धर्म रूप है, स्वर्ग मोक्ष का कारण है। सो महन्त पुरुष तो धनादिकको छोड शास्त्राभ्यास विधे लगे है, सो तू पापी शान्ताभ्यास को छुडाय धन उपजावने की बडाई करे है।’’

शास्त्रज्ञ की महत्ता

वे आगे यह भी लिखते हैं - “बहुरि तै कह्या धनवान के निकट पडित भी आनि प्राप्त होइ, सो लोभी पडित होहु अर अविवेकी धनवान होहि तहाँ ऐसे हो है। अर शास्त्राभ्यास वालो की तो इद्रादिक सेवा करै है। इहाँ भी बड़े-बड़े महन्त पुरुष दास होते देखिये है, तातै शास्त्राभ्यास वालो तै धनवान को महत मति जानो।” उनका यह कथन भी चिरस्मरणीय है - “देखो, शास्त्राभ्यास की महिमा, जाकौ होते परपरा आत्मानुभव दशा कौ प्राप्त होइ सो मोक्षमार्ग रूप फल निपजै है, सो तो दूर ही तिष्ठौ, तत्काल इतने गुण हो है, क्रोधादिक कषायन की मन्दता होय है। पच इन्द्रियन की विषयनि विषै प्रवृत्ति रुकै है अति चंचल मन भी एकाग्र होय है। हिसादि पच पाप न प्रवर्तै है, हेयोपादेय की पहिचान होय है, आत्मज्ञान सन्मुख होय है।” जिनवाणी का अभ्यास और उसके परिशीलन के विषय मे उपर्युक्त कथन भ्रम भाव को दूर किए बिना नहीं रहेगा।

लौकिक शास्त्रो का अभ्यास

आत्म-कल्याण-कारिणी विद्या के अभ्यास के साथ प्रतिभाशाली गृहस्थ के लिए अन्य लौकिक शास्त्रो का अध्ययन भी उचित कहा गया है। महापुराणकार भगवज्जिनसेन स्वामी ने, उपासकाचार एव अध्यात्म शास्त्र के साथ शब्दविद्या, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, गणितशास्त्र, छदशास्त्र, शकुनशास्त्र आदि का अभ्यास भी उपयोगी बताया है।

वीरसागर की देशना

शिक्षा के सम्बन्ध मे आचार्य वीरसागर महाराज का यह कथन भी तत्त्वचिंतको के लिए माननीय है - “जैनधर्म के महत्त्व को बढ़ाने के लिए हमे गुरुकुल चाहिए, जो हमारे पूर्णतया स्वाधीन हो। वहाँ जैनधर्म के ज्ञाता सच्चरित्र विद्वान् तैयार किये जावे, जो यह बतावे कि जैनधर्म कितना महत्त्वपूर्ण है। आज लोग अपनी सस्थाओ को सरकार के आधीन करदेते है। सरकार का स्वामित्व रहता है। उनकी ही शिक्षा रहती है। हमारी स्वाधीनता कहाँ रही, हमारी सस्था तो पूर्णतया हमारे स्वाधीन रहनी चाहिए।”

अतः धन की लोलुपतावश सस्थाओ का भाग्य अनुभव-शून्य धनिको की इच्छा पर न छोड़कर सद्गुरु के कल्याणकारी सकेत के अनुसार प्रवृत्ति होनी चाहिए। बहुत विद्यार्थियों के बदले चरित्रवान श्रद्धालुधार्मिक थोड़े भी छात्र सस्कृति-सरक्षण की दृष्टि से हितकारी होंगे। धर्म और सस्कृति के सरक्षणार्थ विद्वानो का अभाव बढ़ने लगा

हे, अतः इस प्रश्न को सुलझाने की ओर धार्मिक वधुआ का गभीर ध्यान जाना उचित है, आवश्यक भी है।

सेवा द्वारा सुफल लाभ

आचार्य महाराज तो वीतगग भाव वाले मुनि रहे हैं, किन्तु उनकी शरण में आने वालों को समृद्धि मिली है और उनसे विमुख होने वालों को विपत्ति। महाकवि धनजय ने कहा है - “हे जिनेन्द्र! आपके उन्मुख रहने वाला मुख पाता है। और विमुख बनने वाला कष्ट भोगता है। आप दर्पण के समान उन दोनों के समक्ष एक रूप में रहते हैं।” -दर्पण के समक्ष जेमा मुख व्यक्ति का रहता है, वैसे वह दिखता है। वह मुख को अच्छा दुरा नहीं बनाता है। महान् आत्माओं की ऐसी ही कीर्ति सुनी जाती है। उनसे रुठने वाला अहकारी व्यक्ति कष्ट भोगा करता है।

आचार्य महाराज की सेवा में सलग्न रहने वाले अनेक व्यक्ति यदि अपनी-अपनी कथा लिखें, तो एक पुराण बन जाय, जिससे यह पता चलेगा कि किस प्रकार हीन या मध्यम परिस्थिति से वे सपन्न तथा समृद्ध हुए। अर्जुनों ने भी महाराज की भक्ति और सेवा से आनंद लिया है। धर्म और धार्मिक का शरण लेने वाला यथार्थ में सुख को प्राप्त करता है।

भक्त-अभक्त

नसलापुर में एक मुसलमान था। वह महाराज के दर्शन के पश्चात् ही शुद्ध भोजन करता था। उस भक्त की बहुत उन्नति हुई। वहाँ एक दर्जी भी था, जो द्वेष भाव धारण करता था। एक वर्ष में ही उमका बहुत पतन हुआ। ऐसी ही अनेक स्थानों की बातें सुनी जाती हैं।

वास्तव, मैं प्रणममूर्ति आचार्यश्री महान् आध्यात्मिक विभूति थे। उपनिषद् में जिसे पराविद्या कहा है, उसके वास्तव में आचार्य थे। यथार्थ में वे इस भौतिकवादी युग में लोकोत्तर महामानव थे।

श्रमणों के संस्मरण



तपोमूर्ति महामुनि

श्री वर्धमानसागर महाराज के संस्मरण

(स्वर्गीय वर्धमानसागर महाराज आचार्य शान्तिसागर महाराज के ज्येष्ठ बधु थे)

बाहुबली क्षेत्रदर्शन

इन परमपूज्य साधुराज का दर्शन १५ फरवरी सन् १९५७ को ८ बजे सुबह बाहुबली क्षेत्र (कुम्भोज ग्राम जिला कोल्हापुर) में शुक्रवार के दिन हुआ था। उस दिन जिनेन्द्र पचकल्याणक में जन्मकल्याणक का महोत्सव हो रहा था। इनका शरीर सुडौल, गेहुआवर्ण युक्त था। ज्येष्ठ सुदी दशमी शक संवत् १७८५ ईसवी सन् १८६३ में इनका जन्म हुआ था। ६४ वर्ष की जिनकी अवस्था हो, दिगम्बर शरीर और मन भी जिनका दिगम्बर हो ऐसे साधुराज के दर्शन से बड़ी शान्ति मिली।

वर्धमान भगवान के शासनकाल में वर्धमान वय वाले सकल समय की साधना में अत्यन्त वर्धमान, वर्धमान स्वामी के दर्शन से अन्तःकरण का आनन्द भी वर्धमान हुआ। उनकी स्थिरता निर्मलता और सर्वाङ्गीण साधुता का परिचय पाकर मन आनन्दित होने के साथ चकित भी होता था। अधिक वृद्ध व्यक्ति से चला नहीं जाता, शरीर अपना वीभत्स रूप दिखाता है और वह तो अर्धमृतक (मृतप्राय) सा लगता है, उस शरीर में श्रावक के सामान्य समय का अभ्यास भी आज दिन शक्य नहीं होता। मृत्यु के पास पड़ा हुआ वह वृद्ध औषधियों आदि के द्वारा जीता हुआ मरणप्राय प्रतीत होता है, किन्तु ९४ वर्ष की अवस्था में इस हीन काल में असप्राप्तासृपाटिका सहनन वाले शरीर में विद्यमान वर्धमान वयवाले वर्धमान सागर जी सचमुच में आज के भोगी युग के लिये आश्चर्य की वस्तु थे। उनके मुखमण्डल पर विलक्षण तेज था। अद्भुत शान्ति से सुसज्जित उनका शरीर, अग प्रत्यग तथा आत्मा थी। यदि कोई देखता, तो उसे लगता मानो वह सचमुच में शान्ति के सागर शान्तिसागर महाराज के पादपद्मों के पास पहुँच गया है। आचार्य महाराज की स्वर्गायात्रा के पश्चात् गुरुदर्शन न होने से व्यथित मन को इनके पास ऐसा लगा मानो जीवनप्रद सामग्री मिल गई।

वार्तालाप

मैंने उन्हें प्रणाम किया और कुछ उच्च स्वर से उनके पास कहा - “महाराज! सुमेरुचन्द्र दिवाकर अपने गुरु के चरणों को प्रणाम करता है।” मेरे शब्द सुनते ही उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी ओर देखा और उनके मुख मण्डल पर एक गहरी प्रसन्नता आ गई।

वे बोले - “बड़ा अच्छा हुआ आ गये। हमने तो बहुत पहले तुम्हारे आने का समाचार सुना था। बहुत दिन तक प्रतीक्षा भी की, फिर सुनने में आया कि तुम जापान चले गये और अब एकदम तुम हमारे पास आ गये। हमें ऐसा लगता था कि शायद बड़े महाराज के स्वर्गगमन के बाद तुम हमें भूल गये होगे।”

मैंने कहा - “महाराज! आपको कैसे भूल सकता हूँ? प्रतिदिन अभिषेक तथा पूजा के समय आपके पवित्र चरणों का स्मरण कर परोक्ष रूप से आपको अर्घ्य दिया करता था। आज आपको साक्षात् देखकर मेरे नेत्र धन्य हो गये। भारत के बाहर जापान आदि देशों में, मैं अवश्य गया था, किन्तु आप सदृश गुरु के चरण मुझे वहाँ भी याद आते थे। अनेक जापानी मित्रों को - भाइयों और बहिनो को, आपकी फोटो बतलाता था और कहता था कि सौ के समीप वयं वाले वर्धमान महाराज की अप्रतिम, नैसर्गिक सौन्दर्य सम्पन्न छवि को देखो। लोग देखकर हर्षित होते थे। उनके चेहरे पर विस्मय का भाव आ जाता था। इतनी अवस्था में वस्त्र आदि साधनों से रहित चौबीस घण्टे में एक बार खड़े होकर अपने हाथों की अजुलि में विशेष नियमों के साथ आहार ग्रहण करने वाले ऐसे नररत्न आज जगत् में विद्यमान हैं, यह सचमुच में बड़े अचरज की चीज दिखती है।

मैंने शिमजू नगर जापान की विश्वधर्म परिषद् के केन्द्र को सन् १९६५ में चारित्र चक्रवर्ती ग्रन्थ भेंट किया था, उसमें आपका चित्र था। उसे देखकर किन्हीं को ऐसा लगता था कि यह कोई मूर्ति का चित्र है, जिसमें कारीगर ने ज्ञान, वैराग्य और तपस्या का अपूर्व भाव केन्द्रित कर दिया है।

कुछ भ्रान्त भाइयों को मैंने कहा था - “अरे भाई! यह तस्वीर नहीं है। यह शिल्पी की कृति नहीं है। यह हमारे गुरुदेव स्वर्गीय आचार्य शान्तिसागर महाराज के विद्यमान ज्येष्ठ बन्धु की असली फोटो है, जिन्होंने श्रीमन्त परिवार में जन्म धारण किया, किन्तु आत्म-विकास के लिए तृष्णा और दुःख के बीज भोगों को छोड़कर दिगम्बर मुद्रा धारण की है।” महाराज! आपको इस जन्म में क्या शायद जन्मान्तर में भी न भूलूँ।

इसके पश्चात् मेने उनमें कहा - “आचार्य शान्तिमाग महागज के म्वर्गवास होने के पश्चात् मेरे हृदय में अनेक वाग अवर्णनीय पीडा ओर वेदना उत्पन्न हुआ करती थी, क्योंकि अब उन महामुनि के सान्निध्य और सम्पर्क का सोभाग्य सदा के लिए समाप्त हो गया। कभी मन में आता था, अनेक शास्त्रों को पढ़ कर मैं अज्ञान के अन्धकार में डूबा हूँ। जिनका जीवन समाधिमरण की अत्यन्त जाज्वल्यमान ज्वाला में जलने के कारण अत्यन्त निर्मल शुभ्र और महाधवल बन चुका, उन क्षपकराज का चिन्तन कर चित्त में सन्ताप आना अशोभन कार्य है, अमंगल की बात है, अभद्र चेष्टा है, किन्तु क्या किया जाय? मन में प्रायः प्रतिदिन अनेकवार गुरुदेव के स्मरण के साथ इस प्रकार की व्यथा उत्पन्न हुआ करती थी।

महापुराण का आख्यान

मैं एक दिन महापुराण पढ़ रहा था। उसमें एक मार्मिक वर्णन आया। उसे पढ़कर मेरे व्यथित मन को बड़ी शान्ति मिली। महाकवि जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि - कैलाश पर्वत पर आदितीर्थकर वृषभनाथ भगवान विराजमान हैं। सयोगी-जिन के बाद वे अयोगी जिन हुए और क्षणभर में लोक के अग्रभाग में जा अनन्त सिद्धों की समिति में पहुँच गये। उस अवसर पर देवों ने, देवेन्द्रों ने, नरों ने, नरेन्द्रों ने, सभी ने हर्ष और उत्साह से निर्वाण कल्याणक मनाया।

सौधर्मेन्द्र सोचता था, आज का दिन धन्य है! आज के सदृश अवसर कब आयगा, जब कि मोह कर्म का नाश करने वाले वृषभनाथ भगवान ने विकार भाव का अभाव किया और अब वे नित्य, निरजन, निराकार, विशुद्ध सिद्ध बन गये। चारों ओर आनन्द का सिन्धु उद्वेलित हो रहा था। सचमुच में वह दिन अन्वर्थ रूप में स्वाधीनता (स्व+अधीनता) दिवस था। एक आत्मा अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले पर-पदार्थों का त्याग कर स्वाधीन बनी। अब वह पराधीन नहीं रही। ज्ञानवान के लिए अवर्णनीय आनन्द का वह दिन था। भक्तजन आज भी उस मंगल दिवस को कालमंगल मानकर हर्षित होते हैं और उसे पूज्य मानते हैं।

उस समय एक कल्पनातीत आश्चर्यप्रद घटना हुई। तत्त्वज्ञानियों का शिरोमणि, षट्खण्ड का स्वामी, चक्रवर्ती, नहीं-नहीं आध्यात्मिक जगत् का चूडामणि भरतेश्वर, जो प्रभात में प्राची के प्राणन में उषा के आगमन पर लालिमा को देखकर वृषभनाथ प्रभु के चरणों को स्मरण करता था, प्रभापुज प्रभाकर को उदित होते हुए देखकर कवि जगत् के द्वारा वर्णित प्राची वधूटी का रत्नदीप न सोचकर, उसे वृषभनाथ भगवान के कैवल्य सूर्य

की प्रतिकृति विचारता था। वह महाज्ञानी भरत, प्रभु की निर्वाण बेला में साशुनेत्र हो रहा है। उसका मन बड़ा दुखी है। ज्ञानी भरत की व्यथा को आनन्द सिन्धु में निमग्न सुरेन्द्र नहीं समझ पा रहे हैं। वे आश्चर्य में हैं। आज भरत क्यों शोकसिन्धु में डूबा है? आज बुद्धिमान् भरत क्यों पागलसा बन गया है? भरत विचारवान् थे। उन्हें लगता था कि अब भगवान् चले गये। अब उनके दर्शन नहीं होंगे। अपने पिता वृषभदेव को, नहीं-नहीं, भगवान् आदिनाथ को मैं कहाँ पाऊँगा? अब उनकी कहाँ पूजा करूँगा? अब उनकी दिव्य-ध्वनि सुनकर अपने मोहाकुल मन को कैसे नवजीवन प्रदान करूँगा? ऐसे विचारों से भरत बड़ा दुखी था। सब ने समझाया लेकिन किसी की भी बात भरत के मन को प्रभावित न कर सकी।

भरत के बन्धु, मुनियों के चूडामणि, सकल मुनिसंघ के नायक वृषभसेन गणधर ने भरतेश्वर को समझाते हुए कहा - “अरे भरत, आज तुम्हें क्या हो गया है? ‘तोषे विषाद कुत’ - इस आनन्द की बेला में, खेद क्यों करते हो। अरे! भगवान् अपने पास तो सदा हैं। तुम इस भ्रम में क्यों हो कि भगवान् यहाँ से चले गये और अब उनका दर्शन नहीं होगा। मैं तो उनका अभी भी दर्शन कर रहा हूँ और सदा दर्शन करता रहूँगा। भरत! थोड़ा विचार से काम लो। उन्हें चर्मचक्षुओं से मत देखो। सिद्धि के नाथ वृषभनाथ अब चर्मचक्षुओं से देखने योग्य नहीं हैं। अब वे सिद्ध भगवान् बन गये हैं। उन्हें ज्ञान नेत्रों से देखो।” वृषभसेन गणधर के ये शब्द बड़े महत्त्व के हैं- “अब वे ध्यानगम्य-ध्यानगोचर हो गए हैं।”

यः प्रागक्षिगोचरः सम्प्रत्येष चेतसि वर्तते ।

भगवान् तत्र कः शोकः पश्यैन तत्र सर्वदा ॥४७-५८९॥

-जो भगवान् पहले चर्मचक्षुओं के द्वारा देखे जाते थे, अब वे अन्तःकरण में विराजमान हैं, इसलिए तुम क्यों शोक करते हो? जब जी चाहे, तब उनका दर्शन कर सकते हो।

इस गुरुवाणी ने भरत के शोकाश्रुओं को आनन्दाश्रुओं के रूप में परिणत कर दिया। ऐसी अलौकिकता उनमें न होती, तो वे आदिजिनेन्द्र के सकल श्रमण-संघ के शिरोमणि प्रथम गणधर कैसे बनते? वे चार ज्ञान के स्वामी थे।

मैंने वर्धमानस्वामी से कहा - “महाराज! वह श्लोक मेरे लिए बड़ा शान्तिदाता बन गया। मैं सोचने लगा, कुथलगिरि में चर्मचक्षुओं की दृष्टि से शान्तिसागर महाराज

की मल्लेखना हुई है किन्तु मग मनमन्त्रि मे मेग आगध्यद्व गान्तिमाग महागज विगजमान है। वे तो विद्यमान ही हैं इसलिए अब मुझ गान्तिमाग महागज का स्मरण कर अगान्ति नहीं गान्ति ही मिलती है।”

मार्मिक बात

गहरी मौन लंते हुए, वर्धमानमाग महागज ने कहा - “अंग पंडितजी! महागज तो गयं। प्रत्यक्ष और परोक्ष दर्शन में बड़ा अन्तर है। क्या महागज का प्रत्यक्ष दर्शन होता है? वह तो गया। उन्होंने गजब की तप माधना की थी।”

मन्देश

प्रश्न - “आचार्य महागज ने मल्लेखना के काल में आपको कोई विशेष मदेश भेजा था? प्रार्थना है कि उस पर थोड़ा प्रकाश डालें।”

उन्होंने कहा - “महागज ने कहा था कि निगन्त आत्मा का ध्यान करना। आर्तध्यान मत करना। इसी प्रकार आत्म-चिन्तन में लगे रहना, जैसे भगत महागज उसमें लगे रहते थे। आत्मा का दर्शन करो। लगातार आत्मा का ध्यान होगा नहीं, इसलिए शुभ कार्यों में भी लगे रहना। महागज ने एक बात कही थी कि आत्मा का चिन्तन करो। मन को फिरने मत दो। आत्मा में लीन होओ। यह बात हमने अच्छी तरह पकड़ ली और अब इसी में लगे रहते हैं। कभी-कभी मन बाहर भी घूमता है। हम उसको पकड़ कर जबरदस्ती आत्मा की ओर लगाते हैं।”

उन्होंने बताया कि एकाग्रचित्त होने पर शरीर की कुछ खबर नहीं होती। अब हमारा शरीर बहुत कमजोर हो गया है। उसमें शक्ति नहीं रही है किन्तु वृद्ध शरीर में स्थित आत्मा में शक्ति है। कभी-कभी रात ध्यान में बीत जाती है। तीन घंटे तक तो सहज ही ध्यान में बैठ जाता हूँ। यह आत्मशक्ति का फल है।

प्रश्न - “महाराज! आप ध्यान कब करते हैं? मेग अभिप्राय रात्रि के समय में है।”

उत्तर - “हम रात को १२ बजे ध्यान को बैठ जाते हैं और करीब तीन घंटे तक आत्मचिन्तन तथा आत्मध्यान में संलग्न रहते हैं।”

प्रश्न - “महाराज! शरीर आपको कष्ट देता है या नहीं?”

उत्तर - “व्यवहार दृष्टि से यह कष्ट देता है, निश्चय से वह हमारा क्या बिगाड़

सकता है? अब हम आत्मशक्ति से ही काम लेते हैं, अन्यथा बाहर शौच को जाने की शक्ति भी अब शरीर में नहीं है।”

प्रश्न - “महाराज! आजकल लोग व्यवहार को अहितकारी कहते हैं। निश्चय को ही कल्याणकारी कहते हैं। शास्त्रों के स्वाध्याय और अनुभव के आधार पर आपका मनोगत जानने की इच्छा है।”

उत्तर - “व्यवहार दृष्टि से पाप विष का कुम्भ है और पुण्य अमृत का कुम्भ है, किन्तु शुद्ध उपयोग की स्थिति में पाप और पुण्य दोनों विष के कुम्भ हैं। प्रारम्भ की अवस्था में पुण्य अमृत-कुम्भ है और पाप विष-कुम्भ है, इसलिए उन्होंने कहा - “बाबा! एकान्त नको - अरे भाई, एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना। एकान्त का पक्ष पकड़ लिया, तो ‘मिथ्यात्वी झाला’ - मिथ्यात्वी होगये।” कितना सुन्दर समन्वय उन्होंने किया। प्रारम्भिक अवस्था में पाप के मार्ग से हटकर पुण्यपथ में लगो। इसके पश्चात् आत्मभाव के जागृत होने पर अशुभ के समान शुभ को छोड़ शुद्ध में लग जाओ। जो व्यवस्थित रूप से सीढ़ियों पर पैर रखे बिना एकदम उछल कर उच्चतम स्थल पर पहुँचना चाहते हैं, वे चपल बालक सदृश भूतल पर गिरकर अपने प्रमाद और अतिरेक के कारण दुःखी होते हैं और हाथ पैर टूटने से कष्ट भी पाते हैं। महाराज ने सूत्र रूप में कह दिया, ‘एकान्त नको’ - एक पक्ष पकड़ने की जिद्द छोड़ो। स्वामी समन्तभद्र ने श्रावकाचार में पाप-निरोध को महत्व दिया है। वहाँ पुण्य-निरोध की चर्चा नहीं की है। उनके शब्द हैं -

यदि पापनिरोधोन्म-संपदा कि प्रयोजनम्?

अथ पापास्रवोस्त्यन्यसंपदा कि प्रयोजनम्?

जन्म कल्याणक

कुछ समय चर्चा के उपरान्त महाराज भगवान के जन्म कल्याणक महोत्सव के लिए चले। वे वृद्ध पितामह सदृश साधुराज ईर्यापथशुद्धि पूर्वक बहुत धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से पैर उठाते हुए दो सौ गज की दूरी पर स्थित विशाल पण्डाल में पहुँचे। जन्मकल्याणक का पावन दृश्य देखकर भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आगत जनता हर्षित हो रही थी। चार दिगम्बर मुनिराज वहाँ थे। क्षुल्लक एव आर्यिका आदि उच्च त्यागी समुदाय पचास से अधिक सख्यामें उस पावन प्रसंग पर विद्यमान था। कोल्हापुर मठ के स्वामी क्षुल्लक जिनसेन महाराज तथा श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज भी थे, जिनके तत्त्वावधान में पंचकल्याणक का कार्य हो रहा था। मैं भी शास्त्र में वर्णित जनेन्द्र पंचकल्याणक और

मेरु पर किये गये प्रभु के अभिषेक आदि के पावन प्रसंग को अपने स्मृति पटल में लाकर देखता था। मैं वर्धमानमागर महाराज के चरणों के पाम ही बैठा था। बार-बार आँखें उनके मनोज वीतगग मुखमण्डल पर जाती थीं। एक प्रश्न मन में आया। कुछ देर तक तो मैंने उसे दबाया, किन्तु तीव्र इच्छा होने पर मैंने वर्धमानमागर महाराज से निवेदन किया।

प्रश्न - “भगवान के जन्म कल्याणक का वैभव गृहस्थ आदि लौकिक जनों को स्वभावतः अच्छा लगेगा। आप परम तपस्वी हैं, इसलिए तपकल्याणक आपको प्रिय होना था, जन्मकल्याणक में आने में आपको क्या लाभ हुआ?”

पहले तो मैं मोचता था कि मेरा प्रश्न कहीं अर्थ का अनर्थ न कर दे, क्योंकि कभी-कभी बड़े विचित्र बुद्धिमान लोग ऐसा करके अमृत को विष बनाने में आनन्द लेते हैं, किन्तु यहाँ मुझे कोई भय नहीं था। कारण, मैं महाराज को जानता था कि वे ज्ञान्ति के मागर गुरुदेव के छोटे नहीं, बड़े भाई हैं। वे मुझे भी जानते थे, इसलिए मेरा प्रश्न महाराज ने बड़े प्रेम से सुना।

प्रश्न - “उन्होंने मुझ में पूछा, यह बताओ हम जगत् में हैं या जगत् के बाहर हैं?”

उत्तर - मैं गहरे विचार में पड़ गया कि महाराज क्या पूछ रहे हैं? मेरा प्रश्न कुछ और है और उस पर प्रतिप्रश्न कुछ विलक्षण है। क्या उत्तर दूँ? सोचकर मैंने कहा - “महाराज! आप जगत् में हैं।”

तब उन्होंने कहा - “ठीक बात है, हम जगत् में हैं। तब जिनेन्द्र भगवान के जन्म होने पर सुर, असुर, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, नारकियों को भी सुख और शान्ति मिली, सभी जीवों को आनन्द मिला, तो बताओ हमको क्यों नहीं आनन्द मिलेगा?” उनके उत्तर को सुनकर मैं तो आनन्द विभोर हो गया और मैंने उनकी साधुत्व से प्रेरणाप्राप्त प्रतिमा को प्रणाम किया। औरों को भी यह उत्तर सुनाया। सुनते ही सब बड़े प्रसन्न हुए।

तप कल्याणक के दिन मैं महाराज के पास बैठा था। सोच रहा था, कुछ प्रश्न पूछूँ। लेकिन कोई बात मन की भीड़ में पूछने योग्य चित्त में नहीं आ रही थी। मैं उनके चरणों को क्षण भर धीरे-धीरे देखने लगा। उस समय मुझे एक प्रश्न सूझा। मैंने कहा - “महाराज! आपके चरण बहुत अच्छे लगते हैं।”

उत्तर - “अरे! पाँव चमड़े का है, इसमें क्या अच्छापन है?”

मैने कहा - “महाराज! इसमे हमारे देवता रहते हे।”

उत्तर - “अरे बाबा, यह शरीर चमडे का है। भक्ति करो तो देवता है, नहीं तो कुछ नहीं है। इसे ध्यान में रखो, जैसा भाव होता है, वैसा पदार्थ प्रतीत होता है।”

अपूर्व केशलोच

ता १८ फरवरी सन् १९५७ को उन्होंने केशलोच किया। दूर-दूर से हजारो स्त्री-पुरुष केशलोच देख रहे थे। मैने देखा कि आधे घण्टे के भीतर ही उन्होंने केशलोच कर लिया। किसी की सहायता नहीं ली। चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं थी। धीरता और गभीरता की वे मूर्ति थे। जैसे कोई तिनका तोड़ता है उस तरह झटका देते हुए सिर तथा दाढ़ी के बालो को उखाड़ते जाते थे। लो! केशलोच हो गया। उन्होंने पिच्छी हाथ मे लेकर जिनेन्द्र को प्रणाम किया। तीर्थकरो की वन्दना की।

अब उनका मौन नहीं है, ऐसा सोचकर धीरे से मैने पूछा - “महाराज! अभी आप केशलोच कर रहे थे, उस समय आपको पीडा होती थी कि नहीं?”

उत्तर - “अरे बाबा! रचमात्र भी कष्ट नहीं होता था। लेशमात्र भी वेदना नहीं थी। हमें ऐसा नहीं मालूम पडता था कि हमने अपने केशो का लोच किया है। हमे तो ऐसा लगा कि मस्तक पर केशो का समूह पडा था, उसे हमने अलग कर दिया। बताओ, हमने और क्या किया? देखो एक मर्म की बात बताते है। शरीर पर हमारा लक्ष्य नहीं रहता है। केशलोच शुरू करने के पहिले हमने जिन भगवान का स्मरण किया और शरीर से कहा - अरे शरीर! हमारी आत्मा जुदी है, तू जुदा। ‘का रडतोस’ - अरे! क्यों रोता है? हमारा तेरा क्या सम्बन्ध? बस केशलोच करने लगे। हमे ऐसा नहीं मालूम पडा कि हमने अपना केशलोच किया है।”

उनकी अत करण की बाते सुनकर यह समझ में आता था कि ये विशुद्ध वाक्य, यह पीयूषगर्भिणी वाणी, आत्मामृत का रस पान करने वाली सुरेन्द्र वन्दित अन्तरात्मा की है। जो बहिरात्मा, अतरात्मा का अभिनय करते हुए विषयो मे आसक्त हो अध्यात्म की आकर्षक शब्दो में स्तुति करते है और लोगो से प्रशसा का प्रशस्ति-पत्र प्राप्त करते है, उनकी कथा, उनका चरित्र और इन अन्त बाह्य दिगम्बरत्व को धारण करने वाले साधुराज में इतना ही अन्तर है जितना कि काक और कोकिला में, पीतल और स्वर्ण मे, चूना और दूध में, आकाश और भूतल मे है। उनका उत्तर सुनकर मुझे स्मरण आ गया वह क्षण, जब मैं १९५५ के सितम्बर में सल्लेखना के ३५ वे दिन क्षपकराज

श्रीगान्तिसागर महाराज की कुटी में कगीव तीन घण्टे बैठा था, उन वीतराग वाणी की श्रद्धा से परिपूर्ण लोकोत्तर आत्मा के समीप। उसी जाति की श्रद्धा इन महाराज की भी प्रतीत हुई। माता सत्यवती ने ये दोनों विलक्षण आध्यात्मिक रत्न विश्व को दिये जिससे जैन सस्कृति कृतार्थ हुई। अद्भुत नि म्पृहता और वीतरागता उनमें विद्यमान थी।

पचकल्याणक महोत्सव में रहते हुए यह इच्छा बनी रहती थी कि वर्धमानसागर महाराज के पास पहुँचकर कोई-न-कोई निधि प्राप्त कर लूँ। एक बड़ी कठिनता मेरे मार्ग में थी। उन्हे कन्नड भाषा बोलने का अच्छा अभ्यास था। मराठी भी वे बोलते थे। हिन्दी भाषा से उनका बहुत कम परिचय था। इसलिए अपने प्रश्न को साफ तौर पर अपने शब्दों में पहुँचाने में बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती थी। अनुवादक-दुभाषिया सज्जन की कृपा और कुशलता द्वारा मेरा भाव गुरुदेव जानते थे। कभी-कभी कोई सज्जन मेरे प्रश्न को बिना समझे ही विघ्न रूप बन जाते थे। वे कहते थे - पण्डितजी! महाराज थके हैं, अभी प्रश्न रहने दीजिये, फिर कभी पूछना। इस तरह अनेक बार मनोकामना पूर्ण नहीं होती थी। एक बार मैंने विघ्नकर्ता से कहा - “मेरे पूछने में आप विघ्न रूप क्यों बनते हैं?”

मेरे शब्दों को सुनकर महाराज बोले - “हमारी कोई परवाह न करो। तुमको लाभ मिलता है, तो ले लो। हमारा इसमें क्या नुकसान है? हम जानते हैं, तुम बड़ी दूर से, बड़े प्रेम से और भक्ति से आए हो।” इससे मेरे मार्ग का विघ्न ढीला हो गया।

प्रश्न - “महाराज! मैं तो आचार्य महाराज के बारे में कुछ जानना चाहता हूँ। यह तो बताइये कि स्वप्न में उनका दर्शन होता है या नहीं?”

उत्तर - “जागृत अवस्था के भाव स्वप्न में आते हैं। अनेक बार उनका दर्शन होता है। वे यही कहते हैं - अपने व्रत में स्थिर रहकर आत्मचिन्तन करो।”

रुद्रप्पा की समाधि

उन्होंने आचार्य महाराज के गृहस्थ अवस्था के मित्र लिंगायत धर्मावलम्बी श्रीमन्त रुद्रप्पा की बात सुनाई। सत्यव्रती रुद्रप्पा वेदान्त का बड़ा पंडित था। वह अत्यन्त निष्कलक व्यक्ति था। वह अपने घर में किसी से बात न कर दिन भर मौन बैठता था। कभी-कभी हमारे घर आकर आचार्य महाराज से तत्त्वचर्चा करता और उनका उपदेश सुनता था।

प्रश्न - “महाराज! जिनवाणी के ग्रन्थ तो सभी अच्छे हैं, किन्तु यह बताइये कि किस शास्त्र पर आपका विशेष प्रेम है?”

धवल शास्त्र

उत्तर - “जिस ग्रन्थ द्वारा मेरा कल्याण हो, वही प्रिय है। हमे आत्मकल्याण की बात बतानेवाले शास्त्र सुनकर आनन्द आता है। समयसार अच्छा ग्रन्थ है, अन्य ग्रन्थो मे आनन्द आता है, किन्तु धवल ग्रन्थ सुन कर बहुत आनन्द आता है। उसका सूक्ष्म वर्णन जब हम सुनते हैं, तब उसमे मन खूब लगता है। उस भगवद् वाणी को सुनकर हृदय अत्यन्त हर्षित होता है।” उन्होने यह भी बताया - “बाल्यकाल से ही भक्तामर पर हमारा बड़ा विश्वास रहा है, प्रारम्भ से ही उसमे आनन्द आता था।”

उन्होने कहा - “हमारे परिवार के लोग रात्रि-दिन धर्मकार्य मे मग्न रहते थे। कोई निर्ग्रन्थ आते, तो उपाध्याय आकर हमारी मातुश्री को कहता था - “आइ (माँजी) साधु महाराज आये हैं। वे हमारे घर की तरफ आते, तब हमारी माता सदा उनको आहार दिया करती थी।”

आत्मीयतापूर्ण दृष्टि

वहाँ बाहुबली मे मैने देखा, अपार जन समुदाय वर्धमानसागर महाराज के दर्शनो को आता था। आसपास के सैकड़ो गाँवो से लोग उनके समीप बडे प्रेम, भक्ति और आत्मीयता से आते थे। उनको देखकर महाराज ने हम से कहा - “यह सब हमारे मित्र, प्रेमी लोग हैं। आसपास के लोग हमसे मिलने आये हैं। ये हमारे मित्र हैं। इससे यह नहीं समझना कि हमारा इनके प्रति मोह है। ये ही क्यों, सारा जगत् हमारा बन्धु है। प्राणी मात्र हमारे मित्र है। बताओ! शत्रु कौन है? हमारे शत्रु तो आठो कर्म हैं। उनके सिवाय सारे जगत् मे सब हमारे बन्धु हैं, मित्र हैं।”

कुछ लोग उनसे बाते करते थे तब उनके कोई हितचिंतक चाहते थे कि वे लोग चुप रहे। महाराज बोले - “हमे कष्ट पडता है, इसकी कोई चिन्ता नहीं है। लोगो का समाधान होना चाहिए।” अनेक लोग जब एक साथ बोलते थे, तब महाराज कहते थे - “अरे भाई! मुख तो एक है, किस-किस से बोले?” फिर भी वे सब को सान्त्वना देते थे। मधुर शब्द बोलते थे। कहते थे - “देखो! बेचारे बड़ी भक्ति से आते हैं, प्रेम से बोलते हैं, उनको कठोर बात कैसे कहूँ?”

इनका स्वभाव सदा से बड़ा मृदुल रहा है। बालमडली का इन पर बड़ा प्रेम रहता था। अपनी माता से भी अधिक इनके प्रति बच्चों का प्रेम रहता था। सब इनके पास आकर प्रसन्न रहा करते थे। इनके पास आने वाला हर्षित ही होता था।

दीक्षा की चर्चा

वे कहते थे - “मुझ पर सब का बड़ा प्रेम था, किन्तु मैंने जिस दिन घर छोड़ा, तो कुटुम्ब परिवार की तरफ फिर दृष्टि नहीं दी। छोटा भाई कुमगोडा रोता था। वह तो मूर्छित हो गया था। बहिन कृष्णाबाई जोर-जोर से रो रही थी। मैंने वैराग्य में प्रवेश करते समय पीछे नहीं देखा। एक झटका देकर सारे प्रेम के बन्धन को तोड़ दिये।”

मार्मिक उपदेश

२० फरवरी को वर्धमानसागर महाराज का बड़ा मार्मिक उपदेश हुआ। वैसे वे उपदेश कम देते थे। कारण, आचार्य महाराज ने उन्हें आत्म-रत रहने को कहा था, अतः वे आत्मा के ध्यान में सदा सावधानी रखते थे। अनुराग शरीर पर नहीं था। या तो आत्मरत थे, या परमात्मरत थे। मेरे निवेदन पर उन्होंने उपदेश देना स्वीकार किया और कहा - “भव्य जीवो! इस पचकल्याणक में आकर तुमने पुण्य का बन्ध किया। यह जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता रहा है। कभी पुण्य किया, कभी पाप कमाया। पाप तो पाप है ही, परमार्थ से पुण्य भी उसी प्रकार है। दोनों एक रूप हैं। अपनी आत्मा का कल्याण करो। आत्मा का चिंतन किये बिना पाप का नाश नहीं होता। आत्मध्यान करने से मोक्ष मिलेगा। बाबा! हमारा कहना है कि मोक्ष को जाने का प्रयत्न करो। जब आत्म-ध्यान न बने तो धर्मध्यान करने का उद्योग करो।”

प्रश्न - “महाराज! कृपाकर बताइए, क्या आपका मन लगातार आत्मा में स्थिर रहता है या वह अन्यत्र भी जाता है?”

उत्तर - “हम आत्मचिंतन करते हैं। कुछ समय के बाद जब ध्यान छूटता है, तब मन को फिर आत्मा की ओर लगाते हैं। कभी-कभी मोक्षगामी त्रेसठ शलाका पुरुषों का चिंतन करता हूँ। कभी-कभी बुरा भी चिंतन हो जाता है। उस समय मैं मन को कहता हूँ, अरे बिना कारण बुरे ध्यान में क्यों रहता है, शुभ ध्यान में रह। इससे मन फिर ठिकाने पर आ जाता है। मैंने भला बुरा सब कुछ आप से कह दिया।”

अपने अन्तःकरण का कितना निर्मल, सच्चा और प्रामाणिक वर्णन इन साधुराज ने किया, यह विचारवान ही सोच सकता है। उनके जीवन में कृत्रिमता तथा कुटिलता का

जग भी सबध नहीं था। जनसाधारण के लिए जटिल वाता का निरूपण करना, ऐसी बातें कहना जो उनकी समझ में न आये, ओर व भ्रम भँवर में फँस जाँय, यह बात वे ठीक नहीं समझते थे। उन्होंने कहा था - “सर्व साधारण को सीधा रास्ता बताओ। धीरे-धीरे प्रयत्न करने पर कठिन मार्ग भी माध्य हो जाता है।”

प्रश्न - “महाराज! आपके जाप का क्या क्रम रहता है?”

उत्तर - “प्रभात में अठारह माला, मध्याह्न में ५ माला, मध्या के समय ३६ माला, मध्यरात्रि में ५ माला फेरता हूँ और अन्य समय में मैं आत्मा का ध्यान करता हूँ।”

जो लोग सोचते हैं, आत्मा की बातें कहे, समय में क्या धरा है, शरीर को खूब माल खिलाओ। जगत् का वे भव, जड पुद्गल का रागरग देखो, ओर आत्मा का आनन्द लूटो, वे लोग असली तत्त्व के समीप नहीं पहुँच पाये। वर्धमानसागर महाराज के जीवन का निकट से निरीक्षण करने पर यह ज्ञात हुआ कि असयमी जीवन को छोड़कर समय की शरण को ग्रहण करनेवाला विचारवान व्यक्ति आत्मा को विषयो की दासता से निकालकर अपने स्वरूप के उन्मुख बनाने का सुअवसर प्राप्त करता है। परिग्रह का पिशाच सहज चंचल मन को और शैतान बना देता है। अब तो लोग उस शैतान मन के समर्थन में शास्त्रों का आधार खोजते फिरते हैं। यह मार्ग ठीक नहीं है। समय से जीवन को समलकृत करनेवाला साधु किस प्रकार निराकुल हो आत्महित में सलग्न हो जाता है, यह बात ऐसे सद्गुरु के जीवन को देखने से भली प्रकार समझ में आ जाती थी।

बाहुबली क्षेत्र में पचकल्याणक के पश्चात् महाराज लोगों के आग्रह पर समीपवर्ती कुम्भोज ग्राम में गये। जाते समय एक धर्मात्मा विद्वान् महाराज के समीप लाये गये, जिनके अधोभाग को लकवा (पक्षाघात) ने बेकाम बना दिया था। उन्होंने उन साधुराज को प्रणाम किया। महाराज ने कहा - “तुमने पहिले पुण्य किया था, तो तुमको धन-वैभव सभी कुछ मिला, किन्तु तुमसे कोई पाप बन गया, जिससे तुम्हारे आधे अङ्ग में पक्षाघात का कष्ट हो गया। अब तुम सदा धर्म का ध्यान रखना।”

उद्बोधक चर्चा

महाराज काष्ठ के आसन पर अवस्थित थे। उनके निकट एक घड़ी रखी थी। घड़ी को देख मैंने उनसे मधुर उत्तर पाने की लालसावश पूछा - “महाराज! यह घड़ी आपकी है?”

उत्तर - “यह घड़ी मेरी कैसे? पाम म बेटा हुआ क्षुल्लक इसमें चाबी देता है। अँधेरे में यह चमकती है। जिनसेन भट्टारक ने यह घड़ी लाकर दी थी। पहिले यह घड़ी आचार्य महाराज के यहाँ थी। इसका हमारा क्या सम्बन्ध है?”

प्रश्न - “महाराज! यह घड़ी आपकी नहीं है, हम तो आपके हैं न?”

उत्तर - सम्पित वदन से वे बोल उठे - “आप भी हमारे हो, तो हमारे साथ चलो। हमारे साथ क्यों नहीं रहते? ओरे बाबा! इस जगत के मध्य में यह शरीर भी माझा नहीं, मेरा नहीं है। कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है। ‘अन्तकाले कोणी नाही, जासी एकला’ - अन्तकाल में जीवका कोई माथी नहीं है, वह अकेला जायगा।”

एक साधारण से प्रश्न पर केसी ज्ञान भरी बातें वर्धमानसागरजी के मुख से मिलीं। इन्हीं गुणों के कारण तो इनके नाम में सागर शब्द है। ससार-प्रसिद्ध सागर में खारा पानी रहता है, किन्तु इस सागर में प्रेम भरा मधुर जल विद्यमान है, जिसका पान करने से मंसार की तृषा मिटती है। वर्धमानसागर महाराज आचार्य शान्तिसागर महाराज के बड़े भाई थे। दोनों समान दिखते ही नहीं थे, वरन् दोनों के अन्तःकरण में भी समानता का दर्शन होता था। मैं सोचता हूँ, इस काल में मुमुक्षुओं के लिए शान्तिसागर महागज सूर्य थे, तो वर्धमानसागर महाराज चन्द्र सरीखे लगते थे।

नांद्रे में चातुर्मास

भादो सुदी पचमी २९ अगस्त सन् १९५७ के प्रभात में नांद्रे जनपद दक्षिण सातारा जिला में वर्षाकाल व्यतीत करने वाले महामुनि आचार्यकल्प १०८ श्री वर्धमान सागर महाराज के चरणों की अभिवदना करने का मुझको पुनः परम सौभाग्य मिला। उनके मुख पर दिव्य आभा थी। शरीर सतेज था। ९५ वर्ष की अवस्था में भी उनका शरीर पूर्णतया नीरोग देख आश्चर्य हुआ। आजकल लगभग ६० वर्ष की अवस्था वाला व्यक्ति पर्याप्त वृद्ध दिखने लगता है, किन्तु ९५ की आयु में निर्ग्रन्थ-शिरोमणि वर्धमानसागर महाराज की शरीर-स्थिति आश्चर्य उत्पन्न करती थी। निर्दोष रीति से महाव्रतों के पालन द्वारा उनकी आंतरिक स्वस्थता अपूर्व थी। ऐसी अलौकिक पूज्य आत्मा के सान्निध्य से अवर्णनीय शांति मिली। लम्बे प्रवास का कष्ट तो उनके दर्शन से तथा उनके मंगलमय आशीर्वाद से तत्काल दूर हो गया।

मैं वर्धमानसागर महाराज के पास एक विशिष्ट उद्देश्य से गया था। स्वः आचार्य शान्तिसागर महाराज के तपोमय उज्ज्वल जीवन के विषय में उनसे कोई बात ऐसी मिल

जाय, जो म्व-पर कल्याण की महत्त्वपूर्ण मामग्री रूप हो तथा वर्धमानसागर जी के जीवन को निकट में देखने पर यह पता चलेगा कि माता सत्यवती ने केमे विलक्षण पुत्रों को जन्म दिया कि जिनकी आंतरिक विभूति की समता करने वाला समस्त जगत् में कोई नहीं है। दो सगे भाइयों का इम हीन सहनन तथा चंचल चित्तवाले काल में निर्दोष दिगम्बर योगिराज का जीवन व्यतीत करना सचमुच में अद्भुत बात है। वर्धमानसागर महाराज को देखकर भी आचार्यश्री की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है।

वर्धमानसागर महाराज की मातृभाषा कानडी है। उस प्रात में यह एक विलक्षण बात है कि जैन लोगो की घरेलू बोली कानडी है, किन्तु जब वे अन्य लोगो से बातचीत करते हैं, तो मराठी भाषा का प्रयोग करते हैं। उस प्रात में रहनेवाले, जैनो तथा हिन्दू आदि जैनैतरा की सख्या की दृष्टि से अनुपात उत्तर प्रात की अपेक्षा विपरीत है। बहुत से ऐसे ग्राम हैं, जहाँ ८० प्रतिशत, ९० प्रतिशत सख्या जैनो की पाई जाती है। शेष सख्या इतर संप्रदाय वालो की है।

करुणापूर्ण हृदय

मेरे प्रणाम करने पर महाराजश्री ने अपना मंगलमय पवित्र आशीर्वाद देते हुए घर में सबका कुशल वृत्तान्त पूछा। मैंने विनयपूर्वक कहा - “महाराज! आज दशलक्षण पर्व का प्रारम्भ है। मैंने आज उपवास का निश्चय किया है।”

वे बोले - “तुम हजार-आठ सौ मील की दूरी से अनेक कष्टों तथा असुविधाओं को सहन करते हुए यहाँ आए हो, आजका उपवास ठीक नहीं है। तुम्हें शास्त्र वाचन का भी परिश्रम उठाना है।”

मैंने कहा - “महाराज! कल सध्या को बारामती के पास लासुर्णा ग्राम में १०८ तपस्वी गुरु धर्मसागर महाराज का दर्शन हुआ था। उन्होंने कहा - पचमी महापर्व का प्रारम्भिक दिन है, इसलिए उपवास करना चाहिए।” मैंने उनसे कहा था - “आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।” मेरी यह बात सुनकर वर्धमान महाराज का करुणापूर्ण हृदय प्रभावित हुआ।

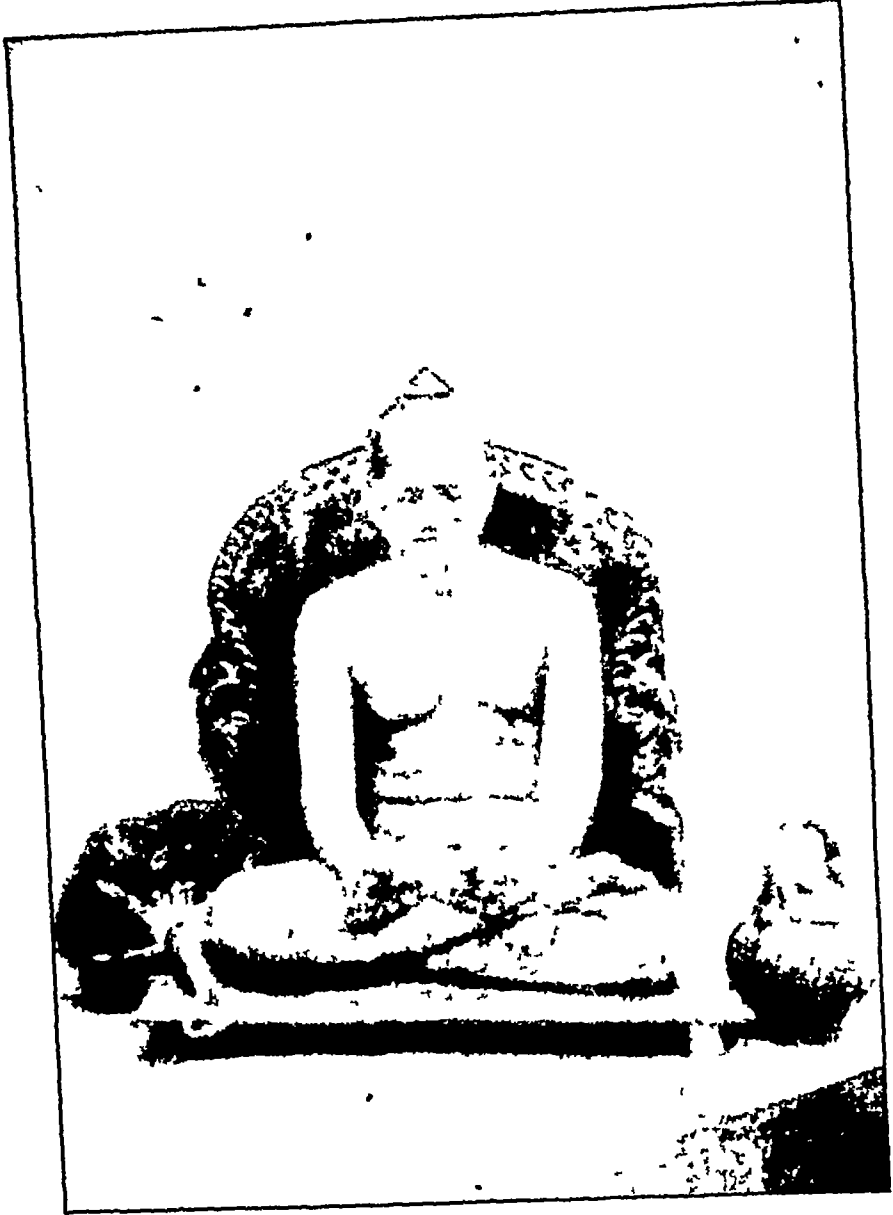
वे बोले - “पचमी महापर्व का प्रथम दिवस है, किन्तु अन्य बातें भी विचार योग्य हैं। आचार्य धरसेन स्वामी के पास जब भूतबलि-पुष्पदत्त दो मुनिराज सुदूर प्रदेश से यात्रा करते हुए पहुँचे थे, तब आचार्य ने उन शिष्यों को भी दो दिन विश्रान्ति का समय दिया था।”



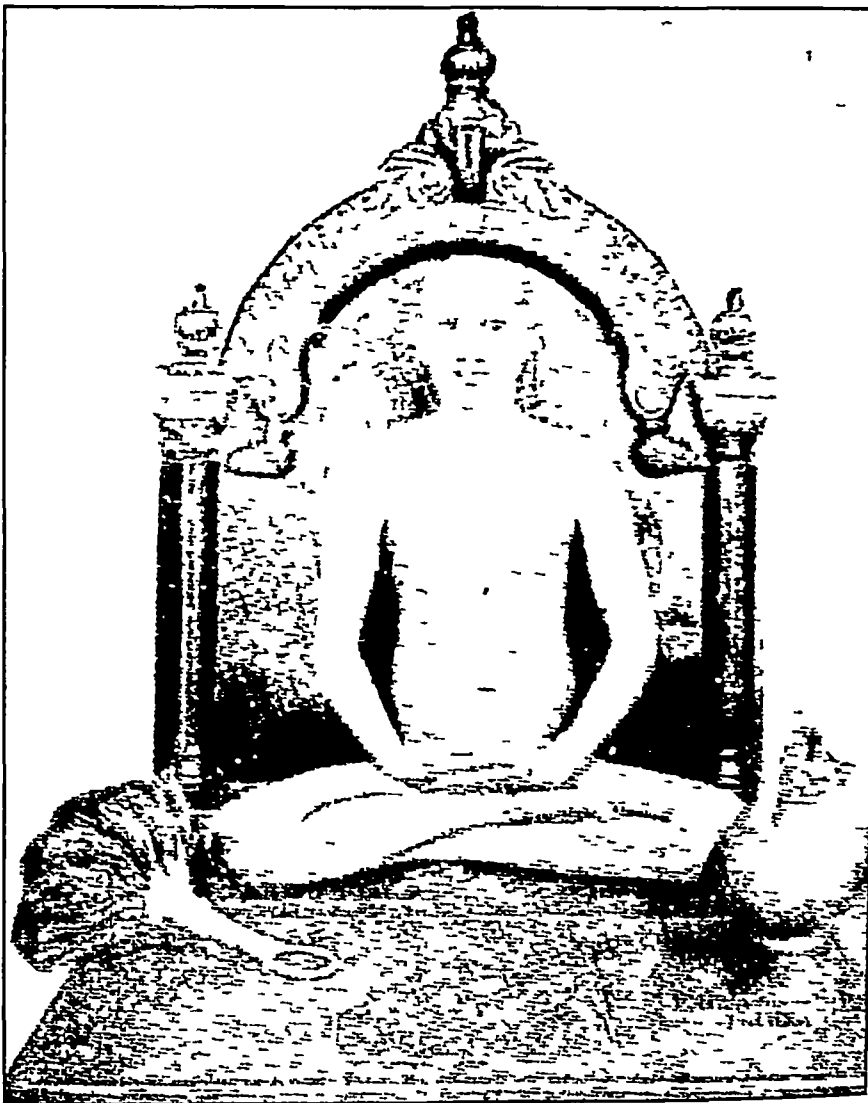
चारित्र्यकर्तृ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज



वयबुद्धिवृद्ध वर्धमान महाराज



आचार्य धर्मसागरजी महाराज



परम कारुणिक नेमिसागर महाराज



पायसागर महाराज आहार ले रहे हे



वैराग्यमूर्ति पायसागर महाराज



तपोधन धर्मसागर महाराज



छागिणज पूज्य वेशभूषण - नहराज



आचार्य धर्मनागर नहराज
लेखक के पूज्य पिताश्री कुँअरनेन जी को नन्दोदित करते हुए

मैं चुप हो गया। कुछ न कहकर मैं अन्य चर्चा में लग गया। मैंने प्रतिज्ञानुसार उपवास किया ही। यह एक छोटी सी बात है, किन्तु इससे वर्धमानसागर महाराज के परम कारुणिक अतः करण की एक झलक प्राप्त होती है।

महाभिषेक

कुछ समय के पश्चात् वर्धमान महाराज जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के दर्शनार्थ उठे। बड़े वैभव से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक हुआ। महाराज बड़े ध्यान से देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक देख रहे थे। महाराज की ओर देखने से कभी-कभी ऐसा लगता था कि कहीं हम आचार्यश्री शातिसागर महाराज के समीप ही तो नहीं बैठे हैं। विशेषकर जब वर्धमान महाराज गर्दन झुकाकर भगवान को प्रणाम करते थे, तब ऐसा लगता था, मानो शातिसागर महाराज का ही दर्शन हो रहा हो। यहाँ भगवान के अभिषेक में दूध से परिपूर्ण घडो का उपयोग होता था। दही, घी, इक्षु रस आदि से पूर्ण घडो से प्रभु का अभिषेक होता था।

पंथभेद से परे

उत्तर प्रान्त के कुछ बधु कहते हैं कि यह पद्धति दक्षिण के जैनो ने प्रचलित की है। आगम से इसका कोई सबध नहीं है। कोई-कोई कहते हैं कि यह तो बीस-पथ की मान्यता है। हमारे तेरा-पथ में ऐसा नहीं बताया। एक बार मैंने महामुनि धर्मसागर महाराज से पूछा था - “महाराज आप तो दक्षिण के निवासी हैं, अतः आप बीस-पथ को मानते हैं या तेरा पथ को।” वे कहने लगे - “हमने सारा ससार का प्रपच छोड़ा। पथभेद से या प्रातीयता से हमारा क्या प्रयोजन है? हम तो आगम में कही बात को मानते हैं। आर्ष परपरा को शिरोधार्य करना ही हमारा पथ है।” कुदकुद स्वामी ने लिखा है -

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।

देवा य ओहिचक्खु सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥ प्रवचनसार - २३४

- साधु का नेत्र आगम है। सर्व जीवो के नेत्र चक्षु इन्द्रिय रूप है। देवो के अवधिज्ञान रूप नेत्र हैं। सिद्ध भगवान के सर्वत्र नेत्र हैं।

आगम पथी

इस प्रसंग में आचार्य वीरसागर महाराज की एक मधुर उक्ति स्मरण आती है। जयपुर में अप्रैल सन् १९५७ में उन्होंने मुझसे कहा था - “हम तो तेरा-पथी हैं। तुम

जिनेन्द्र का अभिषेक देखते धं। वर उपवास का २८ वाँ दिन था। जब भ महाराज के ठीक समीप खड़ा था। मैंने निकट में देखा कि वे अभिषेक को अत्यन्त तल्लीनता से देख रहे थे। उससे स्पष्ट होता था कि इन निर्ग्रन्थगज को सल्लेखना की उत्कृष्ट तपोभयी वृत्ता में भी इस महाभिषेक दर्शन से महान लाभ होता था, अतः गृहस्थों को तो यह अभिषेक अनन्त कल्याणदाता अवश्य होगा। इस सम्बन्ध में पक्ष का मोह छोड़कर हमें आगम से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

आगम और पंचामृत अभिषेक

कोई-कोई स्वाध्यायप्रेमी भाई कहते हैं, आगम में दूध, दही, रस आदि में अभिषेक नहीं लिखा है। उन वधुओं के लिए हम अपने मान्य ग्रन्थों के दो चार प्रमाण देते हैं।

हरिवंश पुराण आचार्य जिनसेन स्वामी रचित है। वे महाजानी एवं आगम के मर्मज्ञ दिगम्बर जैन आचार्य हुए हैं। उनके हरिवंश पुराण के बाईसवें सर्ग में कहा है कि वासुपूज्य भगवान के जन्म से पुनीत चपापुरी में वसुदेव ने गधर्वमेना के साथ फाल्गुन के अष्टाहिका महापर्व में जिन मंदिर में जाकर बड़े हर्ष से क्षीर, इक्षु रस, दधि, घृत, जलादि के द्वारा जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। उन्होंने हरिचंदन की गंध, शालि तदुल, नाना प्रकार के पुष्प, निर्दोष नैवेद्य, दीपक, धूप से भगवान की पूजा की थी। ग्रन्थ के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं -

क्षीरक्षुरस-धारोधै-वृत्तदध्युदकादिभिः ।

अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चिता नृसुरासुरैः ॥२१॥

हरिचंदन-गंधाद्यै र्गंधशाल्यक्षताक्षतैः ।

पुष्पैर्नानाविधैरुद्धैर्धूपैः कालागरुद्धवैः ॥२२॥

दीपैर्दीप्त-शिखाजालै-नैवेद्यैर्निर्वद्यकैः ।

तावानर्चतुरर्चा तामर्चना-विधिकोविदी ॥२३॥

पूजा के अंत में वसुदेव ने अढाई द्वीप के १७० धर्मक्षेत्रों में त्रिकाल सम्बन्धी जिनेन्द्रादि की इन भव्य शब्दों द्वारा वदना भी की थी -

द्वीपेष्वर्यर्धतृतीयेषु स-सप्ततिशतात्मके ।

धर्मक्षेत्रे त्रिकालेभ्यो जिनादिभ्यो नमोस्त्विति ॥१७॥

समाज का अत्यन्त आदरणीय ग्रंथ पञ्चपुराण भी इस विषय में हर्षिवंशपुराण का समर्थन करता है -

गम के वनवास के पश्चात् भगत शासन करते थे। भगत ने द्युति नाम के महान् आचार्य के समीप निश्चय लिया कि 'पञ्चदर्शनमात्रेण ऋषिष्ये मुनिताम्' - गम के दर्शन मात्र ने ही मुनिव्रत धारण कहेगा। उस समय आचार्य द्युति महागज ने कहा था, कि इसके पूर्व तुमको श्रावकों के व्रत धारण करना चाहिए। उन्होंने उपदेश में कहा था - "अग जो गत्रि कूँ आहार का त्याग करै सो गृहस्थ पद के आरंभ विषै प्रवृत्तै है तो हू शुभ गति के सुख पावै। जो पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगन्ध पुष्पनिकरि भगवान कृ अर्चै सो पुष्पक विमान कूँ पाय यथेष्ट क्रीडा करै।"

(दौलतगम जी की भाषा टीका पृ. ३०८ पर्व ३२)

विंशेणाचार्य गच्छित मूल पञ्चपुराण के वाक्य ध्यान देने योग्य हैं -

य. कगेति विशावर्गमाहारपरिवर्जनम्।

नवरंष्ट्रवृत्तोपि गत्यनौ मुखदां गति ॥ सर्ग ३२-१५७ ॥

नामोदैर्भूजलोद्धृतै. पुष्पैर्गोजिनमर्चयति।

विमानं पुष्पकं प्राप्य न क्रीडति यथेष्टयितम् ॥१५९॥

इस आगम के प्रकाश में पुष्पों द्वारा भी भगवान की पूजा का निषेध नहीं होता है। जिन सिद्ध पूजा को श्रावक लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं, उसमें भी मंदार, कुद, कमल आदि वनस्पति से उत्पन्न पुष्पों द्वारा सिद्धचक्र की वंदना की गई है -

मन्दार-कुंद-कमलादिवनस्पतीनाम्, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वगमिद्धचक्रम् ॥

अभिषेक का महाफल

पञ्चपुराण की भाषा टीका में दौलतगम जी ने लिखा है - "जो नीर कर जिनेन्द्र का अभिषेक करै, सो देवनिक मनुष्यनिर्तै सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका गज्याभिषेक देव-विद्याधर करै। अग जो दुग्ध करि अर्हंत का अभिषेक करै, सो क्षीरमाग के जल समान उज्ज्वल विमान विषै णमकांति धारक देव होय, वहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अग जो दधिक नर्वज वीतगग का अभिषेक करै, सो दधि समान उज्ज्वल यशक पाय करि भवोदधि कृतै। अग जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै, सो स्वर्ग विमान में महाबलवान देव होय णगग अनंतवीर्यकृ धरै। अग जो इंदु गमकर जिननाथ का

अभिषेक को, सो अमृत का आहाती सुगन्धर होय नरेश्वरपद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर
पद पावै । अभिषेक के प्रभाव करि अनेक भव्यजीव देव अर इन्द्रनिकर अभिषेक पावते
भए, तिनकी कथा पुराणनि मे प्रसिद्ध हे ।” (पृष्ठ ३०९)।

मूल सस्कृत ग्रंथ के ये पद्य पढ़ने योग्य हैं -

अभिषेक जिनेन्द्राणां कृत्वा मुरभिवाग्निना ।

अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥

अभिषेकं जिनेन्द्राणा विधाय क्षीरधारया ।

विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥

दधि-कुंभैर्जिनेन्द्राणा यः करोत्यभिषेचनं ।

दध्याभ-कुट्टमे म्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥

सर्पिणा जिननाथानां कुरुते योभिषेचनम् ।

कातिद्युति प्रभावाद्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

अभिषेकप्रभावेण श्रूयते वहवो बुधाः ।

पुराणेनतवीर्याद्या द्युभूलब्धाभिषेचना ॥१६९॥

विचारकों को आचार्य देवसेनकृत भावमग्रह की ४४२ गाथा तथा
जटासिहनदि आचार्य के वरांगचरित्र के सर्ग २३ के श्लोक ७७ को देखकर ज्ञात
होगा, कि यह परंपरा आगम पर आश्रित है । कल्पना नहीं है ।

अत्यन्त पूज्य माने जाने वाले ग्रन्थराज जयधवला में तो चंदन लगाना, पुष्प
चढ़ाने आदि का वर्णन आता है, जिसे लोग वीस पंथियों की मान्यता कह दिया करते हैं ।
आगम के विचार करते समय हमें न्याय बुद्धि से अपने पक्ष का मोह छोड़कर आगम की
ओर अपनी बुद्धि को लगाना चाहिए । जयधवला टीका की रचना करने वाले आचार्य
वीरसेन मूल सध के महान् आचार्य हुए हैं, जिनकी बुद्धि के कोशल को देखकर सर्वज्ञ के
सद्भाव में शका दूर हो जाती थी । लिखा है -

यस्य नैसर्गिकी प्रज्ञा दृष्ट्वा सर्वार्थगामिनीम् ।

जाताः सर्वज्ञसद्भावे निरारेका मनीषिणः ॥२१॥

(जयधवला प्रशस्ति)

जयधवला टीका का यह कथन ध्यान पूर्वक मनन योग्य है।

शका - छहकाय के जीवों की विराधना के कारणभूत श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले होने से चौबीसो तीर्थकर सदोष है। यथा - दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावको के धर्म है। इन चारों में भोजन पकाना, पकवाना, अग्नि सुलगाना, अग्निका जलाना, अग्नि का खूतना, खुतवाना आदि व्यापारों से होने वाली जीव विराधना के बिना दान नहीं बन सकता। उसी प्रकार वृक्ष काटना, कटवाना, ईंट का गिराना, गिरवाना तथा उनको पकाना, पकवाना आदि छहकाय के जीवों की विराधना के कारणभूत व्यापार बिना जिनभवन का निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता।” इसके पश्चात् का यह कथन ध्यान देने योग्य है - “अभिषेक करना, अवलेप करना, समार्जन करना, चदन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप जलाना आदि जीववध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता।”

(जयधवला पृ १०० भाग १)

प्रतिशंका - शील का रक्षण करना सदोष कैसे है?

शंकाकार - नहीं, क्योंकि अपनी स्त्री को पीड़ा दिए बिना शील का परिपालन नहीं हो सकता, इससे शील की रक्षा भी सावद्य है।

प्रतिशंका - उपवास सावद्य कैसे है?

शंकाकार - नहीं, क्योंकि अपने पेट में स्थित प्राणियों को पीड़ा दिए बिना उपवास बन नहीं सकता, इसलिए उपवास भी सावद्य (सदोष) है। अथवा स्थावर जीवों को छोड़कर केवल त्रस जीवों को ही मत मारो, इस प्रकार का श्रावको को उपदेश देने से जिनदेव निरवद्य (निर्दोष) नहीं हो सकते। अथवा अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति-परिमख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, वृक्ष के मूल में, सूर्य के आताप में, खुले हुए स्थान में निवास करना, उत्कुटिकासन, पल्यकासन, अर्धपल्यकासन, खड्गासन, गवासन, वीरासन, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय ध्यानादि क्लेशों में जीवों को डालकर उन्हें ठगने के कारण भी जिन भगवान् निरवद्य नहीं हैं और इसलिए वे वदनीय नहीं हैं।” ऐसी शका उठाई गई है।

इस विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् ने दान, पूजादि का उपदेश अवश्य दिया है। यह कार्य करने पर भी वे निर्दोष हैं। इसमें यह हेतु दिया गया है कि - “यद्यपि भगवान् पूर्वोक्त प्रकार का उपदेश देते हैं, तो भी उनके कर्मबन्ध नहीं होता

है, क्योंकि जिनदेव के तेरहवे गुणस्थान में कर्मबन्ध के कारणभूत मिथ्यात्व, असयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का बन्ध नहीं होता है।”

उपर्युक्त कथन पर सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करने पर यह ज्ञात होता है कि भगवान के समीप पुष्प चढ़ाना आदि क्रियाएँ जयधवला के रचयिता वीरसेनस्वामी को मान्य थीं। यह उनकी व्यक्तिगत कल्पना नहीं थी। उन्होंने परम्परा से प्राप्त आगम के अनुसार ही कथन किया है। उनकी धवला, जयधवला टीकाओं से स्पष्ट होता है कि जहाँ उनको अनेक परम्पराओं का ज्ञान हुआ है, वहाँ उन्होंने विविध परम्पराओं को जैसा का तैसा बताया है, अतः उनकी प्रामाणिकता पर आशंका करना जिनेन्द्रभक्त को शोभा नहीं देता।

उपर्युक्त सक्षिप्त कथन का भाव यह है कि ऋषि-परम्परा को देखकर हमें अपनी मान्यताओं, प्रवृत्तियों या धारणाओं का सशोधन करना चाहिए। आगम के आदेश का उल्लंघन करना अकल्याणकारी है।

ऋषिवाणी की मान्यता

कहा जाता है कि कुछ प्रसिद्ध पंडित महोदयों ने जो लिखा है, उससे आर्ष परम्परा का समन्वय नहीं बैठता, तब क्या किया जाय? इस शका का समाधान स्पष्ट है कि दिगम्बर गुरु परम्परा के अनुकूल कथन को ही प्रमाण मानना चाहिए। पंडितों की वाणी यदि आर्ष-परम्परा के अनुसार है, तो वह आदरणीय है, अन्यथा उसे वीतराग की वाणी न समझकर ग्रहण नहीं करना चाहिए। निर्ग्रन्थ गुरु की वाणी पूज्य है। परिग्रही व्यक्ति श्रावक है, गुरु नहीं है। वह सत्य महाव्रती नहीं है। मुनि सत्य महाव्रती होते हैं।

रूढिवादी न बनो

यह समझना तथा तर्क करना कि दक्षिण के साधुओं ने प्रातः मोह से दक्षिण की ही पद्धति का प्रचार करना ध्येय बनाया है, अयथार्थ है। आचार्य शान्तिसागर महाराजने आगम के प्रकाश में दक्षिण में प्रचलित अनेक मूढताओं का त्याग कराया है। दक्षिण में अनेक आगम विपरीत रूढियाँ प्रचलित थीं, जिनमें आचार्य महाराज के निमित्त से शास्त्रोक्त सुधार हुआ। वे गुरुदेव कहते थे - “सदा आगम की आज्ञानुसार श्रद्धा तथा आचरण करना चाहिए। धर्मात्मा का प्राण आगम है, रूढि नहीं है।” इस कथन का

निष्कर्ष इतना ही है कि आज के विविध ज्ञान-अध्ययन-अनुसन्धान के युग में हमें अपने पक्ष का मोह छोड़कर आर्ष-परम्परा के अनुसार श्रद्धान करना चाहिए।

तपस्या द्वारा ज्ञान-विकास

वर्धमान महाराज का अनुभव महान् था। वे शास्त्रों के पंडित नहीं थे, किन्तु अनुभवपंडित तो क्या, उसके वे आचार्य थे। तपस्या के प्रभाव से उनके ज्ञान-चक्षु और विशुद्ध हो गए थे। जिस समय उन्होंने ७० वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर क्षुल्लक दीक्षा ली थी, उस समय उनकी स्मरणशक्ति सामान्य वृद्ध पुरुषों के समान क्षीण हो गई थी। क्षण भर की बात याद नहीं रहती थी। उस समय महाराज के छोटे भाई श्री कुमगोडा पाटील को खास चिन्ता हुई थी कि इस जराजीर्ण देह के द्वारा महान् तपस्या का भार कैसे उठाया जायगा? किन्तु ९५ वर्ष की वय में उनकी स्मरण शक्ति में आश्चर्यप्रद परिवर्तन दिखाई पड़ता था। उनकी स्मृति में अद्भुत विकास हो गया। यह देखकर आगम की कथनी पर विश्वास होता है कि ज्ञानावरण के ह्रास और विकास पर स्मृति का विकास और ह्रास निर्भर है। तपोग्नि द्वारा कर्मों का दाह किए जाने पर आत्मा के गुण जगमगाने लगते हैं। ऐसे तपश्चर्या के धनी गुरुजनों के समीप सद्गुणों का अद्भुत भंडार रहता है। यथार्थ में वे गुरु रत्नकरड बन जाते हैं।

पत्रों में मुनियों की निन्दा न छापे

वर्धमान महाराज कहने लगे - “आजकल साधु के चरित्र पर पत्रों में चर्चा चला करती है। उनके विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषों का विवरण छपता है। इस विषय में उचित यह है कि अखबारों में यह चर्चा न चले, ऐसा न करने से अन्य साधुओं का भी अहित हो जाता है। मार्ग-च्युत साधु के विषय में समाज में विचार चले, किन्तु पत्रों में यह बात न छपे। इससे सन्मार्ग के द्वेषी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।” उन्होंने यह भी कहा था कि - “किसी भी साधु का आहार बन्द नहीं करना चाहिए।” यथार्थ बात यह है कि इस सम्बन्ध में खून की तेजी वाले युवकों को नेतृत्व न देकर धार्मिक, शान्त, ज्ञानी एवं अनुभवी व्यक्तियों से परामर्श कर कार्य करना चाहिए। साधु के सम्बन्ध की बात बहुत गम्भीर है। दिगम्बर मुनि का पद खिलवाड़ नहीं है।

मुनिपद की कठिनता

महाराज ने कहा था - “मुनि धर्म फार (बहुत) कठिन है। मुनि होकर पैर फिसला, तो भयकर पतन होता है। नेत्रों को जागृत रखना चाहिए। ज्ञान आदि की बातों

में चूक हो गई, तो उतनी हानि नहीं होती, जितनी समयपालन में प्रमाद करने पर होती है। तलवार की धार पर सम्हालकर पेर रखा, तो ठीक, नहीं तो पेर नियम से कट जाता है। मुनिपद में चारित्र्य को बराबर पालना चाहिए।'

निर्मोही गृहस्थ

मैंने चर्चा की - "महाराज! आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है - निर्मोह गृहस्थ मोक्षमार्गस्थ, मोहवान् मुनि न मोक्षमार्गस्थ।"

महाराज ने कहा - "यदि मोहवान् मुनि है, तो वह नरकादि वृत्ति का पात्र है। मुनि यदि मोही बना, तो महापाप होता है। वह पाप वज्रलेप होता है। स्वच्छ वस्त्र का दाग सबको दिखता है। गीघ दूर नहीं होता है।" कुन्दकुन्द स्वामी ने रचणसार में कहा है, जो पूर्व आचार्य परम्परा के विपरीत कथन करता है वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। इस काल में सम्यक्त्वो मुनि और ध्रावक थोड़े हैं, मिथ्यात्वी सुलभ है। (गाथा ३ तथा ५९)

मुनि बनने की तैयारी

उनका आत्मध्यान का अभ्यास बहुत विलक्षण रहा है। इसके लिए उन्होंने बहुत कठिन परिश्रम उठाया था। जब वर्धमान महाराज जयसिंगपुर (मिर्जा के समीप) में रहने थे, तब वे वस्ती से दूर जाकर पार्क के मैदान में मध्याह्न की तेज धूप में दिगम्बर मुद्रा में बैठकर ध्यान का अभ्यास करते थे।

वैराग्य का जागरण

उन्होंने कहा था - "आचार्य शातिसागर महाराज मघ सहित जब शिखरजी के लिए खाना हुए, तब हमारे मन में वैराग्य के भाव विशेष बढ़े और हमने महाव्रती बनने हेतु अभ्यास आरम्भ किया था।" अतः उनकी आत्मा अत्यन्त विकसित तथा सुसंस्कृत हो गई थी। इस निष्कर्ष का आधार निम्नलिखित चर्चा है।

समन्वय वचन

दशलक्षण पर्व ता ८ सितम्बर को पूर्ण हो चुका था। मैंने प्रभात में गुरुदेव से कहा - "महाराज! आपके चरणों के समीप पर्व सानद पूर्ण हो गया।"

महाराज बोले - "तुम्हारे आने से लोगो का बड़ा हित हुआ। मिथ्यात्व का त्याग हुआ। धर्मबुद्धि बढ़ी।" मैंने कहा - "मुझे तो आपके दर्शन का अपूर्व लाभ

मिला।” महागज बोले - “अच्छा दोनों का लाभ हुआ। तुम्हारा तथा लोगों का भी।”
मैंने कहा - “बिल्कुल ठीक बात है।”

महागज बोले - “हम खोटी बात क्यों बोलेंगे?” कितना मुन्दर, मधुर तथा
यथार्थ उत्तर था उनका।

उच्च ध्यानी

मैंने पूछा - “महागज कल रात्रि को आपकी कुटी के अत्यन्त समीप मेरा दो
घंट के लगभग भाषण हुआ था। विषय था ‘ब्रह्मचर्य धर्म।’ क्या आपने सुना था?”

महागज - “मैं ध्यान में बैठा था। मुझे तुम्हारे व्याख्यान का कुछ भी पता नहीं
चला। ध्यान में बैठने पर पाम में तुम नक्काश भी बजाओ, तो पता नहीं चलता है। नदी
या तालाब के जल में डुबकी लगाने पर बाहर का पता नहीं चलता। मैं आत्मचिंतन में
निमग्न था। उस समय बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं था। हम जैसा होता है, वैसा बताते
हैं।”

मैं आश्चर्य में पड़ गया। महागज के अति समीप उच्च स्वर में दिए गए लम्बे
भाषण का भी उनको आत्मचिंतन काल में पता नहीं चला। धन्य है ऐसी आत्मध्यान की
अपूर्व क्षमता। स्व आचार्य ज्ञानिमागर महाराज भी अपने ध्यान के विषय में ऐसा
कहते थे कि - “हम बीच बाजार में बैठकर आत्मा का ध्यान कर सकते हैं। आत्मा में
निमग्न होने पर बाजार क्या बाधा उत्पन्न करेगा।” इस कथन का प्रत्यक्षीकरण वर्धमान
स्वामी में हमने देख लिया। भेदविज्ञानी माधु अभ्यास के द्वारा असंभव बातों को संभव
कर लिया करते हैं।

मंमार का खेल

ब्रह्मों की द्वादशी को मन्दिरजी के चौक में स्थानीय श्राविकाश्रम की छोटी-
छोटी बालिकाओं ने कुछ खेल दिखाए। उसे देखते हुए महाराज ने मुझसे कहा - “यह
तो बच्चों का खेल है, किन्तु यह संसार ही एक खेल है, आत्मा इस खेल से पृथक् है।
इसको हम नहीं भूलते हैं। मसार में जीव मोह के कारण नाचते-कूदते हैं।” वास्तव में
स्वतत्त्व की जिनको उपलब्धि हो चुकी है, उनकी दृष्टि, उनकी वाणी, उनकी चर्या में एक
विलक्षण ज्योति, मधुरता, सरसता तथा सजीवता का दर्शन होता है।

विनम्रता

एक दिन प्रभात काल में महाराज कहने लगे - “नाम सोनूवाई ओर पास में सुवर्ण न हो, उसी प्रकार में सामान्य स्थिति का हूँ ओर लोग मुझे बड़े-बड़े नामों से पुकारते हैं। कोई मुझे ‘चारित्र चूडामणि’ कहता है, कोई ‘आचार्य’ कह बैठता है। ओ वावा! ये बहुत बड़े पद हैं। मैं इतना महान् नहीं हूँ।”

मुनिपद का रहस्य

८ सितम्बर को आहार के उपरान्त महागज ने कनडी में मुझमें कुछ कहा। मैंने पूछा - “महाराज, आपने यह क्या कहा?”

उन्होंने कहा - “बैठ जाओ, यह कहा है।” बैठने के पश्चात् उन्होंने हम से पूछा - “बताओ, हमने घर छोड़कर मुनि का पद क्यों धारण किया? क्या भोजन के लिए? लज्जा छोड़कर दूसरे के घर में खड़े भिक्षावृत्ति से आहार के लिए क्या मुनिपद लिया? क्या हमारे घर में कमी थी, जो ऐसा किया?”

मैं प्रश्न सुनकर चुप था। क्या उत्तर देता। मैंने कहा - “महाराज! आप ही इस प्रश्न का समाधान कर सकते हैं।”

उन्होंने कहा - “हमने आत्मकल्याण के लिए यह पद ग्रहण किया है। आगमानुसार प्रवृत्ति के लिए यह मुद्रा धारण की है। आचार्यों ने कहा है २८ मूल-गुणों का पालन करते हुए आत्मकल्याण करो, इससे मैं ऐसा करता हूँ। यश, मान, सम्मान के लिए यह पद अंगीकार नहीं किया है। यश तथा सम्मान में क्या है? आहार के पश्चात् तुमने पूजा स्तुति की या नहीं की, इसमें क्या है? आगम कहता है - मुट्ठी भर अन्न खा ओर जा। इससे आत्मकल्याण की साधना के एक मात्र उद्देश्य से हमने दिगम्बर मुद्रा धारण की है।”

कितना मार्मिक तथा वास्तविकता से परिपूर्ण यह उत्तर था। जिनका जीवन मायाजाल में उलझा रहता है, उनके पास ऐसा उत्तर नहीं मिलता। उलझा व्यक्ति सुलझी बात कैसे करेगा? सुलझे साधु के पास जाने से बड़े-बड़ों की जीवनगुत्थी सुलझ जाती है। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण घटना देने योग्य है।

सांगली नरेश को कल्याणकारी उपदेश

नाट्रे में मानस्तम्भ पूजा उस वर्ष सन् १९५७ के ज्येष्ठ मास में वर्धमान स्वामी के

धन्य है, आत्मा के विषय में ऐसी लोकोत्तर स्थिति। जहाँ वृद्धापा मनुष्य को देह का दास बनाता है, और आत्मचितन असंभव बन जाता है, वहाँ अत्यन्त वृद्धावस्था वाले मुनि वर्धमान महाराज आत्मचितन तथा आत्म-विचार में इतने व्यस्त रहा करते थे कि गरीरादि की खबर तक नहीं रहती थी। ऐसा दिखता है कि मछली को पानी में तैरने में कोई कष्ट नहीं होता, इसी प्रकार वर्धमान महाराज की आत्मध्यान रूप सरोवर में स्थिति होती है। इस कथन की पुष्टि एक घटना से भी होती है।

महत्त्वपूर्ण घटना

एक दिन श्रीवालगोडा पाचोरे ने महाराज से प्रार्थना कर आचार्य शातिसागर महाराज के सवध की कुछ विशेष वार्ता पूछने के लिए एक बजे दिन का समय निश्चित कराया। दो बजे तक महाराज कुटी में ही रहे आए। पश्चात् शास्त्र का समय हो गया। महाराज से चर्चा का अवसर नहीं मिला। श्री पाचोरे ने महाराज से सध्या के समय कहा - “पंडितजी का आज का दिन चला गया। ८०० मील से आपके पास आए हैं। कम से कम इनको आधा घंटा विशेष चर्चा को कल से अवश्य दीजिए।”

ध्यान में रस

इस पर वर्धमानसागर महाराज के उद्गार ध्यान देने योग्य हैं - “अरे! क्या बताऊँ, भूल हो गई। मैं ध्यान में लग गया। इससे ऐसा हो गया। कल समय अवश्य दूंगा।”

जो आत्मध्यान हमारे लिए बड़ा विकट दिखता है, वह उन साधुराज के लिए अत्यन्त सरल रहा है। हमें आत्मध्यान शब्द तो अत्यन्त सरल दिखता है, किन्तु उसका अभ्यास आरंभ करते समय अत्यन्त कठिनता का अनुभव होता है। कुंदकुंदस्वामी ने समयसार में लिखा है कि इस जीव ने काम तथा भोग सबधी कथा का अनंत बार अनुभव किया है, उसे सुना है। अखण्ड एकत्व युक्त आत्मा का परिचय नहीं हुआ, अतः वह इसे अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। पूज्यपाद ऋषिराज का कथन ध्यान देने योग्य है, कि योग-ध्यान की प्रारंभिक अवस्था में बड़ी कठिनता का अनुभव होता है। इस स्थिति में बाहर सुख प्रतीत होता है और अंतरंग में स्थिति दुःख लगती है, किन्तु सम्यक् अभ्यास होने पर स्वरूप में अवस्थिति आनंदप्रद होती है और स्वरूप से च्युत होकर बहिर्मुख होना अप्रिय लगता है।”

आत्म-निमग्नता का उपाय

ऐसी स्थिति में प्रायः सभी लोग पूछते हैं कि आत्मा में किस प्रकार लीनता हुआ करती है? मन की चंचलता क्षण भर दूर नहीं होती। उस चंचलता को कैसे दूर किया जाय? इस प्रश्न का सुन्दर समाधान वर्धमानसागर महाराज के पास से मुनिदीक्षा लेने वाले १०८ पूज्य समतभद्र महाराज के उस कथन से हो जाता है, जो उन्होंने भद्र परिणामी फ्रांस के विद्वान् लियोन वेनसाइमन को बाहुबली क्षेत्र में आने पर दिया था।

कषाय निग्रह

समतभद्र महाराज ने कहा था - “मानसिक शांति का एक मात्र उपाय कषायो-क्रोधादि विकारों की मदत है। इन कषायों की मदत केवल इच्छा करने से नहीं होती, किंतु दैनिक अभ्यास द्वारा संपन्न होती है। प्रति दिन का संस्कार आवश्यक है। इन क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप कषायों से ही आत्मशुद्धि में विकृति उत्पन्न होती है और मन क्षुब्ध होकर अशांत बनता है। वह चित्त को सम और सतुलित नहीं रहने देता, प्रत्युत विचार, वाणी तथा आचार त्रयी की सुसंगति को नष्ट करके विरोध उत्पन्न करता है। विसवाद का निर्माण करता है। जीव के सारे दुःख तथा विफलताओं का मूलकारण यही है। अतः जितने अंश में कषाय दूर किया जाता है, उतने अंश में मनुष्य सुख और शांति पाता है। मानवीय मन से जहाँ कषाय दूर हुए कि इस मानव का अन्तर्देव ईश्वर हो चमकता है, अतः यदि सुख-शांति चाहते हो, तो सब से पहले कषायों को जीतो। जैनधर्म का साररूप संदेश यही है।”

“अतर्मुखी दृष्टि (Introvert) करके आत्म-स्वरूप का चिंतन करने से मन व्यर्थ के कल्पना जाल में नहीं फँसता। ज्यो-ज्यो दृष्टि अतर्मुखी होगी, त्यो-त्यो निरर्थक विचार न्यून होंगे और मन स्वयं स्वस्थ होगा।”

“स्वाध्याय द्वारा भी निरर्थक विचार रुकते हैं। मनुष्य का मन बदर जैसा चंचल है, सदा भटकता रहता है। जिधर लक्ष्य हुआ, उधर ही मन दौड़ जाता है, अतएव मन को अच्छे स्थान पर लगाना चाहिए। यदि अतर्मुख होकर आत्मचिंतन का अभ्यास नहीं होता, तो धर्मचर्चा तथा स्वाध्याय में मन को लगाना श्रेयस्कर है। स्वाध्याय में लगे रहने से मन में निरर्थक विचार उठने का अवसर ही नहीं रहता।”

“अन्य प्रकार का बाह्य उत्कर्ष कितना भी हो, उस पर आत्मविकास निर्भर नहीं है। आत्मविकास के लिए परिणामों में विशुद्धि आवश्यक है। विकारी मानव कितना

ही बड़ा और मान्य हो, अध्यात्मक्षेत्र में वह अबोध बालक ही है। वहाँ उसकी कुछ भी महत्ता नहीं है। वह विकार के वश में है, जिसका मुख्य कारण मन की निर्बलता और वस्तु-स्थिति का अज्ञान है। जिसका मनोबल बढ़ा है तथा जिसको वस्तुतत्त्व का वास्तविक ज्ञान है, वह सहसा विकार के आधीन नहीं होता। प्रबल कर्मोदय से कदाचित् विकार उत्पन्न होवे, तो भी वह तत्त्वज्ञान के बल से उस पर अधिकार प्राप्त करता है। इसके विपरीत यदि अतरंग शक्ति व ज्ञान का विकास नहीं हुआ है, तो छोटे छोटे कारणों से ही मनुष्य विकार के वश होकर पतनोन्मुख होता है। अतः आत्मविकास की इच्छा करनेवालों को तत्त्वाभ्यास द्वारा मनोबल को बढ़ाने का प्रयत्न करना उचित है।”

आचार्य शातिसागर महाराज कहते हैं, जिस प्रकार बार-बार रस्सी की रगड़ से कठोर पाषाण में गड़ढा पड़ जाता है, इसी प्रकार अभ्यास द्वारा इन्द्रियों वशीभूत होकर मन में चंचलता नहीं उत्पन्न करती हैं। एक बार मैंने आचार्य महाराज से पूछा था कि - “आप सतत स्वाध्याय करते हैं, क्या मन रूपी बदर की चंचलता दूर करने को यह कर रहे हैं।” महाराज ने कहा था - “हमारा मन हमारे आधीन है। वह चंचल नहीं है।” अतएव आत्मचितन के विषय में ऐसे योगियों का अनुभव ही जन-साधारण का मार्गदर्शक बन सकता है। पूज्यपाद स्वामी का कथन है - “रागद्वेषादि की लहरो से जिनका मन रूपी जाल चंचल नहीं है, वे आत्मतत्त्व का दर्शन करते हैं।” अतएव सच्चा आत्मचितन का अभ्यास सराग मार्ग का आश्रय छोड़ वीतराग के चरणों का शरण अंगीकार करने से प्रारम्भ होता है। अनेक लोग आत्मचितन तथा ब्रह्मदर्शन की लम्बी चौड़ी बातें हाँका करते हैं, किन्तु यथार्थ बात यह है कि सर्वज्ञ, वीतराग भगवान के मार्ग में चलने वाले जीव को ही यह सौभाग्य मिलता है, अन्य को नहीं। मद कषायजन्य शांति को लोग ब्रह्मदर्शन कहा करते हैं। आत्मानन्द मिथ्यात्वी को नहीं होता।

एक बात यह भी है कि पुरुषार्थी तथा उद्योगी व्यक्ति ध्येय को सिद्ध करता है। प्रमादी तथा विषयो का दास बड़ी-बड़ी बातें बनाया करता है। उसे सफलता कभी नहीं मिलती। वर्धमानस्वामी की आत्मा उच्च तथा सुसंस्कृत स्वयं सरलता से नहीं बन गई है, इस कार्य के लिए उन्होंने बहुत पुरुषार्थ भी किया था।

उपसर्ग की चर्चा

मैंने २ सितम्बर को कहा - “महाराज! कहते हैं आचार्य शातिसागर महाराज के समान आप पर भी सर्पादि का उपसर्ग आया था।”

महाराज बोले - “तुम्हे कैसे मालूम? किसने कहा?”

मैं चुप हो गया, महाराज गम्भीर थे। मैंने कहा - “महाराज! आत्मदेव ने कहा है।” वे शांत हो कहने लगे - “हम क्षुल्लक दीक्षा लेने के पश्चात् दक्षिण के बाहुबली भगवान की वन्दना निमित्त कुछ श्रावको के साथ दक्षिण कर्नाटक प्रान्त की तरफ गए थे। सब श्रावक एक जगह १० बजे ठहर जाते थे। उस समय हम एकान्त स्थान को देखकर ११ बजे से १ बजे दिन तक ध्यान करते थे। २ बजे वापिस आकर आहार करते थे। हुम्मच पद्मावती के स्थान पर हम पहुँचे। वहाँ हम दोपहर को एक पहाड़ी पर चढ़े। वहाँ चार-पाँच हाथ लम्बा बड़ा मोटा सर्प मिला। मुख से वह फुस-फुस शब्द करता था। वह हमारे पास आया। एक गज की दूरी पर था वह। हमें देखता रहा था। उसने शरीर का स्पर्श नहीं किया। कुछ समय बाद वह मन्दिर में चला गया। हम उस पहाड़ी पर आगे बढ़े। वहाँ पर एक व्याघ्र मिला था किन्तु हमें कोई बाधा नहीं हुई। इसके पश्चात् हम नीचे आ गए।”

उष्ण परीषह

महाराज ने दावणगिरि की यह घटना सुनाई थी। एक बार महाराज वापसी में दावणगिरि आए। अपने क्रम के अनुसार वे एक पहाड़ी पर चढ़ गए। उँचा पहाड़ था। भीषण गर्मी थी। पहाड़ी पर एक जगह बैठकर ध्यान करने लगे। भीषण उष्णता के कारण इनको चक्कर आ गया। आँखों से दिखना बन्द हो गया। ये मूर्छित हो गए। गिर जाने से इनका मस्तक एक चट्टान से टकरा गया। रक्त की धारा वेग से बहने लगी। इनको कुछ भी पता नहीं था। कुछ समय पश्चात् हवा के लगने से होश आया। उस समय इनके सघ का एक भक्त श्रावक इनको खोजता हुआ सुयोग से वहाँ आ गया। महाराज के मस्तक को तथा आसपास की भूमि को रक्तरजित देखकर वह बहुत दुःखी हुआ। सामायिक का काल पूर्ण होने पर वह महाराज को नीचे लाया तथा योग्य परिचर्यादि का कार्य किया गया।

इस प्रकार के विकट प्रसंग इन महामुनि के जीवन में अनेक बार आए, किन्तु उनका विवरण सुनने को नहीं मिल पाया। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में उनके उग्र तपोमय जीवन की झलक मिलती है। मुनि जीवन की कठिनाइयों की भोगी विषयाध गृहस्थ क्या कल्पना कर सकता है?

आगम के अनुसार य मदा सावधानीपूर्वक कार्य किया कर्त थ। एक दिन चर्चा चली कि दुष्ट कर्त्तकी गजा मुनिगज के हाथ का प्रथम ग्राम का रूप में ग्रहण करता है?’

भने पूछा - “महागज! प्रथम ग्राम यदि टंकम के रूप में चला गया, तो दूसरा ग्राम मुनिगज ने क्यों नहीं लिया? गजा ने प्रथम ग्राम टंकम रूप में इसमें लिया था कि वह जूठा नहीं था।”

अन्तराय

इस पर महागज बोले “आगमानुसार प्रथम ग्राम छिन जाने पर अन्तराय हो जाता है।” उन्होंने अपने जीवन की एक घटना बताई - “वे चर्चा को निकले थे। एक गृहस्थ के घर में विधि मिल गई। वे आहार को खड़े हो गए। एक महिला ने हाथ में दूध डाला। उस दूध में गाढ़ी मलाई आ गई। महाराज ध्यान से देखने लगे कि इसमें कहीं कोई अशुद्धि तो नहीं है? उनको गोधते देख उस स्त्री के मन में अद्भुत भाव उत्पन्न हुए, उसने तुरन्त वह मलाई अजुली में से बाहर निकाल ली। ऐसा होने पर महाराज तुरन्त बैठ गए। उन्होंने आहार नहीं किया और उसे अन्तराय रूप में माना।” इस घटना से पता चलता है कि सतत सावधान रहने वाले प्रमादरहित साधु के जीवन में सदा कष्ट, अन्तराय आदि आपत्तियाँ आया करती हैं। वात यह है कि तप-बल से यह आगामी उदयावली में आने वाले अन्तरायादि कर्मों की उद्दीरणा भी करते हैं। इससे विविध उपसर्ग इन वीतराग साधुओं का पीछा नहीं छोड़ते। आज का हीन काल है। सहनन भी हीन है, फिर भी सच्चे जैन मुनि अपनी अलौकिकता से आज भी जगत् को चकित करते हैं।

दीर्घ जीवन का रहस्य

वर्धमान महाराज से मैंने पूछा - “महाराज! आजकल दिन-रात भक्ष्याभक्ष्य का बिना विचार किए लोग शरीर की सतत सेवा में सलग्न रहते हैं, फिर अल्प अवस्था में भयंकर रोगों से आक्रान्त हो काल के गाल में समा जाते हैं। आप कठोर सयमी होते हुए भी ९५ वर्ष की अवस्था में पूर्ण स्वस्थ हैं। बाह्य तथा अन्तरंग नीरोगता आपको प्राप्त हुई है। इसका क्या रहस्य है? आपकी जीवनचर्या किस प्रकार की रही है?”

महाराज ने बताया - “सयमी जीवन दीर्घायुष्य का विशेष कारण है। हम रात को ९ बजे के पूर्व सो जाते थे और तीन बजे सुबह जाग जाया करते थे। ३५ वर्ष की

१ तेषा पाणिपुटे प्राच्य पिण्ड शुल्को विधीयताम् - उत्तरपुराण।

अवस्था में हमने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। हमारे शरीर में कभी रोग नहीं हुआ। गृहस्थ-अवस्था में हम एक दिन में ४५ मील बिना कष्ट के सहज ही चले जाते थे। २५ वर्ष की अवस्था में हम भोज से ५॥ बजे सवेरे चलकर शाम को ४५ मील दूरी पर स्थित तेरदाल ग्राम में जाकर भोजन करते थे। पहले हमारे शरीर का चमड़ा इतना कड़ा था कि शरीर में अलग से चमड़ा नहीं खिचता था। लेकिन अब तो वृद्ध-अवस्था आ गई है।” आज के विटैमिन भक्तों तथा डाक्टरों के उपासकों को साधुराज के दिव्य जीवन से शिक्षा लेना चाहिए। नीरोगता का बीज परिश्रम, ब्रह्मचर्य परिमित आहार-विहार है। महाराज ने बताया था कि वे स्नान के पश्चात् देवाराधना के अनन्तर भोजन करते थे। एक बार संध्या को भी भोजन करते थे। बार-बार भोजन की आदत नहीं थी।

मैंने पूछा - “महाराज! आपके मन में वैराग्य भाव जगाने में क्या आचार्य महाराज शान्तिसागर कारणरूप हुए?”

महाराज ने कहा - “यथार्थ में आचार्य महाराज के दीक्षित होने का हमारे मन पर बड़ा असर पड़ा।”

आचार्यश्री की विरक्ति का क्रम

मैंने कहा - “आचार्य महाराज की विरक्ति तथा आत्म-साधना पर कुछ प्रकाश डालिए। आप ही तो इस विषय में प्रामाणिकतापूर्वक कथन कर सकते हैं। वर्धमान महाराज ने कहा - “घर में कपड़ा की दूकान पर कुमगोड़ा तथा महाराज बैठते थे। मैं खेती का काम देखता था। मैं उपवासादि नहीं करता था। पिता की महाराज ने तथा मैंने सेवा की। उनकी मृत्यु के उपरांत महाराज चार-पाँच वर्ष घर में और रहे, कारण मातुश्री जीवित थीं। महाराज बहुत उपवास करते थे। उनको उपवास करते देख माताजी भी उपवास किया करती थीं।”

स्तवनिधि

माघ मास में माता की मृत्यु होने के पश्चात् महाराज के हृदय में वैराग्य भाव वृद्धिगत हुआ। भोज से २२ मील दूर स्तवनिधि क्षेत्र है। उन्होंने प्रत्येक अमावस्या को स्तवनिधि जाने का व्रत ले लिया। वे बहिन कृष्णाबाई को साथ में भोजन बनाने को ले जाते थे। स्तवनिधि की यात्रा का आश्रय ले उन्होंने प्रपच से छूटने का निमित्त ढूँढ़ निकाला था। वे स्तवनिधि में एक दिन ठहरा करते थे। वे ज्येष्ठ मास पर्यन्त स्तवनिधि गए। इस बीच में उन्होंने बहिन से कहा - “अक्का! अब हम अकेले ही स्तवनिधि

जायेगे।” अतः स्वयं भोजन साथ में ग़बक़ ले गए। महाराज ने कुमगोडा से कह दिया, मेरा भाव व्यापार का नहीं है।

स्तवनिधि के निमित्त ये घर से गए थे, किन्तु इनका मन वैराग्य से परिपूर्ण हो चुका था। इससे ये समीपवर्ती उत्तूर ग्राम में गए, जहाँ बाल ब्रह्मचारी मुनि देवेन्द्रकीर्ति महाराज, जिन्हें देवप्पा स्वामी कहते थे, विराजमान थे। देवप्पा स्वामी का महाराज पर बड़ा वात्सल्य भाव था, कारण वे भोज में कभी-कभी माह पर्यन्त रहा करते थे। वे सातगोडा की विरक्ति तथा धार्मिक प्रवृत्ति से सुपरिचित थे। जब महाराज ने दीक्षा धारण करने का अपना विचार व्यक्त किया, तो देवप्पा स्वामी को अपार खुशी हुई। उन्होंने लोगो से कहा भोजकर पाटील आए हैं। इनकी सब व्यवस्था करो। पाटील ने (महाराज ने) देवप्पा स्वामी से प्रार्थना की, कि अब हमें क्षुल्लक दीक्षा दीजिए।

दीक्षा मंडप की रचना

देवप्पा स्वामी पाटील की परिणति से पूर्ण परिचित थे, अतः उनके इशारे पर उत्तूर में दीक्षा मंडप सजाया गया। पाटील को तालाब पर ले जाकर स्नान कराया गया। पश्चात् वैभव के साथ उनका जुलूस निकाला गया। उन्होंने स्वच्छ नवीन वस्त्र धारण किए थे। गाजे-बाजे के साथ जुलूस दीक्षा मंडप में आया, जहाँ इनको क्षुल्लक दीक्षा दी गई, तथा इनका नाम शतिसागर रखा गया।

अब महाराज तो क्षुल्लक हो गए। उन्होंने घर पर कोई समाचार तक नहीं भेजा। भेजते क्यों? जब घर का - द्रव्यघर तथा भावरूप घर का भी त्याग कर दिया, तब वहाँ खबर भेजने का क्या प्रयोजन? किन्तु उत्तूर का समाचार भोज आ ही गया। चिट्ठी में लिखा था कि महाराज ने क्षुल्लक दीक्षा ली है। उनकी दीक्षा ज्येष्ठ सुदी तेरस को हुई थी।

वर्धमान स्वामी ने बताया कि हमें समाचार ज्येष्ठ सुदी चौदस को प्राप्त हुआ। पत्र पहले पोस्टमैन ने भाई कुमगोडा के हाथ में दिया। उसे पढ़कर कुमगोडा बहुत रोए। वे अकेले थे। सवेरे उनका उतरा चेहरा देखकर अक्का ने (बहिन ने) पूछा - “तुम्हारा मुख उदास क्यों है?” कुमगोडा ने कहा - “अप्पा दीक्षा घेतली” - अर्थात् महाराज ने दीक्षा ले ली। जिसको यह समाचार मिले, उसके मोही मन को अपार सन्ताप पहुँचा।

हम, कुमगोडा और उपाध्याय के पुत्र को साथ लेकर उत्तूर गये। रात को सौंदलगा ग्राम में मुकाम किया। वहाँ के मराठो ने कहा - “भोज का स्वामी हुआ है।” - दक्षिण में दीक्षा लेने वाले को स्वामी कहते हैं। यथार्थ साधु बनने पर वह व्यक्ति

इन्द्रियो का दास नहीं रहता है, स्वामी बनता है। अतः स्वामी शब्द का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

क्षुल्लक रूप में दर्शन

उत्तूर पहुँचकर महाराज को देखते ही हमारी आँखों में पानी आ गया।

महाराज ने कहा - “यहाँ क्या रोगे को आए हो? तुमको भी तो हमारे सरीखी दीक्षा लेनी है। रोगे क्यों हो?” हम सब चुप हो गए। हमने रसोई तैयार की। हमारे चौके में महाराज का आहार हुआ। हमने आहार में गोवा के आमबे - (गोवा के आम) भी महाराज को दिये थे।

देवप्पा स्वामी ने हमें बताया कि यह छोटा सा ग्राम है, अतः चातुर्मास के लिए तुम शातिसागर महाराज को निपाणी तरफ ले जाओ। उस समय कुमगोडा ने महाराज की दीक्षा समारम्भ में खर्च हुई सामग्री आदि का मूल्य उत्तूर वालों को देकर महाराज के साथ में प्रस्थान किया।

वह अद्भुत युग था। महाराज को देने योग्य कमडलु तक न था, अतः पास के लोटा में सुतली बाँधकर उससे कमडलु का कार्य लिया था। देवप्पा स्वामी ने अपनी पिच्छी में से कुछ पख निकालकर पिच्छी बनाई थी और महाराज को दी थी।

महाराज कापसी ग्राम में ठहरे। कुमगोडा ने कहा - “मैं कोल्हापुर जाकर कमडलु लाता हूँ। आप भोज जाओ।” भूपालप्पा जिरगे ने एक कमडलु भेंट किया। कुमगोडा ने कापसी ग्राम में जाकर महाराज को कमडलु दे दिया।

“महाराज का प्रथम चातुर्मास कोगनोली में हुआ।”

प्रथम चातुर्मास

वर्धमानसागर महाराज ने बताया कि “घर आने पर महाराज के अभाव में मेरा मन बेचैन हो गया। कुमगोडा ने दुकान के सब सामान को तथा कपड़ों से भरी आलमारी को इकट्ठी ही एक मारवाड़ी को बेच दिया। उस समय सबका मन अत्यन्त व्यथित हो रहा था।”

इसके अनंतर वर्धमान महाराज ने बताया

सयम का अभ्यास

मैं कोगनोली में महाराज के पास गया और दीक्षा मागने लगा। इस पर महाराज

ने कहा - “दीक्षा लेना कठिन काम है। तुम मेरी तरह घर में ही रहकर पहले समय का अभ्यास करो।”

घर में आकर मैंने एक वार का आहार रखा। मैं खेती का काम देखता था, तो कुमगोडा कहता था - “अण्णा! अब तुम यह काम मत करो।” कुमगोडा ने भोज का रहना छोड़कर कोल्हापुर में व्यापार करना प्रारम्भ किया। मैं वहिन कृष्णावाई के साथ कोल्हापुर आया जाया करता था। कुमगोडा अत्यन्त चतुर था। उसने पहले वर्ष साझेदारी में आढत की दुकान की, पञ्चात् अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ किया।

ध्यान-साधना

कुमगोडा ने जैसिंगपुर में अपना कार्य जमाया। मैं वहाँ रहने लगा। मैं ११ बजे से १ बजे दिन तक पर्वत पर ध्यान करता था। मन की चंचलता को रोकता था। मैं सात वर्ष जैसिंगपुर में रहकर ध्यान का अभ्यास करता था। महाराज (शातिसागर जी) कुभोज-बाहुवली आए। वे निर्ग्रन्थ हो चुके थे। मैं उनके दर्शन को वहाँ गया।

गहरी विरक्ति

वहाँ कलप्पा भगम्प्पा निटवे शास्त्री, महाराज के पास बैठे थे। वे मुझे नहीं पहिचानते थे। मुझे देखकर शास्त्री जी ने महाराज से पूछा - “ये कौन हैं?”

महाराज ने यह नहीं कहा कि ये हमारे भाई हैं, किन्तु कहा - “ये भोज के पाटील हैं।” इतनी गहरी विरक्ति तथा अनासक्ति महाराज के मनमें विद्यमान थी।

महाराज सद्य सहित जब शिखरजी के लिए रवाना हुए थे, तब बाहुवली से वे जैसिंगपुर भी पधारे थे। उन्होंने सन् १९२७ में शिखर जी के लिए जब प्रस्थान किया, तब हमारे मन में गहरा वैराग्य उत्पन्न हो गया था।

उत्तर भारत में विहार करते हुए जब महाराज का चातुर्मास जयपुर में हुआ तब, कुमगोडा तथा ब्र जिनदास समडोलीकर महाराज के दर्शन को गए। उस समय हमने उक्त दोनों व्यक्तियों को कुछ न कहकर साथ में जाने वाले बालगोडा को कहा कि महाराज को नमोस्तु कहकर उनसे मेरी दीक्षा के लिए प्रार्थना करना।

जयपुर जाकर जब महाराज को मेरी प्रार्थना सुनाई गई, तब महाराज बोले - “क्या अब भी उनके मन में वैराग्य का भाव विद्यमान है?” इसके अनन्तर जब महाराज से निवेदन किया गया कि - “वैराग्य का भाव पक्का है। उन्होंने पुत्तूर के स्वामी नेमिसागर

जी निर्ग्रन्थ मे दीक्षा माँगी थी; किन्तु वे आपकी आज्ञा के बिना दीक्षा नहीं देते हैं। इसमे आपसे ही दीक्षा देने की प्रार्थना करते ह।” इस पर आचार्य महाराज ने पुत्र ग्राम वाले नेमिसागरजी को समाचार दिया कि तुम इनको (वर्धमानमागरजी को) दीक्षा दे सकते हो।

इस प्रसंग मे यह बात ज्ञातव्य हे कि वर्धमानसागर महाराज ने दीक्षा की स्वीकृति अपने सगे भाई कुमगोडा पाटील तथा निकट परिचित ब्र जिनदासजी के द्वारा प्राप्त न कराकर अन्य व्यक्ति द्वारा कार्य क्यों सम्पन्न कराया?

इसमे एक रहस्य हे। ज्ञानार्णव मे कहा है - “बंधवो बधमूलम्” - बधु-बाधव बन्ध के कारण होते हैं, अत आत्मसाधना के कार्य मे उनसे विघ्न की अधिक सम्भावना रहती है। मोहवश इष्ट व्यक्ति जो उपाय बताता हे, वह वास्तव मे आत्मा के लिए हितकारी नहीं रहता हे। इससे वर्धमान महाराज ने अपने बन्धु तथा बन्धुतुल्य व्यक्ति के माध्यम से दीक्षा की अनुज्ञार्थ उद्योग करना उपयुक्त नहीं समझा था।

सत्तर वर्ष की अवस्था में क्षुल्लक दीक्षा

इस समय वर्धमानसागर जी ७० वर्ष के हो चुके थे। अवस्था तो श्रेष्ठ तपस्या के प्रतिकूल प्रतीत होती थी, किन्तु आत्मबल एवं वैराग्य के आश्रय से उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा के महान् भार को अगीकार करने का सुदृढ निश्चय कर लिया। मुनि नेमिसागर जी पुत्रकर ममडोली मे विराजमान थे। अतः वे नेमिसागर महाराज के पास दीक्षार्थ गए।

उस समय कुमगोडा पाटील के मन मे अवर्णनीय सन्ताप हुआ। वे जमीन पर गिर गए, फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय का करुण दृश्य इन स्थिर-वैराग्यवाले महापुरुष पर कुछ भी प्रभाव न डाल सका।

विरागी की मनोदशा

उन्होंने ब्र जिनदास जी को कहा - “इधर मत देखो, आगे बढो।” उस समय वे सोचते थे - “अहमिक्को णाणमओ” - ज्ञानमयी मैं अकेला हूँ। “एक एव जायेहं, एक एव म्रिये, न मे कश्चित् स्वजनः परिजनो वा” - मैं अकेला उत्पन्न हुआ हूँ। अकेला मरण करता हूँ। मेरा कोई भी कुटुम्बी, बन्धु नहीं है। इस स्थिति मे किसका भाई और किसकी बहिन? यह सब मोह तथा अज्ञान का जाल है। उससे जकडा जीव पर-वस्तुओं में अपनापन उत्पन्न करता हे। अब मेरी आत्मा में सच्चे ज्ञान की ज्योति जगी है। मेरा कुटुम्ब परिवार दूसरा हे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये मेरे बन्धु हैं। सच्चे कुटुम्बी हैं।

त्रिकाल में भी इनका साथ नहीं छूटता है। लौकिक बन्धु ज्ञान तक साथ देते हैं। मेरा हस अकेला ही कर्मों के अनुसार दूसरी पर्याय धारण करता है। वहाँ इसके अन्य कुटुम्बी तथा इष्ट जन बन जाते हैं। अब मैं इस मोह के प्रतारणापूर्ण मायाजाल में नहीं फँसूँगा। इस प्रकार ज्ञान का निर्मल निर्झर उनके अन्तःकरण में बह रहा था।

समडोली में दीक्षा

उनकी क्षुल्लक दीक्षा यथाविधि समडोली में हो गई। चार वर्ष पर्यन्त ये क्षुल्लक रहे।

चातुर्मास गुरु के समीप हुए। पाँचवाँ चातुर्मास डिग्रज ग्राम में हुआ। वहाँ बडगाँव के धर्मात्मा श्रावक बाबूराव मार्ले आए और मोटर में इनको बैठाकर गजपथा ले गए। वहाँ आचार्य शातिसागर महाराज विराजमान थे।

अनुज को प्रणाम

गजपथा पहुँचकर इन ज्येष्ठ वयवाले बन्धु ने अनुज बन्धु आचार्य शातिसागर महाराज को प्रणाम किया। दीक्षा लेने के बाद भाई-बन्धु आदि के कौटुम्बिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। एक प्रकार से यह एक नवीन जन्म तपस्वी के रूप में होता है। कानून में इसे (Civil death) सिविल डेथ (मृत्यु) माना है। अतः गृहस्थावस्था के छोटे भाई सातगोडा अब आचार्य शातिसागर के रूप में हैं, उनका आत्मा ही भाई है, बंधु है, अन्य कोई भाई नहीं है।

इसी कारण वर्धमान महाराज ने आचार्य महाराज को धर्मगुरु के रूप में ही देखा, अनुभव किया तथा उसी रूप में उनके चरणों की वदना की।

दीक्षा की महत्ता

बड़ी नम्रतापूर्वक गुरुचरणों में उन्होंने प्रार्थना की - “महाराज! क्षुल्लक पद लिये चार वर्ष व्यतीत हो गए। अब ऐलक दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिए।”

आचार्य महाराज बोले - “यह दीक्षा बहुत कठिन है। तुम्हारी अवस्था ७५ वर्ष की हो गई।”

वर्धमान महाराज ने बारबार विनय कर आचार्यश्री के मन में यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि यदि इनको यह पद दिया गया, तो यह उसे निर्दोष रूप में पालेंगे, फिर भी आचार्य महाराज इनकी दीक्षा के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार करते रहे।

गजपथा मे वर्धमान महाराज को सोने के लिए रात के समय एक चटाई दी गई थी। वे उस पर न सोकर जमीन पर ही निद्रा ले रहे थे।

मध्यरात्रि मे उठकर आचार्य महाराज ने देखा कि वर्धमानसागर जी जमीन पर सो रहे हैं। चटाई अलग है। इससे उनके हृदय मे यह भाव उत्पन्न हुआ कि इनके विरागी मन मे सयम के प्रति प्रगाढ प्रेम है।

ऐलक दीक्षा

गहराई से विरक्तमन की परीक्षा के बाद दीक्षा का निश्चय हुआ। आपाढ सुदी त्रयोदशी को गुरुप्रसाद से वर्धमानसागर महाराज क्षुल्लक से ऐलक बन गए। अब इनके पास लंगोटी, पिच्छी और कमडलु मात्र सामग्री रह गई। भौतिक दृष्टि से इनकी अकिंचनता बढ़ी, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ये विशिष्ट सयम-लक्ष्मी के स्वामी बन गए। आचार्य महाराज ने इनको आदेश दिया कि यहाँ से वापिस दक्षिण जाने के पश्चात् फिर कभी मोटर आदि में नहीं बैठना।

ये वहाँ से लौटे। इनके हृदय मे बड़ी विशुद्धता थी। अपार आनन्द था। जैसे कोई लखपति करोडपति बनने पर अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करता है, इसी प्रकार क्षुल्लक के स्थान में ऐलक पद प्राप्त करके इनके हृदय मे हर्ष हुआ था।

धनी व्यक्ति की धनलाभ के बाद तृष्णा जागती है, उसी प्रकार इनके मन मे यह भाव उत्पन्न होता था - “हे जिनेन्द्र देव! आपके चरणप्रसाद से मुझको शीघ्र ही दिगम्बर अवस्थापूर्ण निर्वाण मुद्रा धारण करने का सोभाग्य प्राप्त हो।” अतः करण की सच्ची भावना फलवती होती है। ऐलक अवस्था मे एक वर्ष व्यतीत हुआ। दूसरा वर्ष प्रारंभ हुआ।

बारामती में मुनि दीक्षा

चातुर्मास पूर्ण होने के उपरान्त मार्गशीर्ष मास मे ऐलक वर्धमानसागरजी महाराज गुरुदेव आचार्य शान्तिसागर महाराज के समीप बारामती पहुँचे और अत्यंत विनयपूर्वक मुनिमुद्रा प्रदान करने की प्रार्थना की। जिनमुद्रा धारणकर निर्दोष रीति से उसके महान् नियमों का पालन करना इस कलिकाल मे बहुत कठिन कार्य है। दूसरी बात यह भी है कि वर्धमानसागर महाराज का ७६ वॉ वर्ष चल रहा था। इतनी वृद्धावस्था मे महाव्रत का भार आज का बुद्धिजीवी वर्ग सोच नहीं सकता। जगत् तो बूढ़े आदमी का इसी रूप मे सर्वत्र चित्र देखा करता है -

अग गलित पलित मुड, दशनविहीन जात तुण्डम् ।

वृद्धो याति गृहीत्वा दण्ड, तदपि न मुंचत्याशा-पिण्डम् ॥

- अग गल गए है, मस्तक सफेद हो गया है, मुख दत-शून्य हो गया है तथा चलने के लिए हाथ में दण्ड है, ऐसा व्यक्ति वृद्ध होने पर भी आशापुज का परित्याग नहीं करता है ।

उद्बोधक उत्प्रेक्षा

वर्धमानसागर महाराज के वृद्धत्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोष-मालिका का अभाव था । उनके विषय में सोमदेवाचार्य के यशस्तिलक में प्रतिपादित ये वाक्य चरितार्थ होते थे -

मुक्तिश्रियः प्रणयवीक्षणजाल-मार्गा ।

पुसा चतुर्थपुरुषार्थतरुप्ररोहा ॥

नि. श्रेयसामृतरसागमनाग्रदूताः ।

शुक्लाः कचाः ननु तपश्चरणोपदेशाः ॥२, १०४॥

- ये केश तुम्हें तपश्चर्या का पाठ सिखाने आए हैं । ये मुक्तिलक्ष्मी के प्रेमपूर्वक दर्शन हेतु झरोखे सदृश हैं । मोक्ष रूप चतुर्थ पुरुषार्थ रूप वृक्ष के अकुर समान हैं । परम कल्याण निर्वाणमय रूप आनन्द रस के आगमनद्योतक अग्रदूत हैं ।

अतः ७६ वर्ष की वर्धमान अवस्था में वर्धमान महाराज ने मगसिर सुदी षष्ठी सवत् १८७९ अर्थात् सन् १९३६ में बारामती में मुनिमुद्रा धारण की । ऐसे अवसर पर लोग दोनों आदर्श मुनिबन्धुओं की जननी माता सत्यवती और पिता भीमगोडा के पवित्र वंश का स्मरण करते थे कि जिनके यहाँ ऐसे त्रिभुवनवदित और सम्यक् चारित्र्य समलकृत दो वीतराग साधुराज उत्पन्न हुए थे । ऐसा सौभाग्य किस वंश को प्राप्त होता है ?

आदर्श वैराग्यभाव

मोह का लेश भी उत्पन्न न हो, इससे दीक्षा के पश्चात् गुरु की आज्ञा से वर्धमान मुनिमहाराज दक्षिण तरफ चले गए । दोनों सगे भाई यदि साथ-साथ रहते हैं, तो सम्भव है मन में मोह का भाव कुछ जागृत हो जाय, इसीलिए प्रतीत होता है कि परम अनुभवी तथा गम्भीर विचारक आचार्य महाराज ने वर्धमान स्वामी को अपने पास आश्रय देना उचित नहीं समझा और उन्हें अन्यत्र रहने का आदेश प्रदान किया ।

अद्भुत मनोविकल्प

एक समय ता ३५ अगस्त को छोटे भाई वृन्गोडा के पुत्र जनगाडा की पत्नी लक्ष्मीबाई महाराज के पास लगभग १५ मिनट पर्यन्त कुछ चर्चा करती गयी। उस समय महाराज के मन में मभवतः ऐसा विचार आया कि अपने गृहस्थावस्था के भतीजे की स्त्री से इतनी देर बात करना ठीक नहीं था। मंग अन कोई लाविक कुटुम्बी एवं वधु नहीं

रहा है। इससे मुझे लक्ष्मीबाई से विशेष वार्तालाप नहीं करना था। आचार्य महाराज तो निर्ग्रन्थ बनने पर मुझे भाई न मानकर भोज का पाटील कहते थे, तब मेरी दृष्टि भी ऐसी ही होनी चाहिए। संभवतः कुछ ऐसे महान् विचार उनके मन में आए। उन्होंने शीघ्र कुटी में जाकर बहुत समय तक आत्म-ध्यान किया। पश्चात् समीपवर्ती विचारवान भक्त गृहस्थ से कहने लगे - “आज बहुत भूल हो गई थी। मैं कहाँ से कहाँ चला गया था? यथार्थ में मेरा कोई नहीं है। मैं भी किसी का कुछ नहीं हूँ।” उस समय मुझे पता चला कि इनका मन स्फटिक सदृश स्वच्छ है।

सरलता की मूर्ति

वे सरलता की मूर्ति हैं। एक दिन मेरे भाई प्रोफेसर सुशीलकुमार दिवाकर का पत्र आया। उसमें महाराज को नमोस्तु लिखा था। मैंने सुनाया - “महाराज, छोटे भाई ने आपको नमोस्तु कहा है।” महाराज ने कहा - “उनको हमारा आशीर्वाद लिख देना। तुम्हारे घर में भी सबको आशीर्वाद लिख देना। एक बात और ध्यान में रखना, हमारे लिए जो नमोस्तु लिखे, उसे तुम स्वयं हमारा आशीर्वाद लिख देना, भूलना नहीं।”

मार्मिक उक्ति

मैं शास्त्र पढ़ता था। उस समय महाराज के मुख से समयोचित तथा अनुभवपूर्ण अनेक मार्मिक वाक्य निकलती थीं, जिससे महाराज का उच्च अनुभव और तपस्या के प्रसाद से वर्धमान क्षयोपशम का सद्भाव सूचित होता था। उन्होंने कहा था - “सिद्ध भगवान् लोक के शिखर पर बैठकर ससार का नाटक देखते हैं और सरागी भगवान् स्वयं नाटक करते हैं। जैन आगम छोटासा जलाशय नहीं है, वह तो सिन्धु से भी बड़ा है। सम्यक्त्वी जीव अव्रती होते हुए भी अन्य व्रती को देख ऐसा हर्षित होता है, जैसे माता रुक्मिणी चिरवियुक्त पुत्र प्रद्युम्न की भेट होने पर आनन्दित हुई थी।” वर्धमान महाराज जब किसी कथा को कहते थे तो उसमें स्वाभाविकता तथा चरित्र-चित्रण का अपूर्व माधुर्य पाया जाता था।

उपयोगी जिज्ञासा

भादो सुदी दशमी को आचार्य महाराज के विषय में मैंने एक प्रश्न पूछा - “समाधि लेने के पूर्व आचार्य महाराज जेडवाल, सागली आदि स्थानों में गए थे। नांदे में वे श्री वालगोडा के अत्यन्त विशाल, भव्य तथा फलों से लदे हुए रम्य बगीचे में २१ दिन ठहरे थे। उसके पश्चात् वे आगे विहार कर गए। उस समय आपकी और उनकी अंतिम भेट हुई थी। प्रार्थना है कि उम समय हुई बातचीत का कुछ दिग्दर्शन कर?”

अतिम वार्तालाप

वर्धमान महाराज ने कहा - “हमने महाराज से पूछा, क्या फिर इधर आवेगे, हमारी आपकी अब कब भेट होगी?”

आचार्य महाराज ने उत्तर दिया था - “अब हमारी तुम्हारी भेट यहाँ नहीं होगी। अब स्वर्ग में ही अपनी भेट होगी।” इस चर्चा के उपरान्त वर्धमान स्वामी की मुद्रा बहुत गम्भीर हो गई। इससे मैंने पुनः अन्य प्रश्न नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता था मानो वर्धमान महाराज के समक्ष अपने दिवगत गुरुदेव का चित्र आ गया हो।

तात्त्विक बात

तात्त्विक चर्चा में महाराज ने कहा - “दान-पूजा आदि षट्कर्मों के द्वारा मोक्ष नहीं मिलता, स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है। हिंसा, चोरी, लबारी, कुशील सेवनादि से पाप होता है, उसका फल नरक गति, तिर्यच गति के दुःख हैं। एक दृष्टि से पुण्य अमृतकुभ है और पाप विषकुभ है। दूसरी दृष्टि पुण्य-पाप दोनों को विषकुभ मानती है। शुद्ध दृष्टिमात्र अमृतकुभ है। गृहस्थ जीवन में षट्कर्म रूपी कृषि, वाणिज्यादि लोहे को धारण करने वाला पुण्यकर्म रूपी सुवर्ण को नहीं छोड़ेगा। उस स्वर्ण का भी त्याग करने वाला आत्म-रत्न की उपलब्धि के हेतु उद्योग करता है। यदि कोई आदमी लोहे का सग्रह करते हुए सुवर्ण के त्याग की बात करता है, तो उसे झूठा मानना चाहिए, इसी प्रकार पाप कर्मों में निमग्न रहने वाला यदि पुण्य रूप सुवर्ण को छोड़ने की चर्चा करता है, तो उसे भी विश्वास योग्य नहीं समझना चाहिये। आत्मा का चिंतन करना कल्याण का सच्चा मार्ग है। जग का चिंतन त्याग कर आत्मा का ध्यान करना चाहिए।

चोर पर भी करुणा

आचार्य शातिसागर महाराज के गृहस्थ जीवन की एक घटना पर वर्धमान महाराज ने इस प्रकार प्रकाश डाला था - “एक दिन महाराज, शौच के लिए खेत में गए थे, तो क्या देखते हैं कि हमारा ही नौकर एक गड्ढा ज्वारी का चोरी करके ले जा रहा है। उस चोर नौकर ने महाराज को देख लिया। महाराज की दृष्टि भी उस पर पड़ी। वे पीठ करके चुप बैठ गए। उनका भाव था, बेचारा गरीब है, इसलिए पेट भरने को ही अनाज ले जा रहा है। उस दीन पर विशेष दया भाव होने से महाराज ने कुछ नहीं कहा, किन्तु वह चोर नौकर घर आया और हमारे पास आकर बोला - “अण्णा! भूल से मैं खेत से ज्वार ले रहा था, महाराज ने मुझे देख लिया, किन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा।”

दीनो के बंधु

वर्धमान महाराज ने बताया कि - “सदा से गरीबों पर हमारे परिवार का विशेष ध्यान रहा है। लगभग ८० वर्ष पूर्व भयंकर दुष्काल आया था। अनाज नहीं पका था। गरीब लोग नागफणी के मध्य के लाल भाग तक को खाया करते थे। उस दुष्काल के समय हमारे पिताश्री की आज्ञा से हम ज्वारी की एक बड़ी रोटी तथा दाल सदृश पेय पदार्थ प्रत्येक व्यक्ति को देते थे। वह दुष्काल बड़ा भयंकर था। रोटी बनाने को दो नौकर रखे थे। गरीबों को भोजनदान का काम मैं स्वयं अपने हाथ से करता था।”

आचार्यश्री के घरलू जीवन के सम्मरण

वर्धमान सागर महाराज ने आचार्य महाराज के बारे में इस प्रकार सम्मरण बतलाये -

“मैंने उसे गोद में खिलाया, गाड़ी में खिलाया। वह हमारे साथ-साथ खेलता था। बहुत शांत था। रोता नहीं था। मैंने उसे रोते कभी नहीं देखा, न बचपन में और न बड़े होने पर। उसे कपड़े बहुत अच्छे पहिनाए जाते थे। सब लोग उसे अपने यहाँ ले जाया करते थे। हमारा घर बड़ा सम्पन्न था।”

“एक बार कुमगोड़ा पानी में बह गया था, तब सब काम छोड़कर महाराज ने पानी में घुसकर उसे बचाया था। कुमगोड़ा की रक्षार्थ चौथी कक्षा के बाद इन्होंने पढ़ाई बंद कर दी थी।”

“इनकी शादी की बात आती थी, तब कहते थे - ‘मी लग्न करणार नहीं।’ मैं विवाह नहीं करूँगा। कारण शास्त्र में लिखा है, ‘ससार खोटा है।’ यह बात सुन हमारे माँ-बाप के आँसू आ गये। वे बड़े ही धर्मात्मा थे, इसलिए मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। शरीर बल में कोल्हापुर जिले में उनकी जोड़ का कोई नहीं था। चाँवल का पूरा बोरा उठाकर अपने कंधे पर रख लिया था। इस पर जब उनको चादी के कड़े इनाम देने लगे, तो उन्होंने लेने से इकार कर दिया था।”

जन्म कुण्डली

“उनकी जन्म-पत्री से ही मालूम हो गया था कि वे मुनि हो जायेंगे। सूर्य निकलते समय उनका जन्म हुआ था। उपाध्याय ने जन्मकुण्डली बनाई और कहा - यह जगत् में प्रकाश देगा। इससे माता-पिता हर्षित हुए थे।”

शक्ति की परीक्षा

एक बढई ने भोज में आकर शक्ति-परीक्षण हेतु एक लम्बा खूटा गाड़ा था। वह गाँव में किसी ने न उखाड़ा, उसे नागपंचमी के दिन महाराज ने जरा ही देर में उखाड़ दिया था और वे चुपचाप घर आ गये थे, जब खूँटा उन्होंने उखाड़ा तब भेने कहा था - 'ऐसा काम नहीं करना चोट आ गई तो?' उन्हें कीर्ति नहीं चाहिए थी। उनका भेने प्रति सबसे अधिक प्रेम था। कुमगोड़ा पर भी प्रेम था।

जब उन्होंने दीक्षा ली थी, तब उत्तूर से पत्र आया था, घर भर के लोग रोने लगे थे। हमारे भी नेत्रों में आँसू आ गये थे, बाद में हम उनके पास गये थे।

सर्पराज का शरीर पर से जाना

“तरुण वय में वे खेत में लेटे थे, उस समय एक बड़ा सर्प उनके गाल को स्पर्श करता हुआ पास के बिल में घुसता और बार बार निकलकर उनको देखता था। वे स्थिर थे। यह बात महाराज ने हमसे कही थी। मैं उन्हें सातगोड़ा कहता था और वे मुझे अण्णा कहते थे। उनकी दृष्टि थी कि यह शरीर नौकर है। नौकर को भोजन दो और काम लो। आत्मा को अमृत पान कराओ।”

भादो सुदी त्रयोदशी को महाराज ने समयसार के प्रवचनकाल में कहा था - “द्रव्यानुयोग के अभ्यास के लिए प्रथमानुयोग सहायक होता है। उसके अभ्यास से द्रव्यानुयोग कठिन नहीं पड़ता।

भोजन लोलुपी की कथा

महाराज ने प्रसंगवश कहा था - “ज्ञानी पुरुष अवमौदर्य तप करता है। भूख से कम आहार लेता है। अज्ञानी पुरुष पेट फटने पर्यन्त भोजन करता है, इससे वह दुःखी होता है।” महाराज ने ८० वर्ष पूर्व की एक घटना बताई - “कोन्नूर में बाबाभट्ट नाम के भोजनलोलुपी ब्राह्मण थे। उन्होंने लोटा भर घी खूब शक्कर मिलाकर खाया। भोजन की तीव्र गृद्धतावश उसने खूब घी भी पिया। पश्चात् वहाँ से चलकर भोज आते समय वेदगङ्गा-दूधगङ्गा नदी के सङ्गम में से घुसकर भोज आया। शीतल जल पेट में लगने के कारण खाया गया सब घी जम गया। इससे वह ब्राह्मण बड़ा दुःखी हो छटपटाने लगा ऐसा दिखने लगा कि अब वह नहीं बचेगा।”

“भोज में एक चतुर वैद्य था। वह बुलाया गया। बाबाभट्ट से शरीर व्यथा का कारण ज्ञात कर वैद्यराज ने एक खाट पर बाबाभट्ट को लिटवाया और नीचे अग्नि रखकर

पेट का खूब मिकाव करवाया। उष्णता से पेट में जमा घी पतला हो गया और उसके बाद विरेचन हुआ। इस प्रकार उसके प्राण बचे, नहीं तो उस बाह्यण की आशा नहीं रही थी। उसने भोजन खाया, किन्तु अतिरेक होने से भोजन ही उसे खा रहा था, इसलिए भोजन में गृद्धता को छोड़कर भूख में कम खाना कष्टप्रद नहीं होता है।”

मर्यादित जीवन

गृहस्थ के कल्याण हेतु महाराज ने कहा - “यदि हम बाल से वृद्ध पर्यन्त सबको ही ब्रह्मचर्य का उपदेश देंगे, तो कार्य कैसे बनेगा? सीढ़ी पर पैर रखते हुए आगे बढ़ना चाहिये। गृहस्थ को विषयमेवन में बहुत मर्यादा रखना चाहिए। अधिक विषय-भोग से शरीर का रक्त नष्ट होता है और आदमी रोगी होकर शीघ्र मरण को प्राप्त करता है।”

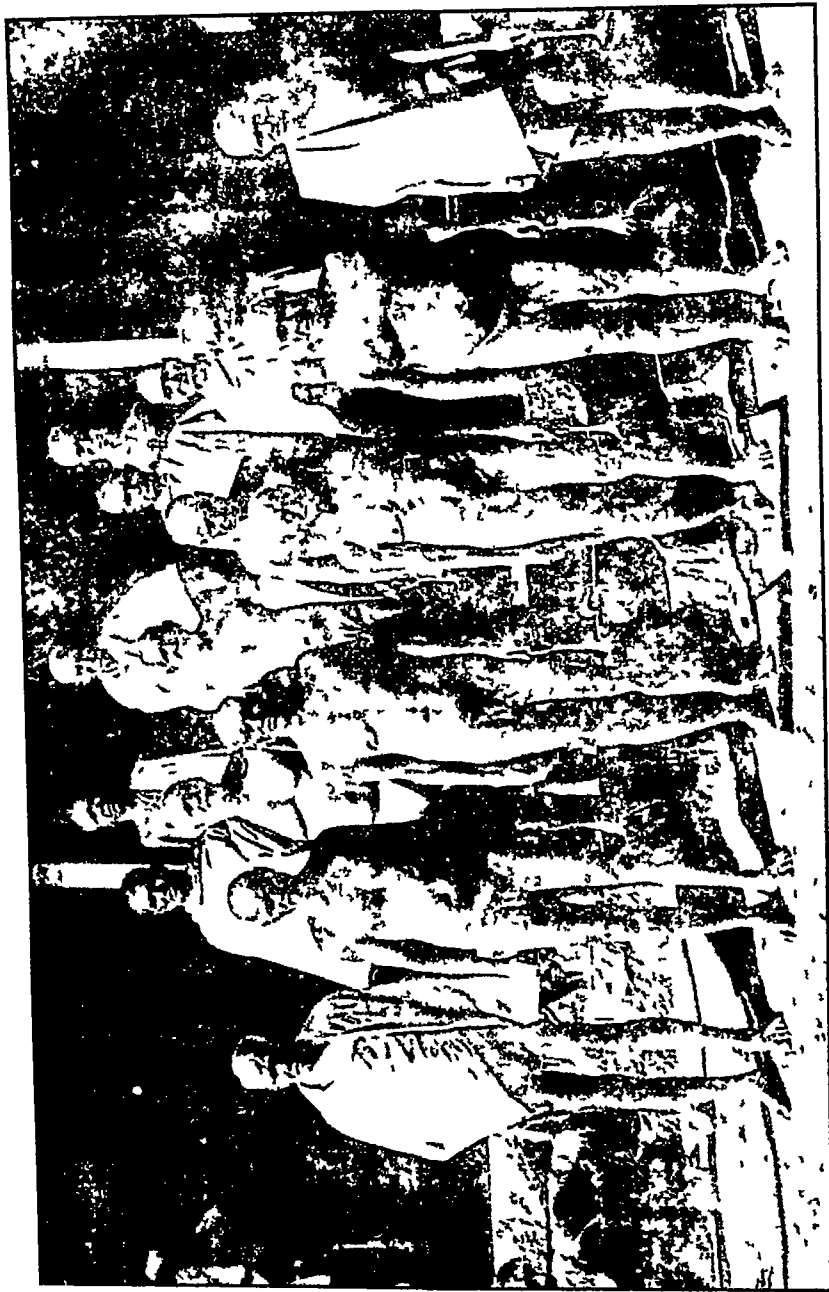
आदर्श पथ

वर्धमान महाराज ने बताया था कि ३६ वर्ष की अवस्था में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। यदि वर्धमान महाराज का आदर्श आज का गृहस्थ स्मरण रखे, तो उसकी सतति-वृद्धि जनित विविध प्रकार की आकुलताएँ अनायास दूर हो जाँय और तब वह मनुष्य अपने जीवन का स्वकल्याणार्थ उपयोग कर सकता है, अन्यथा वह परिवार की सेवा चाकरी में दिनरात व्यतीत कर कोल्हू के बैल के समान अमूल्य जीवन को समाप्त करता है।

वर्धमान महाराज की धर्मपत्नी लगभग १६ वर्ष पर्यन्त जीवित रही थीं। उनमें एक पुत्र बालगोडा हुए थे, जो अभी जीवित हैं। वे अत्यन्त भद्र परिणामी हैं। वर्धमान महाराज ने बताया था कि उन्होंने मुनि आदिमागर जी बोरगांवकर से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था। वर्धमान महाराज खेती का काम देखा करते थे। नौकर चाकर तथा गरीब इनमें बड़े प्रसन्न रहते थे, कारण ये उनको खाने-पीने को मुक्तहस्त होकर अनाज दिया करते थे। हरिजन आदि गरीबों पर आचार्य महाराज की विशेष दयादृष्टि रहती थी। वे कठोर वाणी नहीं बोलते थे। उनका आहार-पान मामान्य था। उनकी दृष्टि घर में आचार्य शांतिसागर महाराज को अच्छा भोजन कराने की ओर विशेष रहती थी।

सत्यप्रिय जीवन

वे मत्यता और सरलता की तो प्रारम्भ से ही मूर्ति रहे हैं। उन्होंने बताया कि - “हमारे पिताजी मिथ्या नहीं बोलते थे। मैं भी असत्य भाषण नहीं करता था।” इस मत्य



पंचमकाल में चतुर्थकाल की छटा बिखरने वाला पूज्य 108 वर्धमानसागरजी महाराज के सघ का पुण्यदर्शन

भाषण के कारण वर्धमान महाराज को लगभग लाख रुपए की सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा था। वकील ने कहा था - महाराज! एक शब्द थोड़ा बदलकर बोल देना। मैं सब सम्हाल लूँगा। कोर्ट में आने पर जब न्यायाधीश ने सत्य बोलने की शपथ दिलाई, तो वकील साहब के द्वारा पढ़ाया गया सब पाठ विस्मरण हो गया और उन्होंने ठीक-ठीक बात कह दी। वकील ने महाराज से कहा - गवाही देते समय आप भूल गए। महाराज ने उत्तर दिया - मैं भूला नहीं। मैंने ठीक-ठीक उत्तर दिया है। वास्तव में वे माता सत्यवती के आदर्श आत्मज थे। महाराज की इस सत्यता की अभी भी पुराने लोग उस प्रातः में चर्चा करते हैं।

आज के दम्भप्रधान युग में थोड़े से रुपयों के लिए बड़े-बड़े लोग झूठ बोल देते हैं। सचमुच में वर्धमान महाराज सदृश महापुरुष बिरले ही होते हैं। उनकी धारणा रहती है, 'पुण्यानुसारिणी लक्ष्मी' - पुण्य के अनुसार लक्ष्मी का लाभ होता है। भाग्य का चक्र विचित्र रहता है। इस विषय में महाराज ने कोल्हापुर के राजा शाहू महाराज का एक बड़ा रोचक तथा मार्मिक कथन सुनाया -

कोल्हापुर नरेश का संस्मरण

एक बार कोल्हापुर के राजा शाहू महाराज से उनके राजपंडित ने निवेदन किया - “श्रीमत् सरकार! आप अन्य लोगों को हजारों रुपया दान में दिया करते हैं। मुझ गरीब ब्राह्मण पर भी ऐसी कृपा क्यों नहीं करते?” शाहू महाराज बड़े अनुभवी और विचारशील शासक थे। उन्होंने कहा - “क्या करूँ, आपको अधिक द्रव्य देने का भाव ही नहीं होता।” पंडित की समझ में शाहू सरकार का कथन नहीं आया। अतः पंडित के भाग्य की परीक्षा के हेतु राजाशा से दो ढेर भूसा के लगवाए गए। एक में केवल भूसा था, दूसरे में सुवर्ण रखा था। ऊपर से देखने में दोनों ढेर समान ही दृष्टिगोचर होते थे। शाहू महाराज ने ब्राह्मण से कहा - “जो ढेर तुम्हें पसंद आये, उसे उठा लो।” पंडित महोदय ने भूसा वाला ढेर उठाया। सुवर्ण वाला ढेर उठाने के उनके परिणाम नहीं हुए। इस पर शाहू महाराज ने कहा - “हम क्या करें, आपका दैव ही ठीक नहीं है।”

भर्तृहरि ने कहा है कि जीव पूर्व कर्म के अनुसार संपत्ति प्राप्त करता है। घट लेकर कोई व्यक्ति कुएं पर जाता है, पश्चात् उस घट को लेकर समुद्र के समीप पहुँचता है, तो भी समान ही जल प्राप्त होता है, इसी प्रकार अपने पूर्व पुण्य के अनुसार जीव को सम्पत्ति मिलती है। बड़े-बड़े संपत्ति के केन्द्र रूप महानगरो में दीन-हीन भिक्षुको का अस्तित्व यह बताता है कि पुण्य की संपत्ति जिनके पास है, उनको ही बाह्य भौतिक संपत्ति भी प्राप्त होती है। इस तथ्य को भूलकर मनुष्य छल-कपट द्वारा धनवान बनने की

व्यर्थ चेष्टा करता फिरता है तथा असफल होने पर दुःखी होता है। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि न्यायोचित मार्ग पर आश्रय लेकर धनोपार्जन करे। पाप का पथ स्वीकार करने पर जीव दुःख के ही बीज बोता है। उचित यह है कि मनुष्य देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति करके आगामी सुख के कारण पुण्य की पूजा एकत्रित करे। सोमदेव सूरि का कथन है - “देवान् गुरुन् धर्मं च उपाचरन् न व्याकुलमति स्यात्” - देव, गुरु तथा धर्म की आराधना करने वाला व्यक्ति व्याकुल परिणाम वाला नहीं होता है। वर्धमान महाराज तथा आचार्य महाराज की गृहस्थ जीवन में उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार प्रवृत्ति रहती थी।

शिथिलाचार तथा अज्ञान का युग

वर्धमान महाराज ने बताया था कि जब आचार्य महाराज ने मुनि देवेन्द्रकीर्ति स्वामी से क्षुल्लक दीक्षा ली थी, उस समय देवेन्द्रकीर्ति स्वामी एक बार पचमुष्टी बनाकर कुछ केशों का लोच करते थे। पश्चात् कैची से शेष केशों को बनवाते थे। सचमुच में वह अब्धुत अज्ञान का युग था। उस समय उत्तर भारत के लोग तो मुनि पद के अस्तित्व की भी कल्पना नहीं करते थे और दक्षिण में जो निर्ग्रन्थ गुरु थे, उनकी क्रियाएँ अनेक बातों में विचित्र थीं। मुनि जीवन से शिथिलाचार को दूरकर आगमानुसार प्रवृत्ति को पुनः प्रचलित करने का श्रेष्ठ कार्य आचार्य शातिसागर महाराज ने किया था।

गुरुदेव का महत्त्वपूर्ण संस्मरण

आचार्य महाराज ने भौसेकर आदिसागर मुनिराज से यरनाल ग्राम में मुनि दीक्षा ली थी।

(इस प्रसंग में सघस्थ आर्यिका विशुद्धमतीजी ने जब ‘ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती’ पुस्तक का लेखन आचार्यश्री के जीवन के सम्बन्ध में उपलब्ध साहित्य के आधार पर किया था, तब पूज्य शान्तिसागरजी महाराज के निर्ग्रन्थ दीक्षादाता गुरु के सम्बन्ध में यह कथन देखकर दिवाकरजी से पत्रव्यवहार किया गया। उत्तर में उनसे प्राप्त पत्र यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत है - चे प्र पा)

विद्वत्तरन सुमेरुचन्द्र विद्याकर शास्त्री

श्री ए, एल एल बी, धर्म विवाकर, न्यायतीर्थ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

दिवाकर सदन

सिवनी (म. प्र.)

२६-६-१९८३

विशेष निवेदन - ए. माता विशुद्ध मातृजी ने पण्डित
१०८ सप्तशतीरोमानी साधुराज आचार्य सांनि सागर महाराज के
को से' पर' द्वारा लिखी गई रचना चारित्र्य प्रमचरणी की ओर जनता
का परिचय प्रदानार्थ उपयोगी कार्य किया है।

महोदय उल्लेखनीय है कि सांनि सागर महाराज
को मुझे दीक्षा प्रयाता देवकमीति महाराज को।

निवेदक - सुमरुचन्द्र दिवाकर

शातिसागर महागज के निर्ग्रन्थ दीक्षादाता गुरु भाम ग्रामवामी आदिमागर जी की दीक्षा की अदभुत कथा सुनने को मिली। वर्धमान महागज ने बताया था कि आदिमागर जी ने मुनिपद ग्रहण कर लिया पश्चात् उन्होंने कहा कि मुनि पचमकाल में १९ काटि मुनीश्वर मरण करके नरक जाते हैं। इस बात का ज्ञातकर उनके मन में अदभुत परिवर्तन हुआ। वे सोचने लगे - यदि शास्त्र यह कहता है कि मुनि पदवी धारण करके नरक जाना पड़ेगा, तो मुनिपद का त्याग करना ही अच्छा है। ग्रामवासी उम भोली आत्मा का सत्पथ बतानेवाला कोई न मिला। अपनी विचित्र धुन में मग्न हो उन्होंने घर पर आकर मुनिपद का त्याग करके कवल ओढ़ लिया और श्री में कहा - “भाकरी आण” - खाने के लिए ज्वार की गेटी दे।

बेचारी सी घबड़ा गई। पतिदेव मुनि बन गए। उम पद में तो मागकर भोजन नहीं होता। ये कैसे मागकर खाने को तैयार हो गए। उम वाई ने गाँव के पंचों को सूचना दी। सब चिन्ता में निमग्न हो गए। उम गाँव में एक चोगुले नामक चतुर गृहस्थ थे। उन्होंने आदिसागर जी से चर्चा कर सब बातें समझ लीं।

श्री चोगुले ने भद्र परिणामी आदिमागरजी को समझाते हुए कहा कि शास्त्र में लिखा है कि मुनिपद को धारण करके स्वर्ग जावेंगे। शास्त्र में यह भी लिखा है कि यदि कोई मुनिपदवी धारण कर उसे छोड़ेगा तो वह व्यक्ति नरक जायगा। आगम के अनुसार मुनिपद धारण करने वाला स्वर्ग जायगा। शास्त्र की परवाह न कर स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वाला मुनि नरक जायगा। इस बात को सुनकर उन भोले-भाले आदिसागरजी का भ्रम दूर हुआ और उन्होंने पुनः मुनिचर्या को पालना प्रारम्भ कर दिया। मागूर ग्राम में उनका स्वर्गवास हुआ था। उन्हें लम्बे समय तक समाधिमरण का उद्योग नहीं करना पड़ा था। एक उपवास पूर्वक उनका मरण हुआ था।

धर्म के विषय में सतर्कता

वर्धमान महाराज ने उपदेश देते समय एक दिन कहा था - “आत्मा शैव नहीं है बौद्ध नहीं है, यवन नहीं है, बाल नहीं है वृद्ध नहीं है। आत्मा स्वयम्भू है। आत्मा का कल्याण धर्म के द्वारा होता है। खरे-खोटे धर्म की परीक्षा करना चाहिए। तुम बाजार जाते हो। अल्प मूल्य वाले मिट्टी के बर्तन को खरीदते समय उसे बजाकर देखते हो कि कहीं यह फूटा तो नहीं है। नारियल को लेते समय उसे भी बजाकर देखते हो तब फिर जिस धर्म के द्वारा आत्मा का भविष्य उज्ज्वल बनता है, उसके सम्बन्ध में परीक्षा की दृष्टि नहीं रखना चतुर व्यक्ति का कर्तव्य नहीं है।”

किसान का उदाहरण

महाराज ने एक सुन्दर बात कही थी कि एक बार एक किसान अपनी गी से कह रहा था कि अपना छोटा सा परिवार है, घांड़ी भी खेती का काम है, उमकी बहुत आकुलता रहती है, तब बड़े भारी राज्य के स्वामी महाराज भारत का कितनी चिन्ता रहती होगी? चक्रवर्ती को नींद भी दुर्लभ होगी। भगेश्वर ने अपने अधिष्ठान में यह बात जान ली।

उन्होंने उस किसान को राज-भवन में बुलवाया। उसके सिंग पर एक घड़ा पानी रखवाया और उसे राजमहल के सुन्दर दृश्य देखने का आदेश दिया। आगपाम नृत्य होता था। अनेक प्रकार उत्सव होता था। सम्राट् ने अपने सिपाही को प्रगट रूप में आज्ञा दी कि यदि इस किसान के घड़े से पानी की एक बूंद भी गिरी, तो तलवार से इगवा शिरच्छेद कर देना। अलग बुलाकर सिपाही से भगेश्वर ने यह भी कहा दिया कि यह आदेश किसान के मन में भय पैदा करने का दिया गया है। इसका उपयोग नहीं करना है। इसके पश्चात् उस किसान को राजमहल में सुन्दर दृश्य बताया गए। मधुर-मधुर गीत सुनाए गए।

अन्त में भगेश्वर ने उस किसान से पूछा - “तुमने क्या-क्या देखा?”

वह किसान बोला - “महाराज! मैं कुछ भी नहीं देख सका। पानी की बूंद गिरने पर सिर कटने का जो दण्ड आपने बताया था, उससे मैं डर गया था। मेरा ध्यान पानी के घड़े पर ही था। मैं कुछ भी दृश्य नहीं देख सका।”

भगेश्वर ने कहा - “जिस प्रकार प्राण जाने के डर से तुम सब दृश्य समक्ष होते हुए भी उनको नहीं देख सके, इसी प्रकार मेरा भी ध्यान है। मेरे राज्य के भव के मध्य रहते हुए भी ससार के दुःखों का स्मरण करने के कारण मेरा ध्यान अपनी आत्मा के बाहर नहीं जाता है।”

इस उदाहरण के द्वारा चक्रवर्ती की विरक्ति का भाव स्पष्ट होता है।

महाराज ने कहा - “जिस समाधि में शरीर का मोह नहीं रहता, आत्मा के सिवाय अरहत भगवान का भी ध्यान नहीं रहता, वही सच्ची समाधि है। आत्मा के स्वरूप में निमग्न होने वाले को बाहर का पता नहीं चलता है। यहाँ तुम बोलते हो, तो हमारा उपयोग तुम्हारे कथन पर रहता है, इसी प्रकार आत्मा पर लक्ष्य रहने पर बाहर का ध्यान नहीं रहता है। उस ध्यान के समय हमें आने-जाने वालों का भी पता नहीं रहता है।

को वे प्राणों से भी अधिक महत्त्व देते रहे हैं। ऐसी महान् आत्मा के आदेश, उपदेश तथा जीवन प्रवृत्ति को अपने लिए हितकारी समझने में तथा यथाशक्ति पालन करने में हमारा कल्याण है।

पक्षी समुदाय

मैंने देखा - वर्धमान महाराज के पास आकर अनेक पक्षी चुपचाप बैठ जाते थे। चिड़िया भी उनसे नहीं डरती थी। कभी-कभी चिड़िया सिर पर, कंधे पर बैठ जाती थी। मैंने इसका कारण पूछा।

महाराज ने कहा - “पक्षी आता है, तुम उसे भगाते हो, वह बेचारा डरकर भाग जाता है। हम उनको नहीं भगाते हैं। किसी को कष्ट क्यों दें? इससे वे बेचारे हमारे पास आते हैं, बैठते हैं। उनको डर नहीं लगता है।”

उत्तर की यात्रा

सन् १९२७ में वर्धमान स्वामी गृहस्थावस्था में कुमगोडा के साथ शिखरजी की यात्रा को गए थे। सोनागिरि गए थे। अजमेर की नसिया का दर्शन किया था। नागपुर के पास के अतिशय क्षेत्र रामटेक भी गए थे।

प्राणायाम

वर्धमान महाराज क्षुल्लक की अवस्था में मोटर द्वारा ऐलक दीक्षा लेने कोल्हापुर के श्रावको के साथ गजपथा आचार्य महाराज के पास गए थे। मोटर कितने वेग से चलती थी इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया था कि मील का खम्भा देखकर कभी-कभी हम श्वास रोकते थे, तो दूसरे मील का खम्भा आने पर हम श्वास छोड़ते थे। इस विषय को लिखने का हमारा उद्देश्य इतना ही है कि पाठक देखे कि साधु बनने वाले सत्पुरुषों के कार्य ऐसे अद्भुत हुआ करते हैं कि उनके बारे में अन्य साधारण व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

अन्तिम दर्शन

पर्युषण पूर्ण होने पर नाद्रे से कोल्हापुर के लिए प्रस्थान करते समय मैंने वर्धमान महाराज से आशीर्वाद की प्रार्थना की, तो आशीर्वाद देते हुए महाराज ने कहा - “पुरुषार्थ भी करो। हमारा आशीर्वाद तो है ही। हमारा तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम जहाँ भी जाओ जैन-धर्म की ध्वजा को सदा ऊँचा रखना। एक बात और ध्यान में रखना कि यहाँ से जाने

के बाद हमारा पता लेते रहना और जब समाधि का समय निकट रहे, उस समय अवश्य आना।”

अन्तिम प्रयाण वेला

इसके पश्चात् ऐसा अद्भुत कर्मोदय आया कि फिर वर्धमानस्वामी का दर्शन नहीं हुआ। उनकी कुशलता के समाचार, पत्रों तथा तार द्वारा प्राप्त करता था। दुर्भाग्यवश २६ फरवरी १९५९ को सायंकाल के समय १०८ वर्धमानसागर महाराज की प्रकृति अकस्मात् बिगड़ गई। उसके पहले गुरुदेव उस गुरुवार को अनेक लोगो के साथ धार्मिक चर्चा करते रहे। थोड़ा-सा ज्वर-मात्र था। सन्ध्या को अधिक मल-विसर्जन होने से क्षीणता वृद्धिगत होने लगी। रात्रि भर शरीर क्षीण होता चला गया। शुक्रवार के प्रभात में सामायिक के लिए बैठते-बैठते शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया। परलोक प्रयाण का सूचक श्वास चलना प्रारम्भ हुआ। पञ्च-नमस्कार का जाप चल रहा था कि ६ बजे साम्यभाव पूर्वक पूर्व के देवगोडा नामधारी वर्धमानसागर महाराज नामवाली ज्योतिर्मयी वीतराग परिणति विभूषित आत्मा ने ९७ वर्ष वाली देहरूपी जीर्ण कुटी को त्यागकर देवपर्याय प्राप्त की। सयम के माध्यम से देवगोडा ने देवेन्द्र पदवी प्राप्त की होगी। आचार्य शातिसागर महाराज ने सकल सयम की समाराधना द्वारा प्रभात में प्राणों का परित्याग किया था। आगम के प्रकाश में देखा जाय, तो अब ये दोनों मुनिबन्धु दिव्यलोक में जाकर अवश्य मिले होंगे।

समाधिमरण की वेला में इन महामुनि साधुराज की सेवा का उज्ज्वल सौभाग्य १०८ मुनि नेमिसागर महाराज (दक्षिण), ऐलक कुलभूषण जी, क्षु सन्मतिसागर जी, क्षु जयसेन जी तथा ब्र जिनदास जी समडोलीकर को प्राप्त हुआ था। ब्र जिनदासजी को कुथलगिरि में योगिराज शातिसागर महाराज की अन्तिमसेवा का भी श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके विशेष सहयोग तथा परिश्रम के फलस्वरूप ही हम आचार्यश्री की जीवन सामग्री एकत्रित कर सके। वे कन्नड, मराठी तथा हिन्दी जानते थे। अतः वे हमारे लिए दुभाषिये के रूप में बड़े उपकारी तथा उपयोगी रहे। हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

भोज निवासी साधुराज का प्राणोत्क्रमण कुभोज ग्राम के जिनालय के बाहर के कमरे में हुआ था। २॥ बजे दिन तक हजारों लोग वहाँ आ गए। विमान में मङ्गलमय सकलसयमी का शरीर विराजमान किया गया। श्रीविमान चार बजे बाहुबली क्षेत्र पर पहुँच गया। श्रीमती सरस्वतीबाई आरवाडे ने ९०१ रु देकर उस पवित्र शरीर की अन्तिम अभिषेकादि विधि सम्पन्न की। १०८ मुनि नेमिसागर महाराज तथा ऐलक कुलभूषण

महाराज के तत्त्वावधान मे योग्य रीति से सर्व कार्य सम्पन्न हुआ। पद्रह सहस्र से अधिक धार्मिक जन-समुदाय उस समय एकत्रित हुआ था। ऐलक कुलभूषण महाराज मुनिरूप मे सन् १९८० के लगभग शिखर जी से लौटते हुए सिवनी पधारे थे। नागपुर मे उनका चातुर्मास हुआ था।

समाधि स्थान का दर्शन

वर्धमान महाराज का स्वर्गारोहण कुभोज ग्राम मे हुआ था। उनकी समाधि के स्थल का दर्शन करना आवश्यक था। श्री गणपति रोटे, शाहपुरी कोल्हापुर बहुत सज्जन, गुरुभक्त तथा स्नेही व्यक्ति के पास हम ठहरे थे। उन्होंने अपनी मोटर द्वारा हमारा कार्य अल्पकाल में सम्पन्न करा दिया। हम कुभोज ग्राम गए। मदिरजी मे प्रवेशकर भगवान के दर्शन किए। इसके बाद उस स्थान पर गए, जहाँ वर्धमान महाराज विराजमान रहते थे, किन्तु हमें वर्धमान महाराज नहीं मिले। वे महामुनि, वे अलौकिक साधुराज इसी कमरे मे रहे थे, किन्तु अब वे यहाँ नहीं हैं। यहाँ ही यमराज उनके पास आया था। समतापूर्वक उनका समाधिमरण यहाँ ही हुआ था। उस कमरे मे विविध विचार पैदा होते थे।

स्मृतियाँ

उनके पुण्य जीवन की स्मृति सजग हो उठी। ९७ वर्ष की अवस्था मे भी शातिभाव से तथा निर्दोष रीति से दिगम्बर मुद्रा धारण कर केवल दिन मे करपात्र द्वारा आहार ग्रहण करना, स्वाध्याय करना, आत्मचिन्तन करना उनकी चर्या थी। वे सारी दुनियाँ में एक थे। उनकी आत्मा सजीव अध्यात्म शास्त्र थी।

हमे यह ज्ञातकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सोनगढ के सत्पुरुष अपने विशाल सघ सहित बाहुबली आए थे। वहाँ से करीब २ मील की दूरी पर कुभोज ग्राम है, जहाँ अध्यात्म की विभूति वर्धमान महाराज थे। सघ ने विविध स्थानो को देखा था, किन्तु वे कुभोज नहीं गए। लोगो ने कहा भी कि कुभोज मे महान् विभूति विद्यमान है, किन्तु 'आत्मारथी सत्पुरुषो' का चित्त वहाँ जाने का नहीं हुआ। अध्यात्म-मूर्ति, सकल सयमी साधुराज के दर्शन के परिणाम न होना, उस ओर से विमुख होना, क्या यह नहीं सूचित करता कि आत्मा का नाम लेना, आत्मदेव की लम्बी चर्चा करना तथा आत्मा की उपलब्धि मे महान् अन्तर है। यह बात विचारक स्वयं सोच सकता है।

उस कमरे में वर्धमान महाराज के भौतिक-शरीर का दर्शन नहीं हुआ, किन्तु स्मरण द्वारा उनका पुण्य जीवन समक्ष आ गया। सफल समाधिमरण द्वारा नरभव रूपी

भवन पर सुवर्ण कलश लगाने वाले उन गुरुदेव को मेने प्रणाम किया। वाह रे यमराज! तू किसी को नहीं छोड़ता। ऐसे अच्छे साधुगज को भी तू ले गया। अच्छा! तेरी कृति का यह फल होगा कि थोड़े समय में वे ही साधुराज अपनी रत्नत्रय रूपी तलवार द्वारा तेरा ध्वंस करके 'मृत्युजय' बनेंगे।

समाधि के सस्मरण

वहाँ मंदिर में क्षुल्लक जयसेन जी विराजमान थे। वे वर्धमान महाराज के अंतर्पर्यन्त उनके समीप रहे थे। उन्होंने बताया - “वर्धमानसागर महाराज की मृत्यु के पूर्व दिन सध्याकाल पर्यन्त शास्त्र चर्चा चलती रही थी। उसमें महाराज उपस्थित रहे। रात्रि को उनकी प्रकृति कुछ बिगड़ी। मुनि नेमिसागर जी, क्षु सन्मार्तसागर जी, मैं तथा ब्रह्मचारी जिनदास पास में थे। कोई भीषणता नहीं थी। यह रात्रि महाकाल रात्रि रूप है, ऐसी कल्पना तनिक भी नहीं होती थी। रात को १२ बजे अपने सदा के क्रमानुसार वे उठे और ध्यान में बैठ गए। दो घंटे के पश्चात् वे कुछ समय लेटे। उस समय वे बहुत शान्त थे। घवडाहट का नाम भी नहीं था।”

परलोक प्रयाण

“सबसे चार बजे उनकी सामायिक प्रारंभ हो गई। सवा छह बजे शरीर चैतन्यशून्य हो गया। हम देखते ही रह गए। महाराज तो चले गए। उनको कुटी से बाहर लाया गया। नेत्र, मुख सभी बराबर थे। देखने पर ऐसा लगता था मानो वे सामायिक ही कर रहे हों। कह नहीं सकते, कैसे प्राण गए?”

शरीर और आत्मा एक नहीं हैं, जुड़े-जुड़े हैं, ऐसी बात उस समय प्रत्यक्षगोचर होती थी। क्षणभर पूर्व चैतन्यमूर्ति आत्मा शरीर में थी। अब शरीर शून्य हो गया। शरीर और चैतन्य एक होते, तो चैतन्य के साथ शरीर भी चला जाता। ‘शरीरे तदवस्थेपि जीवे विकृतिदर्शनात्’। शरीर तदवस्थ था, जीव में विकृति हो जाती है, ऐसी आर्षवाणी प्रत्यक्षगोचर हो रही थी।

क्षुल्लकजी ने कहा - “ऐसी अद्भुत, शांतिपूर्ण, कष्टरहित, सावधानीयुक्त समाधि नहीं देखी। यमराज ने उन पर आक्रमण किया हो, ऐसा एक भी चिह्न नहीं दिखता था। शरीर जैसा का तैसा ही प्रतीत होता था।”

ध्यान के सागर

क्षुल्लुक जी ने बताया - “मै आचार्य शातिसागर महाराज के साथ जाना चाहता था। आचार्य महाराज ने नाद्रे मे कहा था - तुम वर्धमानसागर के पास रहो। मेरे साथ क्या चलते हो? इससे मै वर्धमान स्वामी के समीप ही रहा। वर्धमान महाराज का अध्यात्म रस का प्रेम अपूर्व था। आत्मचर्चा और आत्मध्यान मे उनकी महान् रुचि थी। वास्तव मे वर्धमानसागर महाराज ध्यान के सागर थे। उनकी सरलता अद्भुत थी। उनका भाव एक दिन पूर्व आहार को नहीं जाने का था। सबने प्रार्थना की - महाराज! आहार को अवश्य जाना चाहिए। उस समय पुण्यमूर्ति महाराज ने कहा - तुम्हारी सबकी मरजी है, तो आहार को चले जायेंगे।”

वास्तव मे विचार किया जाय, तो जैसे शातिसागर महाराज की समाधि अलौकिक तथा चिरस्मरणीय रही, उसी प्रकार उनके ज्येष्ठ बन्धु अथवा शिष्य वर्धमान स्वामी की समाधि भी अपूर्व रही। ‘भोज’ के स्वामी की समाधि ‘कुभोज’ मे हो गई, किन्तु उनके अन्तिम सस्कार बाहुबली क्षेत्र की छोटी सी पहाड़ी पर किए गए थे।

बाहुबली पर्वत

मैं बाहुबली पहुँचा। पहाड़ी पर चढते समय भगवान बाहुबली स्वामी की अप्रतिष्ठित विशाल मूर्ति भूतल पर पड़ी हुई थी। उस मूर्ति को प्रतिष्ठित किए जाने आदि की योजना चल रही थी। अब वह मूर्ति खड़ी हो गई है और अत्यन्त मनोज्ञ तथा प्रभावक वह मूर्ति प्रतिष्ठित भी हो गई। आगे बढने पर वह भूतल का खण्ड आ गया, जहाँ सुरेन्द्र-पूज्य, सयम-पालक वर्धमानसागरजी का शरीर लाया गया था और उस पौद्गलिक शरीर का दाह-सस्कार हुआ था। अग्नि के द्वारा भस्म किया गया शरीर असंयुक्त हो गया। पवनादि की सहायता से उस पावन देह का पुद्गल विश्वव्यापी हो गया। उस जगह आकर मन मे अन्तर्वेदना हुई। वहाँ लगा, कि हमारे महाराज का पौद्गलिक शरीर यहाँ ही पर्यायान्तर को प्राप्त हुआ था। जब शरीर मे चैतन्य का वास था, तब प्राणपण से भी उसकी रक्षा के लिए सभी भव्य भक्त तैयार थे। चैतन्य चले जाने के बाद इसी पहाड पर हजारों भक्तों ने उसी शरीर को भस्म कर दिया। पदार्थ का स्वरूप अद्भुत है। अनुप्रेक्षा की ये पक्तियाँ स्मरणपथ में आती हैं -

जनमै मरै अकेला चेतन सुख-दुख का भोगी।

और किसी का क्या, इक दिन यह, देह जुदी होगी ॥

कमला चलत न पैड, जाय मरघट तक परिवारा ।

अपने-अपने सुख को रोवे, पिता पुत्र दारा ॥

ये शब्द भी बड़े मर्मस्पर्शी हैं -

ज्यो मेले मे पंथीजन मिल नेह धरे फिरते ।

ज्यो तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते ।

कोस कोई, दो कोस कोई उड फिर, थक-थक हारे ।

जाय अकेला हंस, सङ्ग मे कोई न पर मारे ॥

सच्चा हंस

मरनेवाली आत्मा को पक्षी की उपमा देते हुए कहते हैं - प्राणपखेरू उड गए । कवि ने हंस रूप आत्मा के परलोक प्रयाण की बात कही है । सूक्ष्मता से विचार करे, तो प्रत्येक आत्मा को हंस नहीं कहेंगे । जो बहिरात्मा है, पुद्गल मे आसक्त है, आर्तरौद्रध्यान मे निमग्न है, परिग्रहानन्द रूप महापक का कीडा है, वह हंस नहीं है । उसमे विकार को त्यागकर आत्मस्वरूप रूपी क्षीर पान की योग्यता कहाँ है? वह तो काक, बक या गिद्ध के समान जीवन वाला होने से कुगति को जाता है । सच्चे हंस तो वर्धमानसागर महाराज सदृश सत्पुरुष हैं, जो जीवन भर आत्मरस का पान करते रहे तथा अपने ब्रह्म स्वरूप का दर्शन करते हुए शान्तिपूर्वक परलोक को चले गए ।

पर्वत का सदेश

बाहुबली का स्थान मुमुक्षुओ तथा आत्म साधको को सदा यह कहेगा कि - “आत्मबली, ९७ वर्ष की अवस्था मे भी निर्दोष रीति से रत्नत्रय की साधना करनेवाली आत्मा के शरीर का अन्तिम सस्कार मुझ पर हुआ था । अरे विषयान्ध! भोगप्रिय मानव! यहाँ आकर कुछ आत्म-सस्कार की वस्तु लेता जा । अब मैं सामान्य पाषाणपुञ्ज नहीं हूँ, अब मैं पावन स्थल बन गया हूँ । आत्मज्योति जगा ले । ब्रह्मदर्शन के महान् कलाकार महात्मा के तपोपुनीत शरीर से यह स्थान कृतार्थ हुआ है ।” अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा तपस्वियों के पितामह तुल्य वर्धमान महाराज का स्मरण कर हमने उनको प्रणामाजलि अर्पित की । धन्य था उनका जीवन । उनकी स्मृति भी सच्चे आत्मार्थियों के लिए मङ्गल दीप समान है ।

आचार्य महाराज की भगल भावना

पर्वत से उतर कर हम नीचे आए। बाहुवली गुरुकुल की भव्य सभ्यता को देखा। वहाँ आचार्य महाराज का महत्त्वपूर्ण सम्मरण सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ। गुरुकुल के मनेही बन्धुओं ने बताया - आचार्य शातिसागर महाराज सन् १९५५ के अप्रेल मास में यहाँ (बाहुवली) पधारे थे। समीप के खेत में वे विराजमान थे। उनकी आत्मा में धर्म तथा सस्कृति के रक्षणार्थ एक भव्य भावना उत्पन्न हुई।

उन्होंने कहा - "मेरी एक इच्छा है, उसकी पूर्ति करने का विचार तो तो मैं यहाँ ठहरता हूँ।" यह विचार सायकाल में व्यक्त किए गए। पूज्य १०८ मुनि समतभद्र महाराज के समीप एकत्रित होकर विचार चला। आश्रम के बुद्धिमान तथा विवेकी व्यवस्थापकों ने प्रभात में गुरुदेव के समीप विनयपूर्वक निवेदन किया - "महाराज! आपकी आज्ञानुसार हम सेवा को तैयार हैं। क्या अभिलाषा है आपकी?" महाराज ने कहा - "शास्त्र में कहा है दक्षिण में धर्म रहने वाला है। इस वचन पर विश्वास करो। यहाँ पच्चीस फुट ऊँची बाहुवली की मूर्ति विराजमान कराना चाहिए।" धर्ममूर्ति आचार्य परमेश्वरी की वीरगाव भाव को जगाने वाली उज्ज्वल अभिलाषा की पूर्ति का अभिवचन दिया गया। उसी समय सब प्रकार की योजना बन गई। धन की व्यवस्था भी तत्काल हो गई।

मूर्तिरूपी कल्पवृक्ष

आचार्य महाराज के श्रीमुख में अनमोल बोल निकले थे - "मैं यहाँ बाहुवली की मूर्तिरूपी कल्पवृक्ष का वीजारोपण कर रहा हूँ। इस प्रतिमा-रूपी कल्पवृक्ष के सानिध्य में हजारों विद्यार्थी आकर अपना जीवन भगलमय बनावेंगे।"

वर्धमान महाराज की चर्चा चलने पर आश्रम वालों ने बताया कि दो मील से भी कम दूरी पर रहने वाले हम आश्रमवासियों को महाराज की बीमारी या अस्वस्थता का पता नहीं चला। सबेरे अचानक यह भयावह वार्ता सुनी कि महाराज का स्वर्गवास हो गया।

पन्द्रह बीस हजार जनता के साथ उनका पवित्र शरीर अन्तिम सस्कार हेतु यहाँ लाकर पर्वत पर रखा गया। उस शरीर के पीछे कोई आश्रय नहीं था। वह पद्मासन मुद्रा में था। स्वाश्रयी शरीर को अर्धनिमीलित नेत्रों सहित देखकर ऐसा लगता था कि वर्धमानसागर महाराज अपने प्रिय निर्ग्रन्थ शिष्य समतभद्र महाराज के आश्रम में आकर आज पर्वतपर बैठकर ध्यान कर रहे हैं। प्राणहीन शरीर जीवितसा लगता था, तब सप्राण अवस्था के प्रभाव की मुमुक्षुजन कल्पना कर सकते हैं।

मार्थक विनोद

श्री गणपति रोटे दि जैन श्रावक के साथ हम कोल्हापुर लौट रहे थे, उम समय उन्होंने वर्धमान महाराज का मंस्मरण सुनाया - “आठ दिन पूर्व मैं सपरिवार वर्धमान महाराज के पास कुंभोज आया था। मेरे चिरंजीव अजित ने महाराज की पिच्छी पकड़ ली। वह उसे छोड़ता नहीं था। उस तीनवर्ष के बालक से महाराज कहने लगे - “वेटा! अभी पिच्छी लेने के लिए कुछ अवधि शेष है। अभी समय नहीं आया है।” यह कहकर वे हँसने लगे। यथार्थ में महाराज का विनोद मधुर होने के साथ अर्थपूर्ण था। आठ वर्ष अतर्मुहूर्त के उपरान्त मनुष्य को दीक्षा लेने का अधिकार है, उनके पहिले पात्रता नहीं रहती है। इम आगमोक्त आज्ञा को ध्यान में रखकर महाराज ने उपर्युक्त मधुर बात कही थी।

मुनि नेमिसागरजी का मंस्मरण

वर्धमान महाराज के समीप दक्षिण के १०८ मुनि नेमिसागर जी अत तक रहे। उनको मुनिदीक्षा वर्धमान महाराज ने दी थी। ये कुडची वाले महातपस्वी नेमिसागर महाराज से भिन्न हैं जो शांतिमागर महाराज से दीक्षित हुए थे। उनको मुनि हुए तीस वर्ष से अधिक काल हो गया। इन नेमिसागर जी की दीक्षा उन्नीस वर्ष वैशाख में हुई थी। ये नेमिसागर महाराज किन्नी में विराजमान थे। मैं पाँच अक्टूबर सन् १९५९ को उनके पास पहुँचा। वहाँ क्षु सन्मत्तिसागर जी भी विराजमान थे। उन्होंने वर्धमानमागर जी की अन्त तक सेवा की थी।

मुनिदीक्षा प्रदान

वर्धमान महाराज के विषय में उन मुनि महाराज ने कहा - “वर्धमान महाराज ने मेरा बड़ा उपकार किया। उन्होंने शक सम्वत् १८८० वैशाख सुदी नवमी को मुझे दिगम्बर दीक्षा दी। दीक्षा के सभी संस्कार दुधगाँव में हुए थे। मेरे केशों का लोच वर्धमान महाराज ने ही किया था। दीक्षा के पूर्व मैंने उनसे प्रार्थना की थी - “महाराज! मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा दीजिये। ससार-समुद्र में पार कीजिए।”

वर्धमान महाराज ने कहा था - “अच्छा है, दीक्षा ले लो। ऐमा समय पुन प्राप्त नहीं होगा। अपना नरजन्म मार्थक करो। एक बात स्मरण रखो, पंच महाव्रतों का पालना बहुत कठिन कार्य है। इनके सम्हालने की शक्ति हाँ, तब ही निर्ग्रन्थ दीक्षा लेना।”

नेमिसागर जी ने पुन कहा - “महाराज! प्राण जाते तक महाव्रतो की रक्षा करूँगा। मेरी पूरी तैयारी है। तब उन्होंने मुझे दीक्षा दी। मेरी दीक्षा होने पर महाराज को अपार आनन्द आया। वे बड़े प्रसन्न दिखे। जैसे किसी को उसका सगा-सम्बन्धी मिलने पर हर्ष होता है, उस समय उनको भी ऐसी ही खुशी हुई थी।”

मुनि नेमिसागर जी महाराज ने कहा - “आचार्य शातिसागर महाराज जब नाद्रे पधारे थे, तब मैंने उनसे मुनिदीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उस समय आचार्य महाराज ने कहा था - “तुम वर्धमानसागर से दीक्षा ले लेना, मैं अब दीक्षा नहीं देता।” उसके पूर्व शोडवाल मे ब्र बालगोडा शोडवाल वालो की मुनिदीक्षा हुई थी। आचार्य महाराज की आज्ञानुसार वर्धमान महाराज ने उनको दीक्षा दी थी और आदिसागर नाम रखा था। मैंने भी दीक्षा मागी थी, किन्तु उस समय उन्होंने कहा था, कुछ दिन के पश्चात् दीक्षा लेना। दुधगॉव में मेरा भाग्योदय हुआ, तब वर्धमान महाराज ने मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ किया।”

आनंदमयी मूर्ति

मैंने वर्धमानस्वामी को सदा आनंदमयी मूर्ति के रूप में देखा। वे आत्मचिन्तन तथा शास्त्र-स्वाध्याय में सलग्न रहते थे। हमेशा धर्मध्यान युक्त उनकी परिणति रही है। आचार्य शातिसागर महाराज के समान ये भी आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान रूप परिणामो से जुड़े रहते थे। शरीर अत्यन्त वृद्ध था। बुढ़ापे में शरीर किस प्रकार के कष्ट देता है, यह वह वृद्ध व्यक्ति ही जानता है। देहस्थिति में अनेक कारणों से गड़बड़ी होने पर भी उन महामना गुरुदेव की आत्मसाधना निश्चल रहती थी।

९७ वर्ष की अवस्था होते हुए भी वे प्रमाद तथा शिथिलता से रहित थे। एक आसन से बैठकर उनके चार पाँच घंटे सहज ही व्यतीत हो जाते थे।

उनकी प्रेरणा

“बाहुबली क्षेत्र में विशाल बाहुबली की प्रतिष्ठा शीघ्र करो” - यह वे बार-बार कहा करते थे। “बड़े महाराज चले गए। देखो! देर करोगे, तो हम भी दर्शन का लाभ नहीं प्राप्त कर सकेगे। जब ब्र जिनदास समडोलीकर ने महाराज को चातुर्मास के समय कहा था कि सिवनी से दिवाकर शास्त्री आपके पास आने की भावना करते हैं, इसको ज्ञातकर उनको बड़ा आनन्द हुआ था।”

विपत्ति काल में विचार

जब धर्म पर मज्ज आता था, अथवा धर्मात्माओं पर विपत्ति आती थी, तो वे कहा करते थे - “यह पचमकाल है। इसमें ऐसा ही पाण्डित्य हुआ करता है। धर्मात्माओं को ब्रह्मात्म्य धर्म में विचलित नहीं होना चाहिए। धर्म का मूलतः नाश कभी नहीं होगा।”

“उनके ज्ञाप का मुख्य मन्त्र अपराजित गणोक्त मन्त्र था। रात्रि के समय वे बहुत ध्यान करते थे। ध्यान में चुप बैठकर वे तत्त्वविचार तथा आत्मचिन्तन करते थे। उस समय जप का कार्य नहीं होता था। जब वे एक आमन में बैठकर दो तीन घंटे ध्यान करते थे, तब उनको वाह्य का कुछ भी पता नहीं चलता था।”

अवर्णनीय आनन्द

“कभी ध्यान द्वारा अवर्णनीय अमृत रस को पान करके पश्चात् वे कहते थे - “नेमिमागज! आज रात्रि की सामायिक में बहुत आनन्द आया।” हम पृष्ठ बैठते थे - “महागज! कैसा आनन्द आया?” वे कहते थे - “हम अपना आनन्द तुमको कैसे कहें? वावा! आनन्द अनुभव की वस्तु है। ‘मागता एत नाहीं’ - उमका वर्णन नहीं हो सकता।”

“भक्तार मन्त्र पर उनकी बहुत रुचि रही है। वे प्रमिद्धि के तनिक भी प्रेमी नहीं थे। कहते थे - “वावा! माझी प्रमिद्धी नको - मुझे प्रमिद्धि नहीं चाहिए। उमके होने पर मन में अहंकार उत्पन्न होने लगता है।” उनमें बड़ी बात यह थी कि वे आत्म-प्रणमा तथा पर-निन्दा में दृग्गते थे। कभी-कभी भी दूसरों की निन्दा नहीं करते थे। अपने को सबसे छोटा समझते थे। पराक्रमी पुण्यात्मा पुरुषों की कथा कहने में, सुनने में उनको बहुत प्रसन्नता होती थी। पांडव पुगण, हर्गिष पुगण, प्रद्युम्न चरित्र, जीवधर चरित्र, श्रीपाल चरित्र आदि की कथाएँ उनको खूब याद थीं।”

वर्धमानम्बामी क्षुल्लक दीक्षादाता निर्ग्रन्थगुरु पुत्तूर ग्रामवामी नेमिमागजी तथा ऐलक-दीक्षा और मुनिदीक्षा दाता आचार्य जातिमाग महागज का कृतज्ञतापूर्वक प्रतिदिन स्मरण कर उनको प्रणाम करते थे।

अन्तकाल

“२७ फरवरी मन् १९५९ शुक्रवार को मवा छह बजे उनका स्वर्णवास हो गया था। उस दिन माघ सुदी पचमी (उत्तर के हिमाचल में फाल्गुन वदी पचमी) थी। अन्तकाल

तक वे सावधान रहे। पौने छह बजे उनको पद्मासन मुद्रा में बिठाया गया था। मैंने पूछा था - 'क्या णमोकार मन्त्र सुनावे?' उन्होंने कहा था। मैं णमोकार मन्त्र पढ़ता था, मेरे साथ क्षु सन्मत्तिसागरजी भी पढ़ते थे। महाराज भी हम दोनों के साथ-साथ णमोकार मन्त्र पढ़ते जाते थे। अन्त तक उन्होंने णमोकार का पाठ किया। अन्तिम पाठ के एक मिनट बाद ही शरीर से श्वास निकल गई, फिर लौटकर वह श्वास नहीं आई। यह उनकी अन्त समय की स्थिति रही थी। वे पूर्ण सावधान थे।”

मैंने पूछा - “रात्रि को शरीर में कुछ कफ आदि की बाधा रही थी या नहीं?” महाराज नेमिसागरजी ने बताया - “खाँसी आदि का कोई विशेष उपद्रव नहीं हुआ। रात को २ बजे के करीब अल्प प्रमाण में खाँसी आई थी। उस समय १०५ डिग्री ज्वर हो गया था। ठंड लगती थी, किन्तु वे स्थिर थे। सामायिक को बैठते समय ज्वर कम हो चला था। ठंड भी कम हो गई थी। शरीर भी कुछ-कुछ ठण्डा पड़ने लगा था। यह सब कुछ होते हुए भी ऐसी अवस्था नहीं थी, जिससे कोई यह अनुमान करता कि अभी ही ये महापुरुष चले जायेंगे।”

क्षुल्लक जी का अनुभव

क्षुल्लक सन्मत्तिसागर महाराज ने कहा - “क्या बतावे, हमने महाराज से मुनि दीक्षा मागी थी। हमने सोचा था, अब आगे उनसे मुनि दीक्षा प्राप्त करेंगे। वे चले गए। उन जैसा महान् गुरु कहीं प्राप्त होगा?”

धन्य है इन सयमी महान् आत्माओं का जीवन। इनकी कथा सुनते ही मुमुक्षुवर्ग, धन्य-धन्य कह बैठता है।

भट्टारक लक्ष्मीसेन जी के विचार

भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी कोल्हापुर ज्ञानवान, सुसंस्कृत, सुरुचि-सपन्न तथा निरहकारी मठाधिपति हैं। उनके साथ तत्त्वचर्चा में बहुत आनन्द प्राप्त होता है। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी है। मार्मिक चर्चा करते हैं। मैं एक अक्टूबर १९५९ को स्वामी जी के मठ में रहा था। चर्चा के प्रसंग में उन्होंने वर्धमान महाराज के विषय में कहा - “मैं कुभोज दो बार उनके पास गया था। उनको ज्वर आ गया था। वे बीच-बीच में सुन्दर शका किया करते थे। उनकी शका प्रमुख रूप से आत्मा से सम्बन्धित रहा करती थी।”

कष्ट में सावधानी

“उनकी पीठ में बहुत दर्द था, फिर भी वे दृढ़तापूर्वक अपने सयम में सावधान

थे। व्यवस्थित सामायिक तथा आत्मध्यान का कार्यक्रम बगवत् चलता था। बड़े ध्यानपूर्वक ज्ञान को सुनते थे। उनकी शक्ति मूक्य तथा मार्मिक रहती थी। उनके साथ चलने वाली चर्चा में उनके आत्मिक अनुभव की गहरी छाप रहती थी। उसमें यह स्पष्ट हो जाता था कि उन्होंने अध्यात्म का गभीर मनन तथा चिंतन के साथ ही गभीर अनुभव भी किया है। उनकी वाणी मधुर लगती थी। उनकी वाणी में परमागम की प्रगाढ़ श्रद्धा टपकती थी। चर्चा के समय उनमें उत्तेजना नहीं आती थी। उस समय वे शांत, मृदु तथा गभीर रहते थे। उनका मुझ पर बड़ा अनुग्रह था।”

“कभी-कभी चर्चा के समय वे प्रमग के अनुकूल मधुर धार्मिक विनोद भी करते थे, उसमें चर्चा मजीब तथा मग्न बन जाया करती थी। ऐमा ही पवित्र विनोद स्व आचार्य जातिनाग महागज की वाणी में भी प्राप्त होता था।”

मुनिदीक्षा

“वर्धमान महागज की मुनिदीक्षा के समय मैं भी वागमती में था। उस समय आचार्य जातिनाग महागज ने ज्ञानानुसार दीक्षा-विधि सम्पन्न करने की आज्ञा मुझे प्रदान की थी। वर्धमान महाराज तथा बड़े महाराज अपने अन्तरङ्ग की गम्भीर बातों पर मुझ में परामर्श किया करते थे। उन महान् मुनीन्द्रों की मुझ पर बड़ी कृपा थी।

“वर्धमाननाग जी की मुनिदीक्षा की विधि सम्पन्न हो चुकी। उसके अनन्तर आचार्य महागज ने वर्धमाननाग जी को दूमरी जगह विहार करने का आदेश दिया था। आचार्य महागज बहुत बड़ी विभूति थे। रागभाव उत्पन्न होने की परिस्थिति तक को भी उत्पन्न नहीं होने देते थे। अपनी पवित्र वृत्ति की रक्षार्थ वे सर्वदा जागृत रहते थे।”

पूर्व परिचय

“वर्धमाननाग महाराज को मैंने सद्गृहस्थ रूप में भी देखा था। साधुपदवी स्वीकार करने के उपरान्त उनके गुणों में अपूर्व वृद्धि देखकर मुझे उनका ‘वर्धमान’ नाम मार्थक लगता था। अत्यन्त वृद्ध होते हुए भी उनकी स्मृति असाधारण थी। उनके समीप मैकड़ों स्थानों के लोग आया-जाया करते थे। आने वाले व्यक्तियों के नाम को लेकर वे उनसे चर्चा तथा वार्तालाप किया करते थे। उनके पास छोटे-बड़े सभी लोग बड़े प्रेम से पहुँचते थे। किसी को भीति नहीं होती थी। वे प्रेम-मूर्ति थे। उनके पास दूर-दूर के तथा समीप के बहुजन समाज को अत्यन्त प्रेम तथा प्रसन्नतापूर्वक आते देखकर ऐसा लगता था, मानों लोग अपने अत्यन्त वृद्ध धर्म पितामह की शरण में आ रहे हों। उनके मुखमण्डल

पर विषाद, चिन्ता, क्रोधादि विकारो का अभाव था। वहाँ सदा प्रसन्नता तथा सौम्यभाव का निवास रहता था।”

चारित्र-चूडामणि

“आचार्य महाराज की महिमा तो वर्णन अगोचर है। वे अपूर्व साधु हो गए। ऐसी ही महान् उज्ज्वल आत्मा वर्धमानसागर महाराज की थी। वे भद्र परिणामी, परम शांत, वीतराग, आदर्श तथा उच्चकोटि के निर्ग्रन्थ थे। अत्यन्त वृद्ध अवस्था में महाव्रतो, समिति, गुप्ति आदि मूलगुणों का निर्दोष रीति से पालन करनेवाले वर्धमानसागर महाराज सचमुच मे ‘चारित्र चूडामणि’ थे।”

आचार्यरत्न देशभूषण महाराज के विचार

आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ने कोल्हापुर में बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें कही थीं। उन्होंने बताया था - “वर्धमान स्वामी शांतिप्रिय थे। समाधान बुद्धि थे। वे उपदेश सुनने के प्रेमी थे। बहुत अनुभवी थे। बहुत कम बोलते थे। मार्मिक वचन कहते थे। वृद्ध होते हुए भी उनकी आत्मरुचि अच्छी थी।”

विनयसम्पन्नता

“मैं उनसे पूर्व दीक्षित था, अतः आगम के अनुसार वे पहले मुझे प्रणाम करते थे। मैं उनको प्रतिवदना करता था। उनकी प्रिय वस्तु आत्मा की चर्चा थी। दूसरों को वे आत्मरुचि के लिए प्रेरणा प्रदान करते थे। वे वृद्ध साधु थे। मैं उनकी वैयावृत्य किया करता था। पायसागर महाराज वय में छोटे थे, किन्तु सयम की अपेक्षा वृद्ध थे। अपने को सयम की अपेक्षा लघु अनुभव कर वर्धमान स्वामी पायसागर जी सदृश बड़े सयमी की योग्य विनय करने में सावधान रहते थे। उनके बैठने पर पीछे स्वयं बैठते थे। वे विनय गुण की आदर्श मूर्ति थे। उनकी आत्मा में साहस तथा स्थिरता भी थी। पहले अनन्तमती अम्मा उनके पास शास्त्र पढ़ती थी। उस समय उन्होंने कहा था - “जब इस अम्मा को इतना शास्त्र का विषय आता है, तो मुझे क्यों नहीं आयगा? मैं अभ्यास करूँगा, तो मेरी बलवान् आत्मा को क्यों न ज्ञान प्राप्त होगा।”

“उनका सयम का प्रेम अपूर्व था। वे सदा सयमी व्यक्ति का सहवास पसन्द करते थे। सयमरहित को पास में नहीं रखते थे।”

भाऊसाहब लाटकर ने - वर्धमान महाराज के विषय में इस प्रकार सम्पूर्ण

मुनाए - “वर्धमान ग्वामी बहुत शान्त, परिमित भापी, मृदुवाणी वाल तेजम्वी माधु थे। वे कभी भी द्रमगे क चित्त को नहीं दुखाते थे। अपन भावा को मदा उज्जवल रखने मे मावधान रहते थे। मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, यह बात उनकी दृष्टि मे सर्वोपरि थी। इस कारण वे अपने जीवन को विशुद्ध रखते थे तथा सबका मनुष्य जन्म को कृतार्थ करने के लिए कहा करते थे।”

“कन्नड भाषा मे ममझाते हुए वे कहते थे - “तुमको यह मनुष्य जन्म मिला है। उममे मोक्षदायक जेनधर्म प्राप्त हुआ है। उममे लाभ लेने का प्रयत्न करो। पाँचों इन्द्रियो को अनुकूल विषय प्रदान करने के कार्य मे तुम्हागे कितनी शक्ति जाती है, कितना समय व्यतीत होता है। इस कार्य मे तुम महान् कष्ट उठाते हो। वावा! थोडामा कष्ट अगर अपनी आत्मा के लिए उठाओ, तो तुम्हागे जीवन सदा के लिए सुखी बन जायगा।”

“उनकी सदा यह भावना रहती थी कि किम प्रकार ममम्त प्राणियो का कल्याण किया जाय? वे बहुधा कहा करते थे, यह काल बडा कठिन है। इसमे धर्म मे स्थिर रहना विशेष आत्मबल की अपेक्षा रखता है।”

रोग पर विचार

“मृत्यु के दो माह पूर्व वे बहुत बीमार हो गए थे। उस समय कहते थे - यह रोग पूर्व मे बाँधे गए कर्मों के फल रूप है। यह असाता कर्म फल देकर निर्जग को प्राप्त हो रहा है। इसमे कर्मभार दूर होने मे आत्मा हल्की हो रही है। इस कारण रोग को क्यों कष्टप्रद मानना? हमने ही कर्म बाँधे थे, किमी दूसरे ने तो कर्मों का बध नहीं किया था, अतएव हमे ही अपने बाँधे गए कर्मों का फल भोगना पडेगा। इस स्वाभाविक कार्य-कारण भाव को सोचकर अशुभ कर्म के विपाककाल मे हमे खेद नहीं करना चाहिए। खेद करने मे कोई लाभ नहीं है। खेद करने मे बहुत हानि है, क्योंकि आगामी कष्ट परम्परा की पुन जड़ जम जाती है। इस प्रकार वे जागृत रहा करते थे।”

धन से निस्पृहता

“उनकी दृष्टि बडी स्वच्छ थी। वे लेन-देन के चक्कर से दूर रहते थे। जो त्यागी होकर उँचे पद को धारण करते है, किन्तु जिनका रुपया पैसा का लेन-देन कार्य चला करता है, उनके बारे मे वे कहा करते थे - “एक म्यान मे दो तलवारें नहीं रहती हैं। ऐसे ही आत्महित मे सलग्न साधु की दृष्टि धन-सचयादि के कार्यों से पृथक् रहती है। जिनकी दृष्टि धन की ओर उन्मुख रहती है, उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं रहता, अतएव

उनका आदेश था कि त्यागी व्यक्ति को धन के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। अपना समय जिस प्रकार निर्मल रहे उस प्रकार का काम करना चाहिए। समय की रक्षा न होती है, तो प्राणों की परवाह नहीं करनी चाहिए। मोक्ष का मार्ग ओर वध के मार्ग जुड़े-जुड़े हैं। मोक्षाभिलाषी को धन का अभिलाषी नहीं होना चाहिए। मोक्ष का मार्ग मगल नहीं है। मोह के आश्रय से मोक्ष का कपाट कभी भी नहीं खुलेगा।

श्री धर्मपाल पाटील नाट्रेकर ने वर्धमानसागर महाराज के पाम नाट्रे चातुर्मास में रहने के कारण उनके जीवन का निष्कर्ष से निरीक्षण किया था। बाहुवली क्षेत्र में भी उनके सत्संग का लाभ लिया था।

मार्मिक उपदेश

श्री धर्मपाल ने कहा - “वर्धमान महाराज के करकमलों से बाहुवली भगवान की मूर्ति की शिलान्यास विधि हुई। उस समय वर्धमान स्वामी ने बड़ी मधुर तथा अर्थपूर्ण बात कही थी। - “कितने भाग्य की बात है कि आचार्य महाराज ने इस मूर्ति की कल्पना की थी, किन्तु वे मूर्ति का दर्शन न कर सके और चले गए। अब इस प्रकार वह दिन भी आया, जब हम चले जाएँगे, किन्तु इस मूर्ति की छत्र-छाया में हजारों जीव अपना उज्ज्वल जीवन बनाते रहेंगे। यह क्षेत्र अध्यात्म की भूमि है। यहाँ तपस्या करने वाले बाहुवली मुनिराज भी आध्यात्मिक व्यक्ति हुए हैं।”

ऐसे कार्य का संचालन आध्यात्मिक दृष्टि वालों के नेतृत्व में होना हितप्रद तथा उचित है। भोगियों के बदले त्यागियों के हाथ में यहाँ की बागडोर हितकारी रहेगी।”

“वर्धमान महाराज का मन बाहुवली की मूर्ति की ओर बहुत समय से लगा हुआ था। वे नाट्रे ग्राम में विराजमान थे। यह विशालकाय मूर्ति जयपुर से चली। मिरज स्टेशन को आते समय रास्ते में नाट्रे रेलवे स्टेशन पड़ता है। उस समय मूर्ति के दर्शन की भावना से वर्धमान महाराज स्टेशन तक गए। स्टेशन पर मालगाड़ी के ठहरने की योजना नहीं थी।”

न्यायपूर्ण दृष्टि

“लोग प्रयत्नशील थे, किन्तु वर्धमान स्वामी ने स्टेशन मास्टर से कहा - “यदि गाड़ी रोकने से तुम्हारा नुकसान होता हो, तो गाड़ी मत रोको। हमारा ख्याल मत करो। कायदे के अनुसार काम करो, जिससे तुम्हारी नौकरी को धक्का न लगे। हमें क्या है? मूर्ति सामने से गाड़ी में रखी गई चली गई, इतनी कल्पना से भी हमें सन्तोष होगा।

हमें कोई आकुलता नहीं है। महज ही दर्शन हो जायगा, इस विचार में हमारा यहाँ आना हो गया और कोई बात नहीं है।”

मूर्ति-दर्शन में अपार आनंद

“वर्धमान महागज के वचनों को सुनकर स्टेशन मास्टर की आत्मा द्रवित हो गई। उसने अपने अधिकार में पर्याप्त समय तक गाड़ी रोक ली। लगभग तीस फुट लम्बी सफेद सत्रमरमय की मूर्ति को देखकर वर्धमान स्वामी का बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।”

बाहुवली की बड़ी मूर्ति को रेलवे स्टेशन में बाहुवली क्षेत्र तक ले जाना बड़ा कठिन कार्य था। भगवान् जिनैन्द्रदेव की भक्ति कल्पनातीत फलदायिनी है। इस श्रद्धा में प्रेरित हो कुछ लोगों ने एक मूचना छपा दी - वर्धमानमहाराज की आज्ञा है कि मूर्तिस्थापना के कार्य में विघ्न-निवारणार्थ प्रत्येक जैन को णमोकार का स्मरण करना चाहिए। सवालाख णमोकार के जाप की योजना भी की गई है। यह छपी मूचना वर्धमान महाराज को दिखाई गई। उस समय महाराज ने कहा - “ऐसा आदेश हमने कब दिया था। आदेश छपाने के पश्चात् तुम हमारी स्वीकृति माँगते हो।” लोगों ने कहा - “मद्भावनावश तथा सत्कार्य की मिद्धि को लक्ष्य में रखकर हमने ऐसा किया है। आपके नाम का प्रभाव रहेगा इसमें हमने आपका नाम छाप दिया। आप की आज्ञा के बिना हमने जो कार्य किया उसके लिए हम क्षमा प्रार्थना करते हैं।” इस पर महाराज ने कहा “हमारा सब पर सदा क्षमा भाव है। क्रोध का भाव नहीं है। क्षमा माँगने का क्या प्रयोजन? तुम पर सर्वदा क्षमा भाव है।” ऐसा मधुर स्वभाव तथा पवित्र मनोवृत्ति उनकी थी।”

अज्ञातशत्रु

“यथार्थ में अपनी प्रवृत्ति, वाणी, सरल व्यवहार आदि के कारण वर्धमान स्वामी अज्ञातशत्रु रहे। उनका कोई भी विरोधी नहीं। वे भी किसी के विरोधी नहीं रहे। उनका विरोध कर्मों के प्रति अवश्य रहा है। उसी कर्म-शत्रु को नष्ट करने के लिए उन्होंने रत्नत्रय रूपी तलवार हाथ में ली है। निश्चय से वे शीघ्र ही कर्मों का क्षय कर अपने सच्चे घर मुक्ति मंदिर में पहुँच जायेंगे।”

“एक दिन उनकी प्रकृति बहुत बिगड़ गई। उष्णता का जोर था। कठ सूख गया। श्वास लेना भी कठिन हो चला। उस समय एक वैयावृत्य करने वाले भक्त ने पानी में कपड़ा भिगोकर गले पर रख दिया। महाराज विचारमग्न थे। उनको पता नहीं चला।

शीघ्र ही नींद की एक झपकी सी आ गई। कुछ क्षणों के उपरान्त वे सावधान हो गए। उनको भान हुआ कि शरीर पर कुछ है। उन्होंने पूछा - गर्दन में क्या लगाया है? और कहा “बाबा! यह महाव्रत है। इसमें ऐसी गडबडी नहीं चलती।” यह कहकर उन्होंने वह पट्टी दूरकर दी। पश्चात् प्रायश्चित्त के रूप में वे महामन्त्र का जाप करने लगे। उनको अपने व्रतो की शुद्धता का बड़ा ध्यान रहता था।”

सामान्यतया आहार में वे दूध चॉवल लेते थे। ९६ वर्ष की अवस्था वाले दिगम्बर मुनिराज खड़े खड़े बिना किसी के सहारे के अपने हाथों में आहार लेते थे। हाथ कपित होते थे। दूध का बहुभाग गिर जाता था। थोड़ा सा उनके काम में आ पाता था। अल्प आहार लेने के पश्चात् कभी-कभी वे कहते थे - मेरे शरीर को जितना आवश्यक है, उतना आहार मेरे हाथ में रह जाता है। अनावश्यक भाग अपने आप नीचे चला जाता है। आहार धैर्यपूर्वक होता था। आहारदाता को तनिक भी आकुलता नहीं होती थी। उनका आहार भी अपूर्व शान्तिपूर्वक तथा निराकुलतापूर्वक होता था।

वृद्धों के मध्य में

वर्धमान महाराज के समवयस्क दक्षिण के कुछ वृद्धजन उनके पास आकर बैठ जाते थे। उन सात-आठ वृद्धों से घिरे हुए वर्धमान महाराज अपूर्व लगते थे। कहां सयम तथा वय-वृद्ध ये तपोमूर्ति साधुराज और कहां वे वयोवृद्ध असयमी गृहस्थ?

श्री भाऊसाहब पाटील द्वारा मार्मिक चित्रण

आचार्य शातिसागर महाराज के चचेरे भाई श्री भाऊसाहब देवगोडा पाटील भोज ग्रामवासी से कोल्हापुर में मैंने आचार्य महाराज अथवा वर्धमानसागर महाराज के विषय में कुछ सामग्री देने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा - “आचार्य महाराज तो निसर्ग से महान् थे, वर्धमानसागरजी भी अत्यन्त सरल थे।” आचार्य महाराज का नाम सातगोडा था, वर्धमानसागर जी का नाम देवगोडा था। इससे पाटील महाशय ने पुराने घरेलू नाम को लेते हुए कहा - “सातगोडा फार ज्ञानी, आणि शहाणा, देवगोडा भोला आणि मृदु” - शातिसागर महाराज महान् ज्ञानी तथा बुद्धिमान् थे। वर्धमान महाराज भोले तथा दयालु स्वभाव के थे। भोज ग्राम में लिंगायतों के बड़े-बड़े विद्वान् आते थे। ब्राह्मणों के भी प्रमुख पण्डित लोग आते थे। शातिसागर महाराज के साथ उनकी खूब चर्चा चला करती थी। वेदान्त की चर्चा चलती थी। उस समय महाराज के द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का सुन्दर तथा मार्मिक निरूपण होता था, उसे सुनकर बड़े बड़े अन्य धर्मियों को सतोष होता था, उनका मुख बद हो जाता था।”

एक माह पूर्व उन्होंने कहा था - “हम आहार लेने के बाद दूसरे दिन तक सल्लेखना ले लेते हैं। हमने भी आचार्य महाराज के समान १२ वर्ष की सल्लेखना का व्रत लिया है। उस समय उनका आहार कम होने लगा था। इससे उन्होंने सोचा कि अब हमारे दिन नजदीक हैं। दूध और ज्वार का आहार लेते थे, पाव भर दूध और छटाँक भर ज्वार। इतना अल्पआहार हो गया था। बाहुबली में एक दिन उन्हें चक्कर आ गया था। उनके पेट में भी पीडा हो रही थी। कहने पर भी वे नहीं लेटते थे। शास्त्रसभा में दो वजे से पाँच बजे तक एक आसन में बैठते थे। भट्टारक लक्ष्मीसेन जी से चर्चा करते थे।”

शास्त्र-चर्चा का रस

लोगो ने विनय की, कि आपका शरीर कमजोर है, उसमें पीडा है इसलिए चुप बैठने की प्रार्थना है, तब वे कहते थे - “शास्त्र का विषय है, उसे सुनकर चर्चा किए बिना चुप नहीं रहा जाता।” वे कहते थे कि - “नाद्रे में सिवनी के पंडित दिवाकर जी आए थे। उनके साथ बड़ी अच्छी चर्चा होती थी।” बाहुबली से महाराज कुभोज आ गए। वहाँ के मन्दिरजी में एक योग्य स्थान पर ठहरे थे। उनके पास पन्द्रह त्यागी आकर इकट्ठे हो गए थे। अन्त समय पर नवदीक्षित मुनि नेमिसागर जी, ऐलक कुलभूषण जी, क्षुल्लक सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक जयसेन जी तथा शातिमती अम्मा वहाँ थी। नेमिसागरजी को महाराज ने दुधगाँव में निर्ग्रन्थ बनाया था।”

“अन्त समय पर हमें उनकी सेवा का सौभाग्य नहीं मिला। उनके पास से फलटण पचकल्याणक में जाने के लिए जब पूछा, तब उन्होंने हमें आज्ञा दी थी और कहा था, “अभी प्रकृति ठीक है।”

हमने कहा - “आपकी तबियत कमजोर है, इसलिए आपका साथ छोड़ने की इच्छा नहीं होती। अभी हम आपके पास रहेगे।”

वे बोले - “हम तो अकेले जाने वाले हैं, लेकिन यह शरीर यहाँ ही पड़ा रहेगा।”

उनके पास दूर-दूर से लोग दर्शन के लिए आते थे। हम लोग महाराज से कहते थे - आप चुप रहिए तो ठीक होगा। वे दया भाव से कहते थे कि लोग दूर-दूर से आए हैं, उनको दो शब्द भी नहीं बोलेंगे, तो उनको कैसे शांति होगी? हमारे चार शब्द कहने से उनको शांति हो जाती है।

क्या सीखा?

एक दिन वे कहने लगे - “वावा मैंने कुछ नहीं सीखा। तुम लोगो ने तो खूब वाते सीखी है। मैंने तो एक बात सीखी है कि अनात्म भाव में नहीं जाना चाहिए, अपने स्वभाव में अपने को रखना चाहिए ‘या सिवाय मला काही एत नाही, वावा तुमीं सगडे सीखला।’

वे कहते थे - “हम तो लघु मुनि हैं, हम क्या समझते हैं?”

सुन्दर शास्त्र-ज्ञान सम्पादन करने के पञ्चात् भी उनकी वाणी इतनी अहंकार-रहित होती थी।

आत्मरूप में स्थिति

उन्होंने एक दिन भट्टारक लक्ष्मीसेन जी से कहा था - “तुम मुझको आत्मध्यान की बातें सुनाते हो, मैं भी सुनता हूँ। जब मैं अपने रूप में स्थिर रहता हूँ तब खरा (सच्चा) ध्यान होता है।” उनसे बाहुबली में अधिक समय तक ठहरने के लिए कहा कि सोनगढ के कानजी आने वाले हैं, आप ठहरिये। वे बोले - “वावा कोई भी आए हमें द्वेष नहीं, प्रेम नहीं। हमें क्या करना है, हम तो अपने में रहने वाले हैं।”

उनको आत्मा की चर्चा करने में बड़ा आनन्द आता था। उनमें आत्म-स्थिरता बहुत थी। मुनि समतभद्रजी ने उनसे कहा कि - “आप बाहुबली में ही रहिए। आपकी देह यहाँ ही पडना चाहिए। यहाँ ही समाधि हो।”

वर्धमान महाराज ने कहा - “जहाँ देह का पतन होना होगा, वहाँ ही होगा। हम क्या कह सकते हैं?”

प्रश्न - अब आप वृद्ध हो गए, अधिक इधर-उधर न जाकर यहाँ ही रहिए।

आत्मशक्ति का विश्वास

वे बोले - “त्यागी के शरीर में जब तक शक्ति है, तब तक उसे नदी के समान गमन करते ही रहना चाहिए। अभी मेरी आत्मा में शक्ति है। शरीर मात्र क्षीण हुआ है। मैं तुमको थका सा दिखता हूँ, किन्तु मेरी आत्मशक्ति बड़ी है, न्यून नहीं हुई है।”

बाहुबली क्षेत्र में बाहुबली भगवान की विशाल मूर्ति के आने पर वे बहुत आनंदित हुए और कहने लगे, “आचार्य महाराज के उपदेश से कितनी महान् और

सुन्दर मूर्ति आ गई और उस पर पानी की तरह रूपयो की वर्षा होने लगी। सचमुच में आचार्य महाराज का पुण्य अपूर्व था। उनके वचनो से ऐसा हो गया।”

शेडवाल की श्रावक मडली महाराज के पास शेडवाल चलने की प्रार्थना करने को आई। श्रावक समुदाय ने प्रार्थना की - “महाराज! शेडवाल मे चलिए, वह समाधि के योग्य स्थान है।” वर्धमान महाराज ने कहा - “हमे कहीं भी समाधि लेनी है। हमे स्थान का मोह नहीं है।”

महाराज को देखने के लिए डाक्टर आया, तब वर्धमान महाराज ने विनोदपूर्ण भाषा मे कहा - “जब इस जड शरीर को ठीक नहीं कर सकते, तब मेरी आत्मा के रोग को दूर कर उसे कैसे रोग-मुक्त बना सकोगे?”

कार्कल मे सर्प का आगमन

वर्धमान स्वामी ने किनी मे कहा था - “मैं क्षुल्लक अवस्था मे कार्कल गया था। मैं बाहुबली की मूर्ति के पास एक शिला पर सामायिक के लिए बैठा था। वहाँ एक बहुत मोटा सर्प फण ऊँचा उठा कर फुस्-फुस् शब्द करता हुआ सामने आया। मेरी सामायिक समाप्त हो चुकी थी। मैं स्तुति पाठ कर रहा था। मैंने उसे देखा मेरे चित्त मे भय नहीं उत्पन्न हुआ। भय क्यों उत्पन्न हो? वह मेरा क्या करेगा? शरीर को कुछ करेगा, तो शरीर मेरा नहीं है। यह विचार कर मैं नेत्र बंद करके ध्यान मे बैठ गया। पाँच बजे शाम तक मैं ध्यान में बैठा रहा। आँखें खोलने पर देखा, तो सर्प वहाँ नहीं था। वह चला गया था।”

वे कहते थे - “प्रारम्भ में मुझे शास्त्र का अल्प-बोध था। एकान्त मे बैठकर ध्यान करने की रुचि थी। एकान्त मे जाना तथा कठोर तप करने की बहुत इच्छा रहती थी।” बाबूराव मार्ले, अतूबाई पाटील किनी, क्षु सन्मतिसागरजी तथा मुनि नेमिसागरजी ने वर्धमान महाराज की खूब सेवा की।

सन्मतिसागरजी ने वर्धमान महाराज से मुनि दीक्षा मागी, तब महाराज बोले - “पहले मुझे पार लगादो, फिर दीक्षा लेना।”

ग्रामवास

वर्धमान महाराज बहुधा ग्राम मे निवास करते थे। उनके पास बच्चे आकर बड़े प्रेम से इस प्रकार बैठ जाते थे, जैसे वे अपने माता-पिता के समीप स्नेहवश बैठते है।

ममडोली चातुर्मास के पश्चात् महागज कुभोज पहुँचें। उस समय बाहुवली आश्रम में अनेक लोग उनके पास गए और बाहुवली क्षेत्र पर चलने की प्रार्थना की।

मार्मिक उद्गार

वे बोले - “ममतभद्र वहाँ ही हैं। वे आश्रमरूपी तबू के मुख्य स्तंभ हैं और आप लोग उनकी खूटी हो। खूटी पक्की होनी चाहिए। गम्भी भी मजबूत रहना चाहिए। तुम लोग आश्रम की खूटी हो। खूटी ढीली पड़ी, तो खम्भा क्या करेगा? तुम लोगो ने आश्रम को जीवन दिया है। अपने चरित्र में अच्छे रहना और धर्म का उद्धार करना।” लोग धर्म का उद्धार करना चाहते हैं, किन्तु स्वयं के चरित्र को उज्ज्वल रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। वर्धमान महाराज की दृष्टि में यह महत्त्व की बात थी कि पहले अपने को सच्चरित्र बनाओ, पश्चात् धर्म की उन्नति करो।

ऐलक कुलभूषणजी वर्धमानमागर महाराज के अन्त समय तक उनके समीप थे। उन्होंने बताया कि - “वर्धमान महागज अन्त तक पूर्ण सावधान थे। वे अत्यन्त सरल तथा पवित्र वृत्ति के मत्पुरुष थे।”

वास्तव में, वे अलौकिक महापुरुष हो गए। उनको प्रकाश तथा अन्त प्रेरणा आचार्य जातिमागर महाराज से मिली थी। वे धन्य थे।



आचार्य वीरसागर महाराज

मुझे सात अप्रैल १९५७ के प्रभात में जयपुर की खजाची की नसिया में ८२ वर्ष की वय वाले महातपस्वी निर्ग्रन्थ गुरु तथा स्वर्गीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिमागर जी के उत्तमाधिकारी आचार्य वीरसागर महाराज के पुण्यदर्शन का सौभाग्य मिला। वयोवृद्ध होते हुए भी उनके सारे शरीर में विशेषतया मुख पर एक विशेष दीप्ति दिखाई पड़ती थी, जो उच्च तपस्वियों में पाई जाती है। मैंने उनको प्रणाम किया और उनसे कुछ चर्चा प्रारम्भ हुई। उससे मन को बड़ी शांति मिली, अन्तःकरण को अपूर्व आनन्द मिला और विचारों को महत्त्वपूर्ण मामग्री मिली। उनकी आचार्य शान्तिमागर महाराज में अगाध भक्ति थी।

मुनिमार्ग के सच्चे सुधारक

वे कहने लगे - “आचार्य महाराज ने हम सबका अनन्त उपकार किया। उन्होंने इस युग में मुनिधर्म का सच्चा स्वरूप आचरण करके बतलाया। उनके पूर्व उत्तर में तो मुनियों का दर्शन नहीं था और दक्षिण में जहाँ कहीं भी मुनि थे, उनकी चर्या विचित्र प्रकार की थी। वे मुनि आहार को उस जगह जाते थे, जहाँ उपाध्याय जाकर पहिले से आहार की पक्की व्यवस्था कर लेता था और आकर कहता था ‘वर री स्वामी’-महाराज चलो। लोगों को पडगाहने की विधि नहीं मालूम थी। उपाध्याय उस समय मुनि को आहार कराता था और स्वयं भी माल उड़ाता था। इस वातावरण को देख शान्तिमागर महाराज के मन ने यह अनुभव किया कि यह तो निर्ग्रन्थ मुनि की चर्या नहीं हो सकती। उन्होंने उपाध्याय के द्वारा पूर्व निर्णीत घर में जाना एकदम छोड़ दिया। दिगम्बर मुद्रा धारण कर उन्होंने आहार के लिए विहार करना प्रारम्भ किया। लोगों को विधि मालूम न होने से वे उनको यथाशास्त्र नहीं पडगाहते थे। इससे महाराज लोट करके चुपचाप आ जाते। शान्त भाव से वह दिन उपवास पूर्वक व्यतीत करते थे। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। धर्मात्मा गृहस्थों में चिन्ता उत्पन्न हो गई। फिर भी वे नहीं जानते थे कि इनके उपवास का क्या कारण है? क्योंकि वे गुरुदेव शान्त थे और किसी से अपनी बात नहीं कहते थे। उनकी चर्या को देखकर कोई भी आदिप्रभु के युग को स्मरण करेगा। ऐसी परिस्थिति के मध्य जब चार दिन बीत गये, तब ग्राम के प्रमुख पाटील ने उपाध्याय को बुलाकर कड़े शब्दों में कहा -- “साधूल मारतोस काय? विधि सागा” साधु को मारता

अपार वेदना को शान्त भाव से सहन करने वाले और आगम की आज्ञा को पालन करनेवाले उन गुरुदेव के मनोबल और उज्ज्वल श्रद्धा की कौन कल्पना कर सकता है? उस समय महाराज दूध चावल लेने के बाद एक उपवास करते थे, फिर आहार और फिर उपवास, इस प्रकार धारणा-पारणा का क्रम चलता रहता था। उस जमाने में अन्य साधुओं को आहार कराने के लिए उपाध्याय को पाँच रुपये फीस देनी पड़ती थी। आचार्य महाराज ने जो पद अङ्गीकार किया, उसमें उपाध्याय का रज्ज्वमात्र हस्तक्षेप नहीं था।

वीरसागर महाराज ने एक महत्त्व की बात कही थी कि - “वाणी का समय सुमधुर फल प्रदान करता है।” वे बोले - “समितियों में भाषा समिति, गुप्ति में मनोगुप्ति और महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ है।”

गुरु की शिष्य-वृत्ति

आचार्य महाराज ने देवप्पा स्वामी से सर्वप्रथम क्षुल्लक दीक्षा ली थी, किन्तु दीक्षा के उपरान्त उनके सयमी जीवन की कीर्ति साधु समाज में खूब फैली। उनके गुरु देवप्पा स्वामी तक उनके पुण्य जीवन से प्रभावित हुए। श्रवणवेलगोला में जब आचार्य महाराज गये थे, तब देवप्पा स्वामी भी वहाँ पहुँचे थे। देवप्पा स्वामी ने शातिसागर महाराज के पास आकर बड़ी नम्रतापूर्वक एक बात कही - “इतने दिन मैं आपका गुरु था, लेकिन अब आप मेरे गुरु हैं। मेरी जीवन-चर्या मुनिपद के अनुरूप नहीं है, इसलिए अब दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिये।” देवप्पा स्वामी के अत्यन्त आग्रह पर शातिसागर महाराज ने उन्हें पुनः दीक्षा दी थी।

कितनी अद्भुत बात है, गुरु भी इन साधुराज के समीप आकर शिष्य बनकर इन्हें गुरुदेव मानने लगे।

मैंने अनेक बार देवप्पा स्वामी के बारे में आचार्य महाराज से चर्चा चलाई, तो वे गम्भीर मुद्रा धारण कर चुप हो जाते थे और कुछ नहीं कहते थे, क्योंकि उस वर्णन में स्वप्रशंसा और अपने दीक्षागुरु का अगौरव छिपा हुआ था, इसलिए वे उस चर्चा से विमुख रहते थे।

व्रतदान

आचार्य महाराज का जीवन चुम्बक की तरह मन को आकर्षित करता था। एक दिन पं. धन्नालालजी काशलीवाल बम्बईवाले महाराज के पास गये और बोले -

“महागज, मुझे ब्रह्मचर्य प्रतिमा दीजिए।” महाराज ने कहा - “इसके लिए मुहूर्त देखेंगे।” पंडितजी ने विनयपूर्वक कहा - “महाराज, आज मैंने आपके चरण पकड़ लिये, मेरे लिए, इससे बढ़कर क्या मुहूर्त होगा।” पंडित जी की तीव्र लालसा देखकर उन्हें उसी समय ब्रह्मचर्य प्रतिमा दी गई। दो माह के पश्चात् पण्डित धन्नालालजी का स्वर्गवास हो गया। व्रतयुक्त उनकी मृत्यु हुई। इस प्रकार महाराज ने बहुत से व्यक्तियों का कल्याण किया।

वीरसागर महाराज ने कहा - “आचार्य महाराज के शरीर पर सर्प लिपटा था, किन्तु उसने कुछ उपद्रव नहीं किया, इसका कारण उन्होंने बताया - “अतरङ्ग में निर्मलता है, तो बाहर वाले में भी निर्मलता आ ही जाती है, इसलिए वह सर्प अभिभूत हुआ।”

मुनिजीवन में क्या कष्ट है?

मैंने कहा - “महाराज, आचार्यश्री ने आपको मुनि बनाकर, आपको कष्ट दिया या आनन्द प्रदान किया? उत्तर देते हुए वीरसागर महाराज बोले - “हमें कौनसी बात का कष्ट है? हम तो तुम्हारी तकलीफ देखते हैं और उसे छुड़ाना चाहते हैं। तुम परिग्रह और आकुलता के जाल में जकड़े हुए हो। तुम्हें क्षण भर भी शान्ति नहीं है।”

“देखो! साधु के परिषह होती है, गृहस्थ भी कम परिषह सहन नहीं करता। जितना कष्ट गृहस्थ उठाता है तथा जितना परिग्रह का ध्यान वह करता है, उतना कष्ट यदि मुनि सहन करे और निज गुण का ध्यान करे, तो उसे मोक्ष प्राप्त करने में देर न लगे। देखो! चिल्हर का व्यापार करने वाला बीच बाजार में बैठता है। हर एक ग्राहक को देता है, लेता है, परन्तु अपने धन कमाने के ध्येय को नहीं भूलता है। कितनी सावधानी रखता है वह?”

“दूसरी बात - गृहस्थ जेठ महीने में दस बजे दूकान पर जाता है। सूर्य की गर्मी बढ़ती जाती है। ग्राहकों की भीड़ लगी हुई है। उस समय नौकर आकर कहता है, पानी ले लो, तो वह सुनता नहीं, बहिरा बन जाता है। पुन कहता है, तो वह डाँट देता है या उसकी ओर ध्यान नहीं देता है। ध्यान है ग्राहक पर। इस प्रकार वह अपने लाभ की ओर चित्त लगाए हुए रहता है और कष्ट की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। यह दृष्टि का फेर है। आत्मकल्याण में लगने पर साधु आरम्भ क्रियाओं को छोड़ देता है और आत्मकल्याण के कार्यों में आगत विघ्नों को सहज ही सहन करता है।”

द्वारा परोपकार

वीरसागर महाराज के छोटे-छोटे वाक्यों में मार्मिकता और गम्भीरता पाई थी। वे कहने लगे - “शील बड़ा धन है। उस धन के कारण शीलवती दरिद्र रहकर लभूषित कुलटा के पद को तुच्छ मानती है। साधु स्वतः के लिए क्षमा धारण करता दूसरो के दुःख निवारण के लिए यदि कुछ न करे, तो धर्म की क्या अवस्था होगी? विष्णुकुमार मुनि अकम्पनाचार्यादि सात सौ मुनियों पर उपसर्ग आने पर चुप रहे तो क्या होता? उन्होंने परोपकार के लिए वेष छोड़ा, साधुओं की रक्षा की, पश्चात्पस्थापना की।”

“अयोग्य चिकित्सक के हाथ में जाकर शस्त्र रोगी के विकार को दूर न कर चिकित्सक का घात कर बैठता है। इसी प्रकार आज समयसार सदृश महान् शास्त्र, बनाया जा रहा है। वह कर्मों का सहारक है, किन्तु आज वह विलास का विकासकर हित का विनाशक बनाया जा रहा है। समयसार ऐसा नहीं है।”

एल मनोवृत्ति

प्रश्न - “महाराज! मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, अधिक पूछूँ या नहीं?”

उत्तर - “खूब पूछो, गुरु को और माता को सताओ, तब इष्ट वस्तु मिलती।” उन्होंने कहा - “जैन साधु से क्षमा मत माँगो।”

मैंने पूछा - “क्यों?”

उत्तर मिला - “इसका अर्थ यह है कि उनमें क्रोध है। ऐसी कल्पना भी ठीक ही है। उनसे प्रायश्चित्त माँगो।”

वे कहने लगे - “नेत्र सदृश सज्जन नहीं और कान सरीखा दुश्मन नहीं। बैर ढाने वाला कान कच्चा है।” कान का कच्चा नहीं होना। शरीर का दोगला उतना बुरा ही, जितना कान का कच्चा है।”

मधुर वाणी

आचार्य महाराज के विषय में वे कहने लगे - “उनकी वाणी में कितनी मिठास, कितना युक्तिवाद और कितनी गम्भीरता थी, यह हम नहीं कह सकते। महाराज जब आलद (निजाम राज्य में) पधारे, तब उनका उपदेश वहाँ के मुस्लिम जिलाधीश के समक्ष हुआ। उस उपदेश को सुनकर वह अधिकारी और उनके सहकारी मुस्लिम कर्मचारी

इतने प्रभावित हुए, कि उन्होंने महाराज को साष्टांग प्रणाम किया और बोले, “महागज जैनो के ही गुरु नहीं हैं, ये तो जगत् के गुरु हैं। हमारे भी गुरु हैं।”

आचार्य महाराज ममय को देख सुन्दर ढङ्ग से इस प्रकार तत्त्व बतलाते थे कि शङ्का के लिए स्थान नहीं रहता था। मैंने पूछा - “उस भाषण में महाराज ने क्या कहा था?” वे बोले - “आचार्य महाराज ने देव, गुरु तथा शास्त्र का स्वरूप समझाया था।”

उन्होंने कहा था - “जो हमारे ध्येय को पूरा करे वही देव है। जितने ध्येय हैं, उतने देव मानने पड़ेंगे और उनकी पूजा करनी पड़ेगी। कुंजडी को देव मानना होगा, तब इष्ट साग आदि की पूर्ति होगी। पूजा का स्वरूप लोगो ने समझा नहीं, पूजा का अर्थ योग्य सम्मान है।”

जैन की दृष्टि

वीरसागर महाराज ने प्रसन्नवश यह कहा - “मॉंगने वाला जैन नहीं और जैन मॉंगने वाला नहीं है। जैन नौकर नहीं है और नौकर जैन नहीं है। नौकर की दृष्टि वेतन पर होती है, काम पर नहीं होती। जैन की दृष्टि कार्य पर होती है, वेतन पर नहीं। जैनों की गौरवपूर्ण स्थिति का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि संवत् १९५६ में जो भयकर दुष्काल आया था, उस समय सबने सरकार का माल खाकर अपने प्राणों की रक्षा की, किन्तु उनमें जैनो का नाम नहीं था।”

“जिसकी पूजा हो, उसे नमस्कार हो, न भी हो। नमस्कार के साथ देवपने का अविनाभाव नहीं है। जो दूसरे को तिरस्कार की दृष्टि से देखे, वह जैन नहीं। सम्यक्त्वी की पहिचान मुख पर है। जिसके मुख में प्रेम भरा हो, वह जैन है। जिसके मुख पर ग्लानि है, वह सम्यक्त्वी नहीं है। वह वात्सल्याग नहीं रखता है। वात्सल्य के लिए गाय को क्या कुतिया को देखो। बच्चे काटते हैं, तो भी कुतिया उनको पकड़-पकड़ कर दूध पिलाती है।”

वात्सल्य का भण्डार

“आचार्य महाराज में वात्सल्य का अपूर्व भंडार था। कई बार मैंने महाराज से कहा था - महाराज आपकी शान्ति हमारा नाश करती है।”

महाराज कहते थे - “हमारा धर्म ही शान्ति है।”

उपयोगी शिक्षा

महाराज ने कहा था - “गुरु को तीन बातें ग्रहण करनी चाहिए और तीन बातें

छोड़नी चाहिए। उसे ज्ञान में, ध्यान में और तप में सलग्न रहना चाहिए। उसे विषयो को छोड़ना चाहिए, आराम को छोड़ना चाहिए और परिग्रह को त्यागना चाहिए।”

“जिसमें पूर्वापर विरोध नहीं है, वही शास्त्र है, जो शुरू से अन्त तक एक समान हो।”

उन्होंने बताया - “हम शिखर जी गये थे। रास्ते में १००-१५० बेलों का झुंड मिला। चार मस्त बेल भागे, महाराज की तरफ आये और उनकी तरफ मुँह करके प्रणाम करके खड़े रह गये। देखने वालों के नेत्रों में आँसू आ गये। लोग कहने लगे - इन जानवरों को इतना ज्ञान है कि साधुराज को प्रणाम करते हैं और मनुष्य की इसके विपरीत अवस्था है।” वीरसागर महाराज ने कहा था कि उस परिस्थिति में आचार्य महाराज पूर्ण शान्त थे।

कारुण्य मूर्ति

वे बोले - “आचार्य महाराज ने दक्षिण के जेनों का बड़ा उपकार किया है। उन्होंने पत्थर को रत्न बनाया है। किसी-किसी जगह जेन लोग बलिदान में सम्मिलित होते थे। आचार्य महाराज ने उस समय यह नियम किया था कि जो जीवहिंसा का त्याग करेगा, मिथ्यात्व का त्याग करेगा और पुनर्विवाह का त्याग करेगा, उसके हाथ का ही आहार लेंगे।”

“एक समय की बात है, छिपरी गाँव का पाटील बलिदान सपर्क छोड़ नहीं रहा था। उस समय महाराज ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक यह नियम नहीं करेगा, तब तक मेरे अन्नजल का त्याग है।” स्मरण रहे कि यह उस समय की बात है, जब गाँधीजी के पास सत्याग्रह रूपी हथियार नहीं पहुँचा था। उन्होंने जीवहित के लिए जिस मार्ग को अपनाया था, उसे आजकी दुनिया सत्याग्रह कहती है। “पहिले दिन पाटील पर कोई असर नहीं हुआ। आज महाराज का उपवास है, केवल इसलिए, कि ग्रामनायक ने हिंसा-सपर्क का त्याग नहीं किया। दूसरा दिन आया, फिर भी महाराज आहार को नहीं उठे, क्योंकि पाटील का मन पत्थर की तरह कड़ा है और वह परिवर्तन को तैयार नहीं है। जीवदया से प्रेरित अन्तःकरण और पाटील के उद्धार करने में दृढप्रतिज्ञा वे साधुराज और कड़े हो गये। सारी बस्ती में गहरी चिन्ता छाई हुई थी। ऐसे अवसर पर वह पाटील चुपके से कोल्हापुर भाग गया। “तीसरा दिन आया, फिर भी महाराज का आहार नहीं हुआ, तब तो सारे ग्रामवासी बेचैन हो गये। कोल्हापुर जाकर लोग पाटील को पकड़कर लाये

और बोले - क्या साधु के प्राण लेना है? क्यों नहीं नियम लेता है। वह वज्रहृदय कोमल बन गया। महाराज के चरणों को प्रणाम कर उसने सर्वदा के लिए पाप का त्याग किया, तब महाराज आहार को उठे। वीरसागर महाराज बोले - “आचार्यश्री के जीवन की ऐसी अनमोल अनेक घटनाएँ हैं। वे अपने ढङ्ग के एक ही थे, उन सदृश श्रेष्ठ आत्मा का दर्शन कहाँ होगा?”

शिष्य बनो

वीरसागर महाराज बोले - “जो अपने को गुरु मानता है, वह उन्नति नहीं कर पाता। शिष्य बनोगे तो तुम्हारा हित होगा। शिष्य बनने पर अपनी गलती मालूम पड़ती है। गुरु बनने पर कैसे पता लगेगा?”

प्रश्न - “आचार्य शान्तिसागर महाराज में गुरुपना था या शिष्यपना।”

उत्तर - “हमारे लिए तो वे गुरु थे, किन्तु स्वयं को गुरु नहीं मानते थे। अपने को गुरु मानने वाले का कल्याण नहीं है।”

जैनधर्म अनुभवपूर्ण है

मैंने कहा - “महाराज! आप बड़ी गहरी बात करते हैं?”

महाराज बोले - “जैनधर्म में कौन बात गहरी नहीं है? यदि अनुभव करो, तो पता चले। जैनधर्म अनुभव की ही तो वस्तु है। वह वाणी का या बुद्धि का वैभव नहीं है। यह अनुभव के रस से भरा है। लोग आज आगम को बुद्धि के अनुकूल बनाते हैं, बुद्धि को आगम के अनुकूल नहीं बनाते, यही बड़ी भूल है।”

रोग के विषय में अपूर्व दृष्टि

प्रश्न - “महाराज, आपका स्वास्थ्य खराब रहता है, इससे चिन्ता होती है।” उत्तर में महाराज ने यह महत्त्व के शब्द कहे - “त्यागी को रोग वैराग्य के लिए होता है और भोगी को रोग रोने के लिए होता है।” इसके सिवाय उन्होंने और कुछ नहीं कहा। ऐसी बात सुनकर समझ में आया कि आचार्य शान्तिसागर महाराज ने इनको अपना उत्तराधिकारी बनाकर कितना उचित कार्य किया। आचार्य महाराज ने किसी के कहने से इन्हे आचार्य नहीं बनाया। उन्होंने मेरे समक्ष कहा था कि “हम अपने स्वतः के सतोष से वीरसागर को आचार्य पद देते हैं।” आचार्य महाराज के पवित्र अन्तःकरण ने वीरसागर महाराज को रत्न रूप में परख लिया था, इसलिए उन्होंने उनको श्रमण सघ के शिरोमणि की प्रतिष्ठा दी थी।

स्वप्न मे गुरुदर्शन

प्रश्न - “आचार्य महाराज का कभी स्वप्न मे दर्शन होता है क्या?”

उत्तर - “मनीषसे स्वप्नीदिसे - जो बात मन मे जमी रहती है, स्वप्न मे उसका दर्शन होता है। इस नियमानुसार गुरुदेव का स्वप्न में अनेकबार दर्शन होता है। हमारी उनसे बातचीत भी हुआ करती है।”

शत्रु पर प्रेम

उन्होंने कहा - “आचार्यश्री का जीवन अनमोल था। उनका अनुभव-ज्ञान अद्भुत था।” उन्होंने बताया कि “राजाखेडा मे जब ५०० गुण्डो के साथ छिद्दी ब्राह्मण आक्रमण के लिए शस्त्रो से सज्जित होकर आने की तैयारी कर रहा था, उस समय आचार्यश्री की अतरात्मा को विलक्षण प्रकाश मिला। ठंड के दिन थे, गगनमण्डल मे कुछ बादल देख उन गुरुदेव ने आदेश कर दिया कि सघ के त्यागी आज कोठरी के भीतर ही ध्यान करेगे। १५ मिनट बाद ही उपद्रव आरम्भ हुआ, किन्तु उपद्रवकारी विफल रहे। वे जिन साधुओं पर उपसर्ग करना चाहते थे, वे तो कमरे के अन्दर थे, इसलिए उनकी दुर्भावनाएँ मन की मन मे रह गई। उस समय पुलिस का अधिकारी महाराज के पास आकर बोला - “इस छिद्दी को क्या करना चाहिए? आज्ञा दीजिए।” महाराज ने कहा “मेरी मानोगे क्या?” पुलिस कप्तान ने कहा - “आपकी आज्ञा का हम परिपालन करेगे।” महाराज बोले - “छिद्दी को छोड दो।”

इस प्रकार प्राण लेने वाले पर भी प्रेम का भाव धारण करनेवाले गुरुदेव सचमुच मे शान्ति के सागर ही थे।

अचिन्त्य आत्मबल

आचार्यश्री मे एक दूसरी विशेषता उन्होंने बतलाई, वह था उनका आत्मबल। उनका आत्म-विश्वास अचिन्त्य था। जिनवाणी पर श्रद्धा रखकर आत्मबल के आश्रय से वे अपना मार्ग निर्धारण करते थे। उस समय उनके विरुद्ध यदि सारा ससार हो, तो भी उन्हें उसका भय नहीं था।

शिक्षा

वीरसागर महाराज ने जैनधर्म के महत्त्व की चर्चा करते हुए कहा था - “जैनधर्म का महत्त्व बढ़ाने के लिए हमें गुरुकुल चाहिए, जो हमारे पूर्ण स्वाधीन हो। वहाँ जैनधर्म

को समझने वाले विवेकी नर्चाग्रि विद्वान् तैयार करेंगे जो यह बतावें कि जैनधर्म कितना महत्त्वशाली है।” उन्होंने कहा - “हमारा माल खरा है, जिसे लेना है, परीक्षक बन कर ले। पर्गळ बनने की योग्यता साथ में अवश्य चाहिए।” वे कहने लगे - “अपना नम्याओं को हम शासन के आधीन कर देते हैं, मगर म्वामी बनती है। शिक्षा उनकी रहती है। हमारी स्वाधीनता कहाँ रही? हमारी मस्था पूर्णतया हमारे आधीन रहनी चाहिए।”

ऐसे ही विचार स्वर्गीय ज्ञान्तिमागर महाराज ने जेडवाल में हमें सुनाए थे। आजकल धार्मिक विद्यालय सरकार से सम्बन्धित होकर कार्य की दृष्टि से जैनत्व गहित होकर नाम के लिए जैन संस्था रह जाते हैं। यदि यही ढग रहा, तो जिनशासन के ज्ञाताओं का महत्ता अभाव हुए बिना न रहेगा। मस्कृति के मरक्षण तथा धर्म प्रभावना के लिए ऐसे त्यागी, परोपकारी और निस्पृही व्यक्तियों को ज्ञान देना चाहिए, जो अपनी वाणी और जीवनी के द्वारा तीर्थङ्करों की शिक्षा को बता सकें।”

अद्भुत दृष्टि

वीरमागर महाराज ने कहा - “मतोष के सब गुण गाते हैं, किन्तु हमारा कहना है, जिसके सतोष है, वह सम्यक्त्वी नहीं है।”

प्रश्न - “यह तो बड़ी अद्भुत बात आपने कही।”

उत्तर - “पर-पदार्थों के विषय में मन्तोष चाहिए, जो भी वस्तु मिली उसमें मनुष्ट रहना चाहिए किन्तु ऐसा सतोष आत्मोन्नति के विषय में नहीं रहना चाहिए। आत्मा की उन्नति में यदि मतोष कर लिया, तो सम्यक्त्वी का उपवृहण अग नहीं बन सकता।”

“सम्यक्त्वी के भय नहीं रहता, किन्तु देखा जाय, तो ममार का भय उसके पास रहता है। सीता को मरण का भय नहीं था। हरण किये जाने पर मन्दोदरी ने सीता का अवलोकन डगना चाहा और कहा कि रावण बड़ा बलवान और वैभवशाली है। उस समय सीता ने निर्भय होकर मन्दोदरी से कहा था -

“तुमने यहाँ आकर कुट्टिनी का काम किया, यह तुम्हारे योग्य नहीं था। तुम्हें गजा मय के उज्ज्वल वज्र के क्लक लगाया।”

उनका तन्त्र-निरूपण बड़ा सुन्दर रहता था। आचार्य ज्ञान्तिमागर महाराज

कुथलगिरि मे हजारो के द्वारा हल्ला मचने पर भी शात थे। मैंने कहा था - “महाराज! हल्ला बहुत होता है, इससे आपके ध्यान मे विघ्न आता होगा? इस पर उन गुरुदेव ने कहा था - “भीतर शांति है, तब बाहर का हल्ला क्या करेगा?” इसी प्रकार के विचार वीरसागर महाराज की अनुभवपूर्ण वाणी से निकले। वे कहने लगे - “हमारा एकान्त हमारे हृदय मे है, बाहर का पदार्थ हमारा क्या कर सकता है? दुर्बल मन वालों के लिए बाहर जाने की आवश्यकता पडती है।” वीरसागर महाराज का आध्यात्मिक जगत् का अनुभव भी लगभग ४० वर्ष का हो गया, इसलिए उनकी जीवनी और अनुभव मुमुक्षु के बड़े काम के है, उनका हृदय बड़ा विशाल था।

मार्गदर्शन

जयपुर में दस अप्रैल सन् १९५७ मे अध्यात्मप्रेमियों के आराध्य तथा असयमप्रेमी स्वामी जी पधारे थे। उनका भाषण मैंने सुना। भाषण की चर्चा वीरसागर महाराज के समक्ष मैंने चलायी। मैंने कहा - “महाराज! मुझे तो भाषण मे रस नहीं आया। ‘समझ में आया’, शब्द की सैकड़ों बार आवृत्ति मन को बड़ी अप्रिय लगती थी। उनकी ‘पिप्पली’ का उदाहरण बारबार सामने आता था।” और भी जो बात मुझे ठीक नहीं लगी, मैंने हृदय खोलकर उनके सामने रखदी, जिस प्रकार कोई शिष्य अपने गुरु को अपना हृदय सुना देता है। मेरी दृष्टि किसी भक्त को ठीक न लगे, किन्तु वह मेरी दृष्टि है। जो मुझ पर प्रभाव पडा, मैंने गुरुदेव को सुना दिया।

मेरी बात सुनकर वे गम्भीर स्वभाव वाले साधुराज कहने लगे - “पण्डितजी! शास्त्र में स्थितीकरण और उपगूहन दो अग बतलाए हैं, उनका ध्यान हमेशा रखना चाहिए। सम्यग्दृष्टि का कर्तव्य है कि साधमी की बात देख कर उपगूहन अग को न भूले।”

मेरे कथन से उनके वीतराग मन में प्रसन्नता नहीं हुई। मेरी समझ में आया कि सचमुच में ये साधारण पुरुष नहीं हैं। किसी महापुरुष को २ मिनिट मे नहीं समझा जा सकता - ‘सोना जानिए कसे, आदमी जानिए बसे’ यह सूक्ति अपना गहरा अर्थ रखती है। मुझे एक विद्वान्, वीरसागर महाराज के बारे मे अपना अल्पकाल का ऐसा अनुभव सुना रहे थे, जिससे मेरा मन उनके विषय मे उज्ज्वल भावों से शून्यसा बन गया था, किन्तु निकट से उनके सर्वांगीण जीवन को देखने पर ऐसा लगा, कि मैं सचमुच में एक महान् आत्मा के चरणों के पास बैठा हूँ। वहाँ सुनने मे आया कि वीरसागर महाराज को उष्णता के कारण बहुधा चक्कर आ जाया करते हैं। उसी मूर्छा की स्थिति में भी उनकी अगुली जाप करती हुई मालूम पडती है। ओष्ठ भी पचपरमेष्ठी के नाम की आराधना करते हैं।

हितगुरु

उनके एक भक्त-विद्वान्-त्यागी के सम्मुख मैंने महाराज ने कहा, “आपके निगम में बाह्यो तैल मद्गम जोई औषधि अवश्य लगना चाहिए।” वे बोले - “हमें अपने अंगों की अवस्था मालूम है। ये हमारे हितैषी बनकर आपको बातें सुनाते हैं। मैं तो इनको अपना हित-गुरु समझता हूँ।” हितैषी के लिए हित-गुरु शब्द को चुन कर चुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, इसलिए मैंने पूछा - “आपने यह कैसे कहा?” उत्तर - “ये बताते हैं हित और करते हैं हमारे हित का घात। प्रमाद को बढाने वाले कायों को ओर मुझे ले जाना चाहते हैं। उनमें मेरा घात होता है। इसलिए मैं नोच-रम्झकर इन्हें गुरु कहा है।” इसके पश्चात् वे कहने लगे - “दिवान् जो मेरे पास एकान्त नहीं है मैं अनेकान्त दृष्टि में सोचता हूँ।”

पिच्छी की प्रतिष्ठा

आचार्य वीरनागरजी ने पिच्छी धारण करने वाले उच्च त्यागियों को दृष्टिपथ में रखते हुए कहा - “साधु को अपने पदस्थ का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।” पिच्छी हाथ में लेकर उन्होंने मुझसे पूछा - “हमारे हाथ में क्या है?” फिर बोले - “इस पिच्छी को हाथ में लेकर जिम्मे वरुणा नहीं की, उज्ज्वल क्या किया।” वे बोले “हमारा तो यह कहना है, पिच्छी को लजाओ मत।”

इस सूत्र में बड़ा रहस्य भरा हुआ दिखता है। वास्तव में उच्च संयोग की श्रेणी पर चढ़कर करुणा के प्रतीक और उपकरण पिच्छी को हाथ में लेने वाले सत्पुरुषों को महाराज की बात मदा दृष्टिपथ में रखनी चाहिए, कि वे ऐसा जोई काम न करें। जिनने पिच्छी की प्रतिष्ठा को धक्का लगे। उनका धारण करना सचमुच में खिलवाड़ नहीं है। साधु का स्वभाव पिच्छी में लगे हुए मयूर पंख के समान कोमल, मृदुल तथा मधुर होना चाहिए।

प्रश्न - “क्या आचार्य गान्धिसागर महाराज सामाजिक के पूर्व वीरगात्रोत्तरोत्तर पढा करते थे।”

उत्तर - “हमारे लिए तो सभी उत्तरोत्तर वीरगात्रोत्तरोत्तर हैं।”

उनकी वीरगात्र भक्ति अपार थी। प्रतिदिन अस्सी माला गमोकाग्र मंत्र की जप करते थे। तीन बजे रात में इनके जप का कार्य प्रारम्भ होता था। शोल, संयोग, तप, जिनभक्ति तथा आत्मचित्तन की पवित्र नामग्री के द्वारा उनका जीवन निर्मल होता जा रहा था, इसीलिए उनकी बातों में बड़ा रस आता था। उन्हें लोक का भी बड़ा अनुभव था।

वे कहने लगे - “अपने हानि-लाभ का विचार करने वाला बनिया सबसे चतुर होता है। मुमुक्षु को अपने आत्म-हित के बारे में इसी प्रकार सोचना चाहिए।” उन्होंने कहा - “बनियो से स्याना अजब दीवाना।” पश्चात् बोले - “बनिया प्रारम्भ से चतुर रहता है और जाट पीछे समझदारी पाता है।” उनके शब्द थे - “बनियो मूल में स्यानो, जाट आखीर में स्यानो।”

गृह में मूर्ति

मैंने कहा था “महाराज - हमारे पिता जी बहुत वृद्ध हो गये, शरीर शिथिल हो गया, घुटनो में दर्द रहने के कारण जिनमन्दिर जा नहीं सकते, क्या उनकी धर्मसाधना के हेतु घर में जिन भगवान की मूर्ति ला सकते हैं?”

उत्तर में उन्होंने कहा - “अवश्य मूर्ति विराजमान करो।” बाद में उन्होंने एक मराठी की कहावत सुनाई - “ज्याच घरी नाही जिना च दर्शन। जनावे श्मशान घर त्याचे - जिनके घर में जिन भगवान की मूर्ति नहीं, वह घर तो श्मशान तुल्य है।”

आगमानुसार प्रवृत्ति

मन्दिर में प्रवेश करते समय प्रत्येक विचारवान गृहस्थ “नि सही” उच्चारण करता है, उसका लक्ष्य यह है कि जिन भगवान की वन्दनार्थ यदि कोई देवता आया हो, तो वह सूचना पाते ही सामने से अलग होकर पूजक को स्थान दे दे। इस सम्बन्ध में वीरसागर महाराज ने कहा कि - आप लोग तो एक ही समय नि सही कहते हो और हमें तो अनेक बार नि सही बोलना पड़ता है।

प्रश्न - “यह कैसे?”

उत्तर - “हम यदि बाहर जाते हैं, लघु या दीर्घशङ्का निमित्त, तो वहाँ हमें नि सही कहना पड़ता है कि उस स्थल पर यदि कोई देवता हो, तो वह अलग हो जावे। कार्य पूर्ण हो जाने पर हमें “असही” कहना पड़ता है, जो इस बात का सूचक है कि हमारा कार्य पूर्ण हो गया। इस प्रकार आगम की आज्ञानुसार हमें बहुधा इस शब्द का प्रयोग करना पड़ता है।”

उन्होंने कहा - “प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह गृहस्थ हो या मुनि, अपने पद के अनुसार क्रिया करना चाहिए। अपने पद के अनुसार आचरण करते हुए मृत्यु अच्छी है, अपने पद को छोड़कर जीवन धारण करना योग्य नहीं है।”

इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा - “इसी बात को ध्यान में रखकर आचार्य शातिसागर महाराज ने सल्लेखना ली थी, क्योंकि नेत्रों की ज्योति नष्ट होने पर महाव्रती साधु का दयामय जीवन असंभव था। एषणा आदि समितियों का पालन हो नहीं सकता था। जीवन रक्षा करते, तो पद का गौरव नहीं था, इसीलिए जीवन के मोह को धारण कर पद को छोड़ने के बदले इन्होंने पदयुक्त हो सल्लेखना का ग्रहण किया।”

प्रश्न - “महाराज, यदि उच्च त्यागी मोटर, रिक्शा आदि का उपयोग करे, तो उसमें क्या दोष है?”

उत्तर - “मोटर रिक्शा आदि का उपयोग व्यक्ति को पराधीन बनाता है। जैनधर्म स्वाधीनता का सदेशवाहक है। वह ‘पर’ की अधीनता छुड़ाकर ‘स्व’ की अधीनता को स्वीकार करने का मार्ग सुझाता है।”

प्रश्न - “सन्ध्या के समय यदि शास्त्र का स्वाध्याय किया जाय, तो क्या दोष है?”

उत्तर - “अकाल में अध्ययन करना आगम में निषिद्ध है। सन्ध्या का काल भगवान की दिव्यध्वनि की बेला है। भगवान ने क्या कहा, यह सोचने का समय है, पढ़ने का समय नहीं।”

मन्त्र चर्चा

भक्तामर स्तोत्र पर इनका प्रारम्भ से ही ममत्त्व रहा है। वे कहने लगे - “भक्तामर में बहुत लालित्य है, उसका एक-एक काव्य स्वयं मन्त्ररूप है। मन्त्र की सिद्धि के लिए मुद्रा आदि का ध्यान रखना भी उपयोगी है।”

प्रश्न - “महाराज, मुद्रा में क्या तत्त्व है?”

मुद्रा

उत्तर - “मुद्रा में बहुत कुछ है। हाथ उठाकर पाँचों अँगुली किसी के सिर के सामने रखने पर उसे आशीर्वाद मुद्रा मानकर वह व्यक्ति सन्तोष प्राप्त करता है, किन्तु यदि उनके स्थान में एक तर्जनी को ही उठाया जावे या दिखाया जावे, तो वह धमकी का द्योतक बनती है। ऐसा करना बैर का कारण बन जाता है। इससे मुद्रा का महत्त्व नहीं भूलना चाहिए।”

प्रश्न - “महाराज! णमो अरहताण अच्छा लगता है या ‘अरिहताण’?”

अरहंताणं

उत्तर - “अरि शब्द, मोह का वाचक है। उसके नाश करने वाले जिनेन्द्र का द्योतक अरिहताण है। अरहत में आगत ‘अ’ शब्द अरि रूप मोहनीय का द्योतक है और र शब्द अन्तराय (रहस्य), ज्ञानावरण, दर्शनावरण का द्योतक है। इस प्रकार अरहत में चार घातिया कर्म के नाश करने वाले जिनेन्द्र का स्वरूप कहा गया है।”

अनादि मूलमन्त्र

प्रश्न - “कुछ लोग कहते हैं, यह णमोकार मन्त्र तो पुष्पदन्त आचार्य ने बनाया, क्या यह ठीक है?”

उत्तर - “यह अनादि मूलमन्त्र है। साधुओं के प्रतिक्रमण आदि में णमोकार मन्त्र का निरन्तर उपयोग होता है। सामायिक प्रकीर्णक का मङ्गलाचरण यह णमोकार मन्त्र है। सामायिक दंडक के प्रारम्भ में भी यह मन्त्र है। और भी कारणों से इसे अनादि मूलमन्त्र मानना चाहिए।” ‘अनादिमूलमन्त्रोऽयं’

सम्यक्त्व खेल नहीं है

प्रश्न - “महाराज! आज सम्यक्त्व का बाजार बड़ा गरम है। उसका हर जगह नाम सुनाई पड़ता है सो क्या बात है?”

उन्होंने उत्तर में सूत्र रूपसे ये शब्द कहे - “सम्यक्त्व खेल नहीं है, वह बहुत बड़ी चीज है।”

प्रश्न - “आज हर एक आदमी कहने लगता है, अमुक साधु में इस प्रकार दोष हैं, उसको ठीक करना समाज का कर्तव्य है। इस विषय में आपका क्या कहना है।”

उत्तर - “पहिले एक बार एक विकट प्रसङ्ग आ चुका है, मुनि का बहिष्कार कौन कर सकता है? मैंने कहा था - “मुनि के बहिष्कार करने का तुमको, मुझको अधिकार नहीं है। राजा को या आचार्य शातिसागर जी को (जो उस समय जीवित थे) इस विषय में अधिकार है।”

अतिरेक

वे कहने लगे - “आजकल लोग अतिरेक में लग गये हैं। हर बात में अतिरेक होने से ही गड़बड़ी पैदा हो गई है। कोई किसी की नहीं सुनता, सब अपनी-अपनी सुनाना चाहते हैं।”

स्वतन्त्रता

एक दिन मैंने पूछा - "महाराज! देस की स्वतन्त्रता कि होती है। धर्म के लिए मैं आपको स्वतन्त्रता प्रदान करना चाहिये।"

वीरसागर महाराज ने कहा - "जितनी स्वतन्त्रता जैन धर्म में है, उतनी अन्य में नहीं। यह तो स्वतन्त्रता से परिपूर्ण धर्म है। इसका बंधन सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने किया है। उन्होंने त्रिकाल के जीवों को लक्ष्य करके कहा है कि इस काल में पाँच प्रकार के भूमियों में न दो प्रकार के ही मुनि होते हैं। पुलाक और वसुधा जाति के मुनि ही पाये जाते हैं। निर्गन्ध, स्नातक, आदि भेदरूप मुनि नहीं पाये जाते।

भगवान ने यह भी कहा है "कि इस काल में मोक्ष पावे वाला मायु नहीं होगा।" भगवान का कथन कभी मिथ्या नहीं होता। उन्होंने यह भी कहा कि जैन मुनि अपनी बात नहीं कहता। जो अपने मन की बात कहता है, वह जैन मायु नहीं है। जैन मुनि अपनी बात नहीं, जिनेन्द्र भगवान की बात करता है।"

प्रश्न - "महाराज! आजकल अन्य लोगों को जैनधर्म में रुचि नहीं है, इसका क्या कारण है?"

उत्तर - "जौहरी की दुकान में बहुत थोड़े ग्राहक रहते हैं, फिर भी उसका अर्थलाभ विपुल मात्रा में होता है। मागभाजी बेचनेवालों की दुकान पर बड़ी भीड़ लगी रहती है, फिर भी उसे बहुत थोड़ी ही आमदनी होती है। इसी प्रकार वीतराग भगवान का धर्म है। बिना निर्मल परिणाम हुए उसे पालन करने का लोगों की तबियत नहीं होती।"

सार्व धर्म

प्रश्न - "जैनधर्म सार्वधर्म है, तो सबको पालन करने का अधिकार मिलना चाहिए। यदि सबको जैनी नहीं बनाते तो जैनधर्म सार्वधर्म नहीं बनगा। ऐसी स्थिति में सार्वधर्म माने जाने वाले जैनधर्म वालों के मन्दिर में शूद्रों का प्रवेश क्यों रोकते हैं?"

उत्तर - "कोई नहीं रोकता। जैन बनने की रोक-टोक कहीं नहीं है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि मन्दिर अजायबघर नहीं, वह धर्म का आयतन है। जैनधर्म को माननेवाला उसमें जायगा। अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक को आना चाहिए।"

प्रश्न - “शूद्र की कितनी याग्यताएँ हैं?”

शूद्र की योग्यता

उत्तर - “शूद्र की बात तो दमगी, वह तो मनुष्य है। पशु पर्यायवाला मेटक तक जैन माना गया है, उसको जैन बनने में किसी ने रोका क्या? वह फूल मुख में रखकर भगवान के दर्शन को जा रहा था। ऐसा तुम नहीं कर सकते। जैनधर्म का कथन व्यवस्थित और नियमानुसार है।

पहिले जैन बनो और देखो जैन कानून तुम्हारे विषय में क्या आज्ञा देता है। आचार्य शातिमागर महाराज ने अनेक शूद्रों को जेनी बनाया था। वे जिनमन्दिर में प्रवेश न करके जिनमन्दिर के दर्शन करके प्रमत्त थे। वे मन्दिर के भीतर नहीं गये और कहते थे कि पूर्व भव में महान् पाप कर हमने यह अवस्था पाई है। अब यदि जिनभगवान की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करेंगे, तो आगे हमारी क्या गति होगी? इसलिए अपनी मर्यादा के भीतर प्रवृत्ति करना चाहिए।”

ज्ञान मत वेचो

वीरमागर महाराज गृहस्थ जीवन में ही हींगलालजी कहलाते थे। उस समय वे अवैतनिक रूप में धर्मशिक्षण का कार्य करते थे। उनके पूर्व विद्यार्थी चितामणि जैन जालना ने बताया कि वीरमागर महाराज ने फुलेरा में मुझसे कहा था - “तुम पूजा, विधान आदि करते हो, तुम्हें उसका मूल्य नहीं ठहराना चाहिए। जो भेट श्रावक देवे, उसमें ही आनन्द मानना चाहिए। अपनी अनमोल विद्या की कीमत नहीं करना चाहिए। तुमने कहा इतने लेंगे, इसका अर्थ है तुमने विद्या बेच दी। ऐसा नहीं करना चाहिए।”

इसलिए आवश्यक है कि आज पवित्र आदर्शों की ओर व्यक्ति तथा समाज का ध्यान जाना चाहिए।

आचार्य वीरमागर महाराज प्रातः स्मरणीय सत्पुरुष हो गये।

हरिश्च चन्द्र लोलिया ❀ ❀ ❀

15, नवजीवन उपवन,
मौती डूंगरी रोड़, जयपुर-4

चारित्र चूडामणि नेमिसागर महाराज

आचार्य महाराज तपोमूर्ति थे। उनके शिष्य नेमिसागर महाराज भी बहुत सरल तथा तप पुनीत जीवन समलकृत हैं। कहते हैं, हजारों लोगो की दृष्टि के समक्ष ही अपने अद्भुत प्रदर्शनो द्वारा जादूगर बड़े-बड़े बुद्धिमानो को भी चकित कर दिया करता है। आध्यात्मिक जादूगर के रूप में आचार्य महाराज ने जिनेन्द्र शासन से पूर्ण विमुख नेमण्णा नाम के कुडची के व्यापारी की जीवनी को बदल दिया। वे ही आज परम श्रद्धालु, श्रेष्ठ तपस्वी, अद्वितीय गुरुभक्त १०८ परम पूज्य नेमिसागर महाराज के रूप में मुमुक्षुवर्ग का कल्याण कर रहे हैं। उन्हें आचार्य महाराज से मुनि दीक्षा लिये ४४ वर्ष हो गए। एक उपवास, एक आहार का क्रम प्रारंभ से चलता चला आ रहा है। इस प्रकार नर जन्म का सत्ताईस वर्ष का समय उपवासो में व्यतीत हुआ। इस के ८८५५ दिन होते हैं। तीस चौबीसी व्रत के ७२० उपवास किये। कर्मदहन के १५६ तथा चारित्रशुद्धि व्रत के १२३४ उपवास हुए। दशलक्षण में पाँच बार दस-दस उपवास हुए। अष्टाह्निका में तीन बार आठ-आठ उपवास हुए। इस प्रकार २४ उपवास किये। लौणद में महाराज नेमिसागर जी ने सोलहकारण के सोलह उपवास किये थे।

इस प्रकार उनकी तपस्या अद्भुत है। दो, तीन, चार उपवास तो जब चाहे तब करते हैं। अज्ञानी विषयासक्त ससार खाने-पीने में मजा मानता है। चारित्र-चूडामणि नेमिसागर महाराज को उपवास में आनंद आता है। बिना आत्मानंद के कौन अपने ५४ वर्ष के साधु जीवन के बहु भाग को उपवासों में व्यतीत करता? अन्य साधुओं में भी उपवास की प्रवृत्ति पाई जाती है, किन्तु उन लोगो में भी विश्व की दृष्टि से सोचा जाय, तो नेमिसागर महाराज के सामने खड़ा होने वाला एक भी व्यक्ति न मिलेगा। तपस्या के क्षेत्र में दिगम्बर जैन साधुओं में इस समय ये ही शिरोमणि हैं। भौतिक विकास के कारण अहंकार के ज्वालामुखी पर नग्न-नर्तन करने वाले देशों के समक्ष भारत, नेमिसागर महाराज सदृश विभूति को ही उपस्थित कर सकता है और पूछ सकता है कि तुम्हारे पास ऐसी ज्योतिर्मयी मूर्ति है क्या? कौन उत्तर देगा? जडवाद के राक्षस के पादार्चन करने वाले राष्ट्र क्या उत्तर देंगे? भारत में भी अन्य लोग अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि उनमें शांत भाव, आत्मचिंतन, पवित्र साधना पूर्वक दस हजार से भी अधिक उपवास करने वाली नेमिसागर महाराज सदृश निष्कलक चरित्र कोई अन्य विभूति है क्या? कौन उत्तर देगा? कोई हो, तो उत्तर मिले। नेमिसागर महाराज तपस्या के क्षेत्र में सब को निरुत्तर

बनाते हुए अनुत्तर है। महापुगण में लिखा है - 'तप मूते महत्फलम्' यह तपस्या महान् फलो को उत्पन्न करती है। इसमें महान् निर्जग होती है, तथा श्रेष्ठ पुण्य बंध होता है। आज नेमिसागर महागज का नाम मार्थक लगता है। तपस्या के क्षेत्र में भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर का जीवन भी लोकोत्तर ही नहीं लोकोत्तम रहा है। उनका नाम धारण करने वाली निर्ग्रन्थ मुद्राधारी आत्मा का जीवन भी आध्यात्मिक मुवास-सपन्न है।

महातपस्वी माधुराज श्री १०८ नेमिसागर महाराज के पाम बम्बई में मन् १९५८ तथा १९५९ के दशलक्षण पर्व में पहुँचकर अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात कीं। उनमें तत्त्वाभ्यासी वर्ग को विशेष लाभ होगा, कारण नेमिसागर महाराज उच्चकोटि की साधना में मलग्न तपस्वी हैं। १७ सितम्बर १९५८ को मैंने उनके दर्शन किए थे। आचार्य शातिसागर महाराज के जीवन संबंधी सामग्री को लक्ष्य कर मैंने उन गुरुदेव से चर्चा प्रारंभ की।

आचार्य महाराज से परिचय

उन ७६ वर्ष के वृद्ध साधुराज ने ये महत्त्वपूर्ण शब्द कहे थे - "हमारा और आचार्य महाराज का ५० वर्ष पर्यन्त साथ रहा। चालीस वर्ष के मुनि जीवन के पूर्व मैंने गृहस्थावस्था में भी उनके मत्संग का लाभ लिया था। आचार्य महाराज कोन्नूर में विराजमान थे। वे मुझे से कहते थे - 'तुम शास्त्र पढ़ा करो। मैं उसका भाव लोगों को समझाऊंगा।' वे मुझे और बड़ू को शास्त्र पढ़ने को कहते थे। मैं पाँच कक्षा तक पढ़ा था। मुझे भाषण देना नहीं आता था। शास्त्र बराबर पढ़ लेता था, इससे महाराज मुझे शास्त्र बाचने को कहते थे। मेरे तथा बड़ू के शास्त्र बाचने पर जो महागज का उपदेश होता था, उससे मन को बहुत शांति मिलती थी। अज्ञान का भाव दूर होता था। हृदय के कपाट खुल जाते थे। उनका सत्संग मेरे मन में मुनि बनने का उत्साह प्रदान करता था। मेरा पूरा झुकाव गृह त्यागकर माधु बनने का हो गया था।"

पिताजी से चर्चा

एक दिन मैंने अपने पिताजी से कुडची में कहा - "मैं चातुर्मास में महाराज के पास जाना चाहता हूँ।"

वे बोले - "तू चातुर्मास में उनके समीप जाता है, अब क्या वापिस आता है?" "पिताजी मेरे जीवन को देख चुके थे, इससे उनका चित्त कहता था कि आचार्य महागज का महान् व्यक्तित्व मुझे सन्यासी बनाये बिना नहीं रहेगा। यथार्थ में हुआ भी ऐसा।"

जीवनधारा मे परिवर्तन

“चार माह के सत्सग ने मेरी जीवनधारा बदल दी। मैंने महाराज से कहा - “महाराज! मेरे दीक्षा लेने के भाव है। अपने कुटुम्ब से परवानगी लेने का विचार नहीं है। घरवाले कैसे मजूरी देगे? मुफ्त मे नौकर मिलता है, जो कुटुम्ब की सेवा करता रहता है, तब फिर परवानगी कौन देगा?”

महाराज ने कहा - “ऐसा शास्त्र मे कहा है कि आत्मकल्याण के हेतु आज्ञा प्राप्त करना परम आवश्यक नहीं है।”

“मेरे दीक्षा लेने के भाव अठारह वर्ष की अवस्था मे ही उत्पन्न हो चुके थे। उसके पूर्व की मेरी कथा बड़ी अद्भुत थी।”

पूर्व जीवन

नेमिसागर महाराज का पूर्व जीवन सचमुच मे आश्चर्यप्रद था। उन्होने यह बात बताई थी - “मैं अपने निवास स्थान कुडची ग्राम मे मुसलमानो का बड़ा स्नेह पात्र था। मैं मुसलिम दरगाह मे जाकर पैर पड़ा करता था। सोलह वर्ष की अवस्था तक मैं वहाँ जाकर ऊदबत्ती जलाता था। शक्कर चढाता था।”

“जब मुझे अपने धर्म की महिमा का बोध हुआ, तब मैंने दरगाह आदि की तरफ जाना बन्द कर दिया। मेरा परिवर्तन मुसलमानो को सह्य नहीं हुआ। वे लोग मेरे विरुद्ध हो गए और मुझे मारने का विचार करने लगे।”

स्थान परिवर्तन

“ऐसी स्थिति मे अपनी धर्म-भावना के रक्षण निमित्त मैं कुडची से चार मील की दूरी पर स्थित ऐनापुर ग्राम मे चला गया। वहाँ के पाटील की धर्म मे रुचि थी। वह हम पर बहुत प्यार करता था। इससे मैंने ऐनापुर मे रहना ठीक समझा।”

रामू के साथ खेती

“अपने जीवन निर्वाह के लिए मैंने, रामू ने (जो बाद मे कुथुसागर महाराज के रूप मे प्रसिद्ध हुए) तथा एक और व्यक्ति ने मिलकर ठेके पर जमीन ली।”

“आचार्य महाराज नसलापुर मे थे। मैं उनके पास एक माह रहा था। उसके पश्चात् महाराज चातुर्मास के हेतु ऐनापुर पधारे। मैं हमेशा महाराज के पास रहता था।

खेती का कुछ भी ध्यान नहीं था। उनके पास मन ऐमा लग गया था कि मुझे अपने भविष्य का कुछ भी ध्यान नहीं था। मेरी मारी स्थिति से महाराज परिचित थे।”

वे बोले - “तुमने विना कारण खेती में पैसा डाल दिया। ऐमा क्यों किया?”
“मैं और रामू महाराज के पास अधिक समय देते थे। हमारा भाव दीक्षा लेने का हो गया था, इससे ससार में फँसाने वाले आरम्भ की ओर हमारा चित्त नहीं लगता था।”

रामू (कुंथुसागरजी) के साथ गर्त

“चातुर्मास के पश्चात् महाराज को हमने और रामू ने गेडवाल पर्यन्त पहुँचाया। उस समय गेडवाल में दिगम्बर जैन महासभा का उत्सव होने वाला था। मैंने और रामू ने एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारकर यह गर्त की थी कि छह माह के भीतर अवश्य दीक्षा लेगे।”

मैंने नेमिसागर महाराज से पूछा - “आचार्य महाराज की ऐसी कौनसी बात थी, जिससे आपका मन ममता के एक मात्र केन्द्र गृह तथा परिवार के परित्याग के लिए तैयार हो गया? साधु का जीवन पुष्प-शय्या नहीं है। वह कठिन तपस्या परिपूर्ण है।”

आचार्य महाराज की वाणी

नेमिसागर महाराज ने बताया - “आचार्य महाराज ने निर्ग्रन्थ दीक्षा नहीं ली थी। वे क्षुल्लक थे। मैं और बड़ू उनके पास तेरदाल में रहे थे। बड़ू शास्त्र पढ़ता था। मैं सुनता था। भगवती आराधना, तत्त्वार्थसार आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय हो चुका था।

“तेरदाल से बिहार कर महाराज कुडची ग्राम में आए। उनका आहार हमारे घर में हुआ। आहार के उपरान्त वे बोले - “तुम्हारी भक्ति पूजा, अर्चा आदि कार्यगज के स्नान तुल्य हैं? देखो! पूजा आदि सत्कार्यों के द्वारा तुमने निर्मलता प्राप्त की। यह तो स्नान हुआ। इसके पश्चात् तुमने आरम्भ के कार्यों में पड़कर पाप का संचय किया। इसके द्वारा तुमने अपने ऊपर फिर से मिट्टी डाल दी। ऐसा गृहस्थ का जीवन होता है।” यथार्थ में गृहस्थ की अवस्था में सावधानी रखते हुए भी प्रमाद होता है, इसी कारण सर्व परिग्रह त्यागी दिगम्बर अवस्था धारी मुनि पदवी प्राप्त किए विना सच्चे सुख का लाभ असम्भव कहा गया है।” आत्मानुशासन में कहा है -

मर्व धर्ममयं क्वचित् क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकम्।

क्वाप्येतत् द्वयवत् करोति चरितं प्रजाधनानामपि ॥

तस्मादेव तदध-रज्जुचलन स्नान गजस्याथवा ।

मत्तोन्मत्तविचेष्टितं न हि हित गेहाश्रमः सर्वथा ॥४१॥

गृहस्थ जीवन में कभी-कभी पूर्णतया धर्ममय कार्य होते हैं, कभी-कभी प्रायः पापपूर्ण कार्य हुआ करते हैं। कभी-कभी धर्ममय और पापमय कार्यों की मिश्र अवस्था बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुषों की पाई जाती है। अतः यह कार्य अर्धे की रस्सी बटने सदृश है, जिसकी बटी हुई रस्सी को बकरी चरती जाती है। यह गज-स्नान समान है अथवा यह मत्त तथा पागल व्यक्ति की चेष्टा के समान कार्य है। यथार्थ बात यह है कि गृहस्थावस्था में सच्चा हित नहीं बन पाता।^१ आचार्य का भाव यह है कि पूर्ण अविनश्वर सुख का मार्ग मुनिपदवी को धारण करना है। उन्होंने यह कहा था - “नन्दिमित्र की कथा का मेरे जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह मुझे बहुत प्रिय लगती थी। उससे मेरे भावों को बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई।”

नन्दिमित्र की कथा से प्रभावित

पुण्यासत्र कथाकोष में नन्दिमित्र के सम्बन्ध में यह बताया है, कि जिन सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी की शरण में मुनिदीक्षा ली थी, वे ही पूर्वजन्म में नन्दिमित्र थे। अवधिज्ञानी मुनिराज ने चन्द्रगुप्त को पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार बताई थी - “पलासकूट ग्राम में देविल वैश्य के घर पुण्यहीन पुत्र नन्दिमित्र ने जन्मधारण किया। माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वहाँ से चल कर वह अवन्ति देश में विद्यमान वैदेश नगर में पहुँचा। उसने नगर के बाहर एक काष्ठकूट नाम के लकड़ी बेचनेवाले को देखा।

नन्दिमित्र ने काष्ठकूट से कहा कि - तुम लकड़ी का जितना बोझा बाजार में ले जाते हो उससे चौगुना बोझा प्रतिदिन मैं लाकर दूँगा। यदि तुम मेरे परिश्रम के बदले में मुझे भोजन दिया करोगे, तो मैं उक्त काम करने को तैयार हूँ।

काष्ठकूट ने नन्दिमित्र से लकड़ी का बोझा ढोने का काम कराना प्रारम्भ कर

1 The household stage makes the life of even those, who are rich in wisdom, sometimes all meritorious, sometimes all sinful and sometimes both, it is thus like the making of a rope by the blind or the bathing of an elephant or the act of a mad man. It is not wholly beneficial

दिया। काष्ठकूट के आदेशानुसार उसकी स्त्री जयघटा नदिमित्र को थोड़ा-सा भोजन दिया करती थी। अभागा नदिमित्र इस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहा था। स्त्री ने सोचा कि इस बेचारे नदिमित्र के परिश्रम के कारण बहुत आमदनी हो रही है, किन्तु हमने इसे एक दिन भी पेट भर भोजन नहीं दिया। यह ठीक नहीं है। इस भावना से प्रेरित हो जयघटा ने नदिमित्र की इच्छानुसार उसे उस दिन घी, दूध आदि से निर्मित भरपेट भोजन कराया। यह बात जब पतिदेव कृपणराज काष्ठकूट को ज्ञात हुई, तब उसे अपार क्रोध आया। उसने जयघटा को खूब पीटा।

नदिमित्र ने देखा कि उसके कारण बेचारी जयघटा को महान् कष्ट प्राप्त हुआ, इसलिए वह वहाँ से निकल गया। दूसरे दिन वह लकड़ी का भारी गड्ढा लेकर बाजार में पहुँचा। पापोदय से अभागे नदिमित्र के गड्ढे की ओर कोई देखता ही नहीं था। अन्य लकड़ी बेचनेवालों के छोटे-छोटे गड्ढे तो बिकते जाते थे, किन्तु नदिमित्र से उसके गड्ढे के बारे में किसी ने बात भी नहीं पूछी। क्षुधा जनित व्याकुलता बढ़ती जाती थी। वह किंकर्तव्य विमूढ़ था। इतने में एक विशेष बात हुई।

विनयगुप्त मुनिराज

महातपस्वी मासोपवासी दिगम्बर मुद्राधारी विनयगुप्त मुनिराज आहार लेने के लिए वहाँ से जा रहे थे। मदबुद्धि नदिमित्र ने सोचा कि यह व्यक्ति तो मुझसे भी अधिक निर्धन है, क्षीण शरीर है। इसके पास तो लज्जा निवारण हेतु वस्त्र भी नहीं हैं। चलो, देखें तो सही, यह कहाँ जा रहा है और क्या करता है? नदिमित्र ने अपना वजनदार लकड़ी का गड्ढा वहीं छोड़ दिया और वह मुनिराज के पीछे हो लिया।

उस दिन वैदेशपुरी के नरेश ने भक्तिपूर्वक उन महामुनि को आहार कराया। मासोपवासी विनयगुप्त साधुराज का निरन्तराय आहार होने से देवताओं ने पचाश्चर्य किये। नदिमित्र मुनिराज के साथ में गया था, इसलिए राजा ने सोचा कि यह कोई श्रावक है, जो इन मुनीश्वर के साथ रहता है।

नदिमित्र को सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ भोजन प्राप्त हुआ। उसके आनन्द की सीमा नहीं थी। वह मुनिराज के पीछे-पीछे जंगल में चला गया।

नदिमित्र ने मुनिराज से कहा - “नाथ! मुझे अपने समान बना लीजिए।” मुनिराज ने सोचा कि यह भव्य है और अल्पायु वाला है। उन्होंने उसके कल्याण को सोचकर उसे पचनमस्कार मंत्र सिखाकर मुनि दीक्षा दे दी।

जब ये नवीन मुनि नदिमित्र आहार के हेतु निकले, तो श्रावको ने बड़ी भक्ति पूर्वक इनसे भोजन-पान के हेतु प्रार्थना की। लोगो का अपने प्रति आश्चर्यप्रद आकर्षण देख नदिमित्र ने सोचा - “यदि आज मैं उपवास करूँ, तो मेरा और प्रभाव बढ़ेगा।” इस विचार से नदिमित्र मुनि बिना आहार ग्रहण किए अपने स्थान पर लौट आए। इसके बाद नदिमित्र अन्य दिन आहार को निकले, तब बड़े-बड़े लोगो ने आहार हेतु प्रार्थना की। नदिमित्र ने अपने बढ़ते हुए प्रभाव को ध्यान में रखकर उस दिन भी उपवास किया। इन उपवासो के कारण इन नदिमित्र की कीर्ति शहर भर में फैल रही थी। दूसरे दिन महारानी अत पुर के साथ उस उद्यान में गई, जहाँ विनयगुप्त मुनि के साथ नदिमित्र मुनि थे। नदिमित्र ने सोचा, मेरे उपवास से आकर्षित होकर स्वयं रानी यहाँ आई है। मैं आज भी उपवास करने की शक्ति सपन्न हूँ, अतएव आज और उपवास करूंगा। कल जब राजा आएगा, तब ही पारणा करूंगा। यह विचार कर उसने गुरु से कहा - भगवन्! मैं आज भी उपवास करूंगा। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर नदिमित्र पचनमस्कार मंत्र के चिंतन में सलग्न हो गया।

रात्रि के अंतिम प्रहर में श्रीगुरु ने कहा, “नदिमित्र! तेरी आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रही है, इसलिए तू सन्यास धारण कर। उस भद्र आत्मा ने गुरु की आज्ञानुसार समाधिग्रहण करके सौधर्म स्वर्ग में सुर पदवी प्राप्त की। स्वर्ग के सुख भोगकर वह देव चद्रगुप्त के रूप में उत्पन्न हुआ। चद्रगुप्त महान् प्रतापी सम्राट् हुए। उन्होंने मुनि दीक्षा धारणकर देव पदवी प्राप्त की। तिलोपपण्णत्ति में लिखा है -

मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्ख धरदि चंदगुत्तो य।

तत्तो मउडधरा दु प्पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥४-१४८१॥

-मुकुटबद्ध राजाओ में अंतिम चद्रगुप्त ने जिनदीक्षा धारण की। इसके पश्चात् मुकुटधारी प्रव्रज्या अर्थात् निर्ग्रन्थ दीक्षा को ग्रहण नहीं करते।^१

वास्तव में, समय की अपूर्व सामर्थ्य है। हतभाग्य नदिमित्र ने उपवास का आश्रय ले, स्वर्ग पाया तथा वहाँ से चयकर सम्राट् चन्द्रगुप्त का वैभव पाया। इससे उन लोगो को अपना कर्तव्य सोचना चाहिए, जिनका जीवन अनेक आपत्तियों से घिरा हुआ है। थोड़ा भी व्रत जीव को सुख प्रदान करता है।

१ महावीर निर्वाण के बाद पाँच श्रुतकेवलियों का आगम में कथन है। दूसरे श्रुतकेवली का नाम नदिमित्र था। नदिमित्र श्रुतकेवली से चद्रगुप्त रूप में जन्म धारण करने वाली नदिमित्र नाम की आत्मा भिन्न थी।

लोग यह सोचा करते हैं, कि प्रथमानुयोग शास्त्रों में जोड़ें मार नहीं है। असली सार की बात आध्यात्मिक ग्रंथों में है, ऐसी एकान्त धारणा वालों की दृष्टि का निवाण स्वयं नेमिसागर महाराज की उक्त जीवन घटना द्वारा स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में पुराण-साहित्य में वर्णित कथानकों के स्वाध्याय द्वारा आत्मा को प्रकाश प्राप्त होता है तथा व्यक्ति क्लृप्तपूर्ण प्रवृत्तियों से विमुक्त बनता है।

कुंथुसागरजी के संस्मरण

आचार्य महाराज ने कुंथुसागरजी (रामू) को पहले दीक्षा नहीं दी थी। इस सम्बन्ध में नेमिसागर महाराज ने बताया - “महाराज ने रामू से कहा था, पहले कुछ पढ़ो। उसके पश्चात् दीक्षा देंगे। रामू मूडबिंदी गया। वहाँ रामू ने उगाय ग्रामवाले पायसागर स्वामी से दीक्षा लेने का अपना मनोभाव मुझे सूचित किया। यह ज्ञात कर मैं गोवा गया। वहाँ से जहाज पर बैठकर मंगलूर मूडबिंदी के लिए रवाना हुआ। नौका के हिलने झुलने से मेरी प्रकृति बिगड़ गई थी। अनेक बार वमनादि होने से शरीर शिथिल हो गया था। मूडबिंदी पहुँचने पर सब ठीक हो गया। रामू (कुंथुसागरजी) को क्षुल्लक दीक्षा मिल गई। उसके पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के लिए रामू काशी, कारजा सोलापुर आदि भी गए थे।”

सर्व प्रथम ऐलक दीक्षा प्राप्ति

नेमिसागर महाराज ने बताया - “आचार्य महाराज जब गोकक पहुँचे, तब वहाँ मैंने और पायसागर ने एक साथ ऐलक दीक्षा महाराज से ली थी। उस समय आचार्य महाराज ने मेरे मस्तक पर पहले बीजाक्षर लिखे थे। मेरे पश्चात् पायसागर के दीक्षा के संस्कार हुए थे।”

निर्ग्रन्थ दीक्षा

“दीक्षा के दस माह बाद मैंने समडोली में निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी। वहाँ आचार्य महाराज ने पहले वीरसागर के मस्तक पर बीजाक्षर लिखे थे, पश्चात् मेरे मस्तक पर लिखे थे। इस प्रकार मेरी और वीरसागर की समडोली में एक साथ मुनि दीक्षा हुई थी। वहाँ चंद्रसागर ऐलक बने थे।”

मोनागिरि में दीक्षा समारोह

उन्होंने यह भी बताया - “मेरी ऐलक दीक्षा के पाँच, छह माह के पश्चात् चंद्रसागर और वीरसागर ने कुंभोज के पहाड़ पर क्षुल्लक दीक्षा ली थी। वीरसागर ने क्षुल्लक दीक्षा के पश्चात् मेरे साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी। पायसागर, चंद्रसागर, नमिनागर, कुंथुसागर, इन चारों की मुनि-दीक्षा मोनागिरि में हुई थी।”

चद्रसागर महाराज के विषय मे

उन्होंने चद्रसागरजी के विषय मे अपना अनुभव इस प्रकार प्रगट किया -
“चद्रसागर क्रिया पालने मे बहुत दृढ थे। वे बहुत धैर्यवान थे। उन को किसी की भी परवाह नहीं थी, चाहे राजा हो या ओर कोई हो। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। ब्र पंडित गौरीलालजी के पास चद्रसागर ने जेनेन्द्र व्याकरण कण्ठ कर ली थी। उनका अच्छा अभ्यास हो गया था। मुझे भी जेनेन्द्र के सब सूत्र याद हो गए थे। ब्र नदनलालजी शास्त्री (मुनि सुधर्मसागर महाराज) के पास मेने तथा क्षुल्लक यशोधर (मुनि श्री धर्मसागर महाराज) ने कातत्र व्याकरण सीखी थी।”

उन्होंने कहा था - “जब पायसागर ने महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत मागे, तब ब्र जीवराज सोलापुर ने कहा - “यह सप्तव्यसनी है, इसे व्रत मत दो। उम समय एक सेठ जमानतदार बना था, तब महाराज ने पायसागर को ब्रह्मचर्य व्रत दिया था।”

घर की बातें

इनके पिता का नाम अण्णा था। घर मे नेमिसागरजी को नेमण्णा कहते थे। नेमिसागर महाराज के एक भाई की पैदा होते ही मृत्यु हुई। दूसरे भाई की मृत्यु सात-आठ वर्ष की अवस्था में हुई थी। नेमण्णा ज्येष्ठ थे। माता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था लगभग बारह वर्ष की थी। माता की धर्म-रुचि बहुत थी। माता सरल परिणामी, परोपकार-रत साधु स्वभाव वाली थी। दीनजनों पर माता का बड़ा प्रेम था।

पिता

इनके पिता अण्णाजी बहुत बलवान थे। पाँच छै गुडी पानी का हडा पीठ पर रखकर लाते थे।

नेमिसागर महाराज की मुनिपद धारण की रुचि बाल्यकाल से ही थी। उन्होंने बताया - “हमारी १५ वर्ष की अवस्था मे ही मुनि बनने की इच्छा थी। हम ज्योतिषी से पूछते थे कि हमारी इच्छा पूर्ण होगी या नहीं?”

नेमिसागर नाम का हेतु

इनकी माता का नाम शिवदेवी ज्ञातकर मैंने कहा - “महाराज! भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर की माता का नाम शिवदेवी था। आपकी माता का भी यही नाम था। यह समता महत्त्वपूर्ण है।”

इस पर नेमिमागर महागज ने कहा - “मेरा नाम नेमण्णा था। गोत्राक्ष क मठि में हमारी ऐलक दीक्षा का सम्कार हुआ था। वहाँ मूलनायक नेमिनाथ भगवान थे। इस कारण आचार्य महागज ने हमारा नाम नेमिमागर रखा था।” इस प्रकार नेमिनाथ भगवान के मन्निध्य में शिवदत्त के पुत्र नेमण्णा को ऐलक दीक्षा देने समय नेमिमागर नाम रखना आचार्य महागज की विशिष्ट दृष्टि को सूचित करता है।

ऐलक दीक्षा का रहस्य

नेमिमागर महागज ने कहा - “मैंने महागज से मुनि दीक्षा मागी थी, किन्तु उन्होंने कहा थोड़े दिन ऐलक बनो। कुछ समय बाद मुनि दीक्षा देगे।” वे यह भी कहते थे - “हमारा क्या जाता है, दीक्षा लेना है तो ले लो।” ऐलक दीक्षा देने का उनका अभिप्राय था कि मुनि पद का पूर्व अभ्यास हो जाय। स्वयं मुनि बनने के पूर्व महागज क्षुल्लक रह चुके थे। स्व वर्धमानमागर महागज को मुनि बनने के पूर्व उन्होंने ऐलक दीक्षा दी थी। उनके पहले वे क्षुल्लक रह चुके थे।

मागगर्भित उद्गार

आचार्य महागज के इन शब्दों में विशेष रस है - “हमारा क्या जाता है, दीक्षा लेना है, तो ले लो।” मयमदाता जब अमयमी को मयम की ज्योति प्रदान करता है, तब उस मयमी के मयम-धन में कोई न्यूनता नहीं आती। दूसरा व्यक्ति अपने विकारी भाव को छोड़कर स्वभाव की ओर आता है। मयम लेते समय ऐसा दिखता है कि मुमुक्षु ने कुछ लिया है। मूक्ष्मता में विचार किया जाय, तो कहना होगा कि उसने कुछ नवीन वस्तु नहीं ली है, किन्तु विकार मात्र का त्याग किया है। दर्पण की मलिनता दूर होती है, तब उसकी स्वयं की निर्मलता प्रकाश में आती है। ऐसी ही स्थिति अमयम त्याग पूर्वक मयम की अवस्था को प्राप्त करने में होती है।

मयम और ज्ञान की मैत्री

आचार्य महाराज मयम-दान के साथ सम्यक्ज्ञान की भी योजना को ध्यान में रखते थे। कारण शास्त्र का उचित पाठ्य न रहने से न तो मानसिक निर्मलता बनती है और न मयम की समुचित रक्षा ही हो पाती है। कभी-कभी लोग आहार के त्याग पूर्वक लम्बे उपवास ले लेते हैं, किन्तु उनका समय धर्म ध्यान के अमृत सचय के स्थान में आर्त-गैड ध्यान के कार्यों में लगता है। ऐसी अवस्था में जैसा लाभ होना चाहिए, वैसा नहीं होता। इस कारण आचार के साथ सम्यक्ज्ञान का मधुर सगम आवश्यक है। जो

लोग आचार का गौरव गाते हुए ज्ञान का तिरस्कार करते हैं, वे यह ध्यान नहीं देते कि “ज्ञान अर्च्य तपोगत्वात् - तप का कारण होने से ज्ञान समादरणीय है।” ज्ञान का मुख सयम की ओर हो और सयम की दृष्टि ज्ञान की ओर हो, तो जीवन महत्त्वपूर्ण बनता है। वर्तमान सयमी समुदाय का ध्यान उपरोक्त सत्य की ओर जाना हितकारी है। कोई-कोई व्यक्ति सोचते हैं कि हमारी अवस्था अधिक हो गई, हम क्या कर सकते हैं? उनको यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि भूमि को खोदते-खोदते जैसे पानी मिलता है, ऐसे ही अभ्यास तथा परिश्रम द्वारा ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। सयम पूर्वक शास्त्र का अभ्यास अपूर्व फल देता है। इस तत्त्व पर आचार्य महाराज की दृष्टि थी, इसलिए उन्होंने अपने सघ के साधुओं के अभ्यास की व्यवस्था की थी।

नेमिसागर महाराज ने बताया था - “कटनी के चातुर्मास में महाराज ने हम सब के अध्ययन की व्यवस्था करने की योजना बनाई। ललितपुर चातुर्मास में शिक्षण का क्रम शुरू हो गया था।”

मार्मिक विनोद द्वारा शिक्षा

आचार्य महाराज मधुर विनोद की चाशनी में कर्तव्य पालन की औषधि दिया करते थे। नेमिसागर महाराज ने बताया - “एक दिन सामायिक करते समय मुझे तद्रा आ गई, तब महाराज ने सामायिक के उपरान्त कहा - “नेमिसागर! तुम सामायिक बहुत अच्छी करते हो।” इस प्रकार आचार्य महाराज शिष्यों के जीवन को उज्ज्वल बनाते थे।”

निद्रा का कारण

नेमिसागर महाराज ने एक अनुभवपूर्ण बात कही - “विचार चालू रहने पर निद्रा नहीं आती। विचार बढ़ होते ही निद्रा सताती है।” एक बार की सामायिक का हाल नेमिसागर महाराज ने इस प्रकार बताया - “हम मुजफ्फरनगर में सामायिक को खड़े हुए थे। न जाने क्यों, हम तत्काल धड़ से जमीन पर गिर पड़े थे।”

घुटनों के बल पर आसन

नेमिसागर महाराज घुटनों के बल पर खड़े होकर आसन लगाने में प्रसिद्ध रहे हैं। मैंने पूछा - “इससे क्या लाभ होता है।” उन्होंने बताया - “इस आसन के लिए विशेष एकाग्रता लगती है। इससे मन का निरोध होता है। बिना एकाग्रता के यह आसन नहीं बनता है। इसे ‘गोडासन’ कहते हैं। इससे मन इधर उधर नहीं जाता है और काय-

क्लेश-तप भी पलता है। दस बारह वर्ष पर्यन्त मैं वह आसन सदा करता था, अब वृद्ध शरीर हो जाने से उसे करने में कठिनता का अनुभव होता है।”

दृढ तपस्या

मैंने पूछा - “महाराज! गोडासन करते समय घुटनो के नीचे कोई कोमल चीज आवश्यक है या नहीं।”

वे बोले - “मैं कठोर चट्टान पर भी आसन लगाकर जाप करता था। भयकर से भयकर गर्मी में भी गोडासन पाषाण पर लगाकर सामायिक करता था। मेरे साथी अनेक लोगो ने इस आसन का उद्योग किया, किन्तु वे सफल नहीं हुए। ध्यान के लिए सामान्यतः पद्मासन, पल्यकासन और कायोत्सर्ग आसन योग्य हैं। अन्य प्रकार का आसन कायक्लेश रूप है। गोडासन करने की प्रारम्भ की अवस्था में घुटनो में फफोले उठ आते थे। मैं उनको दबाकर बराबर अपना आसन का कार्य जारी रखता था।”

ग्रीष्म परीषह जय

उन्होंने यह भी बताया - “शिखरजी से लौटता हुआ सघ वैशाख मास में इलाहाबाद आया था। वहाँ मैं छत पर खड़े होकर कायोत्सर्ग करता था, उस समय बम्बई वाले सघपति आए। उन्होंने चटाई रखी और उस पर खड़े होकर मेरे ऊपर छाता लगा दिया। उस समय क्या सामायिक बनती? मैंने आठ दस णामोकर की माला फिराई। इस तरह सामायिक पूरी हुई। उसके पश्चात् आचार्य महाराज के पास यह खबर पहुँची, तब वे बोल उठे - “नेमिसागर तो अग्निकाय का जीव है।” मुझे भीषण गर्मी में भी कष्ट नहीं होता। हमारा शरीर जाड़े को ढीला है।”

उग्र तपस्या

नेमिसागर महाराज महान् तपस्वी हैं। लोणद चातुर्मास में उन्होंने आचार्य महाराज के समक्ष सत्रह उपवास किये थे। उस समय वे बराबर भगवान के दर्शनार्थ तीन चार फर्लांग प्रतिदिन चला करते थे। सम्पूर्ण क्रियाओं में पूर्ण सावधान थे। कई लोग तो एक उपवास में व्याकुल हो जाते हैं, किन्तु ऐसी व्याकुलता का उनमें लेश भी न था। ऐसे महान् तपस्वी माधुराज के पास अनुभव की अपूर्व सामग्री का भण्डार है। यह सोचकर मैंने पूछा - “महाराज! अब तक आपने लगभग आठ दस हजार उपवास किये हैं, और भी यह क्रम चलता जा रहा है। आप अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर कुछ जानप्रद सामग्री दीजिए।”

शांति का उपाय

मेरा छोटा सा प्रश्न है - “शांति का क्या उपाय है?”

उन्होंने कहा - “सकल्प-विकल्प त्यागने से शांति मिलती है। इससे कर्मों का क्षय होता है। परिणामो में जितनी-जितनी विशुद्धता होगी, उतनी-उतनी शांति की उपलब्धि होगी। मलिन परिणामो से शांति दूर होती है और अशांति की जागृति होती है। परिणामो की निर्मलता के लिए सत्संगति चाहिए। विषयभोग की सामग्री का त्याग भी आवश्यक है। संगति के योग्य सज्जन पुरुषों का समागम दुर्लभ रहता है। सत्समागम न मिले, तो अच्छे अच्छे शास्त्रों का स्वाध्याय मनन करो। ग्रन्थों का अभ्यास भी सत्समागम ही तो है। प्रत्येक ग्रन्थ के भीतर महान् ज्ञानी, सयमी, सत्पुरुष बंटे हैं। इस दृष्टि से जिनवाणी के स्वाध्याय का बड़ा महत्त्व है।”

त्याग में आनन्द

“त्याग के द्वारा मन शांत बनता है। त्याग में सुख है। भोग में दुःख है। यदि शक्ति अल्प है, तो थोड़ा त्याग करो। इन्द्रियो ने जीव को दास बना रखा है। इन्द्रियो के दाम न बनकर इन्द्रियो को दास बनाना हितकारी है। मन के भीतर की खराबी दूर करना चाहिए। अतर्दृष्टि होने का प्रयत्न करते जाना चाहिए। परिश्रम पूर्वक पढ़ने वाला अज्ञानी भी विद्वान् बन जाता है। आत्मा की ओर रुचि होने पर तुम्हारा मन दूसरी ओर नहीं जावेगा। कारण, मन की उधर ही प्रवृत्ति होती है, जहाँ उसकी रुचि पाई जाती है। भोगों में अरुचि तथा आत्म तत्त्व में रुचि होने पर परिणामो में शांति उत्पन्न होती है।”

मार्मिक पद्य

सामायिक पाठ का यह पद्य नेमिसागर महाराज को प्रिय है। एक धार्मिक सज्जन कहते थे, कुथुसागर महाराज को भी यह पद्य प्रिय रहा है। इस प्रकार दोनों पुराने साथी साधु इस पद्य द्वारा आनन्द लेते थे -

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः ।

स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ॥

चिन्तामणि चितितवस्तुदाने ।

त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥^१

१ “हे देवी सरस्वती! इच्छित पदार्थ को प्रदान करने में चिन्तामणि समान तुम्हारी वदना करने वाले मुझको बोधि, समाधि, परिणामशुद्धि, आत्मस्वरूप की प्राप्ति तथा मोक्षसुख की उपलब्धि हो।”

वासना छोड़ो

वे कहने लगे - “श्वास का रोकना समाधि नहीं है। मन का बाल-बच्चे, धनधान्य, मकान आदि की ओर नहीं जाना तथा स्वोन्मुख बनना समाधि है। बाह्य पदार्थ न हो, किन्तु उस ओर मन दौड़ा, तो समझना चाहिए कि बाह्य पदार्थ पास में ही हैं।” उनके ये उद्गार अनमोल हैं - “वासना है, तो पदार्थ हैं ही।”

शुभ चिह्न

उन्होंने बताया - “आचार्य महाराज के पैरो में ध्वजा का चिह्न था। उन्होंने धर्म की ध्वजा फहराकर उस चिह्न की सार्थकता द्योतित की। उनके पाँव में चक्र भी था। इससे वे सदा भ्रमण किया करते थे।”

रोग में अपूर्व दृढ़ता

एक दिन नेमिसागर महाराज की पीठ में बहुत दर्द हो गया। उन्होंने दवा नहीं लगाने दी। जब मैंने आग्रह किया, तो कहने लगे - “आदमी को रोग न होगा, तो क्या पत्थर को होगा। ‘मन चगा, तो कठौती में गंगा।’ हमारे शरीर में अनेक रोग होते हैं, हम परवाह नहीं करते। रोग आओ या जाओ। साधारण बीमारी से डरने लगे, तो क्या होगा? रोग को भोजन नहीं मिलेगा, तो वह नहीं टिकेगा। भोजन न मिलने पर मेहमान कितने दिन रहेगा? पैसा पास में रहता है, तो बीमारी में डाक्टर, वैद्य, बम्बई, कलकत्ता सब याद आते हैं। पैसा नहीं है, तो कहाँ का बम्बई, कहाँ का कलकत्ता और कहाँ का डाक्टर? शरीर के एक अगुल क्षेत्र में ९६ रोग कहे गए हैं। किस-किस रोग की फिकर करना? इससे हम रोग की चिन्ता नहीं करते।”

वीरसागरजी की दृष्टि

आचार्य वीरसागर महाराज रोग के विषय में कहते थे - “भोगी को रोग आकुलता का कारण होता है, योगी को वही रोग वैराग्य का कारण होता है। भोगी और योगी इन दोनों की दुनिया निराली है, दृष्टि जुदी-जुदी है।”

सनत्कुमार मुनि का आदर्श

सनत्कुमार चक्रवर्ती के दिगम्बर दीक्षा लेने के उपरान्त असाता ने उनको घेर लिया। शरीर कुछ आदि महाव्याधियों से आक्रान्त हो गया था। उस समय दो देवों ने उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से वैद्य का रूप बनाकर महामुनि श्री सनत्कुमार स्वामी ने

कहा - “आपके रोग की हम चिकित्सा कर सकते हैं।” उस पर मुनि सनत्कुमार महाराज ने कहा था - “यदि वैद्यौ भवन्तौ ससारव्याधि निराकुरुत” - “यदि आप वैद्य हैं, तो ससार में जन्म-जरा-मरण रूप महारोग है, उसको दूर कीजिए।” वे देव उनके चरणों में नतमस्तक हो गए और कहने लगे - “भगवन्! इस रोग की औषधि तो रत्नत्रय धर्म है। वह औषधि आपके ही पास है।”

स्याद्वाद-दृष्टि

इस विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि साधु सर्वथा औषधि का त्याग करते हैं या गृहस्थों को औषधिदान नहीं देना चाहिए। एकान्त पक्ष ग्रहण करना कभी भी आनन्दप्रद नहीं होता। आत्म सामर्थ्य, क्षेत्र, कालादि का विचारकर विवेकपूर्वक कार्य करना चाहिए। नेमिसागर मुनिराज के कथन में मनस्वी साधु की आत्मनिर्भरतापूर्ण निर्मल चित्तवृत्ति प्रतिबिम्बित होती है।

विदेश जाने वाले छात्र को उपदेश

नेमिसागर महाराज के पास एक जैन तरुण आया, जो विदेश जा रहा था। महाराज ने उससे कहा था - “तुम अच्छे कुल के हो। अपने कुल की लाज रखना। अभक्ष्य भक्षण नहीं करना।”

वृद्ध व्यक्ति से मार्मिक प्रश्न

सत्तर वर्ष के एक धार्मिक सेठ महाराज के पास आए। नेमिसागर महाराज ने कहा - “सेठजी! अंग्रेज लोग तीस वर्ष की नौकरी के बाद पेशन दिया करते थे, अब तुम सत्तर वर्ष के हो गए। घर गृहस्थी की जिम्मेदारी से कब पेशन लोगे?”

महाराज का प्रश्न बड़ा मार्मिक है। आज के राजनीतिज्ञ अपना एक पैर यम मंदिर में रखते हुए भी राजनीति के प्रपच में फँसे रहते हैं। गृहस्थ यह बात भूल गया है कि गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम भी हैं। उनकी विस्मृति का ही परिणाम है कि जीव शहद में गिरी हुई मक्खी के समान छटपटा कर मरण करता है और असमाधि पूर्ण मृत्यु के कारण नरभव को यों ही गमा देता है।

जैनो की न्यूनता का कारण

लोगों के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ करता है कि जैन धर्म सच्चा है, तो उसके पालन करने वालों की संख्या बहुत कम क्यों है?

इस सबध मे नेमिसागर महाराज ने यह उत्तर दिया था - “जैनधर्म को सत्यता पूर्वक पालने वाले बहुत थोड़े है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ससार मे अच्छी वस्तु थोड़ी है। भलाई अल्प मात्रा मे है। बुराई की सीमा नहीं है।” यथार्थ बात यह है आज का मानव उस पथ को अपनाता है, जिसमे उसके स्वच्छद जीवन का पोषण होता है, जहाँ विषयभोगो के सेवन करने मे किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है।

जैनधर्म की आधारशिला ही त्याग है, सयम है, इन्द्रिय-जय है। इन्द्रियों को जीतनेवाला ही तो जैन कहलाता है। अतएव आज का भोगी मानव इस धर्म को सकटपूर्ण सोचकर उस ओर प्रवृत्त होता है, जहाँ उसके विलासी जीवन को कोई भी धक्का नहीं लगता। भिन्न-भिन्न धर्मों मे भी सयम को स्थान दिया गया है। लोग अपने-अपने धर्म के अकुश को दूर कर निरकुश बन रहे है। निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय, तो जगत् धर्म से दूर होता जा रहा है। स्वार्थी जीवन को ही लोगो ने अपना धर्म बना लिया है। इस स्वार्थ के विष-पानवश समाज शिथिल, अशक्त तथा दु खी दिखाई पडता है।

महत्त्वपूर्ण विचार

एक दिन नेमिसागर महाराज ने बड़े महत्त्व के विचार प्रगट किए थे। उन्होने कहा था - “अनुभव, शास्त्र (आगम) तथा व्यवहार - इन तीनों को ध्यान मे रखकर कार्य करना चाहिए।” उनकी यह शिक्षा बहुत उपयोगी है - “पूर्व मे उपार्जित पुण्य कर्मोदय से सुखी, समृद्ध तथा वैभववान को देखकर लोगो को नहीं जलना चाहिए। उससे गुण लेना चाहिए कि इस जीव ने पूर्व मे पुण्य द्वारा ऐसी सुन्दर सामग्री प्राप्त की है। हमे भी ऐसा पुण्य का सचय करना चाहिए। जलते रहने से या निन्दा करने से हित नहीं होता। बिना पुण्य के कोई धनवान तथा सुखी नहीं बनता। जो कहते है कि गरीबो का शोषणकर, उनका धन लूटकर, धनवान समृद्ध बने हैं, वे यह बतावे कि धनवान बनने से उनको किसने रोका है? पुण्यवान व्यक्ति धन तथा वैभवहीन अवस्था को त्यागकर अल्प प्रयत्न से विभूतिवान बनते हैं।”

“आजकल सब बातों का क्रम विपरीत हो रहा है। पहले का सुख, निराकुलता तथा शांति अब नहीं है। पृथ्वी की उपज भी घट रही है। आगे अच्छे दिन नहीं आवेंगे। शास्त्रकथित बातें प्रत्यक्षगोचर हो रही है। लक्ष्मी हीनकुलो मे जाएगी, उच्चकुल मे लक्ष्मी का वास घटेगा, यह शास्त्र का कथन दृष्टिगोचर हो रहा है।”

इन्द्रियजनित सुखो के विषय मे महाराज का उपदेश बहुत गभीर तथा मार्मिक

है - "हमने इस विषय में गहरी के साथ विचार किया है कि खाने-पीने, दवाओं आदि विषयों के उपभोग में मृत्यु मानना बड़ी भारी भूल है। उदिया व हाग कोई मृत्यु नहीं मिलता। साचों गरी, पुत्रादि, धन-धान्यादि के हाग मृत्यु मिलता है? कपाय के आधीन होकर तुम देश-विदेश में चक्कर लगाने लो। लोभ के कारण तुम्हें गरीब की भी फिकर नहीं रहती। तुम अपने मृत्यु का ध्यान नहीं करते हो। मात के कारण तुम कहते हो कि विषय भोग नहीं छूटते हैं। यथार्थ बात यह है कि तुम मृत्यु उनका त्याग करने को तैयार नहीं हो।

दृष्टांत

एक लोट के भीतर चने रखे हैं। लोभी बदर उसके भीतर हाथ डालना है। मृदा में चने भरता है, इसमें वह भरी मृदा लोटे में निकल नहीं पाती। वह चना छोड़ने को जब तक तैयार नहीं होता है, तब तक उसका हाथ लोटे में फंसा रहता है। ऐसी ही अवस्था भोगी तथा विषयगत जीव की है। हमें जो दोष देना चाहिये है।"

विनय द्वारा विकास

महागज की यह शिक्षा सर्व साधारण के लिए बहुत उपयुगी है -

"चटुष्पन अपने आप नहीं आता। छाटों की सेवा द्वारा चटुष्पन मिलता है। विनयवान मुर्खी रहता है। नम्र चींटी तिजोड़ी के भीतर भी रहने हुए भिष्ट पदार्थ को खाती है। हाथी को नडा होम पर भी गया खाने को नहीं मिलना है। यदि हाथी गने के खेत में जाता है, तो उसकी पीठ पर लट्ट प्रहार होता है। विनयवान चींटी के समान सदा नम्र उद्योग द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है।

आचार्य महागज एक उदाहरण दत्त थे - यदि एक ऊँचे खम्भे के शिखर पर मुई लगाकर उसके ऊपर एक अमरुट का फल रख दिया जाय, तो भी छोटीसी चींटी उस खम्भे का चक्कर लगाती हुई ऊपर पहुँचती है, धीरे-धीरे वह उस फल को खाकर पोला करती है, इसमें वह फल जमीन पर गिर जाता है, इसी प्रकार उद्योगी विनयवान मोक्ष प्राप्त करता है। शू्रवान व्यक्ति भी अल्पकाल में मुक्त होता है। अजनचोर ने साहस करके अपना जीवन सुधाग ओर वह पवित्र वन मोक्ष गया।"

तोते का आदर्श

पक्षियों में तोता एक विलक्षणता धारण करता है, वह उड़ता जाता है ओर वृक्ष के फल धान्यादि को खाता जाता है। अन्य पक्षी की तरह उसे बैठने को स्थान नहीं

मेने कहा - 'महाराज! दशलक्षण पूजा कर रहा था। तब रूप मातवे धर्म की पूजा करते समय चित्त में विचार आया कि जब मातातपस्वी गुरु के रूप में आप यहाँ विराजमान हैं, तब जीवित तपोधर्म को क्यों न अर्घ्य चढ़ाऊँ? इसमें मैं आपके पाप आया। आचार्य शातिसागर महाराज के जीवन काल में मैं पर्युषण में उनके पास जाता रहा हूँ। बाहर के अनेक आमंत्रण आने पर भी मैं उनके पास पहुँचा करता था, इसका कारण यह था कि उनके भीतर जगज्ज्वल्यमान दशधर्मों का प्रत्यक्षीकरण होने में मजीब धर्मों की पूजा का सोभाग्य मिलता था। आज आपके पास भी मुझे वही लाभ मिल रहा है।' कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है -

जो रयणत्तयजुत्तो खमादिभावेहि परिणटो णिच्चं ।
सञ्जत्थचि मज्झत्थो सो साहू भण्णदे धम्मो ॥३२०॥

जो साधु रत्नत्रयधारी है, क्षमादि भावयुक्त है तथा सबके प्रति माध्यस्थ्य भाव सहित है, वह साक्षात् धर्म है।

इसके अनंतर मन में एक विकल्प आया। मैंने सोचा, महाराज से समाधान प्राप्त कर लूँ, अन्यथा पूजा करने में वह विचार विस्मृत न हो जाय।

विचित्र प्रश्न

मेने कहा - "आप आचार्य शातिसागर महाराज को प्रणाम करते हैं क्या? पहले करते थे, क्योंकि वे महाव्रती साधुराज थे। अब तो वे सुरराज हुए होंगे?"

सयमी पर्याय को प्रणाम

नेमिसागर महाराज ने कहा - "हम सदा आचार्य महाराज को प्रणाम करते हैं। उनके चरण युगल हमारे हृदय में विराजमान हैं।" महाराज नेमिसागरजी ने यह मार्मिक बात कही थी कि "हम शातिसागर महाराज की सयम युक्त पर्याय को ध्यान में रखकर प्रणाम करते हैं। उनकी सयम रहित देव पदवी हमारी दृष्टि में नहीं रहती। हम अव्रती देव पर्यायवाली आत्मा को कैसे प्रणाम करेंगे? आगम की जैसी आज्ञा है, वैसा हम करते हैं।"

देव पर्याय को नमस्कार नहीं

मैंने पूछा - "महाराज! यदि आचार्य महाराज का जीव यहाँ समक्ष देव रूप में दर्शन दे, तो क्या उनको भी नमस्कार न करेंगे?" नेमिसागर महाराज ने कहा - "हाँ! हम उन्हें नमस्कार नहीं करेंगे।"

इस पर मैंने पूछा - “अच्छा यह बताइये कि क्या वह सुरराज की पर्यायधारी आचार्य महाराज की आत्मा आपको प्रणाम करेगी या नहीं?” उन्होंने कहा - “अवश्य! आगम की आज्ञा पर आचार्य महाराज का सदा विश्वास रहा है, इस कारण वे आगम की आज्ञानुसार सकल सयमी की वदना करेंगे, अन्यथा उनकी विशुद्ध श्रद्धा को दोष लगेगा।”

कुदकुद स्वामी ने दर्शन पाहुड में कहा है -

अमराणवंदियाण रूव दडूण सीलसहियाण ।

जे गारवं करति य सम्मत्त-विवज्जिया होति ॥१५॥

सुरवद्य, शीलसपन्न, यथाजात जिनमुद्राधारी को देखकर जो अहंकार भाव के वशीभूत होते हैं वे सम्यक्त्व हीन होते हैं।

मुसलमान वर्ग का प्रेम

महाराज के सुन्दर तर्कशुद्ध समाधान से मन को बड़ी शांति मिली। पूजा के पश्चात् मैं महाराज के पास आया तथा देखा कि एक मुसलमान तरुण उनसे प्रार्थना कर रहा था - “महाराज! आप कुडची ग्राम के हैं। वहाँ की आम जनता आपके दर्शन करना चाहती है।”

महाराज ने कहा - “तुम लोग मुसलमान हो। हम हैं, दिगम्बर साधु। हमारे दर्शन से तुम्हारे यहाँ के मुसलमानों का मन दुःखी होगा। उनको क्षोभ प्राप्त होगा।”

वह मुसलमान भक्त बोला - “आप हमारे भी साधु हैं। आपके दर्शन से हम सबको बहुत खुशी होगी। आपके खिलाफ कोई नजर नहीं उठा सकेगा। माफ कीजिए! जो आपके तरफ बुरी निगाह करेगा, उसकी खैरियत न समझिए।” महाराज ने बताया कि इस प्रकार के अनेक लोग उनके पास आते रहते हैं। अपने रत्न का मूल्य दूसरा करता है। दुर्भाग्य की बात है कि हम समीप में रत्नराशि होते हुए भी दरिद्री की तरह दुःख प्राप्त कर रहे हैं।

विवेकहीनता

इस विवेकहीनता के कारण ही आज धर्म का हास हो रहा है। हमें यह देखकर बड़ा खेद होता है कि महान् शास्त्रों का अभ्यास करने वाले कोई-कोई शास्त्री लोग भी इन दिगम्बर साधुओं के प्रति ऐसा ही अद्भुत वात्सल्य दिखाते हैं, जैसा प्रेम धीवर जल में निवास करने वाली मछली के प्रति व्यक्त करता है। ये शास्त्री महोदय मालूम नहीं,

सर्वार्थसिद्धि आदि शास्त्रों में स्पष्ट कथित पुलाकादि मुनियों की चर्चा को क्यों भुला देते हैं, जिनके मूलगुणों तक की विराधना हो जाती है।

सदाचार शून्य की वदना

ये परिग्रहधारक, आगमविरुद्ध आचरण करने वालों के आगे हजार बार सिर रगड़ते हैं, उनका स्तवन करते हैं, धनिकों का पादार्चन करते हैं, किन्तु दिगम्बर जैन मुनि या उच्च श्रावक दिखे, तो ये कल्पित अकल्पित दोषों की उनमें स्थापना करके अपने गुरु-निन्दक प्रेमी चित्त को परितोष प्रदान करते हैं, यह महान् परिताप की बात है।

श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत धारण

दिगम्बर मुद्रा धारण करने में जो श्रेष्ठ बात काम-भाव को जीतने की है, वह ये सोच ही नहीं पाते। बड़े-बड़े धर्मों के आराध्य भगवान तक जिस कामिनी के इशारे पर चलायमान होते हैं, उस स्त्री के प्रति सदा मातृत्व की भावना को सजग रखना ही क्या लोकोत्तर बात नहीं है? अन्य गुणों का असद्भाव होते हुए भी श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के कारण ही ये दिगम्बर मुनि अपना अपूर्व स्थान रखते हैं। 'चर्ममय-पुत्तलिकासु कोऽनुराग प्रज्ञावता' - चर्म की पुत्तलिकाओं के प्रति कौन बुद्धिमान अनुराग करेगा? यह मूल मन्त्र इनके मन को मूढ़ों के द्वारा प्राप्त पथ से बचाता हुआ, इनकी दृष्टि को इस श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत की ओर सुदृढ़ बनाए रखता है।

आचार्यश्री की सल्लेखना पर अभिप्राय

आचार्य महाराज की सल्लेखना योग्य समय पर नहीं हुई, ऐसा अनेक धार्मिक श्रावकों, साधुओं, साध्वियों का मत है। हमने अनेक गुरुभक्तों से इस विषय में चर्चा की। जो महाराज के सदा समीप रहा करते थे, उनसे भी पता चलाया, तो उन्होंने भी हमारी दृष्टि का समर्थन किया कि समाज के दुर्भाग्य से कुछ लोगों के कारण उन साधुराज ने समय के पूर्व समाधिरूपी अग्निकुण्ड में प्रवेश किया था। इस सम्बन्ध में जब आचार्य महाराज के पचास वर्ष के साथी शिष्य नेमिसागर महाराज से चर्चा की तो वे कहने लगे - "लोग पैसे के लिए उनको जबरदस्ती बारामती से कुथलगिरि ले गए।" महाराज ने कुछ लोगों से कहा था - "एक बार हम पहले कुथलगिरि में चक्कर में फँस गए थे। अब फिर से यहाँ चक्कर में आ गए।"

सामाधिक के समय सर्प का आगमन

नेमिसागर महाराज से मैंने पूछा - "आचार्य महाराज पर जैसे अनेक उपसर्ग

आए, सर्पकृत बाधा को उन्होंने सहन किया था, उस प्रकार आप पर भी क्या कभी सर्पराज ने कृपा की थी?” उन्होंने कहा - “व्यावर की बात है। चातुर्मास के समय मैं सेठ चपालालजी रामस्वरूप के बगीचे में नासाग्र दृष्टि हो, ध्यान हेतु बैठा ही था, उस समय यह हल्ला हुआ कि मेरे पास एक सर्प आया तथा मेरे आसन के काष्ठ के नीचे घुस गया है। लोगो ने उस सर्प को पकड़ लिया। मैं सामायिक में लगा रहा। लोगो ने उस सर्प को दूसरी जगह छोड़ दिया। उस सर्प ने कोई उपद्रव नहीं किया।”

महामंत्र में अपार श्रद्धा

नेमिसागर महाराज का यह अनुभव बहुत उपयोगी है। उन्होंने कहा - “जब हमें अशुभ स्वप्न दिखाई पड़ता है, तब हम णमोकार का जाप करते हैं। पंच परमेष्ठी की जाप से अशुभ स्वयं नष्ट होता है।” मैंने अनेक बार पूछा - “महाराज! किस मंत्र का जाप चल रहा है।” वे कहते थे - “हम सदा णमोकार मंत्र का ही जाप करते हैं। हमारा मंत्र णमोकार ही है। हाँ! जब शरीर थक जाता है, तब हम ॐ ॐ का जाप करते हैं। ॐ के जाप करने में कष्ट नहीं होता।”

उन्होंने हमारे पिताजी के लिए उक्त मंत्र का ही जाप बताया था। वे कहते थे - “णमोकार को सदा जपना चाहिए। जब शरीर में पाठ करने की शक्ति न हो, तब ॐ ॐ जाप करना चाहिए। णमोकार मंत्र और ॐ में कोई अन्तर नहीं है। ॐकार पंच परमेष्ठी का वाचक है। “ॐकारो पंचपरमेष्ठी।”

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो ।

पढमक्खर-णिप्पण्णो ओकारो पंच परमेष्ठी ॥

अरहत, अशरीर (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि के आदि अक्षरो से पंचपरमेष्ठी रूप ओकार बनता है। (अ+अ+आ+उ+म = ओम) योगदर्शन में ॐ को ईश्वर का वाचक कहा है। उपनिषदों में भी ॐ का गुणगान है।

इस युग के कुपथ प्रदर्शक लोग

आज लोग शास्त्र पढ़ते नहीं, मंदिर जाते नहीं, सत्संग करते नहीं, किन्तु अपने आपको स्वयंसिद्ध महाज्ञानी मान बैठते हैं। अपनी बुद्धि में जैसे भी विचार आए, उस प्रकार आगम की व्याख्या करते हैं। वे ज्ञानी जनो की बात नहीं सुनते। कलोल के धार्मिक श्रीमान सेठ जीवनलालजी बखारया ने बातचीत में सुनाया था कि बम्बई शासन

के एक जैन मंत्री महोदय ने उनके नगर में आकर जैन गृहस्थों को उपदेश में कहा था -
 “अब जैनियों को चमड़े का व्यापार करना चाहिए। इसमें बहुत लाभ है।” धनलोलुपी लोग समृद्ध बनने के लिए त्रसहिंसा आदि के धधो में लग रहे हैं। ऐसे लोग जैन गौरव को गहरी हानि पहुँचा रहे हैं।

देशभूषण महाराज का आश्चर्यप्रद अनुभव

१०८ आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ने एक आश्चर्यप्रद बात अक्टूबर सन् १९५९ के कोल्हापुर चातुर्मास में सुनाई थी - “हम गिरनार की यात्रा करके सौराष्ट्र में विहार कर रहे थे। वहाँ गुजरात प्रांत के मुख्य कांग्रेस कार्यकर्ता एक वयोवृद्ध दिगम्बर जैन बन्धु हमारे पास आए। एक दिन वे आहार-दान के हेतु खड़े हो गए। हम अनुकूल विधि मिलने से उनके घर के भीतर चले गए। वहाँ भोजनालय भोजन-गृह तुल्य नहीं लगता था। इससे हम आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे कि क्या बात है? इतने में उन आहारदान प्रेमी व्यक्ति ने कहा - “महाराज! मन शुद्ध है, वचन शुद्ध है, काय शुद्ध है। जैन-होटल से मँगाया गया भोजन पान शुद्ध है।” होटल का भोजन सामान्य सदाचार पालनेवालों के भी योग्य नहीं होता, ऐसा आहार अनेक दोषयुक्त होने से हम वहाँ से बाहर आ गए।”

आज का जीवन

आज के लोक जीवन पर प्रकाश डालते हुए नेमिसागर महाराज ने बड़ी मनोरंजक तथा बोधप्रद सूक्ति कही थी - “मुझे अपनी बात मालूम नहीं, दूसरे की बात सुनना नहीं - “माझ मला कलत नाही, दुसऱ्या च ऐकत नाही।” इस कथन के प्रकाश में उन लोगों को अपनी समालोचना की कतरनी नहीं चलाना चाहिये, जिनका आगम के तत्त्व से उचित परिचय न हो। उनके लिए “मौन हि शोभनम्” सूक्ति आश्रय योग्य है।”

भूल बताने वाला उपकारी है

अपनी भूल बताने वाले पर कोप करना उचित बात नहीं है। नेमिसागर महाराज कहते थे - “अपनी भूल अपने आप स्वयं को नहीं मालूम पड़ती। भूल बताने वाला दूसरा चाहिए। मुख में लगी हुई कालिमा का स्वयं को बोध नहीं होता। दर्पण के द्वारा उस कालिमा का ज्ञान हो जाता है। सज्जन धर्मात्मा बुराई को जानकर छोड़ देता है। ऐसा करने से ही वह सज्जन कहा जाता है।”

सत विद्वेषियों की प्रवृत्ति

ससार में सत्पुरुषों के आगमन को भद्र पुरुष मंगल पर्व मानते हैं, किन्तु खल

जनो को सतों के दर्शन की तो कथा ही क्या, उनके नाम तक में वेदना होती है। वड़े-वड़े पढ़े-लिखे लोग भी दुर्जन का अभिनय किया करते हैं। आश्चर्य तो उस समय होता है, जब माधुजन के प्रति द्वेष व्यक्त करने वालों का नाम के पीछे शामी या पंडित की पदवी लगी रहती है। मिथ्या-मार्ग पर चलकर मद्धर्म पर लाछन लगाने वाले शिथिलाचारी साधुवेषी के प्रति ऐसों का सहोदर सदृश प्रेम देखा गया है। यथार्थ में यह कलिकाल का प्रभाव है, जो धर्मरक्षक ही धर्मात्माओं के मार्ग में सकट उत्पन्न करते हैं और अपने साधियों को भी कुपथगामी बनाते हैं। ऐसी परिस्थिति में अन्य लोगों के द्वेष की क्या कथा कही जाय?

नातेपुते की घटना

उन्होंने कहा - “आचार्य शातिसागर महाराज ने मुझे आज्ञा दी कि मैं भी एक माह अन्यत्र विहार करूँ। मैं वारामती से दहीगाँव की तरफ गया था। नातेपुते के समीप पहुँचने पर कुछ विरोधी व्यक्तियों ने काले झण्डे दिखाए। लोक व्यवहार में प्रवीण न होने के कारण मैं यह नहीं जान सका कि काले झण्डों का क्या मतलब है? जैन मण्डली की तरफ से बाजे बज रहे थे। मैंने कहा - बाजे बंद करो। बाजों से क्या प्रयोजन है? मैं विरोध प्रदर्शक झण्डेवालों के समुदाय में चला गया। वहाँ से मैं जैन मंदिर में पहुँच गया। कलेक्टर ने आकर हमें बताया कि गाँव में गड़बड़ी होने की संभावना होने से उनका आगमन हुआ है। हमने कलेक्टर को गृहस्थ धर्म की आरंभिक अवस्था से लेकर मुनियों के २८ मूलगुणों आदि का स्वरूप बताया और कहा कि हमें अपने शास्त्र की आज्ञानुसार आहार लेने नगर में जाना पड़ता है। शौच के लिए भी हमें नगर के मध्य होकर बाहर जाना पड़ता है।”

“हमारी बातों को सुनकर कलेक्टर ने हमारे बिहार का समय नियत कर दिया। हमने कलेक्टर से कहा कि आप सुबह ८ बजे से ११ ३० बजे तक और शाम को ३ बजे से ५ बजे तक हमारे विहार का काल नियत करते हैं, किन्तु यदि शौच की बाधा असमय में आ जाय, तो आप बतावें क्या किया जायगा? वे निरुत्तर हो गए। हम शासकीय आदेश की उपेक्षा करते हुए गाँव में से गए। वापसी में हमने देखा कि एक पुलिस की मोटर खड़ी है। फौजदार के साथ पाँच सिपाही हथकड़ी लेकर हमारे आने के मार्ग पर खड़े हैं। हम भूमि पर दृष्टि रखते हुए गाड़ी के पास आए और आगे चले गए। हमें किसी ने नहीं रोका। इस घटना के पश्चात् आचार्य महाराज ने मुझे अपने पास बुला लिया था।”

देहली चातुर्मास की घटना

नेमिसागर महाराज ने देहली चातुर्मास की एक बात पर इस प्रकार पकड़ डाला था - “देहली में मय का चातुर्मास हो रहा था। उस समय नगर के प्रमुख जैन वकील ने सघ के नगर में घूमने की सरकारी आज्ञा प्राप्त की थी। उसमें नई दिल्ली, लालकिला, जामा मसजिद, बायमराय भवन आदि कुछ स्थानों पर जाने की गैक थी। जब आचार्य महाराज को यह हाल विदित हुआ, तब उनकी आज्ञानुसार भ. चन्द्रसागर, वीरसागर उन स्थानों पर गए थे, जहाँ गमन के लिए गैक लगा दी गई थी। आचार्य महाराज ने कह दिया था, जहाँ भी विहार में गैक आवे, तुम वहाँ ही बैठ जाना। हम सर्व स्थानों पर गए। कोई गैक-टोक नहीं हुई। उन स्थानों पर पहुँचने के उपरान्त फोटो उतारी गई थी, जिसमें यह प्रमाणित होता था कि उन स्थानों पर दिगम्बर मुनि का विहार हो चुका है।”

नेमिसागर महाराज ने चम्पई में उन स्थानों पर भी विहार किया है, जहाँ मुनियों के विहार को लोग अमम्भव मानते थे। हाईकोर्ट, गमुद्र के किनारे जहाँ जहाजा से माल आता जाता है। ऐसे प्रमुख केन्द्रों पर भी नेमिसागर महाराज गए, इसके सुन्दर चित्र भी खिंचे हैं। इनके द्वारा दिगम्बर जैन मुनिराज के सर्वत्र विहार का अधिकार स्पष्ट सूचित होता है।

आचार्यश्री की भक्ति

उन्होंने कहा - “आचार्य महाराज का गजस्थान में विहार हो रहा था। उस समय ऐसी परिस्थिति आई कि महाराज ने अकेले रहने का विचार किया और सब साधुओं को अपने पास से अलग कर दिया। उस परिस्थिति में, मे क्लिक्त्तव्य विमूढ हो गया। मेने नियम कर लिया था कि आचार्य महाराज के दर्शन किए बिना आहार नहीं करूँगा। मेरी पुन प्रार्थना तथा विनय पर उन्होंने मुझे अपने पास रहने की अनुज्ञा दी थी।”

शका

प्रायः पढ़े-लिखे लोग चर्चा करने लगते हैं कि अमुक मुनि अमुक स्थान पर अधिक समय तक रह गए। इस बात को वे लोग इतना उग्र रूप देते हैं, मानों मुनिराज ने मूलगुणों की विराधना की हो। एक बार आचार्य महाराज के विरुद्ध ही एक प्रमुख जैन मासिक पत्र में लेख छपाया गया था कि महाराज एक स्थान पर अधिक समय तक क्यों

रहे? करणानुयोग, द्रव्यानुयोग की चर्चा में प्रवीण पंडितगण चरणानुयोग के मर्म को स्पर्श न करके तिल का ताड़ बनाया करते हैं। मैंने आचार्य महाराज से उक्त विषय पर चर्चा की।

समाधान

उन्होंने कहा था - “एकत्र कारण विशेष से अधिक काल पर्यन्त निवास करनेसे साधु के मूलगुणों की विराधना नहीं होती। आजकल कदाचित् मूलगुण की भी विराधना होती है। इसके सिवाय हमारी अवस्था ८० वर्ष से अधिक हो गई। वृद्ध मुनि जहाँ भी उसको धर्मसाधन की अनुकूलता दिखे, वहाँ अधिक काल पर्यन्त रह सकता है।”

स्पष्टीकरण

नेमिसागर महाराज बम्बई में थे। उस विशाल नगरी में वे एक स्थानसे दूसरी जगह तीस चालीस मील की दूरी पर भी आते-जाते रहते थे, फिर भी लोग कहते थे कि वे एक जगह क्यों रहते हैं? ऐसे शकाकार भाइयों को उपरोक्त गुरु वचनों द्वारा समाधान प्राप्त करना चाहिए।

नेमिसागर महाराज से जब मैंने कुछ लोगों के विचारों की चर्चा चलाई, तब वे कहने लगे - “अब हम ७६ वर्ष के हो गए। अब हमारा थोड़ा जीवन शेष है। शरीर बहुत अशक्त हो गया है। अब कहाँ जाना, कहाँ आना? कोई कहते हैं दक्षिण चलो, कोई चाहते हैं उत्तर चलो। हमारे समक्ष दक्षिण-उत्तर का कोई भेद नहीं है।”

मनोगत

हमारा इरादा वीरीवली तथा उसके आसपास अपना समय व्यतीत करने का होता है। वीरीवली विशेष स्थान हो जायगा। वहाँ का काम अपने आप पूरा होगा। हमें करना क्या है? अपनी आत्मा का चितवन करना, नहीं तो “णमो अरिहताण” का जाप करते बैठना। बिना कारण क्यों चक्कर में पड़ना? हम बम्बई में एक जगह पर तो नहीं बैठते।”

आत्मचरित्र

उन्होंने कहा - “हमारा मन विषयों की ओर नहीं दौड़ता। खाने की तरफ भी मन नहीं है। छहो रस छोड़कर एक दिन के बाद हमारा आहार लेने का क्रम चलता है।

कोई हमारी निंदा करे, तो बड़ी बात नहीं है। आचार्य महाराज के समक्ष कोई-कोई जय जयकार करते थे, पीछे से वे ही निन्दा करते थे। जहाँ जाओ वहाँ एकरा ही हाल है। अब पहले सरीखी धर्म भावना नहीं है।"

केशलोच के विषय में शंका

पर्यूपण पर्व समाप्त होने के पश्चात् मन् १९५९ की कुवाग बंदी पचमी को विशाल जन समुदाय के समक्ष नेमिसागर महाराज का केशलोच हुआ। कोई-कोई दृष्टदर्शन न करने वाले, स्वच्छंद आचार वाले तथा गुरु की निन्दा में आनन्द की अनुभूति लेने वाले व्यक्ति कहते फिरते कि मुनियों को केशलोच एकान्त स्थान में करना चाहिए। यह प्रदर्शन, उनके विचार में जैनधर्म तथा मुनिचर्या के प्रतिकूल है। भोले भाले लोग भी इन विचारों के चक्कर में आ जाते हैं।

महान् धर्म प्रभावना

समाधान - "दिगम्बर जैन मुनि का केशलोच देखकर अनेक भिन्न धर्मियों की आँखें खुल जाती हैं। वे सोचते हैं कि जैन मुनि का जीवन केवल नग्न रहना ही नहीं है, वरन् इनकी तपस्या भी महान् है। लम्बे केश रखने वाले साधुओं को भी पता चलने लगता है कि केशलोच कितना कठिन कार्य है। शरीर में मोह तथा आसक्ति धारण करते हुए यह कार्य कैसे बन सकता है? आत्मा और शरीर में एकत्व भावना वाले जीवों के मन में सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा अकित होती है। अकिंचन जीवन का सौन्दर्य जगत् के समक्ष आता है। जैनधर्म के प्रति शत्रुभाव वाले व्यक्तियों की दुर्भावना बदलती है। जहाँ नाई की मशीन में जरा वाल फँसने से हमें असह्य पीडा होती है, वहाँ दिगम्बर जैन मुनिराज शांत भावपूर्वक केशों को हाथ से उखाड़ते हैं, मानों तिनके ही तोड़ रहे हों, इन दोनों बातों का विचार करने से सभी लोगों को जैन-मुद्रा की महत्ता समझ में आती है।

विचारक व्यक्ति सोचें कि यदि नेमिसागर महाराज ने केशलोच एक कमरे के भीतर चुपचाप कर लिया होता, तो बम्बई जैसी महानगरी में हजारों उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के मध्य जैनधर्म की कैसी प्रभावना होती? केशलोच का दृश्य अद्भुत था। आगत व्यक्तियों की आत्मा यह अनुभव करती थी कि इस महान् नगरी में सच्ची दृष्टि से १०८ दिगम्बर जैन मुनि नेमिसागर महाराज अलौकिक महात्मा हैं। अमृतचंद्र स्वामी ने पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय में कहा है -

आत्मा प्रभावनीय रत्नत्रय-तेजसा मततमेव ।

दान-तपो-जिनपूजा-विद्यातिशयेश्च जिनधर्म ॥३०॥

-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के तेज द्वाग सदा अपनी आत्मा की प्रभावना करनी चाहिए । दान, तप, जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा विद्या के अतिशय द्वाग जैनधर्म की प्रभावना को ।^१ धर्मप्रभावक कार्यों में मिथ्यात्वियों के मानस में जैनधर्म के प्रति गौरव का भाव जागृत होता है ।

गुणभद्राचार्य और धर्म प्रभावना

धर्म की प्रभावना के लिए आचार्य गुणभद्र ने आठ अंग बतलाए हैं । तपश्चरण करना, लोगों को आनन्द प्रदान करना, धर्म का उपदेश देना, एकातवादियों के अहकार को चूर्ण करना, राजा के मन को वश में करना, शब्द तथा अर्थ से सुन्दर काव्य-रचना करना, सदाचार का पालन करना और पराक्रम दिखाना । इन कारणों से जैन शासन का प्रकाशन करना चाहिए -

निमित्तरष्टधा प्रोक्तैस्तपोभिर्जनरजकै ।

धर्मोपदेशेनैरन्यवादिदर्पातिशातनै ॥४११॥

नृपचेतोर्हरै श्रव्यै काव्यै शब्दार्थसुदै ।

सद्भि जीर्येण वा कार्यं शासनस्य प्रकाशनम् ॥४२०॥

जैनधर्म की प्रभावना करना जीव के लिए कल्याणकारी है । प्रभावना द्वारा अहकार का पोषण नहीं होता, जिनेन्द्र शासन की महत्ता जनता के मानस में प्रतिष्ठित होती है । आचार्य कहते हैं -

रुचि प्रवर्तते यस्य जैनशासनभासने ।

हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते ॥४२२॥

जैन शासन की प्रभावना करने में जिसकी रुचि है, उसके हाथ में मुक्ति है । ऐसा सूत्र में कहा है ।

१ "One should ever make his own Self radiant by the light of three Jewels and should add to the glory of Jainism by exceptional charity, austerity, worship of Jina the Conqueror and by learning Prabhavana Anga is the 8th pillar of Right Belief

English Translation - Purushartha-sidhupaya

गुणभट्ट स्वामी का यह कथन धार्मिक व्यक्तियों के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है -

कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान्।
सदोद्धरति सोद्योगो यस्य लक्ष्मीधरो नरो भवेत् ॥४२६॥

-जो पुरुष राज्य कंटकों के समान धर्म के कंटकों को निकाल फेंकता है अथवा जो इसके उद्योग में लगता है, वह अवश्य ही लक्ष्मी का स्वामी होता है। सच्ची और स्थायी प्रभावना के लिए धन व्यय कर शान्त शोकित दिखाने और वैभव प्रदर्शन में पानी की तरह धन बहाना प्राणशून्य प्रभावना है। धार्मिक धनिक वर्ग को विवेकपूर्वक काम करना चाहिए।

आगम के इस प्रकाश में केशलोच जैनधर्म की प्रभावना का विशिष्ट अंग स्पष्ट होता है। चुपके से एकान्त में केशलोच का समर्थन करने वाले यह नहीं सोचते कि आज के अद्भुत शिथिलाचार पूर्ण युग में ऐसा करने से सच्चे-झूठे माधु का भेद ज्ञात नहीं हो पायगा। सबके समक्ष इस कार्य को करने से अनेक लाभ पत्यक्ष-अनुभव में आते हैं। ऐसी स्थिति में धर्म प्रभावना के लिए इस कार्य के प्रकाशन को अधिक महत्त्व देना आगम, युक्ति तथा अनुभव के अनुकूल बात है। इसे युग वताना विवेकहीनता का परिचायक है।

हमारा कर्तव्य

दु ख है कि स्वयं निकृष्ट जीवन बिताने वाले तथा पूर्व पाप के उदय से इस जन्म में भी कष्ट की स्थिति में पड़े हुए व्यक्ति भी अपने कर्मभार को हल्का करने के बदले उसे और गुरुतर बनाने की कृति में गुरु बनते हैं और शिष्यों को भी कुपथ में लगाते हैं। काल निकृष्ट है, अतः द्वेषबुद्धि लोगों के, चाहे वे धनवान हों या शाम्भू नाम वाले हों, आदि के चक्कर में न आकर आगम और सद्भावना के प्रकाश में धर्म के कार्य करने में उत्साह रखना चाहिए।

धर्म का सामर्थ्य

धर्म के प्रसाद से एक धर्मात्मा व्यक्ति हजारों नीच व्यक्तियों के पाखण्ड के प्रसाद को पल भर में मिट्टी में मिला सकता है। छोटीसी पिपीलिका विशालकाय गजराज को गतप्राण बनाती है।

मार्मिक उपदेश

नेमिसागर महाराज ने केशलोच के उपरान्त भूखी आत्माओ (Hungry Souls) को मधुरवाणी द्वारा बड़ा मार्मिक उपदेश दिया था। भूखे शरीर को तो मोदक आनन्द देता है, किन्तु भूखी आत्मा को ऐसे ही सद्गुरुजनो की वाणी आनन्द तथा शक्ति प्रदान करती है। वह वाणी, तपस्वी की रहने से, उसका माधुर्य अनुभव की वस्तु है। लेखनी उसका वर्णन क्या कर सकती है? फिर भी उसका कुछ अंश देना मुमुक्षुओ के लिए परितोष तथा परितृप्ति का कारण होगा, यह सोचकर भाषण का सारांश लिखना उपयोगी है।

क्या कोई सुखी है

नेमिसागर महाराज ने बबई में एकत्रित विशाल जन-समुदाय से पूछा - “बताओ! तुम सब में ऐसा कोई है, जो अपने को सुखी कह सके?” कोई भी हाथ उठा कर यह नहीं कह सका कि मैं सुखी हूँ। उस सभा में अनेक करोड़पति भी थे, राज्य के अनेक अधिकारी थे, अनेक वैभव वाले थे। सभी प्रकार के लोग थे, किन्तु कोई भी व्यक्ति महाराज के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका।

अतएव महाराज ने कहा - “जगत् में सभी जीव दुःखी हैं। धन है, तो स्त्री नहीं। दोनो है तो पुत्र नहीं। तीनों हैं, तो नीरोगता नहीं। यह भी है, तो मानसिक सतोष नहीं है। तृष्णा की अग्नि सदा जलती है।” महाराज ने कहा - “तुम समझते हो कि महाराज सुखी हैं, सो मैं भी सुखी नहीं हूँ। मेरा जन्म-मरण का दुःख नहीं छूटा है। जब तक जन्म, मरण की विपत्ति नहीं दूर होती, तब तक कोई सुखी नहीं है। क्रूर काल सिर पर नाच रहा हो, तब कौन जीव सुखी होगा?”

कर्तव्य

ऐसी स्थिति में गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह देवपूजा, पात्र-दान, जप, तप करे। घर में रहते हुए भी वह अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास कर सकता है। उस अवस्था में आरंभ छूट जाता है, इससे काल धर्मध्यान में व्यतीत होता है। पापकर्म का आस्रव रुकता है। धीरे-धीरे पुराने कर्मों के समान, पूर्व बाँधा गया कर्म दूर होता है। जब यह जीव चार घातिया कर्मों का नाश करता है, तब वह आकाश में बिना सहारे के अधर रहता है। समवसरण की बारह सभा में बैठने वाले जीवों में प्रेम भाव रहता है। सिंह, गाय आदि के साथ खेलते हैं।” उन्होंने सब भव्य जनों को लक्ष्य में रखकर कहा - “आप सभी जीव

सिद्ध होने की सामर्थ्य रखते हैं। कर्मों में मोहनीय सबसे बलवान् है। मोह रूप स्तम्भ के गिरते ही सब कर्म सहज ही खिसकने लगते हैं। अतएव मोहनीय कर्म को जीतने का उद्योग करते रहना चाहिए।

निकृष्ट काल का बहाना

प्रश्न - “कोई-कोई यह कहते हैं कि पंचम काल में मोक्ष नहीं है तब कष्ट क्यों उठाना चाहिए ?”

इसके समाधान में महाराज ने कहा - “आत्म-कल्याण क्षण-मात्र में सम्पन्न नहीं होता। अनेक भवों में पुरुषार्थ तथा उद्योग किया जाता है। चक्रवर्ती भरत ने सात भव पूर्व तप किया था। जब वज्रजघ ओर श्रीमती ने चारण मुनि को आहार दिया था, तब भरत के जीव व्याघ्र ने उस दान की अनुमोदना की थी। उम पात्रदान को धन्य कहा था। उस पात्रदान से उसको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ था। परिणाम-विशुद्धि के द्वारा वह भोग-भूमि गया था। वहाँ से स्वर्ग पहुँचा, फिर उम जीव ने तप धारण किया था। आदिनाथ भगवान् के जीव ने दस भव पूर्व में महाबल राजा की पर्याय में, तप द्वारा आत्मकल्याण किया था, इसलिए प्रत्येक जीव को यथाशक्ति तप करके शक्ति सचय करना चाहिए।”

कुदकुद ऋषिराज कहते हैं, “तीर्थकर मुनि बनने पर चारज्ञान को धारण करते हुए तप करते हैं। “वीरम्य घोर तप ” वीरप्रभु ने घोर तपस्या की थी अत मूढता का त्यागकर महानजानी को भी तप में नहीं डरना चाहिए। यह जेनशासन की देशना है कि शक्ति के अनुकूल ही तप करे। तप के द्वारा कर्मों की अधिक निर्जरा होती है, “तपसा निर्जरा च”।

“लोग आर्त-रौद्र भावों में निरन्तर उलझे रहते हैं। भगवान् का नाम लेते हुए उनका मन दुष्ट विकल्पो को नहीं छोड़ता। ‘णमो अरिहताण’ यह कहते हुए पूछते हैं - तू कब आया? ‘णमो सिद्धाण’ कहते हुए पूछते हैं - क्या रसोई बनी? सकल्प विकल्प को छोड़कर मनको जीतना तथा उसे एकाग्र करना अत्यन्त कठिन है।”

नम्रता

आचार्य नेमिसागर महाराज ने भाषण में कहा -

“प दिवाकरजी ने अपने भाषण में मेरी प्रशंसा की है और कहा है कि मैं बड़ा तपस्वी हूँ। यथार्थ बात यह है कि मैं सब मुनियों में जघन्य हूँ। हमारा लास्ट (अन्तिम) नम्बर है। मैं एक क्षुद्र कीट सदृश हूँ। पहले चतुर्थ काल में मुनियों के उच्च सहन था।

ममत्तभद्र, कुदकुद, पूज्यपाद आदि पचमकाल में मुनि हुए हैं। शास्त्र में कहा है कि पचम काल के अंत तक मुनि-धर्म रहेगा।” गुणवान् साधु अपने को छोटा सोचते हुए आगे बढ़ते हैं। गुणविहीन व्यक्ति सत्यमहाव्रत को भुलाकर स्वयं को श्रेष्ठ रूप में दिखाते फिरते हैं। मोह का सब तमाशा है।

मुनियों का निवास क्षेत्र

“उच्च सहनन वाले मुनि जंगल में रहते थे। इस काल में हीन-सहनन होने के कारण मंदिर, धर्मशाला तथा शून्यगृह में रहना कहा है। शून्यागार अर्थात् शून्य-घर में मुनि का निवास कहा गया है। जङ्गल में और शून्यागार में अन्तर है।”

आजकल धर्म की नौका वैसे ही पाप के तूफान से डगमगाती है। इस अवस्था में महाव्रती का स्वप्न भी कठिन था। भाग्य में नेमिसागर महाराज सदृश आत्मबली साधुओं का दर्शन होता है। वर्तमान वातावरण में मकल-सयमी रूप धार्मिक सिद्धों का मद्भाव यथार्थ में अलौकिक और आश्चर्यप्रद बात है।

आज गृहस्थ लोग अपने समीप में निवास करनेवाले निर्ग्रन्थों के पास पहुँचने के योग्य समय नहीं निकाल पाते, ऐसे विचित्र भक्तों के होते हुए यदि मुनियों का निवास वन में हो, तो बड़ी विकट समस्या उत्पन्न होगी। विना गृहस्थों के सहयोग के साधुओं की गाड़ी नहीं खिचती। धर्म रूपा गाड़ी के गृहस्थ और मुनि रूप दो पहिए हैं। सम्पूर्ण परिस्थिति, लोक-श्रद्धा आदि को देखते हुए मुनियों का नगर में निर्वाह जब कठिन है, तब इस समय उनके तपोवन के निवास की कल्पना कैसी है, यह विचारक व्यक्ति सोच सकते हैं?

लोक की स्थिति में अन्तर

पहले की परिस्थिति में और आज की अवस्था में बड़ा अंतर है। आज निर्जन प्रदेशों में अचेतन जिनेन्द्र प्रतिमाओं के प्रति तो अन्य धर्मावलम्बी क्रूर व्यवहार कर उनको नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में सजीव साधुओं को एकान्त में पाकर मिथ्यात्वी जीव जो भी अनर्थ करे, वह थोड़ा है। जान बूझ कर आग में गिरना और सबलेश-प्रचुर-सकट को आमंत्रण देना अच्छा नहीं है इसलिए काल और परिस्थिति के रहस्य को समझने वाले सत्पुरुषों ने, वीतगग महर्षियों ने आज मुनियों को वनवासी बनने के बदले में शून्यागार, जिन मंदिर आदि में आश्रय लेने को उचित कहा है। विचारक व्यक्ति सोच सकता है कि उक्त पद्धति का अवलंबन लेना वर्तमान विषम परिस्थिति में एकमात्र मार्ग

है, क्योंकि पचम काल के अंत तक मुनि धर्म का सद्भाव आगम निरूपण करता है। जब वनवास विपत्ति प्रचुर है, तब वनवास को छोड़कर अन्यत्र निवास स्वीकार करना अपरिहार्य है। जो स्वयं अकर्मण्यो के आचार्य बने हुए प्रायः व्रताचरण-विहीन होते हैं वे व्यक्ति पवित्र आत्माओं पर भी दोष लगाने में नहीं चूकते। आगम के दर्पण में अपना मलिन मुख नहीं देखते।

चेतावनी

आचार्य नेमिसागर महाराज ने कहा कि - “धार्मिक समाज को ऐसे लोगों के फदे में नहीं आना चाहिए, जो भगवान को झूठा कहते हैं और उनकी वाणी को मिथ्या बतलाते हैं। वे समझते हैं कि भगवान से भी बढकर उनका ज्ञान है।”

उनके ये शब्द अत्यन्त मार्मिक और अनमोल हैं - “यदि भगवान के विरुद्ध मैं बोलता हूँ, तो मैं भी मिथ्यात्वी हूँ। पचमकाल के अंत में वीरागद नाम के मुनि होंगे, आगम की इस बात को मानने में क्या बाधा है? अष्टाद्वीस मूलगुणों के सद्भाव में क्या आपत्ति है?” महाराज ने मुनि विरोधियों को लक्ष्य में रखकर पूछा - “बताओ। आज के मुनिजीवन में क्या बाधा है? उनके २८ मूलगुण नहीं होते या वे हिंसा, झूठ, चोरी आदि का त्याग नहीं करते हैं?”

धर्म पालन हेतु उपदेश

“कोई-कोई आक्षेप करते हैं कि मुनि लोग शास्त्रों के उद्धार आदि की चर्चा क्यों करते हैं? मन्दिर-निर्माण की बात क्यों कहते हैं? यदि मुनि धर्मपालन का उपदेश न दें, तो किस बात का उपदेश दें? चोरी आदि पाप तो अपने आप आ जाते हैं, धर्म का ही उपदेश देना आवश्यक कार्य है?”

उद्धिष्ट दोष

मुनियों के आहार में उद्धिष्ट दोष आता है, ऐसी धारणा वालों का निराकरण करते हुए उन्होंने कहा - “लोग कहते हैं, आजकल मुनियों को उद्धिष्ट दोष लगता है। मुनि यदि कहें, हमें ऐसा आहार दो, यह आहार दो तो उद्धिष्ट दोष लगे। तुम अपना दोष महाराज के सिर पर क्यों रखते हो?” मुनि आहार के बारे में मन वचन काय, कृत, कारित अनुमोदना नहीं करते, अतः उनको दोषी मानना अनुचित है।

संघ निकालने में क्या दोष है?

मुनियों का संघ निकालने में दोष आता है, ऐसी विचारधारा वालों का प्रतिवाद

करते हुए उन्होंने कहा - “पहले कुन्दकुन्द स्वामी महान् सघ के साथ गिरनार की यात्रा को गए थे। इससे स्पष्ट होता है कि मुनियों के सघ की व्यवस्था धर्मात्मा श्रावक किया करते थे।” पारसपुराण से ज्ञात होता है कि पोदनपुर नरेश अरविद राजा मुनि होकर शिखरजी की वदना को सघ सहित गए थे। सपन्न, समर्थ, भक्त गृहस्थ सघ के योग्य सब व्यवस्था करते थे। सोचने की बात है, इसमें साधु को किस बात का दोष हो गया।

पुराण का कथन

महाराज ने बताया कि - “हरिवंश पुराण में कथन आया कि कृष्ण के जीवने सात भाइयों सहित दीक्षा ली थी और मंदिर जी में निवास किया था। एक मुनि का मस्तक जल गया था, तब जिनदत्त सेठ ने उनको अपने घर पर लाकर योग्य वैद्यावृत्य की थी।^१ उन्होंने कहा - “आप लोग धोबी मत बनो। अपना-अपना वस्त्र स्वच्छ करो। तुम सब की बातें सुनो, किंतु शास्त्र में तथा व्यवहार में जो विरुद्ध नहीं है, वह करो। दूसरों के फंदे में मत फँसो। तुम क्यों डूबते हो?”

अनमोल बात

लोग बहुजन समाज द्वारा प्रशंसा की लालच से कुमार्ग में लग जाते हैं। ऐसों को महाराज समझाते हैं कि - “एक भी सत्पुरुष ने तुम्हारे कार्य की प्रशंसा की तो वह बड़ी बात है।” संस्कृत की एक सूक्ति भी महाराज के कथन का समर्थन करती हुई कहती है कि जिस व्यक्ति की प्रशंसा सच्चरित्र व्यक्ति न करे तथा मूढमति, पापी, चोर, शराबी आदि प्रशंसा करते हैं, वह सच्ची कीर्ति नहीं है - “कीर्ति साऽकीर्तिरूपिणी” - वह कीर्ति यथार्थ में अकीर्ति स्वरूप है।

पाप विनाशक है

महाराज ने उपदेश के अंत में ये मार्मिक शब्द कहे थे - “जिसका पाप है, उसे

१ पुण्यास्रव कथाकोष में बताया है कि मणिमाली नाम के राजा ने मुनि दीक्षा ली। विहार करते हुए वे उज्जयिनी आए। वहाँ श्मशान में उन्होंने मृतकासन लगाकर ध्यान किया। वहाँ एक कापालिक आया। उसने दो मृतकों के कपालों को लाकर मुनि के मस्तक से लगाकर चूल्हा जलाया। उस समय आग की वेदना से मुनिराज का हाथ कपित होकर शिर पर आ गया। यह देख वह कापालिक वहाँ से भाग गया। प्रभात में किसी वनमाली ने मुनिराज को देखकर उनका हाल उस नगर के धर्मात्मा सेठ जिनदत्त को सुनाया। जिनदत्त सेठ श्मशान गए। उन्होंने मुनिराज को किसी वसतिका में लाकर लक्ष्मूल तेल लगाकर उनके जले शरीर की चिकित्सा की। इससे वे नीरोग हो गये। यह कथा श्रेणिक चरित्र में दी गई है।

ही वह खाता है। श्रावक धर्म पालन करो। त्याग बिना कल्याण नहीं। भावना करो कि कब ससार से हम छूटें?" यथार्थ में पाप जलता पहाड़ है। वह सबको भस्म कर देता है। पाप से बचना चाहिए।

यह कितनी अपूर्व बात है - "भावना करो कि हम ससार से कब छूटें?" हम ससार में फँसने का सदा उद्योग करते हैं। यथार्थ में शाश्वतिक शान्ति का बीजारोपण तब होता है, जब अतः करण में यह भावना उत्पन्न होती है कि अब हम ससार के जाल से निकल कर स्व-अधीन बनें। इस स्वतन्त्रता का मार्ग वीतराग शासन का शरण ग्रहण करना है। प्रभो! प्रत्येक आत्मा में ऐसी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाय कि वह दुःखमय ससार से छूटकर आनन्दधाम निर्वाण का अधिपति बन जाय।

नेमिसागर महाराज का त्यागमय, तपोमय, सौरभमय जीवन बना तथा वह प्रतिक्षण परिशुद्ध होता जा रहा है, इसके कारण आचार्य शातिसागर महाराज थे। उनके उज्ज्वल जीवन ने कितने भव्यों का उपकार नहीं किया है? शिष्य मडली के सुविकसित, समुन्नत तथा समुज्ज्वल जीवन में आचार्य महाराज का पवित्र प्रभाव सुस्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

देश का भविष्य अंधकारपूर्ण

सन् १९५८ के व्रतो में १०८ नेमिसागर महाराज के लगभग दस हजार उपवास पूर्ण हुए थे और चौदह सौ बावन गणधर सम्बन्धी उपवास करने की नवीन प्रतिज्ञा उन्होंने ली, उस समय मैंने उनसे लोकहित को लक्ष्यकर पूछा - "महाराज! लगभग दस हजार उपवास करने रूप अनुपम तथा लोकोत्तर तप साधना करने से आपके विशुद्ध हृदय में भारत देश का भविष्य कैसा नजर आता है? देश अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुष्काल, अन्नाभाव आदि के कष्टों का अनुभव कर रहा है। आपका हृदय इस विपत्ति-मालिका से मुक्ति पाने का क्या उपाय बताता है?"

महाराज नेमिसागर जी ने कहा - "जब भारत पराधीन था, उस समय की अपेक्षा स्वतन्त्र भारत में जीववध, मासाहार आदि तामसिक कार्य बड़े वेग से बढ़ रहे हैं। इनका ही दुष्परिणाम अनेक कष्टों का आविर्भाव तथा उनकी वृद्धि है।" आचार्य शातिसागर महाराज सदा कहा करते थे। - "मासाहार, जीव हिंसा, अतिलोभ, व्यभिचार वृद्धि, विलासिता के साधनों की प्रचुरता के द्वारा कभी भी आनन्द नहीं मिल सकता है। भारत शासन यदि प्रजा को सुखी देखना चाहता है, तो उसका पाप कार्यों से विमुख होना जरूरी

है। हरिण, बन्दर, मछली आदि जीवों की हत्या के कार्यों में गजसत्ता द्वारा उद्योग किया जाना सब सकटों का बीज है।

“व्यक्तिगत पापाचारों को पूर्णरूप में गेकना सहज नहीं है, किन्तु शासन-सत्ता सहज ही अपने पाप-व्यवसायों को रोककर अहिसामूलक प्रवृत्तियों को प्रश्रय प्रदान कर सकती है। यदि भारत के कर्णधारों ने अपना ढङ्ग-रङ्ग न बदला, तो देश उत्तरोत्तर अधिक सकटग्रस्त होगा।”

ये बहुमूल्य अनुभव उन मुनिराज ने हमें सुनाए थे। उनके कथन का औचित्य सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है। देश में जो सात्त्विक तत्त्व जीवित है, उसका सङ्गठित होकर तामसिक विषमयी प्रवृत्ति को दूर करने का उद्योग वाछनीय है। पुण्य प्रवृत्तियों के आधार पर ही आनन्द का भवन खड़ा किया जा सकता है।



आचार्य पायसागर महाराज

कोल्हापुर से हम १०८ आचार्य पायसागर महाराज के दर्शन करने स्तवनिधि गए। पायसागर महाराज से हमने आचार्य महाराज के विषय में कुछ विशेष बातें बताने की प्रार्थना की।

आचार्य महाराज की विशेषता

श्री पायसागर महाराज ने कहा - “आचार्य महाराज की मुझ पर अनंत कृपा रही। उनके आत्म-प्रेम ने हमारा उद्धार कर दिया। महाराज की विशेषता थी कि वे दूसरे ज्ञानी तथा तपस्वी के योग्य सम्मान का ध्यान रखते थे। एक बार मैं महाराज के दर्शनार्थ दहीगाँव के निकट पहुँचा? मैंने भक्ति तथा विनय पूर्वक उनको प्रणाम किया। महाराज ने प्रतिवदना की।” मैंने कहा - “महाराज! मैं प्रतिवदना के योग्य नहीं हूँ।”

महाराज बोले - “पायसागर चुप रहो। तुम्हें अयोग्य कौन कहता है? मैं तुम्हारे हृदय को जानता हूँ।” महाराज के अपार प्रेम के कारण मेरा हृदय शल्यरहित हो गया। मेरे गुरु का मुझ पर अपार विश्वास था।”

असली प्रायश्चित्त

“महाराज ने आज्ञा दी कि पायसागर भाषण करो। महाराज पहले भी मुझे भाषण देने का आदेश देते थे। मैंने कहा - “बहुत वर्षों से गुरुदेव का दर्शन नहीं मिला था। मैं उनके चरणों में आत्मशुद्धि के लिए आया हूँ। मैं अपने को दोषी मानता हूँ। मैं अज्ञानी हूँ। गुरुदेव से प्रायश्चित्त की प्रार्थना करता हूँ।”

महाराज ने कहा - “पायसागर! चुप रहो। हमें सब मालूम है। तुमको प्रायश्चित्त देने की जरूरत नहीं है। आज का समाज विपरीत है। तू अज्ञानी नहीं है। तुझे अयोग्य कौन कहता है। मैं तेरे को कोई प्रायश्चित्त नहीं देता हूँ। प्रायश्चित्त नहीं भूलना यही प्रायश्चित्त है।”

आचार्यश्री की चेतावनी

जब आचार्य महाराज से अंतिम विदाई होने लगी, तब महाराज ने कहा - “पायसागर! बहुत होशियारी से चलना। स्व-स्वरूप में जागृत रहना।”

उन्होंने यह भी कहा था - “दुनिया कुछ भी कहती रहे, तू तो योग-निद्रा में लीन रहना।”

मैने पायसागर महाराज को सोनागिरि मे, आचार्य महागज के म्मारक रूप मे समवसरण निर्माण का वहाँ की कमेटी का, निश्चय सुनाया, तो महाराज आनदित होकर बोले - “धर्म प्रभावना के कार्य मे थोडा भी विरोध मिथ्यात्व है। प्रभावना का जो भी कार्य हो उसे जातकर हर्ष होना चाहिए।”

सोनागिरि सस्मरण

मैने पूछा - “सोनागिरिजी मे आपने मुनि दीक्षा ली थी। उस समय आचार्य महाराज ने आपको कौनसी चिरस्मरणीय बात कही थी?” मेरे इस प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा - “आचार्य महाराज बोले, पायसागर! जब तुम गृहस्थ थे, तब भगवान की मूर्ति तक को नहीं मानते थे। अब हमारे साथ आते-आते तुम्हारे भावो मे उज्ज्वलता आई। तुम्हारे भाव दिगम्बर मुनि बनने के हो गए। इस सोनागिरि सिद्धक्षेत्र मे मुनि दीक्षा धारण करना, अशक्य बात थी, किन्तु तुम्हारा भाग्य है कि निर्वाण दीक्षा के लिए यह निर्वाणक्षेत्र प्राप्त हो गया। इससे तुम्हारा लघु मोक्षगामीपन (शीघ्र निर्वाण होना) प्रतीत होता है।”

सचमुच मे श्रेष्ठ नाटककार, गायक तथा ससार के प्रपच मे फँसे हुए व्यक्ति का मुनिपद धारण करना आश्चर्यजनक घटना है।

जीवन सुधार का अपूर्व उदाहरण

पायसागर जी के एक निकट-स्नेही सज्जन ने बताया कि पहले ये ही महाशय जिनधर्म की निन्दा किया करते थे। कहा करते थे - “मुनि पशुतुल्य नम्र विचरते हैं। पत्थर की मूर्ति पर दूध डालना महामूर्खता है। जैन लोग महाअज्ञानी हैं।” इनका भाव मिथ्या-तापसी बनने का था, किन्तु गोकाक मे आचार्य महाराज के दर्शनमात्र ने इस जीव के जीवन मे चामत्कारिक परिवर्तन करा दिया। जीवन के परिवर्तन का पायसागर महाराज सदृश उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

नाटकीय जीवन की विशेषता

पहले पायसागरजी के कानडी भाषा के रसपूर्ण गीतो का अर्थ न समझते हुए भी कोल्हापुर नरेश शाहू महाराज रात-रात भर जागकर इनके गायन की स्वर लहरी से मस्त हुआ करते थे। यथार्थ मे पायसागरजी उस समय मोह की महिमा का प्रसार कर रहे थे, अब वे जिनधर्म की महिमा के अपूर्व प्रचारक बन गए। अन्धकारमय जीवन आध्यात्मिक ज्योति से जगमगा उठा।

पायसागर जी को दिगम्बर मुनिरूप में देखकर पुरानी अवस्था से मिलान करें, तो सचमुच में मनुष्य आश्चर्य के सिन्धु में डूबे बिना न रहेगा। पहली अवस्था में यही व्यक्ति ओवर कोट-पेंट पहने, टोप, टाई अलकृत, सिगरेट मुँह में दबाए हुए, अग्रेजी प्रभावापन्न था। इतना अवश्य है कि पहले भी इनकी रुचि अध्यात्मशास्त्र की ओर थी।

पायसागर महाराज महान् कलाकार थे। वे मुनि बन गए थे, फिर भी उनमें पूर्व कला की अभिव्यक्ति मोक्षमार्ग के अभिनेता के रूप में दृष्टिगोचर होती थी। भाषण देते समय पायसागर महाराज अपनी वाणी, हस्त, मुखादि की चेष्टाओं द्वारा पदार्थ का निरूपण करते थे, उस समय श्रोतागण अत्यन्त शांतभाव पूर्वक उपदेशामृत को पीते जाते थे। वे मन्त्रमुग्ध सरीखे हो जाते थे। कहावत है - “मूल स्वभाव जाई ना - मूल स्वभाव नहीं जाता।” इस नियमानुसार पायसागर जी में कुछ विलक्षणता थी। अब उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ वीतराग रस को उद्दीपनता प्रदान करती थीं।

पायसागरजी संवन्धी संस्मरण

उनका एक मधुर संस्मरण पूज्य नेमिसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाया था - “वैठे-वैठे पायसागर जी ने मृत व्यक्ति का अपनी मुद्रा द्वारा ऐसा चित्रण किया कि ऐसा लगता था, मानों शरीर में प्राण नहीं है और वह शव ही हो। वे अपूर्व कलाकार थे। अन्त में उन्होंने आत्म-कला में अपूर्वता प्राप्त की।”

मुनि आदिमागर महाराज ने बताया था कि “पायसागर जी की गृहस्थावस्था अद्भुत थी। उनका अभिनय अपूर्व होता था। यदि कभी वे रङ्गमञ्च पर आकर इधर से उधर एक बार ही जाते थे, तो प्रेक्षकवर्ग हँसते-हँसते थक जाता था।”

पायसागर महाराज की वाणी में अद्भुत जादू था। हजारों अजैन उनके भाषण में सपरिवार पहुँचते थे। सब लोग उनको अपना साधु सदृश समझने लगते थे। वाणी बहुत सरस रहती थी। श्रेष्ठ वक्ता के गुण उनमें थे। उनका भाषण सुनते ही बनता है। आचार्य शातिसागर महाराज इनको ही विशिष्ट अवसरों पर उपदेश के लिए चुना करते थे।

महत्त्वपूर्ण पत्र

पायसागर महाराज के विचारों से अंकित पत्र भी महत्त्वपूर्ण हैं। एक पत्र में लिखा था - “अक्षर और अक विद्या नेत्र युगल सदृश हैं। सुविद्वानों की कलह में दुःख की वृद्धि है। कुविद्वानों के संगठन द्वारा पाप कलहादि की वृद्धि होकर राष्ट्र का अकल्याण

होगा। वर्षाकाल में पुष्पो पर विपुल जल डालने की अपेक्षा ग्रीष्मकाल में अल्पजल का सिंचन करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। आज के निकृष्ट काल में सद्धर्म का पालन करना बड़ी बात है। समृद्धि में दान देने का उतना महत्त्व नहीं है, जितना दारिद्र्य में थोड़ा भी दान देना गौरवपूर्ण है। आज भगवान् जिनेन्द्र के पवित्र धर्म को बड़ों-बड़ों ने छोड़ दिया है। हम दरिद्री बन गए हैं। जैन थोड़े हैं। सम्यक्त्वी और थोड़े हैं, इससे हम दरिद्री हो गए हैं। ऐसी अवस्था में धर्म के वृक्ष के लिए वात्सल्य पूर्वक एक लोटा जल डालने सदृश थोड़ी भी सहायता महत्त्वपूर्ण है।”

१०८ पूज्य पायसागर महाराज अशक्त हो गए। उन्होंने अपना आचार्य पद १०८ मुनि अनंतकीर्ति महाराज को प्रदान किया था।

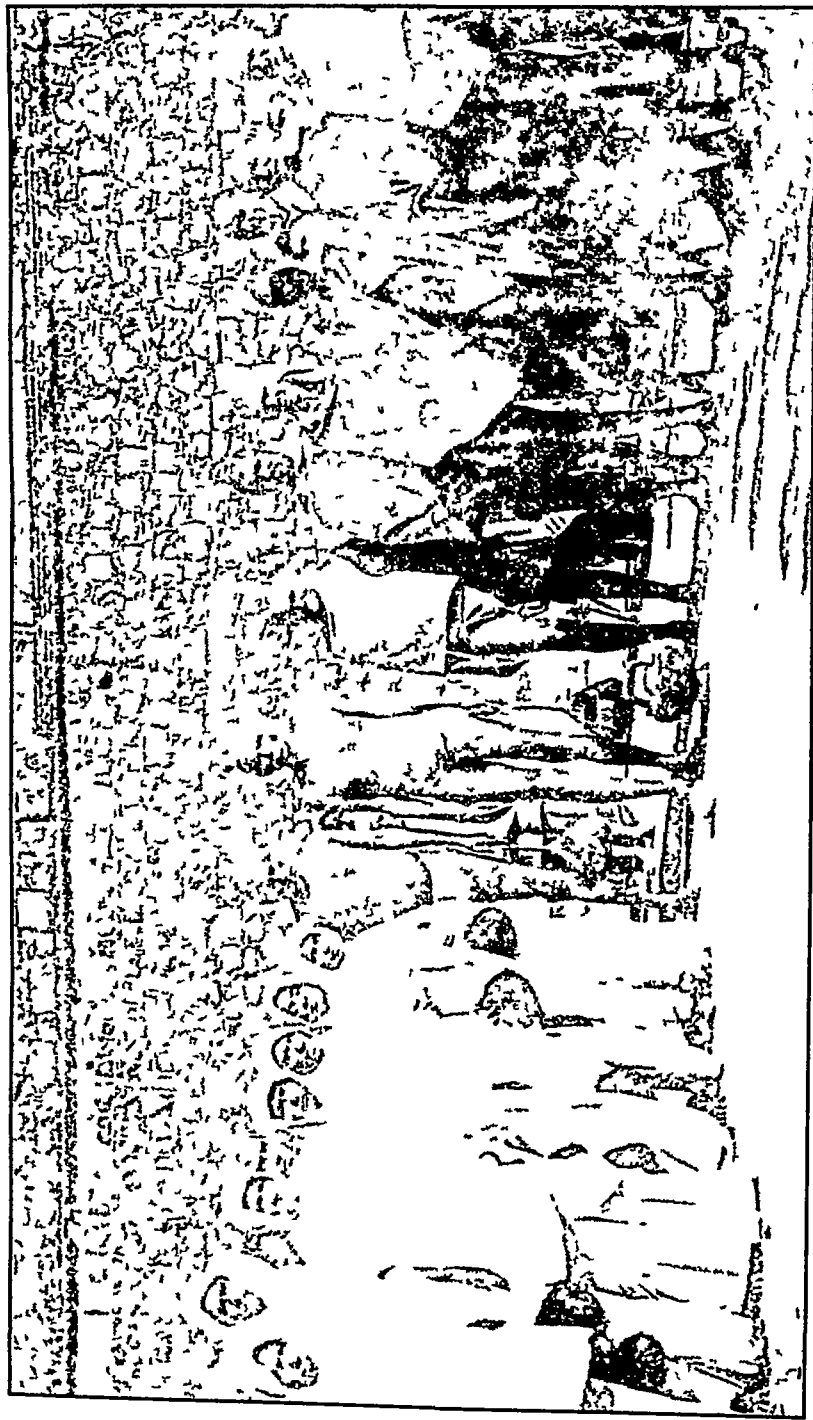
सर्वतोभद्र जीवन

आचार्य पायसागर जी का जीवन शातिसागर महाराज के सत्संग के प्रसाद से सर्वतोभद्र रूप में परिणत हो गया था। स्तवनिधि में दो वर्ष पूर्व उनके दर्शन का सौभाग्य मिला था। पश्चात् उसी स्तवनिधि में पहुँचे। उस कुटी में गए, वहाँ से वे एक वर्षपूर्व स्वर्ग यात्रा कर गए। धन्य है जिनेन्द्र भगवान् का धर्म और सयम की महिमा। अजन चोर पाप का त्यागकर निरजन परमात्मा बन गया। उसी वीतराग धर्म ने गोकाककर नाटकाचार्य को धर्माचार्य बनाया और उसके द्वारा उनका जीवन निष्कलक रूप बना। आत्मा में दोनों प्रकार की शक्ति है, वह राक्षस भी बन सकता है और देवराज भी हो सकता है।

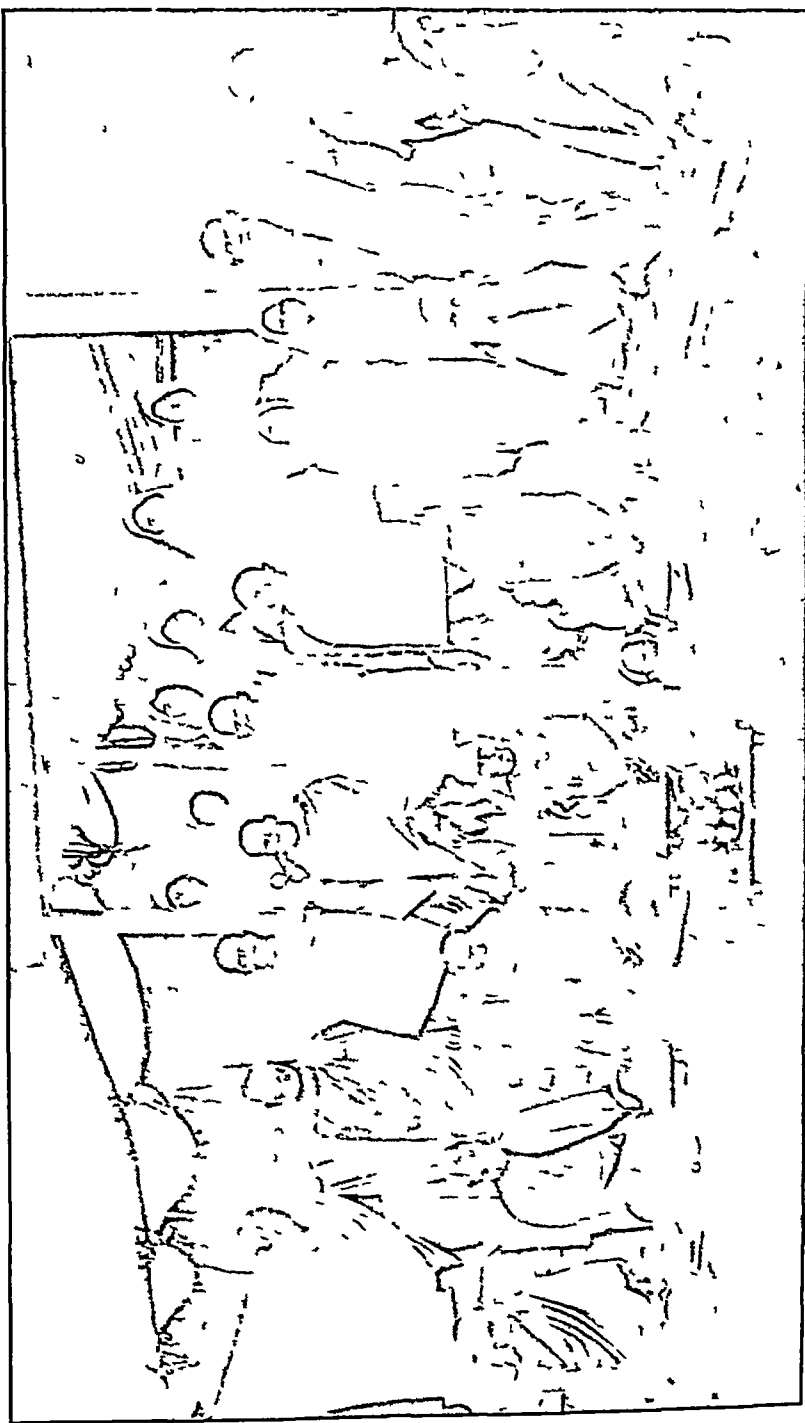
अध्यात्म रस

रोग से जर्जरित उनका शरीर था। पूर्व के असयमी और अधर्मी जीवन के कारण निसर्ग के नियमों का जो अतिक्रमण हुआ था, उससे प्रकृति ने शरीर को सजा देने में तनिक भी करुणा नहीं दिखाई।

तत्त्वज्ञाता पायसागर महाराज अपने भावों को बहुत स्थिर रखते थे। अध्यात्म विद्या का रस जीवन में समा गया था। वे सदा अपने को चैतन्यमयी आत्मा जानते थे, मानते थे, अनुभव करते थे। शरीर के प्रति कोई भी मोह, ममता, आसक्ति उनके पास नहीं थी। “आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है” यह तत्त्व उनकी दृष्टि में सुस्पष्ट रीति से जम चुका था। शरीर सारोग था, किन्तु आत्मा काफी नीरोग थी। इससे वे सदा प्रसन्न, शान्त तथा निराकुल रहते थे। उनका आत्मबल और स्वरूप में स्थिरता विलक्षण थी। अध्यात्म शास्त्र में शरीर की वेदना दूर करने की अपूर्व क्षमता है। उसका सच्चा अभ्यास, अध्ययन



पायसागर महाराज के सघ का एक मनोहर दर्शन



साधको, साधुओ एव साध्वियो सहित सन्तशिरोमणि

तथा मनन चाहिए। उसके रस-पान द्वारा देहासक्ति कम होती है, आत्मोन्मुखता वृद्धिगत होती है। जैसी जैसी आत्म-निमग्नता विकास को प्राप्त होती है, वैसी वैसी शरीरादि की आकुलता कम कष्ट देती है।

विज्ञान का कवच

वह जीव अपने को पुद्गल का स्वामी नहीं सोचता। मै चैतन्य ज्योतिर्मयी हूँ, यह विश्वास विपत्ति की बेला में आत्मा को कवच का कार्य करता है। इस विज्ञान कवच पर मोह के बाण कुछ भी असर नहीं करते। ऐसा विज्ञान का, सद्भिचार का तथा पवित्र श्रद्धा का कवच पायसागरजी ने पहिना था। इससे इन्होंने समाधि द्वारा अपने जीवन को कृतार्थ कर लिया। मनुष्य जन्म में प्राप्तव्य को पा लिया।

प्रभावशाली साधुराज

कोल्हापुर के स्नेही बन्धु श्री गजानन भाऊ मूग मिले। उनकी पायसागर महाराज के प्रति बहुत भक्ति थी। उन्होंने सारपूर्ण अल्प शब्दों में कहा -

“पायसागर महाराज महान् विद्वान् थे। वे मार्मिक वक्ता, समयज्ञ एवं प्रभावशाली साधुराज थे। अन्य धर्मावलम्बी लोग उनकी मधुर, ओजपूर्ण, सयुक्तिक तथा सरस वाणी से शीघ्र प्रभावित होकर भक्त बन जाते थे। जब महाराज सोलापुर गए थे तब दो, तीन उद्दड मुसलमान उनके पास आए। जिस समय उन लोगो ने महाराज की वाणी सुनी, उनका मार्मिक प्रतिपादन सुना, उसी समय वे प्रभावित होकर उनके भक्त हो गए थे।”

चमत्कारपूर्ण जीवन

भाऊसाहब लाटकर पायसागर महाराज के विश्वासपात्र रहे। वे उनके निकट सपर्क में रहे थे। भाऊ साहब ने कहा - “पायसागर महाराज का जीवन चमत्कारपूर्ण था। मैंने उनको नाटक कम्पनी के सचालक, सूत्रधार तथा महान् अभिनेता के रूप में देखा था। मैंने ससारवर्धक नाटक मण्डली के सर सचालक के रूप में नाटकी रामचन्द्र गोकाककर को देखा और मैंने उनको ही पायसागर महाराज के रूप में जीवन परिवर्तन के पश्चात् मोक्षमार्ग का प्रणयन करते हुए नाटक-समयसार का अभिनय करते हुए देखा। जिस प्रकार पहले वे हजारों दर्शकों के चित्त को मोहित करते थे, उससे भी अधिक जन समुदाय को वे अपनी ओर आकर्षित कर आत्म के मोह को दूरकर आध्यात्मिक प्रकाश प्रदान करते थे। उनका जीवन-चित्र अधिकार तथा प्रकाश पूर्ण स्थिति का द्योतक था।”

उन्होंने विषय-विष को अमृत मानकर अमर्यादित रूप में पान किया था, पञ्चातु, विरक्तिभाव जागने पर उन्होंने उसका त्याग भी लोकोत्तर रूप में किया था। उनकी विषयो के प्रति गहरी तथा आंतरिक विरक्ति थी। विषयो के अंतस्तत्त्व को देखने के कारण वे अपने उपदेशों में जिस सजीव वाणी द्वारा उनकी निस्सारता का चित्रण करते थे, उसका गजब का प्रभाव पड़ता था। शब्दों के वे जादूगर थे। वाणी में अपार माधुर्य, आकर्षण, विनोद आदि विविध रसों का समावेश होता था। उनके उपदेश में हजारों अजैन जैन ऐसे शान्त, ध्यान-युक्त, एक-चित्त होकर बैठते थे, मानों कोई महामांत्रिक या जादूगर अपनी उच्चतम कला का प्रदर्शन कर रहा है। अपरिमित जनसमुदाय को जब उनकी मंगलमयी धर्मदेशना का लाभ प्राप्त होता था, तब अखण्ड शान्ति उत्पन्न होती थी। पहले वे विभावभाव के उच्च नाटकी थे, अब वे अध्यात्मभाव तथा शांतरस को जगाने वाले नाटकाचार्य हो गए। जैसे वे नाटक में खेल करते थे, वैसे वे अनुभव के रस में खेल करते थे। इस खेल द्वारा वे कर्मबंधन रूप स्कन्धों को छिन्न-भिन्न करते रहते थे।

आनंदश्रुओं का प्रवाह

कई बार वे आत्मरस में मग्न हो भाषण देते जाते थे। नेत्रों से आनंद की अश्रुधारा बहती जाती थी। श्रोतालोग भी आनंदरस में डूब जाते थे। उनके भी नेत्रों से वह आनंदपूर्ण अश्रुधारा निकल पड़ती थी। ऐसे अलौकिक वक्ता का जीवन में कहीं भी दर्शन नहीं हुआ।

पापक्षय का उपाय

पूर्व में सेवन किए गए दुर्व्यसनो के फलस्वरूप उनका शरीर रोगों का केन्द्र बन गया था। उस सम्बन्ध में वे कहा करते थे - “मैंने जो कर्म किए हैं, उनका फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। उसकी कोई औषधि नहीं है। पापक्षय के उपाय हैं - आत्म स्वरूप का चितवन करना, ज्योतिर्मय जिनेन्द्र की भक्ति करना तथा अपने स्वरूप को ध्यान में रखना। सूर्योदय द्वारा जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है, इसी प्रकार जिनेन्द्र स्मरण तथा आत्मदेव के प्रकाश द्वारा मोह तथा विपत्ति का अंधकार नष्ट होता है। जागृत रहकर सदा आत्म कल्याणार्थ उद्योग करते रहना चाहिए।

महाप्रयाण

पायसागर महाराज कहते थे - “मेरा समय अब अति समीप है। मैं कब चला जाऊंगा, यह तुम लोगों को पता भी नहीं चलेगा।” हुआ भी ऐसा ही। प्रभातकाल में वे

अध्यात्मप्रेमी साधुराज ध्यान करने बैठे। ध्यान में वे निमग्न थे। करीब ७॥ बजे लोगो ने देखा, तो ज्ञात हुआ कि महान् ज्ञानी, आध्यात्मिक योगीश्वर पायसागर महाराज इस क्षेत्र से चले गए। पक्षी पिंजड़ा छोड़कर उड़ गया।

सर्वप्रिय गुरुदेव

उनके स्वर्गारोहण के समाचार को सुनकर जैन समाज के सिवाय अजैन लोग भी बहुत दुःखी हुए। पायसागर महाराज अद्भुत लोकप्रिय साधु थे। सैकड़ों ग्रामवासियों ने दुःखी होकर आहार छोड़ दिया था। वे पायसागर अर्थात् क्षीर के सागर थे। दूध बालक, वृद्ध, युवा सब को प्रिय लगता है। वह सब को पोषण प्रदान करता है। ऐसे ही पायसागर महाराज थे। वे सर्व प्रिय थे। सब जीवों की आत्माओं को अपनी अमृतवाणी के द्वारा पोषण प्रदान करते थे। उनका जीवन अद्भुत भोगी तथा श्रेष्ठ योगी की अवस्था का अपूर्व सगम था।

उन्होंने शातिसागर महाराज जैसी आत्मा का सुयोग प्राप्त कर अपना जन्म कृतार्थ कर लिया। वे इतने महान् हो गए कि उनका नाम भी हम लोगो को कृतार्थ करेगा। आचार्य पायसागर महाराज आप धन्य थे। आपकी विशुद्ध विरक्ति तथा आध्यात्मिक वृत्ति को शतशः प्रणाम है।

समाधि की तैयारी

कोल्हापुर में ब्र. माणिकवाई आदि से पायसागर महाराज के विषय में अनेक महत्त्व की बातें ज्ञात हुईं। वे उनकी समाधि वेला में स्तवनिधि में उपस्थित थीं। उनको उन साधुराज की शरण में बहुत समय व्यतीत करने का सौभाग्य भी मिला है।

माणिकवाई ने बताया - “पायसागर महाराज की उच्च समाधि हुई, क्योंकि आचार्य शातिसागर महाराज के स्वर्गवास होने के अनन्तर ही उनका ध्यान समाधि की तैयारी की ओर विशेष आकर्षित हो गया था। वे मृत्यु से युद्ध करने को तैयार बैठे थे। उस समय से उनकी विरक्ति के भाव बहुत ही वर्धमान हो रहे थे।”

आचार्यश्री के विषय में उद्गार

आचार्य महाराज में उनकी अपार भक्ति थी। वे कहते थे - “मेरे गुरु चले गए। मेरे प्रकाशदाता चले गए। मेरी आत्मा की सुध लेने वाले गए। मेरे दोषों का शोधन करके उपगृहणपूर्वक विशुद्ध बनानेवाली वदनीय विभूति चली गई। मेरे धर्मपिता गए। मुझे भी

उनके मार्ग पर जाना है।” उनकी समाधि की स्मृति में उन्होंने गेहूँ का त्याग उसी दिन से कर दिया था। उसके पश्चात् उन्होंने जङ्गल में ही निवास प्रारम्भ कर दिया था। वे नगर में पाँच दिन से अधिक नहीं रहते थे। उनकी दृष्टि में बहुत विशुद्धता उत्पन्न हो गई थी।

आत्म प्रभावना

वे कहते थे - “अब तक मेरी बाहरी प्रभावना खूब हो चुकी। मैं इसे देख चुका। इसमें कोई आनन्द नहीं है। मुझे अपनी आत्मा की सच्ची प्रभावना करनी है। आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय की ज्योति के द्वारा होती है। इस कारण मैं इस पहाड़ी पर आया हूँ। मैं अब एकान्त चाहता हूँ। अपने आत्म-परिवार के साथ मैं अब एकान्त में रहना चाहता हूँ। शील, सयम, दया, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्यादि मेरी आत्मा के परिवार की विभूतियाँ हैं। मैं उनके साथ खेल खेलना चाहता हूँ। इससे मैं असली आनन्द का अमृतपान करूँगा। मैं कर्मों का बन्धन नहीं करना चाहता। मैं आत्मगुणों की दीवाली मनाना चाहता हूँ तथा कर्मों की होली करना चाहता हूँ। कर्मों के ध्वंस करने का मेरा अटल और अचल निश्चय है।”

आलद में इनका चातुर्मास नगर के भीतर न होकर बाहर हुआ था। पहले उनके आहार के उपरान्त भक्त श्रावक गण बाजे-गाजे आदि के द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए प्रभावना करते थे। अब पायसागर महाराज ने ये सब बातें बन्द करवा दीं। आचार्य महाराज की समाधि के पश्चात् उनकी जीवनदृष्टि में विलक्षण परिवर्तन हो गया। ऐसा दिखता था कि अब पायसागर महाराज आत्मशुद्धि के पथ पर वेग से बढ़ते जा रहे हैं। उनका मन वीतरागता के रस में निरन्तर निमग्न रहता था।

समाधि की तैयारी

समाधि की तैयारी की दृष्टि से उन्होंने ज्वारी की अविल लेना शुरू कर दी थी। दूध, दही, शक्कर, नमक आदि सभी रसों का परित्याग कर दिया था। शरीर के रोगी रहने से मात्र घी नहीं छोड़ा था। यह क्रम पन्द्रह माह पर्यन्त चलता रहा। वे कहते थे - “अब मुझे अपने जीवन के एक-एक क्षण का उपयोग समाधि के लिए उपयोगी सामग्री के संचय में लगाना है।”

मार्मिक प्रश्न

उनसे तत्त्वचर्चा में बहुत आनन्द मिलता था। सदा जैनधर्म के अनुपम रहस्यों की चर्चा चला करती थी। एक दिन किसी ने पूछा - “महाराज! कोई व्यक्ति निर्ग्रन्थ मुद्रा

को धारण करके उसके गौरव को भूलकर यदि अकार्य करता है, तो उसको आहार देना चाहिए या नहीं?”

समाधान

उन्होंने कहा - आगम का वाक्य है - “भुक्तिमात्र-प्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनाम्” - अरे! दो ग्रास भोजन देते समय साधु की क्या परीक्षा करना? उसको आहार देना चाहिए। बेचारा कर्मोदयवश प्रमत्त बनकर विपरीत प्रवृत्ति कर रहा है। उसका न तिरस्कार और न पुरस्कार ही करे। भक्तिपूर्वक ऐसे व्यक्ति की सेवा नहीं करना चाहिए।”

लोकहित

उनका उपदेश बड़ा सजीव होता था और सुनते ही बनता था। उसे सुनकर मन में पवित्र भाव, त्याग तथा वैराग्य के परिणाम उत्पन्न होते थे। आत्मा के वैभव की तरफ दृष्टि जाती थी। उन्होंने हजारों क्या लाखों लोगों को मास, मदिरा आदि का त्याग कराकर सदाचार का प्रचार किया था। अपने विहार द्वारा अनेक जीवों का उपकार करते हुए वे चातुर्मास के लिए स्तवनिधि अतिशय क्षेत्र में आए। वे कहते थे - “यह स्थान मेरी समाधि के योग्य है।”

वे आत्म-रस में डूबकर आनदविभोर होकर कभी कन्नड़ी भाषा में, कभी मराठी भाषा में तत्काल काव्य-रचना करते हुए बड़ा सुखद तथा मर्मस्पर्शी विवेचन करते थे। उनकी प्रतिभा बड़ी अलौकिक थी। बड़े-बड़े राज्याधिकारी तथा अन्य संप्रदाय के प्रमुख व्यक्ति तथा आम जनता और व्यक्ति उनके उपदेश से आत्मप्रकाश तथा अपूर्व प्रेरणा प्राप्त करते थे।

सत्य वाणी

अपनी समाधि के बारे में वे बहुधा कहते थे - “मेरी परलोक यात्रा इस प्रकार की समाधि पूर्वक होगी कि किसी को भी पता नहीं चल पायेगा। मैं अपने विषय में पूर्ण सावधान हूँ।” उनकी वाणी अक्षरशः सत्य हुई। आश्विन वदी अमावस्या सन् १९५८ में वे स्वर्गवासी हो गए।

वे आत्मजागरण तथा उपयोग शुद्धि के लिए आत्मा को प्रबोध प्रदान करने वाले मंत्रों तथा आगम के वाक्यों का सदा उच्चारण किया करते थे। अपनी अखण्ड शांति तथा आनंद की धारा को आघात न पहुँचे, इसलिए वे समीपवर्ती शिष्य मंडली को भी अपने पास आने का निषेध करते थे।

आत्मयोगी की अपूर्व चर्या

उनकी आत्म-निमग्नता, आत्म-विचार तथा तत्त्व-चिन्तन आदि अद्भुत थे। चलते-चलते वे एकदम रुक जाते थे। पैर नहीं बढ़ते थे। वे ध्यान में खड़े रहते थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि वे शौच के लिए खाना हुए, किन्तु मार्ग में रुककर खड़े हो जाते। लोग देखते थे कि महाराज तो आत्मध्यान में निमग्न हैं। किसी निर्धन को यदि चितामणि रत्न मिल जाय, तो वह उस रत्न को बड़े प्रेम, आदर तथा ममता से बार-बार देखकर हर्ष प्राप्त करता है, इसी प्रकार आत्मयोगी पायसागर महाराज विश्व में अनुपम आत्मनिधि को प्राप्त कर जहाँ चाहे वहाँ, जब चाहे तब, उसका दर्शन करते थे, आनन्द प्राप्त करते थे। समाधि द्वारा ब्रह्मदर्शन करने वाले योगियों के समान पायसागर महाराज की अवस्था हो रही थी। विषयो की निस्सारता का उन्होंने स्वयं आवश्यकता से अधिक अनुभव कर लिया था, इससे उनका हृदय विषय सुखो से पूर्ण विरक्त हो चुका था। वह उस ओर न जाकर सदा अपनी ओर ही उन्मुख रहता था।

उनकी अवस्था देखकर रत्नाकर कवि रचित भरतेश वैभव में वर्णित चक्रवर्ती भरत महाराज का चित्रण सहज ही नेत्रों के समक्ष आ जाता था। भोगी के समक्ष सदा विषयो का नृत्य होता रहता है। आत्मयोगी की अवस्था निराली होती है। वह सदा आत्मनिधि के सौन्दर्य को देखकर हर्ष प्राप्त करता है।

निरन्तर आत्मचिन्तन

आत्मध्यान में वे इतने निमग्न रहते थे, कि उनको समय का भान नहीं रहता था। कभी-कभी चर्या का समय हो जाने पर भी वे ध्यान में मस्त बैठे रहते थे। उस समय कुटी की खिड़की से कहना पड़ता था कि आपकी चर्या का समय हो गया। इस अवस्थावाले पायसागर महाराज के चित्र से क्या पूर्व के व्यसनी नाटकी रामचन्द्र गोकाककर के जीवन की तुलना हो सकती है? जिस प्रकार राहु और चन्द्र में तुलना असम्भव है, इसी प्रकार उनके पूर्व-जीवन तथा वर्तमान में रज्जुमात्र भी साम्य नहीं था। तप, स्वाध्याय तथा ध्यान के द्वारा उनका जीवन सुवर्ण के समान मोहक बन गया था।

उनकी विलक्षण अवस्था का वर्णन सुनकर लोगो की समझ में नहीं आया, किन्तु हमने तो प्रत्यक्ष देखा है कि आहार करते-करते कभी-कभी वे चुप खड़े रह जाते थे। वे भूल जाते थे कि उनको आहार करना है। उस अवस्था में कहना पड़ता था - “महाराज! आपको आहार लेना है”, तब उनका ध्यान बदलता था।

अद्भुत योगी

वे विलक्षण योगी थे। उनका मन आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं जाता था। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है कि आत्मदर्शी योगी चलते हुए भी नहीं चलता सरीखा है, भोजन करते हुए भोजन नहीं करता है, बोलते हुए भी नहीं बोलता सदृश है। यह दशा प्राप्त करने का अलौकिक सौभाग्य पायसागर महाराज को प्राप्त हुआ था।

आहार के समय कभी-कभी कुछ हल्ला हो जाता था, तो आहार के उपरान्त कहते थे - “तुम मेरे आत्मविचार में क्यों विघ्न डालते हो? थोड़ा-सा भोजन देकर मेरी आत्म-निमग्नता को क्यों बाधा देते हो? यदि तुमने शांति नहीं रखी, तो मुझे तुम्हारी रोटी की परवाह नहीं है। मुझे अपनी आत्मा का कल्याण करना है। याद रखो, मैं शरीर का दास नहीं हूँ। शरीर मेरा नहीं है। मैं क्यों उसकी दासता करता फिरूँ?”

आदहिदं

उन्होंने अपना आचार्यपद अनन्तकीर्ति मुनि महाराज को दे दिया था, अतः अब तो वे साधु परमेष्ठी हो गए थे। इससे उन्होंने अपने शिष्यों को कह दिया था कि - “तुम्हें स्वयं अपना कल्याण करना है। अब मैं तुम्हारे लिए अपना समय नहीं दे सकता। मैं अपनी आत्म-साधना के कार्य को नहीं छोड़ सकता।” “परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव” - “परोपकार की स्थिति को छोड़कर अपनी आत्मा का हित साधन कर, ऐसी आगम की आज्ञा की ओर उनका ध्यान था।”

वे कहते थे - “इतने दिन तो परोपकार किया। उपदेश दिया। धर्म प्रभावना के कार्य किए। अब मुझे दूसरी जगह जाना है। अब अपनी तैयारी करना है। अब तुम्हारी फिकर करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। मैं तुम्हें समझाऊँ भी क्या? तुम भी स्वयं समर्थ हो। तुमको भी अपनी आत्मा से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए। बाहरी प्रकाश की जरूरत नहीं है। कमसे कम मुझे तो बाहरी वस्तु की जरूरत नहीं है। मेरे पास तो मेरी निधि है, मेरा भंडार है। मेरा जीवनसर्वस्व है। मेरा भगवान है।” अब वे सोचते थे, “आदहिदं सुद्ध कादव्व” - आत्महित अच्छा है। मुझे वही करना चाहिए।

क्रांतिमयी जीवनी

जिन व्यक्तियों ने पायसागर महाराज की आत्मविकासयुक्त अवस्था को नहीं देखा है, उनके जीवन में कितनी बड़ी क्रान्ति हुई है, इसका परिचय नहीं प्राप्त किया है

और जिनके चित्त में उनका पूर्व जीवन ही टकोत्कीर्णरूपता धारण किए हुए हो, पायसागर जी की महत्ता और गहराई की कल्पना भी नहीं कर सकते।

निर्विकल्प समाधि

मैंने सन् १९५७ में आश्विन मास में पायसागर महाराज के पास स्तवर्नि जाकर पूछा था - “महाराज! निर्विकल्प समाधि कैसी होती है?”

उस समय वाणी द्वारा कुछ उत्तर न देकर वे ध्यान में डूब गए थे। उस समय ऐसे लगता था कि पायसागर महाराज यहाँ नहीं हैं। आत्मा के सागर में वे निमग्न हो गए हैं मेरे प्रश्न का उत्तर हो चुका कि विकल्प को त्यागकर अपनी आत्मा में निमग्न हो जाना निर्विकल्प समाधि है।

आक्षेप का निराकरण

एक समय एक व्यक्ति ने अपवित्र भावना से प्रेरित हो उनके पूर्व के व्यसनी और विलासी जीवन को लक्ष्य करके पूछा - “महाराज! आगम में ऐसा वर्णन आया है कि मुनि दीक्षा लेने वाले अनेक मुनि नरक जावेगे?”

महाराज ने शकाकार के अभिप्राय को पूर्ण रीति से समझ लिया और कहा - “भाई! मैं तो आगम को प्राण मानता हूँ। आगम के प्रकाश में चर्चा करता हूँ। इससे मैं विषय में संकेत करने का क्या अभिप्राय है? यदि मैंने पूर्वसंचित पापों के सशोधनार्थ परमपूज्य शातिसागर महाराज जैसी विवेकी आत्मा से दीक्षा नहीं ली होती, तो निश्चय से मैं नरक गति का पात्र होता। उन परम कल्याणकारी गुरुदेव ने पतन से मेरी रक्षा करके मेरा महान उपकार किया है। उसका वर्णन करने की मेरी ताकत नहीं है।”

“एक बात और है, कि अब अध्यात्म के अभ्यास से मुझे नरकगति, देवगति, तिर्यचगति तथा मनुष्यगति में कोई भेद नहीं दिखता। मैं परमज्योति, परमात्मा रूप चैतन्य ब्रह्म का दर्शन करता हूँ। नर-नारकादि तो विभाव पर्याय हैं। मैं चैतन्य ज्योति का स्वामी हूँ। स्वामी क्या, स्वयं चैतन्य ज्योति हूँ।”

आत्मदेव की आराधना

वे आत्मदेव को लक्ष्य करके बड़े सुन्दर मंत्रों की रचना करते हुए मंत्र पाठ करते थे। कभी वे यह पाठ पढ़ते थे - “ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं मम ज्ञानगुणाय, दर्शनगुणाय, चारित्रगुणाय नमोनम, सुखगुणाय, वीर्यगुणाय, चैतन्यगुणाय, नमोनम । स्वात्म-

समाधिरस्तु । ॐ नमोऽर्हते भगवते मम स्वरूपाचरणसिद्धिरस्तु । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं
मम वीतराग भाव देवाय नमोनम शान्तिगुणसिद्धिरस्तु, स्वात्मधर्म-भावना-पुष्टिरस्तु ।
योगसागरोह, ज्ञानसागरोहं, गुणसागरोह वीतराग, निरजन, सिद्ध सर्वकल्याणमस्तु
स्वाहा ।”

भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था । एकसाल में निरन्तर ढलकर निकलने
वाले सिको में जैसी चमक रहती है, ऐसी ही मधुरता, आकर्षकता उनके मुख से ढलकर
निकलने वाले शब्दों में रहती थी । पहले वे नवरसमयी शृंगार-वीर-रौद्र आदि रसपूर्ण
उपदेश देते थे । सकल सयमी की स्थिति में भी उन्होंने नवरसमयी कथन जारी रखा था ।
पहले नव रसमय कथन था, अब नवरस अर्थात् नवीन रस शान्त रस को उद्दीप्त करती
वाणी निकलती थी । विशेष विचारों में निमग्न होने पर जो वाग्धारा कर्णगोचर होती थी,
वह अभूतपूर्व लगती थी । आत्मदेव की उन्मुखता द्वारा रसपान करने के पश्चात् वे कहने
लगे - “मैं मोक्षलक्ष्मी अर्थात् निर्वाण रूपी सपत्ति को प्राप्त करना चाहता हूँ, दूसरों की
चिन्ता करते-करते चिन्ता में नहीं जाना चाहता हूँ । अब मुझे अपनी आत्मा की सम्हाल
करना है । अब मुझे अवकाश नहीं है ।”

जिन-संपर्क-संलग्न

उनकी वीतराग भावना बलवती हो रही थी । वैराग्य परिणति बड़े वेग से बढ़
रही थी । उन्होंने समीपवर्ती लोगों को कह दिया - “मे अब पत्रों द्वारा किसी को कोई
समाचार या सदेश नहीं भिजवाऊंगा, न किसी के पत्र ही पढ़ूंगा । इस पत्र व्यवहार की
प्रक्रिया द्वारा जन-संपर्क बढ़ता है, मेरे जिन-संपर्क में (आत्मदेव के संपर्क में) विघ्न
आता है । चित्त में चंचलता उत्पन्न करने की सामग्री आती है ।” पूज्यपाद स्वामी ने
लिखा है - “योगी जनसंपर्क त्यजेत्-योगी लोक संपर्क का परित्याग करे ।”

वे कहते थे - “अब मैं अपने को धोखे में नहीं डालना चाहता हूँ । मैं आत्म-
शोधन के कार्य में व्यस्त हूँ । मुझे क्षणमात्र भी अवकाश नहीं है कि मैं बाहरी जगत् की,
लोगों की चिन्ता करता फिरोँ ।”

स्वास्थ्य वार्ता

कभी लोग पूछते थे - “महाराज! आपका शरीर-स्वास्थ्य कैसा है?”

वे कहते थे - “इस चिररोगी शरीर की कथा क्या पूछते हो? मेरी आत्मा के
स्वास्थ्य की, कुशलता की, प्रसन्नता की बात ही नहीं करते हो । मैं स्वस्थ हूँ, मैं नीरोग

हूँ, मैं आनंद मग्न हूँ। शरीर मरोग है या नीरोग है, मैं चैतन्यमयी आत्मा इस बात की क्यों चिन्ता करता फिरू। शरीर शरीर है, पुद्गल है। वह अपने गुण धर्म के अनुसार परिवर्तन का खेल दिखाता है। मैं शरीर नहीं हूँ तथा शरीर का सेवक नहीं हूँ। मैं अपने स्वरूप का स्वामी हूँ। इस सड़े शरीर की क्यों गुलामी करूँ?”

उनकी आत्म-दृष्टि बहुत उज्ज्वल होती जा रही थी। उस स्वरस में निमग्न होकर उन्होंने कहा - “मैंने औषधि मात्र का त्याग कर दिया है। अब मेरे अंत बाह्य सभी रोगों की दवा आत्मा का ध्यान है। इस दवा से आत्मा पुष्ट होती है और अनादिवद्ध पुण्य-पाप सभी प्रकार के विकारों का क्षय होकर आत्मा चिरतन स्वास्थ्य को प्राप्त करती हुई अविनाशी नीरोगता को प्राप्त करती है।”

उनकी स्वर्ग यात्रा के एक दिन पूर्व उनके शरीर की बड़ी विचित्र अवस्था थी। उसमें अपार वेदना थी। डॉक्टर देखकर दंग हो गया कि ऐसी भयंकर देह स्थिति में इतनी स्थिरता, इतनी जाति है। पायसागर महाराज! आप धन्य हो। आप सच्चे योगी हो। योगियों के हृदयेश्वर हो। इस कलिकाल में ऐसे योगी कहाँ मिलते हैं?

आत्म-सौंदर्य दर्शन

उस अवस्था में वे आत्मा का सौन्दर्य निरूपण कर रहे थे। भाग्यवान् श्रोतागण समझ रहे थे, ऐसा निस्पृह, ऐसा वीतराग योगी होता है। सच्चे ज्ञान-वैराग्य-सपन्न योगी की ऐसी अनुभूति होती है। इस प्रकार योगी शरीर को भूलकर आत्मरस का पान करता है।

भाई का सुझाव

उनके भाई चदप्पा जिनप्पा डोंगरे उनके पास आकर कहने लगे -

“अब आपका शरीर सभाषण के योग्य नहीं है। शरीर का ख्याल का मौन लेना ठीक होगा। अब दूसरों को उपदेश देने की शक्ति आपके शरीर में शेष नहीं है।”

मार्मिक उत्तर

पायसागर महाराज ने कहा - “तुम्हारी बात बड़ी विचित्र है। तुम सब काम को छोड़कर धन संपादन के हेतु कष्ट उठाते हो। ग्राहकी चलने पर तुम अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं करते हो। मेरा भी व्यापार है। भव्य जीवों का कल्याण मेरी ग्राहकी है। उनको मोक्षमार्ग में लगाना मेरी कमाई है, मेरी संपत्ति है, मेरी विभूति है। मेरी दुकान के विषय में

मुझे विपरीत उपदेश क्यों देते हो? मैं अपनी मोक्षमार्ग की देशना को बद नहीं कर सकता।
आँखें बंद होते-होते भी मैं सर्वज्ञ-वीतराग जिनेन्द्र के शासन की चर्चा नहीं छोड़ूँगा।

“यह जिनेन्द्र की वाणी का मगलमय रस समस्त सकटों और व्याधियों का विनाश करता है। मगलोत्तम शरणभूत जिनेन्द्र की चर्चा इस जीवन के सिवाय मेरे आगामी जीवन के लिए रसायन रूप है। इससे मेरी आत्मा को पोषण प्राप्त होता है। मैं तुम्हारे व्यापार में बाधा नहीं डालता, तुम मेरे व्यापार में क्यों विघ्न करते हो? तुमको मेरे बीच में नहीं पड़ना चाहिए। मुझे अपना कर्तव्य स्वयं साफ-साफ नजर आता है। तुम ससार का व्यापार नहीं छोड़ते, तो हम अपनी मोक्ष की दुकान का काम कैसे बन्द कर देंगे?”

महाराज ने पंद्रह दिन पूर्व से अपने शरीर की वैयावृत्य बन्द करा दी थी। वे सचमुच में आत्म-सामर्थ्य पर असाधारण विश्वास रखते थे। उनकी आत्म-शक्ति अपूर्व थी।

स्वसंघ में निवास

वे कहते थे - “राग भाव न्यून करने के हेतु क्षपक को दूसरे साधु सघ में जाना चाहिए। मैं भी परसघ में जाना चाहता हूँ, किन्तु आज समीप में ऐसा सघ नहीं है। काल निकृष्ट है। क्या करूँ? कोई चिंता की बात नहीं है। रच मात्र भी फिकर की बात नहीं है। अब मैं स्व-सघ पर-सघ की चिन्ता में क्यों पड़ूँ? मेरी आत्मा और मेरे आत्मगुण ये ही मेरे सघ रूप हैं। अब मैं उस आत्म सघ में निवास करूँगा। उस सघ का शरण स्वीकार करूँगा।”

शिष्यों को उपदेश

शिष्य समुदाय को संबोधित करते हुए वे योगीन्द्र-चूडामणि कहने लगे - “देखो, भूलना मत, मैं अब अपनी सम्हाल में लग गया हूँ। मेरा तुम्हारा गुरु-शिष्य सबंध भी समाप्त सरीखा समझो। समाधि लेने वाला क्षपक अंत में आचार्य पद का भी त्याग करता है। इसी से मैंने आचार्य पद का त्याग कर दिया है। अब तक जो उपदेश दिया है, आदेश दिया है, उसको स्मरण करना, यही हमारा कहना है।”

दो वर्ष पूर्व मैंने जिस स्थान पर उन योगिराज से निर्विकल्प समाधि का स्वरूप पूछा था तथा जहाँ आनंद निमग्न हो वाणी के बिना ‘वपुषा’-शरीर के द्वारा उस समाधि की स्थिति समझाई थी, उसी जगह विराजमान होकर पायमागर महाराज ने अगहन वही अमावस्या को सन् १९५७ में पार्थिव शरीर का परित्याग किया। उन्होंने अपने गुरुदेव

आचार्य शातिसागर महाराज के चरणों का अनुसरण कर ज्ञान्त पाणिनाम महित मुन्दर सल्लेखना की ।

आत्मालोचन

आचार्य महाराज के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी । उनका उपकार वे मदा म्मण करते थे । प्रायः उनके मुख से ये शब्द निकलते थे - “मैंने कितने पाप नहीं किए? कौनसा व्यसन सेवन नहीं किया? मैं महापापी न जाने कहाँ जाता? मैं तो पापसागर था । रसातल में ही मेरे लिए स्थान था । मैं वहाँ ही समा जाता । मेरे गुरुदेव ने पापसागर बनाकर मेरा उद्धार कर दिया ।” ऐसे कहते-कहते उनके नेत्रों में अश्रु आ जाते थे ।

सच्चे गुरु की भक्ति

उनके हृदय में गुरु की सच्ची भक्ति थी, सच्चे गुरु की भक्ति थी, सच्चे गुरु की सच्ची भक्ति थी । इससे जैसे गुरुदेव ‘ॐ सिद्धाय नमः’ शब्द कहते-कहते परलोक गए, इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में पुण्य वातावरण में आत्मचित्तन करने हुए ये मनस्वी साधु भी स्वर्गवासी हुए । इस प्रकार शातिसागर महाराज ने अनेक जीवों का उद्धार किया । गुरु-शिष्यों के चरण-कमलों को प्रणाम है । उनके चरणप्रसाद से ऐसी समाधि का सौभाग्य प्राप्त हो, ऐसी वीतराग भगवान से प्रार्थना है । यही कामना है । सब को यही कामना करनी भी चाहिए ।



मुनि धर्मसागरजी (दक्षिण)

जब आचार्य महाराज का स्वर्गवास हुआ, तब उनके समीप बहुत समय व्यतीत करने वाले मुनिराज १०८ धर्मसागर महाराज का चातुर्मास जबलपुर के निकट बरगी ग्राम में हो रहा था। २४ नवम्बर सन् १९५५ को मैं उनके पास पहुँचा। वे सामायिक में निमग्न थे। उनकी भव्य, शांत तथा तेजोमय ध्यानमुद्रा मन को अतिमधुर तथा आकर्षक लगी। सच्ची सामायिक तो सम्पूर्ण परिग्रह रहित दिगम्बर गुरु के होती है। गृहस्थ के पास साधु की निराकुलता और विशुद्धता स्वप्न में भी असम्भव है।

सामायिक पूर्ण होने के उपरान्त मैंने महाराज को नमोस्तु कहा। उनका पवित्र आशीर्वाद मिला।

सामायिक का रहस्य : समता भाव

मैंने पूछा - “महाराज! आप सामायिक के समय क्या चिंतन कर रहे थे?”

उन्होंने कहा - “हम कुछ नहीं करते थे। राग और द्वेष छोड़कर चुपचाप शान्त बैठे थे। इसके सिवाय सामायिक और है क्या? वास्तव में राग-द्वेष-मूलक आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान के परित्याग को परमागम में सामायिक कहा गया है। स्व आचार्य महाराज भी आत्मचिन्तन के लिए वचनालाप छोड़कर शांतचित्त हो चुप बैठने के लिए कहते थे।”

स्वर्गवास सूचक स्वप्न

मैंने कुथलगिरि की सल्लेखना का सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया। उन्होंने कहा - “आचार्य महाराज का १८ सितम्बर सन् १९५५ के प्रभात में स्वर्गवास हुआ था। उसी दिन प्रभात में हमें भी एक स्वप्न आया था। उससे हमने सोचा था कि महाराज अब सम्भवतः स्वर्गवासी हो गए होंगे।

मैंने आग्रहपूर्वक स्वप्न का हाल पूछा। तब उन्होंने इस प्रकार कहा - “आचार्य महाराज के स्वर्गारोहण की रात्रि के अन्तिम प्रहर में हमें एक अरथी (शव) दिखाई दी। वह आकाश से हमारे पास आ रही थी। उसके समीप आने पर हमने कहा ‘णमो अरिहताण’ पढ़ो। उत्तर में हमें भी ‘णमो अरिहताण’ की ध्वनि सुनाई पड़ी। कुछ काल के पश्चात् वह अरथी अदृश्य हो गई।”

धर्मसागर महाराज ने यह भी बताया था - “स्वर्गवास के आठ दिन पूर्व स्वप्न मे आचार्य महाराज दिखे थे। उनके साथ मे वर्धमानसागर जी तथा पायसागरजी भी थे।”

भट्टारक जिनसेन जी के सत्य स्वप्न

मैने कहा - “भट्टारक जिनसेन स्वामी कोल्हापुर को ७ जुलाई १९५३ को सवेरे पाँच बजे ऐसा स्वप्न आया था कि आचार्य महाराज आगामी तीसरे भव मे तीर्थकर होंगे।”

इस सम्बन्ध मे धर्मसागर महाराज ने कहा - “भट्टारक जिनसेन के स्वप्न सच्चे देखे गए है। स्व आचार्य महाराज ने भी उक्त भट्टारक जी के स्वप्नो की प्रामाणिकता प्रतिपादित की थी।”

धर्मसागर महाराज ने कहा - “आचार्य महाराज मोक्ष जाएँगे। तीर्थकर होकर जावे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वैसे सभी पुरुषार्थी भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसलिए उद्योग करना सबका कर्तव्य है।”

विश्व को संदेश

मैने कहा - “महाराज! मै उज्जैन अखिल भारतीय सर्व धर्म सम्मेलन मे भाषण देने जा रहा हूँ। सम्मेलन मे आगत जनता के लिए आपका क्या संदेश है? धर्म-सम्मेलन के लिए सच्चा प्रकाश धर्मसागर महाराज सदृश सुलझे हुए तपस्वी ही दे सकते हैं।”

महाराज ने कहा - “सर्व धर्म वालो को हमारा यही कहना है कि सकलपी हिंसा (इरादा पूर्वक जीवघात) का त्याग करो। स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, परस्त्री सेवन और अधिक तृष्णा का त्याग करो। प्रारम्भ मे पञ्चविध पापो का परित्याग आवश्यक है। धर्म की बातें करने से काम नहीं चलेगा। प्रारम्भ मे पापो का परित्याग नहीं किया और धर्म पर सुन्दर चर्चा की तो इसके द्वारा आत्मा का हित नहीं होगा।”

१०८ पूज्य आचार्य धर्मसागर महाराज का लासुर्ना ग्राम मे चातुर्मास हुआ। २९ सितम्बर १९५९ को उनके पवित्र दर्शन का पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे सकलकीर्ति रचित प्रद्युम्नचरित्र की संस्कृत रचना का स्वाध्याय करते हुए जनता को उपदेश दे रहे थे। छोटे से ग्राम मे अगुलियो पर गिनने लायक श्रोताओ की उपस्थिति मे उन जैसे महान् ज्ञानी, तत्त्वज्ञ साधु का उपदेश तपोवन का स्मरण कराता था। वे कई बातों मे अपूर्वता धारण करते हैं।

धनिको से प्रयोजन नहीं

उन पर धनिको का कोई असर नहीं रहता। वे निस्पृह साधु हैं। एक बार कहते थे - “हमें धन से या धनवानों से क्या मतलब? साधु को पैसे के चातर में क्यों पड़ना?” उनके चरणों में बहुत शांति तथा आनंद की उपलब्धि हुई।

अभक्ष्य मेवन की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर

आजकल प्रायः शुद्ध आचार तथा विचार में सर्वत्र झिथिलता नजर आती है। एक जैन प्रोफेसर ने कहा था - “लोकोपकारी व्यक्ति यदि अमेरिका के उत्तर भाग में चला जाय, जहाँ का प्रदेश हिम से आच्छादित है तथा जहाँ वर्ष का मदा मन्दाव पाए जाने से वनस्पति नहीं मिल सकती है, वहाँ उस मनुष्य को मास खाकर अपना निर्वाह करने में जैन सिद्धान्त में बाधा नहीं आती।”

मैंने यह चर्चा धर्मसागर महाराज के समक्ष चलाई, तो उन्होंने सूत्र रूप में यह मार्मिक उत्तर दिया था - “अभक्ष्य खाकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है।” यह उत्तर आजकल के धनमत्त अथवा ज्ञान तथा प्रभुता से उन्मत्त लोगों की आँखें खोल देता है, जो जघन्य स्वार्थों की पूर्ति निमित्त पवित्र तथा अपूर्व नरदेह के महत्त्व को भुला देते हैं तथा मास, अण्डा, मदिरापान करते हुए लज्जित भी नहीं होते, प्रत्युत् अपने हीनाचरण को महत्त्व का कर्म बताते हैं।

हमारे पिताश्री को सदेश

धर्मसागर महाराज से हमारे पिताजी के स्वास्थ्य की चर्चा आई। वे उनकी अत्यन्त वृद्ध देहस्थिति को दो वर्ष पूर्व सिवनी में हमारे यहाँ पधारकर स्वयं देख चुके थे, अतएव उन्होंने पिताश्री सिंघई कुँवरसेन जी के लिए यह महत्त्वपूर्ण तथा कल्याणकारी सदेश दिया था - “उनको कहना कि प्राण जाते पर्यन्त ‘अरहत’ शब्द नहीं छोड़ना। पूरा णमोकार कहते नहीं बने, तो कोई बात नहीं। अरहत नाम निरन्तर जपना ऐसा महाराज ने कहा है।” गुरु का आशीर्वाद सफल हुआ। २४ मार्च १९६० को पिताजी की अपूर्व तथा उच्च समाधि हो गई।

अरहत नाम महौषध

सचमुच में अरहत भगवान का शरण महिमापूर्ण है। शास्त्रों में लिखा है - “अरहत मगल, अरहत लोगुत्तमा, अरहत शरण पव्वज्जामि-अरहत भगवान मगल रूप हैं, अरहतदेव लोक में उत्तम हैं, अरहत भगवान की शरण को मैं स्वीकार करता हूँ।”

अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण में एव समाधि के समीप अवस्था वाले जिन-देव के चरण प्रेमी व्यक्तियों के लिए “णमो अरहताण” महा रसायन है, सजीविनी दवा है, सब से बड़ा इजेक्शन है, सर्वोपरि टानिक है। यह अत्यन्त शुद्ध महौषध है। भगवान् कुदकुदाचार्य ने जिनवाणी को महान् औषधि कहा है - “जिण-वयण ओसह-जिनवचन औषध।” ज्ञानार्णव में लिखा है -

मगलं शरणोत्तम-पद-निकुरब यस्तु सयमी स्मरति ।

अविकलमेकाग्रधिया स चापवर्गश्रियं श्रयति ॥

(पृ ३७७)

जो मुनि एकाग्रचित्त हो मगल पद, शरण पद, लोकोत्तमपद समुदाय का पूर्ण रूप से स्मरण करता है, वह मोक्षलक्ष्मी को पाता है।

अद्भुत आकर्षण

१०८ धर्मसागर मुनि महाराज ने आचार्यश्री का सस्मरण सुनाते हुए कहा था - “मैं उस समय छोटा था। मैंने महाराज के ‘यरनाल’ में दर्शन किए थे। वे ऐलक थे। यरनाल में उनकी मुनि दीक्षा हुई थी। बाद में महाराज का कोन्नूर में चातुर्मास हुआ था। वह स्थान हमारे गाँव पाच्छापुर से दस मील पर था। रविवार को हमारे स्कूल की छुट्टी रहती थी। उस दिन हम दस मील दौड़ते हुए महाराज के पास कोन्नूर जाया करते थे। उनके दर्शन के उपरान्त शाम को लौटकर घर वापिस आते थे। महाराज के जीवन का आकर्षण इतना था कि उस समय बीस मील का आना-जाना कष्टप्रद नहीं लगता था।

चारित्र का उपदेश

“वहाँ आचार्य महाराज कानडी भाषा में चारित्र पर उपदेश देते थे। शास्त्र स्वाध्याय खूब करते थे। शास्त्रानुसार उन्होंने अपने जीवन में बहुत परिवर्तन किया था। शुद्ध चारित्रधारी निर्ग्रन्थ साधु होने के कारण उनका प्रभाव वेग से वर्धमान हो रहा था।

महाराज के जीवन पर प्रकाश

“उस समय नेमण्णा (मुनि नेमिसागर महाराज) गृहस्थ थे। वे शास्त्र पढ़ते थे और आचार्य महाराज उसे स्पष्ट रूप से समझाते थे। उस समय महाराज अष्टमी, चतुर्दशी को मौन व्रत धारण किया करते थे। उस मौन की अवस्था में उनकी जाघ पर एक सर्प चढ़ा था। महाराज उस समय स्थिर थे।”

धर्मसागर महाराज के विचार

“हमारे मन में प्रारम्भ से ही ब्रत्याचारी रहने के भाव थे। इस कारण हम शातिसागर महाराज के समीप बहुत बार जाया करते थे।”

संयम धारण का क्रम

“पहले महाराज ने मुझे शादी होने पर्यन्त ब्रह्मचर्य ब्रत दिया था। पश्चात् सन् १९२८ में शिखर जी पहुँचकर उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य ब्रत जीवन भर को दिया। उन्होंने मुझे क्षुल्लक दीक्षा दी। दस वर्ष के पश्चात् में ऐलक बना। दो वर्ष ऐलक रहने के पश्चात् महाराज ने मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा दी। मेरी दीक्षा के सर्व सस्कार महागज ने ही अपने हाथ से किए थे।”

महाराज का स्वभाव

उन्होंने यह भी बताया - “दिल्ली में आचार्यश्री का चातुर्मास हुआ था। उस समय से महाराज के समीप १८ वर्ष रहने का सौभाग्य मिला था। उनकी धर्म में प्रगाढ़ निष्ठा थी। धर्म विरुद्ध बात को वे सहन नहीं करते थे। वे शिष्यों को कठोर शब्द कभी नहीं कहते थे। मधुर वाणी से वे समझाया करते थे या मोन रहते थे।”

श्रमण वेलगोला की यात्रा

सन् १९२४ में आचार्य महाराज गौकाक से श्रमण वेलगोला गए थे। वे श्रमण वेलगोला में १५ दिन ठहरे थे। वहाँ के मठ के म्नामी भट्टारक जी के यहाँ आहार की विधि लगती थी, किन्तु आचार्य महाराज वहाँ आहार नहीं लेते थे।

महाराज कहते थे - “मठ का अन्न ठीक नहीं है। वहाँ का धन प्रायश्चित्त, दण्ड आदि द्वारा प्राप्त होता है। निर्माल्य का धन नहीं लेना चाहिए।” पंडित (उपाध्याय) के यहाँ भी महाराज आहार को नहीं जाते थे। वे चन्द्रगिरि पर्वत पर एक प्राचीन मन्दिर में रहते थे। उसके पास ही भद्रबाहु श्रुतकेवली की गुफा है।”

आचार्य महाराज का विशेष प्रभाव

जब मैंने धर्मसागर महाराज से पूछा कि - “आपके अनुभव में महाराज के जीवन की कोई सातिशय प्रभाव को बताने वाली घटना आई होगी?”

प्राणरक्षा

तब वे कहने लगे - “सघ में एक स्त्री रहती थी। उसका चार वर्ष का बच्चा

पानी में डूब गया। वह स्त्री बच्चे को खोजने लगी। लोगो ने खोज कर बच्चे का पता चलाया। उस बच्चे का बचना असम्भव था। महाराज के प्रभाव से बालक अच्छा हो गया। मैंने देखा कि महाराज के सघ के लोगो को कोई कष्ट नहीं होता था।”

बच्चे का संकट टला

उन्होंने एक दूसरी घटना इस प्रकार सुनाई - “हुम्मच पद्मावती क्षेत्र के समीप एक गाड़ी उलट पड़ी। एक वर्ष का बालक गिर पड़ा। उसके पास में कुल्हाड़ी पड़ी थी। वह बालक बाल-बाल बच गया। उस समय चन्द्रसागरजी ऐलक थे। वीरसागरजी और नेमिसागरजी निर्ग्रन्थ थे।”

चन्द्रसागरजी का कथन

उस यात्रा की एक घटना धर्मसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाई - “एक विधवा स्त्री को पान खाते देखकर चद्रसागरजी ने कहा - ‘विधवा का ताबूल भक्षण शीलव्रत के विरुद्ध है।’ आचार्य महाराज धन्य पुरुष हैं। उनके पास नियम लेकर तुम अपने को धन्य करो। इसे सुनते ही उस स्त्री ने आजीवन ताबूल भक्षण का त्याग किया था।”

गोरल चातुर्मास की विशेष घटना

धर्मसागर महाराज जब ऐलक थे, तब उनका नाम यशोधर महाराज था। उस वर्ष गोरल में महाराज के साथ उनका चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय की घटना का विवरण धर्मसागर महाराज ने इस प्रकार सुनाया था - “गोरल में हमने शास्त्र पढ़ा। पश्चात् उठकर हम ग्रंथ की नकल करने लगे। श्लोक पूर्ण करने के शेष तीन अक्षर बचे थे कि हमें मूर्छा आ गई। गरदन लटक पड़ी। ऐसा लगा कि अब हमारे प्राण जाने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ समय बाद वमन हो गया। वमन के बाद हमने मौन ले लिया था। पश्चात् आचार्य महाराज आए। उन्होंने देखा और कहा हमें नहीं मालूम था कि तुम्हारी ऐसी हालत हो गई।” उस प्रसंग पर महाराज ने कहा था - “तुम्हारा मरण लिखते-लिखते होगा और हमारा मरण चलते-चलते होगा।”

धर्मसागरजी का परिचय

“धर्मसागर महाराज का नाम कलप्पा था। पिताजी का नाम भरमप्पा था और माता का नाम ज्ञानमती था। कुथलगिरि में जिस पुस्तक से दशभक्ति आदि पाठ आचार्यश्री को ब्रजिनदासजी समझोलीकर पढ़कर सुनाया करते थे, उसको धर्मसागर महाराज ने

ही लिखा था। उसके अक्षर छापे सगीखे स्वच्छ और नेत्रप्रिय लगते थे। अक्षरो की यह विशेषता थी कि सारे ग्रंथ में आदि से अंत तक एक ही प्रकार के अक्षर लिखे थे।”

रत्नत्रयधर्म के उद्योतक नररत्न

आचार्य महाराज ने इस कराल कलिकाल में जिनमुद्रा को धारण कर तथा उसको निर्दोष रीति से पालते हुए आचार्य कुथुसागरजी, आचार्य वीरसागरजी, मुनि नेमिसागरजी, पायसागरजी, धर्मसागरजी आदि अनेक प्रभावशाली साधुओं का निर्माण किया। आचार्य महाराज की जीवनी परमार्थतः स्वयं एक अद्भुत रत्नत्रयधर्म की सन्स्था सदृश थी। उनका जीवन आगम की दृष्टि में अद्भुत था। उन्होंने रत्नत्रयधर्म के द्वारा अपनी आत्मा को समलकृत किया था। पञ्चात् उन्होंने समार के भव्यों के हृदय में रत्नत्रय की ज्योति उद्योतित की। इस प्रकार उनके द्वारा स्व ओग पर प्रभावना का कार्य संपन्न किया गया था।

धर्मसागर महाराज के जीवन का उदाहरण

आचार्य शातिसागर महाराज के शिष्य तथा गुरुचरणों में बहुत काल व्यतीत करने वाले विशुद्ध-वृत्तिधारी १०८ मुनिराज धर्मसागर महाराज की एक महत्वपूर्ण बात धार्मिकजनों को आनंदप्रदा होगी, अतः उस पर प्रकाश डालना उपयोगी प्रतीत होता है।

“सन् १९५५ के चातुर्मास के पञ्चात् धर्मसागर महाराज कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को (वीर सवत् २४८३ में) सिवनी से प्रस्थान कर मुक्तागिरि गए। वहाँ से कुथलगिरि जाते समय देवलगावराजा नामक बस्ती के आगे जंगल में मध्याह्न के समय धर्मसागर महाराज सामायिक में बैठ गए।

निर्भय

“इमली के वृक्ष की छाया के नीचे ये मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इनको पता नहीं था कि इनके सिर से थोड़ी ऊँचाई पर वृक्ष की डाली पर दो सर्प इधर-उधर फिरते हुए क्रीड़ा कर रहे थे। एक ग्रामीण पथिक की दृष्टि इस दृश्य पर पड़ी। उसने साथ के श्रावको से कहा कि महाराज के सिर के ऊपर डाल पर सर्प युगल है। लोग चिंता में पड़ गए। कुछ काल व्यतीत होने पर महाराज की सामायिक पूर्ण हुई।”

लोगों ने कहा - “महाराज! आप के ऊपर समीप में दो सर्प फिर रहे हैं। यहाँ से दूसरी जगह बैठ जाइये। महाराज ने लोगों का कहना नहीं सुना और वे दो घंटे वहाँ ही

महागज ने कहा - “इसका क्या मत करना? वे हमारे जंगल पर तो नहीं थे और यदि जंगल पर भी आ जाते तो हमारी आत्मा का क्या करत? मैंने मोंचा-आड्डि के भी तो महामना गानिमाग मद्दुग श्रेष्ठ तगम्बों के निग्रह हैं।

उक्त घटना का कुछ धाड़ में लागो को ही पता है। कदाचित् कोई निदा की बात होती तो आज का त्रिशन्धर्षी का जगत मग में उस बात का प्रचार किए बिना न रहता। गुग का प्रचार कम होता है। दुगई की बात बिजली की तरह फैला जाती है। अम्मु उपोत्त कहते हैं यह तो ज्ञात हो जाता है कि आज भी अनेक दिगम्बर जैन माधु अन्नाधारण आत्मतंज तथा तगम्ब्या मगी मणनि में ममलकृत हैं। धर्ममाग महागज के प्रभाव के विषय में महगुग (जवत्तगुग) के मिगई बाबूलाल जी ने मन् १९८१ को यहाँ आकर बताया “महागज ने हमारे ग्राम में चातुर्मास किया। हमारी भैंस एक बूढ़ भी दूध नहीं देती थीं किन्तु उनके आते ही उसमें काफी दूध मिलने लगा जिससे हम मन्थात्रदान गेज करने थे। तीन चार लीटर तक दूध हो जाता था। जिस दिन महागज ने महगुग छोड़ा उसी दिन से उसी भैंस ने एक बूढ़ भी दूध नहीं दिया।

उपयोगी भाषण

धर्ममाग महागज का मिक्नी में दिया गया उपदेश स्मरण योग्य है। उन्होंने कहा था - इस मसार में सभी जीव मुख पाने के लिए निगन्तर लगे रहते हैं। हर प्रक्रा का उद्योग करते हैं किन्तु कोई जीव मुखी नहीं दिखता। एक भी ऐमा आदमी नहीं मिलेगा जो यह कहे कि मैं पूर्ण रूप में मुखी हूँ।

“तब फिर जीव को अम्ली सुख कहाँ मिलेगा? भगवान ने कहा है कि वह अम्ली सुख मोक्ष में मिलेगा। दु खो के अभाव रूप मोक्ष को जैन तथा जैनतर सभी लोग मानते हैं। जहाँ दु ख का लेश भी न हो वही तो मोक्ष है। बाधाग्रहित सुख को मोक्ष कहते हैं। ऐसे मोक्ष को एक वाग प्राप्त करने पर जीव पुन मसार में नहीं आता। उसे मोक्ष की

प्राप्ति कब होती है? जब जीव संपूर्ण कर्मों का क्षय करता है, तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इस कर्म-क्षय का साधन तपश्चरण है।”^१

“गृहस्थावस्था में तपश्चरण से मोक्ष नहीं मिलता है। इसके लिए निर्ग्रन्थपद ग्रहण करना आवश्यक है। निर्ग्रन्थ बनने पर भी जब तक आत्म-स्वरूप की उपलब्धि नहीं होती, तब तक भी मोक्ष नहीं प्राप्त होता है। गृहवास की आकुलता द्वारा अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त करने में विघ्न आते हैं। आत्मस्वरूप में निमग्न होने के लिए तिल-तुष मात्र परिग्रह भी नहीं चाहिये। निर्विकल्प दशा में वास्तविक अनुभव होता है। परिग्रह त्यागकर त्रिगुप्ति की अवस्था में निर्विकल्प समाधि होती है। ऐसी समाधि के बिना मोक्ष नहीं मिलता है। आत्मोपलब्धि होने पर चारित्र की उन्नति होते हुए उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र होने पर चौदहवें गुणस्थान में ८५ प्रकृतियों का क्षय करके जीव मोक्ष प्राप्त करता है।

“मोक्ष मंदिर की प्रथम सीढ़ी सम्यक्त्व की प्राप्ति है। वह मुक्ति भवन की नींव सदृश है। उसके बिना वह भवन नहीं टिकता है।

“यह सम्यक्त्व मोक्ष के लिए मूल रूप है। जैसे वृक्ष की मूल उसका आधार रूप होती है। इसलिए सुखार्थी अर्थात् मोक्ष की इच्छा करने वालों को सम्यक्त्व धारण करना चाहिए। वह सम्यक्त्व बाजार में नहीं मिलता। वह अपने में ही है। उसका कारण काललब्धि, गुरु का उपदेश आदि बताये गये हैं। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य तथा करण ये पाँच लब्धियाँ सम्यक्त्व में कारण पड़ती हैं। देशना का अर्थ उपदेश है।

“वह सम्यक्त्व चारों गतियों में होता है। नरक गति में उपदेशदाता कौन है? तीसरे नरक तक तो देव जाकर उपदेश दे सकते हैं, किन्तु चौथे, पाँचवें आदि नरकों में कौन उपदेश देगा? वहाँ के नारकी अपने विभगावधि ज्ञान द्वारा सोचते हैं - “मैंने पूर्व में अत्यन्त पाप किये थे, उनका फल आज भोग रहा हूँ। पहिले सत्पुरुषों ने मुझे बहुत बार समझाया था। उनका कहना यथार्थ था।” ऐसा विचार करते-करते उन नारकियों के निसर्गज सम्यक्त्व हो जाता है। इस सम्यक्त्व के बिना आत्मा का उद्धार नहीं होता। सम्यक्त्व सहित व्रतधारी को व्रती कहा गया है। सम्यक्त्व बिना व्रत, कुव्रत और ज्ञान कुज्ञान कहे गये हैं।

१ समतभद्र स्वामी ने धर्मनाथ भगवान के स्तवन में लिखा है कि - आपने तप रूपी अग्नि द्वारा कर्मरूपी वन को जलाकर अविनाशी सुख पाया है। “कर्म-कक्षमदहत्तपोग्निभि शर्म शाश्वतमवाप शकर ॥”

मन्यक्त्व की श्रेष्ठता

“मन्यक्त्व मत्र मे श्रेष्ठ है। यह अमुक व्यक्ति में है या नहीं है। इस बात का निश्चय करने के साधन इस पंचमकाल में नहीं हैं।^१ आज केवलजानी नहीं है। मन पर्ययजानी नहीं है, अवधिजानी भी नहीं है, जिनके द्वारा किसी व्यक्ति के मन्यक्त्वी होने का पक्का निश्चय किया जा सके। इस कालदोष से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है। अतः अमुक व्यक्ति मन्यक्त्वी और अमुक के मन्यक्त्व नहीं है, इसका पक्के रूप में निश्चय नहीं किया जा सकता।

“वह मन्यक्त्व अपने योग्य सामग्री मिलने पर उत्पन्न होता है। जब तक योग्य सामग्री की प्राप्ति न हो, तब तक मन्यक्त्व कैसे होगा? तब तक हताश नहीं होना चाहिए। प्रमादी नहीं बनना चाहिए। प्रमादी होने पर धोखा हो जाता है और बुरी अवस्था होती है।”

प्रमादीय उदाहरण

इस विषय का दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए पूज्य मुनि महाराज ने कहा था - “वे महान् प्रमादी व्यक्ति थे। वे आलस्य में सारा समय व्यतीत करते थे। वे कुछ भी काम नहीं करते थे। एक समय वे नगर के बाहर जाकर जामुन के एक वृक्ष के नीचे लेट गए। वहाँ ने एक थानेदार घोंडे पर सवार होकर निकला। उसे देखकर एक प्रमादी ने जोर से चिल्लाकर उनकी पान बुलाया। थानेदार ने उस आदमी को दुःखी समझा। इसमें वह उनकी महायत्ना के लिए वहाँ वापिस आया।

उस आलसी ने कहा - इस झाड़ में गिरी हुई जामुन उठाकर मेरे मुँह में गूँध दोजिए। यह बात सुनकर उस घुड़नवाग को बड़ा गुस्सा आया कि इस मूर्ख ने व्यर्थ में मेरा समय नष्ट किया। इसमें उसने अपने कंधों में उस आलसी की खूब पूजा की।

यह देखकर दूसरा नाथी बोला - इसे और घोंडे लगाइये। यह बहुत हल आदमी है। घुड़नवाग ने इनका आग्रह पूछा, तब उसने कहा - मैं अभी सो रहा था। एक कुत्ता आया और मेरे मुँह में पेसाब कर गया। उस समय यह दुष्ट चुपचाप देखा रहा और

१. मन्यक्त्व वस्तुतः स्वरूप केवलज्ञानाधिकार्य।

गोचर काव्यधिव्यक्त्यान्वयज्ञानाधिकार्ये ॥

- वास्तव में मन्यक्त्व सूक्ष्म है। वह केवलज्ञान का विषय है। अवगतिन तब ही व्यर्थज्ञान पाक है।

इसने मेरी जरा भी सहायता नहीं की। सवार ने उसे ओर बड़ा प्रमादी सोचकर उसको भी कोड़ो की मार लगाई।”

इस कथा का सारांश यह है कि मनुष्य जन्मरूपी महान रत्न हाथ में आया है। आलसी बनकर विषय भोग में अपने काल को नष्ट नहीं करना चाहिए। व्रत, नियम पालने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

शक्ति अनुसार संयम

महाराज का यह कथन ध्यान देने योग्य है - “आदिनाथ भगवान ने छ माह उपवास किये थे। छ माह अतराय आये थे। तुम्हें कोन कहता है कि तुम भी ऐसे ही उपवास करो? हम यही कहते हैं कि शक्ति के अनुसार व्रताचरण करो। शक्ति के अनुकूल दान दो, तप करो। आलसी बनकर अपना जीवन व्यर्थ बरबाद मत करो। यदि इस दुर्लभ नर पर्याय को खो दिया, तो बताओ कहाँ कल्याण होगा? तेतीस सागर की आयु वाले सर्वार्थसिद्धि के देव मनुष्य पर्याय की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं। कारण, स्वर्ग से कर्मों की निर्जरा पूर्वक मोक्ष नहीं जा सकते। यहाँ आकर मुनिपद धारण करके कर्मों को काट सकेंगे। जिनेन्द्र भगवान के पंच-कल्याणको में आकर देवता यही भावना करते हैं कि हमें नर-पर्याय कब मिलेगी? देखो! देव भी मनुष्य होने की इच्छा करते हैं और तुम मोक्ष की इच्छा करते हो, किन्तु करते कुछ भी नहीं हो। विना प्रयास और बिना श्रम के मोक्ष की निधि प्राप्त करना चाहते हो। मनुष्य होकर भी यदि तुम यहाँ गलती करोगे, तो कहाँ सुख प्राप्त होगा? यदि ऐसा ढग रहा, तो तुम्हारी आत्मा का कभी भी उद्धार नहीं होगा।”

महाराज ने समझाया - “जब तुमको दूसरे गाँव जाना होता है, तो मुहूर्त देखकर जाते हो। दो एक रोज में जहाँ वापिस आना है, वहाँ तो इतनी सावधानी दिखाते हो, किन्तु जहाँ शाश्वत सुख है और जहाँ से पुनरागमन नहीं होता है, उम मोक्ष नगर को जाने के लिए कुछ भी प्रयास या उद्योग नहीं करना चाहते हो। बाजार में से घड़ा खरीदते समय उसे बार-बार बजाकर देखते हो। लौकिक तुच्छ वस्तुओं के बारे में बड़ी चतुरता बताते हो, किन्तु अपनी आत्मा के हितार्थ तुमको फुरसत नहीं मिलती है। कैसी विचित्र बात है यह!”

सम्यक्त्व के बिना भी व्रत पालो

“तब आपको क्या करना चाहिए? सम्यक्त्व की पूर्ण सामग्री कब मिलती है? इसका निश्चय नहीं है। इसलिए प्रमाद में समय नष्ट न करके आत्मा में उज्ज्वलता लाने के हेतु व्रत करना चाहिए।”

मुद्र वात

कोई-कोई शका करते हैं - “मम्यक्त्व विना व्रत क्यों धरे?” उनके ममाधानार्थ महाराज ने कहा - “पहले हृदय में पापों को छोड़ो। इसमें तुम आगे बढ़ोगे। जो तुम्हारे हाथ में है, उसे तो करते जाओ। जैसे तुम मपत्ति के अनुसार व्यापार करते हो, उमी प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार व्रत धारण करना चाहिए।”

मूर्यमित्र का उदाहरण

महाराज ने एक शास्त्रकथा बताई - “एक राजमन्त्री था। उसका नाम था मूर्यमित्र। मूर्यमित्र ने मुनिपद धारण कर लिया। उनकी वहिन के पुत्र ने भी मुनिपदवी अङ्गीकार कर ली। वे दोनों विहार करते-करते सोमशर्मा पुरोहित के नगर में पहुँचे। उन मुनियुगल के दर्शन करते समय सोमशर्मा की पुत्री नागश्री के भाव व्रत धारण के हुए।

नागश्री ने मुनि महाराज से व्रत माँगे। मुनिराज ने उस कन्या को पचाणुव्रत दिए और देते समय यह कह दिया कि तेरा पिता तुझ पर व्रत लेने के कारण नाराज होगा, तब तुम हमारे पास आकर व्रत वापिस कर देना। नागश्री घर पहुँची ही थी कि उसके माथ की लडकियों ने उसके पिता सोमशर्मा को उसके व्रतग्रहण की बात बता दी। सोमशर्मा बहुत क्रुद्ध हो गया। नागश्री ने कहा - “पिताजी! मैं इन व्रतों को उन मुनिराजों को वापिस कर आती हूँ।” सोमशर्मा के साथ पुत्री नागश्री वन को जा रही थी। मार्ग में हिसा, चोरी, आदि पाप करने वाले व्यक्तियों की दुर्दशा देखी। इससे सोमशर्मा का क्रोध ज्ञान्त हुआ और उसे अनुभव हुआ कि नग्न माधुओं ने मेरी बेटी को अच्छे व्रत दिए हैं।

मुनियों के पास पहुँचकर सोमशर्मा ने पूछा - “महाराज! आपने मेरी बेटी को व्रत क्यों दिए?” मुनिराज ने कहा - “यह लडकी तो मेरी है, इससे मैंने इसे व्रत दिए है।” वह ब्राह्मण बोला - “यह आप क्या कह रहे हैं? नागदेव के प्रसाद से मुझे यह कन्या प्राप्त हुई थी। यह बात राजा तक को ज्ञात है।” विवाद बढ़ा। राजा भी मुनिगजक समीप आया। उस समय मुनिराज राजा के समक्ष नागश्री के जीव को सम्बोधित करते हुए बोले - “हे वायुभूति! जो तुम पढ़ गए हो, तो सब सुनाओ।” उसे जातिस्मरण हो गया, उसे सब बातें स्पष्ट विदित हो गईं। मुनि महाराज ने सबके सन्देह को दूर करते हुए बताया कि “पहले मैंने अग्निभूति-वायुभूति को पढ़ाया था। एक समय की बात है, मैं हाथ में राजा की अँगूठी थी। मैं सन्ध्यावन्दन को सगेवर पर गया। वहाँ सन्ध्यावन्दन के समय यह अँगूठी गिर गई। निमित्तजानी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि अँगूठी अवश्य मिल

जायगी। मुझे बहुत चिन्ता थी कि राजा मुझे राजमन्त्री पद से पृथक् कर देगा। कारण, वह कहेगा - जब तुम एक अँगूठी को नहीं सम्हाल सके, तो बड़े भारी राज्य को कहाँ तक सम्हाल सकोगे। मैंने जङ्गल की ओर जाते हुए एक दिगम्बर मुनिराज को देखा।

मैंने सोचा इन मुनिराज के पास कुछ न कुछ विद्या अवश्य रहती है, अतः मैं मुनिराज के पास गया। मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से मेरी अँगूठी के बारे में सब बातें स्वयं बतला दीं और कहा कि सन्ध्यावन्दन करते समय अँगूठी कमल के भीतर रह गई है। प्रभात में कमल विकसित होगा, तब तुमको स्वयं अँगूठी दिख जायेगी। दूसरे दिन मुनिराज की वाणी के अनुसार अँगूठी प्राप्त हो गई। उस समय मन में यही आया कि मुनिराज के पास से यह अलौकिक ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लूँ। मैंने राजा से कहा - “महाराज! मैं कुछ दिन की छुट्टी चाहता हूँ। विद्या प्राप्त करने के पश्चात् आपके यहाँ आकर काम करूँगा।”

मुनिराज के पास आया। उन्होंने कहा - छ माह के भीतर तुमको यह विद्या मिल सकती है, किन्तु तुमको हमारे समान नग्न रूप धारण करना होगा और हमारी तरह रहना होगा। विद्या की लालसा से मैं मुनिराज की ही तरह नग्न-दिगम्बर हो गया। मेरे गुरुदेव ने मुझे प्रथमानुयोग पहले सिखाया। उसके द्वारा मुझे त्रैलोक्य-शलाका पुरुषों का वर्णन ज्ञात हुआ।” धर्मसागर महाराज ने कहा - “आचार्य ने एकदम द्रव्यानुयोग नहीं पढ़ाया, कारण प्रारम्भिक अवस्था में प्रथमानुयोग उपकारी होता है। उससे श्रद्धा उत्पन्न होती है। आज लोगो को पहली कक्षा की खबर नहीं है, उनको सातवीं कक्षा का विषय सिखाते हैं। इससे गड़बड़ी होती है।” प्रथमानुयोग के अभ्यास से सूर्यमित्र नाम के नकली मुनि बनने वाले को पुण्य, पाप तथा उनके फल भोगने वाले जीवों की बातें ज्ञात हुईं। “गुरु ने इसके पश्चात् करणानुयोग सिखाया और बाद में चरणानुयोग बताया। श्रावक यदि चरणानुयोग का ज्ञान न रखे तो किस प्रकार वह मुनियों का रक्षण करेगा? श्रावक और मुनि गाड़ी के दो चक्को के समान हैं। श्रावक धर्म तथा मुनिधर्म का परस्पर संबन्ध है। सिंह से वन की रक्षा होती है और वन से सिंह का रक्षण होता है।”

“गुरुदेव ने द्रव्यानुयोग का अन्त में शिक्षण दिया। उस समय मुनिसंघ विहार करता हुआ अगदेश के अतर्गत मदारगिरि पहुँच गया था। वासुपूज्य भगवान के निर्वाण स्थल की वदना कर सूर्यमित्र मुनिराज परिक्रमा कर रहे थे। उस स्थान के निमित्त से उनको अवधिज्ञान प्राप्त हो गया। गुरु से जाकर सूर्यमित्र ने अपनी बात बता दी।

तब आचार्य ने कहा - “तुम अकेले विहार करो और अपने घर चले जाओ। तुम्हारा काम पूरा हो गया।” उस समय सूर्यमित्र मुनि ने कहा - “महाराज! वह घर मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो ऊपर है। सिद्धालय मेरा सच्चा घर है।”

नकली तो बनो

धर्मसागर महाराज ने समझाया - “देखो! सूर्यमित्र नकली मुनि बने थे। तुम पहले नकली तो बनो। सोना पत्थर में मिलेगा। असली सोना अग्नि का ताप सहन करने के बाद बनता है। सौ नबर के असली होकर ही हम साधु बनेंगे, ऐसा मत सोचो। नकल भी असली बनने में कारण हो जाती है। मोह छोड़ो। विरक्त भाव रखो। सूर्यमित्र ने पहले नकली मोह छोड़ा, पीछे समझ में आ गया कि मेरा घर ऊपर है, नीचे नहीं है। अरे! तुम्हारी शक्ति महाव्रत की नहीं है, तो श्रावक का धर्म तो पालो। इस मार्ग से मुनि बन सकोगे, इसमें सदेह नहीं है।”

उन्होंने कहा - “अपनी आत्मा को स्वच्छ और उजला करना हो, तो व्रत करो।” जो लोग सोचते हैं कि सम्यक्त्वी के बंध नहीं होता, अतः व्रत-तप आदि की जरूरत नहीं है, उनके समाधानार्थ पूज्यश्री बोले - “सम्यक्त्वी के बन्ध नहीं हैं, यह ठीक बात है, किन्तु कौनसा बंध नहीं होता, यह भी समझना चाहिए। अनतानुबन्धी तथा मिथ्यात्व सबन्धी बंध नहीं होता, अप्रत्याख्यानवरण आदि कषाये बैठी हैं। उनके निमित्त से बंध होता है। इससे तुम्हारा कर्तव्य है कि अपने आचरण को सुधारो। स्वच्छद आचरण नहीं करना चाहिए। सवर पूर्वक निर्जरा के लिए चारित्र्य कारण है। देशव्रती, महाव्रती के सवरपूर्वक निर्जरा होती है। अविरत सम्यक्त्वी की निर्जरा गजस्नान सदृश है। मथानी की डोरी समान उसके निर्जरा-बंध होते रहते हैं। अतः चारित्र्य पालो। कम से कम नकली तो बनो।”

१०८ पूज्य धर्मसागर महाराज ने सन् १९५६ के अन्त में सिवनी के समीपवर्ती ग्राम में यह उद्बोधक उपदेश दिया था -

“सब जीव सुख चाहते हैं। सच्चा सुख मोक्ष में है। उस मोक्ष का साक्षात् कारण मुनि-धर्म है। गृहस्थ धर्म मोक्ष का परम्परा कारण है। इस धर्म का उपदेश हम किस प्रकार दें? देखो! तीर्थंकर भगवान् मुनि बनते हैं। उन्हें मन पर्ययज्ञान प्राप्त होता है, फिर भी वे मौन धारण करते हैं। वाणी के द्वारा धर्म का उपदेश नहीं देते। आदिनाथ भगवान् ने मुनि दीक्षा लेने के बाद मौन ही धारण किया था, अन्यथा वे साथ में दीक्षा लेने वाले राजाओं को धर्म का उपदेश देकर उनको धर्म में अवश्य स्थिर करते, किन्तु ऐसा

नियम है कि सर्वज्ञ बनने के पूर्व तीर्थंकर भगवान् धर्म की देशना नहीं देते। जब भगवान् ने केवली बनने के बाद धर्म का स्वरूप कहा, तब हम उस धर्म का क्या वर्णन कर सकते हैं? भगवान् के पास की चिट्ठी समान जिनागम है। उसमें जो कहा गया है, उसे ही हम कहेंगे। वास्तव में वही उपदेश हम सुनते हैं। यह हमारा स्वयं का उपदेश नहीं है। आचार्य परम्परा से जो बात ज्ञात हुई है, उसे ही कहेंगे। शास्त्र में पहले मुनिधर्म कहा है। जो उसे धारण करने में असमर्थ है, इसके लिए गृहस्थ का धर्म कहा है। यदि पहले ही सरलतायुक्त श्रावक का धर्म बताया जाय, तो भव्य जीव उसे ही स्वीकार करेगा।”

महाराज ने कहा - “आप लोग शास्त्र पढ़ते हैं। आप जानते हैं कि आपको कुछ और जानना बाकी नहीं है। कारण, आप सब समझ चुके हैं। जो समझ चुका है, वह भला दूसरे का कथन क्यों सुनेगा? सोचो और शक्ति के अनुसार शास्त्र में कही बात पर आचरण करो। शक्ति न होने पर भी श्रद्धा करो। इससे अजर-अमर स्थान मिलेगा। तुम शक्ति होते हुए भी उसे छिपा रहे हो। आज पंचम हुडावसर्पिणी काल है। चारों ओर आपको आग दिख रही है। ऐसी अवस्था में सावधानी पूर्वक अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिए। तुम मनुष्य जन्मरूपी रत्न को भूल रहे हो और नकली रत्न को बड़ी सावधानी से रखते हो। वास्तव में, इस मनुष्य जन्म को अनमोल रत्न समझकर उसे विषयभोग रूपी समुद्र में मत फेंको।”

महाराज ने श्रावकों को जिन भगवान् की पूजा के लिए उपदेश देते हुए कहा - “पूजा के हेतु अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य अपने घर से लाकर पूजा करनी चाहिए। करोड़पति तथा लखपति भी गरीब के समान अल्प द्रव्य से पूजा करते हैं, यह ठीक नहीं है। अपने वैभव के अनुसार भगवान् की पूजा करो।” उन्होंने कहा - “आज पूर्व पुण्य के फलस्वरूप सुख भोगते हो। आगामी भव के लिए भी तो कुछ सामग्री साथ में रखना चाहिए। इसके लिए त्यागवृत्ति को अपनाना उचित है। जैसे दुष्ट घोड़े को लगाम के द्वारा वश में करते हैं, अन्यथा वह गड्ढे में पटक देता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को तपश्चरण के द्वारा वश में करना चाहिए। इन्द्रियों की आसक्ति में आत्मा का हित नहीं है। इन्द्रियों की लालसा के कारण मन में चंचलता आती है। चंचल चित्तवाला पुरुष कुगति में दुःख पाता है। तुम पाँचों इन्द्रियों में आसक्त हो। तुम्हारा क्या हाल होगा? इसे भगवान् ही जाने।

“स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा हाथी कष्ट पाता है। रसना के कारण मछली दुःख भोगती है। भौरा नासिका के कारण प्राण देता है। नेत्र के कारण पतङ्गा आग में जलता है

कर्ण-इन्द्रिय के कारण हरिण की मृत्यु होती है। एक-एक इन्द्रिय की आसक्ति से जब दुःख होता है, तब पाँचों की लोलुपता का क्या फल होगा? यह स्वयं सोचो?

देखो! उसी भव से मोक्ष पाने वाले तीर्थंकर भगवान ने त्याग भाव को अपनाया था। तुम्हारे तो मोक्ष का ठिकाना ही नहीं है। इसलिए तुम्हें अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करना चाहिए। शक्ति को मत छुपाओ। व्यापार में तो पूरी शक्ति लगाते हो। नश्वर धन के पीछे लगकर निरन्तर काम कर रहे हो। शाश्वत सुख के लिए क्यों उद्योग नहीं करते?”

उन्होंने यह कहा - “दूसरे गाँव जाते समय मुहूर्त देखते हो, प्रस्थान निकालते हो, यद्यपि कुछ काल के पश्चात् वापिस लौटकर आते हो, किन्तु जहाँ फिर लौटकर नहीं आना है, वहाँ से प्रस्थान करने के लिए उचित तैयारी क्यों नहीं करते? त्यागभाव रूप धन ही साथ में ले जा सकोगे। सोचो कि हम मनुष्य का या पशु का काम कर रहे हैं? अभक्ष्य सेवन, मिथ्यात्वपालन तथा अन्याय करनेवाले नर और पशु में अन्तर नहीं है। चतुर्गति ससार में भ्रमण का कारण मिथ्यात्व है। एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय असंज्ञी तक मिथ्यात्व नहीं छूटता है। तुम संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य हो। पहिले व्यवहार सम्यक्त्व को धारण करना चाहिये। उसके बिना निश्चय नहीं होगा। निश्चय में व्यवहार नहीं रहेगा। आत्मा में निमग्न निश्चय श्रुतकेवली अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, पश्चात् नीचे उतर आते हैं, तब व्यवहार श्रुतकेवली होते हैं।”

स्याद्वाद दृष्टि

महाराज ने कहा था - “देव-गुरु-शास्त्र पर अटल श्रद्धा चाहिए। यह व्यवहार सम्यक्त्व निश्चय का कारण है। ऊपर जाने के लिए नसैनी सदृश व्यवहार है। झाड़ में फूल होते हैं। फल की इच्छा है, तो फूल का रक्षण करो।’ पश्चात् फूल स्वयमेव झड़ जाता है। उस समय निश्चयरूप फल प्राप्त होता है। अतः व्यवहार को नहीं छोड़ना चाहिये।

तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में भी व्यवहार पाया जाता है। वहाँ बारह सभा में जीव अपने अपने स्थान पर अलग अलग बैठते हैं। देव, देवी, मुनि, आर्यिका, तीर्थंकर का अलग अलग स्थान है। जब तीर्थंकर के समक्ष भी व्यवहार है, तब तुम उसे क्यों छोड़ते हो? इसे न पालोगे, तो परमार्थ को तथा स्वहित को क्या साधोगे? आत्मा का कल्याण करना है, तो जिनेन्द्र भगवान् का कहा गया मार्ग पालना चाहिये।”

समाधि की तैयारी

उन्होंने यह भी कहा - “श्रावक अवस्था में नहीं मरना। पिच्छी पकड़ कर जाना। एक बार समाधिमरण साधने पर सात-आठ भव में मोक्ष मिलता है। आँख मीचने से समाधि नहीं होती। आरम्भ से प्रयत्न करोगे, तो समाधि सधेगी। एकदम अत में क्या होगा? तुम वच्चों को तराजू से तोलना आदि सिखाते हो। बिना सिखाए वह क्या करेगा? राजा के पुत्र को यदि शिक्षा नहीं दी जायगी, तो वह युद्ध में जाकर रोयेगा। आचार्य शातिसागर महाराज ने ४० वर्ष से समाधि की तैयारी शुरू की थी और भले प्रकार उसे साधा। इसीलिए प्रत्येक विचारवान को आत्मा के हितार्थ उद्योग करना चाहिए।”

मार्गदर्शन

महाराज ने कहा - “बुद्धिपूर्वक त्याग करने से फल मिलता है। मंदिर जाते हो, वापिस घर आने तक सर्व प्रकार का आहार छोड़ दिया तथा कदाचित् मरण हो गया, तो त्याग में मरण होने से सद्गति मिलेगी। रात्रि भर आहार का त्याग हो और साप के काटने से स्थिरता पूर्वक मरे, तो समाधि होगी? अरे! शरीर तो नाशवान है। इस पर मोहकर तुम इसका लालन-पालन कर रहे हो। यह तुम्हारे साथ जानेवाला नहीं है। इस नाशवान शरीर के पीछे क्यों लग रहे हो?” गुणभद्र स्वामी ने कहा है - “इस शरीर में आसक्ति करने वाले का उद्धार नहीं होगा। त्याग बुद्धि रखो।”

तोते का दृष्टांत

एक मिथ्या साधु था। उसने एक बुद्धिमान तोता पाला था। तोते को पिजरे में रखकर साधु ने राम-राम, विट्ठल-विट्ठल सिखलाया था। वहाँ एक जैन ब्रह्मचारी आया। उस साधु ने सोचा कि यह ब्रह्मचारी विद्वान् है, इसलिए उसने कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की।”

ब्रह्मचारीजी ने कहा - “त्याग के द्वारा बधन से छूट जाओगे।” तोते के कान में ये शब्द पहुँचे। उसने विचारकर एक घन्टे के लिए आहार पानी छोड़ दिया। वह मुर्दे के समान हो गया। साधु ने तोते को मृत सदृश समझा, इसलिए पिजरे का द्वार खोल उसे वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। तोता चुपचाप पड़ा रहा। एक घण्टा पूरा होने पर वह तोता उड़कर झाड़ पर चढ़ गया। वह बधन से छूट गया। एक घण्टे के त्याग के द्वारा पराधीनता दूर हो गई। उसने साधु से कहा - “तुम असली त्याग को पकड़ लोगे तो तुम्हारा भी बधन दूर हो जावेगा। बधन से छूटकर सच्चा आनंद पाने के लिए त्याग भाव को अपनाना चाहिए।”

उग्र तपस्वी नमिसागर महाराज

जैनधर्म की प्रभावनाथ किये गये जापान आदि देशों के लम्बे प्रवास से लौटकर आत्मनिर्मलता के हेतु मैं ता १६ अक्टूबर १९५६ को कलकत्ता से चलकर सध्या को पारसनाथ (ईसरी) आया। ता १८ को शिखरजी की वदना की। अपूर्व शांति मिली। वह चतुर्दशी का पुण्य दिवस था। अन्तःकरण को बहुत आह्लाद मिला। मैंने उपवास किया। रचमात्र भी कष्ट नहीं मालूम पड़ा। स्मरण आया स्व गुरुदेव आचार्य शातिसागर महाराज का पुनीत वाक्य - “निर्वाण स्थान में उपवास आदि की कठिनता नहीं प्रतीत होती। इसी से मैं समाधि के लिये निर्वाण भूमि में आया हूँ।”

ईसरी में समाधिमरण का सकल्प कर अपने रत्नत्रय की रक्षा में उद्यत १०८ दिगम्बर महातपस्वी मुनिराज नमिसागरजी महाराज के दर्शन हुए थे। ता १७ अक्टूबर को उन साधुराज से कुछ चर्चा हुई थी। आज उनका स्वर्गवास हो गया, फिर भी धर्मप्रेमियों के लिए उनका वर्णन हितकारी होगा, ऐसा विश्वास है।

प्रश्न - “महाराज! आपका शरीर अस्थिपजर मात्र रह गया है। आपने सल्लेखना की तैयारी की है। कुछ मानसिक अशांति या आकुलता तो नहीं है?”

मैं सुखी हूँ

महाराज - “मैं आचार्य शातिसागरजी महाराज का शिष्य हूँ। उनके ही समान समाधि का उद्योग कर रहा हूँ। मेरे पास पूर्ण शांति है। शरीर की पीड़ा के बारे में क्या पूछते हो? शरीर की पीड़ा शरीर के पास है, मेरे पास नहीं। मेरा आनन्द मेरे पास है। मुझे कोई भय नहीं है। मैं सुखी हूँ।”

प्रश्न - “महाराज! इस सल्लेखना व्रत के कारण आपका आनन्द पहले के आत्मीक आनन्द से कुछ न्यून हुआ है या नहीं?”

महाराज - “इस कारण मेरा आनन्द बहुत बढ़ रहा है। मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति का मार्ग मिला है। मुक्तिरमणी की उपलब्धि आगे होगी, इस कल्पना से महान् आनन्द आ रहा है।”

प्रश्न - “महाराज! निद्रा आदि का क्या हाल है?”

महाराज - “नींद तो प्रायः चली गई है, फिर भी कोई कष्ट नहीं है। मैं तो

आनन्द मे हूँ। आप देख ही रहे हो। भगतजी (ब्र प्यारेलालजी) जब मुझसे बहुधा पूछा करते है, आप सावधान तो है, तो मैं तुरन्त कहता हूँ 'हाँ'।”

स्वप्न मे मार्गदर्शन

पूज्य नमिसागरजी महाराज ने कहा था - “स्व आचार्य शातिसागरजी महाराज ने स्वप्न मे दर्शन दिया था और कहा था, धर्म मे स्थिर रहना।” उन्होने यह भी कहा था - “इधर देहली तरफ अब मत रहना। यहाँ से जाओ, तुम्हारे दिन नजदीक आ गये हैं। अतः सावधानी रखो।”

मेरे पुनः प्रश्न करने पर उन साधुराज ने कहा था - “आचार्य महाराज चार बार स्वप्न मे आ चुके हैं। उनकी समाधि होने पर मैंने चौबीस भगवान से प्रार्थना की थी- “प्रभो, मुझे भी ऐसी समाधि का लाभ हो।” आज वही अवसर आ गया है। मैं आचार्य महाराज का शिष्य हूँ। कभी भी अपने रत्नत्रय धर्म से विचलित नहीं होऊँगा।” उन्होंने यह भी कहा - “मेरा तीन वर्ष से वर्णीजी के पास यहाँ आने का मन था। ईसरी आने में उनका आकर्षण भी विशिष्ट कारण रहा है।”

प्रश्न - “महाराज! आप इस सस्तर पर रहकर दिन-रात क्या कर रहे हैं?”

उत्तर - “हम कर्मों का निर्दयता पूर्वक नाश कर रहे हैं।”

प्रश्न - “उन कर्मों पर आपकी दयादृष्टि क्यों नहीं होती?”

महाराज ने कहा - “जिन कर्मों ने हमारी सिद्ध पर्याय को लूट लिया है, उन पर दया कैसी? हम एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त प्राणियों की रक्षार्थ प्रयत्नशील रहते हैं, किन्तु विभाव और विकार के कारण कर्मों के नाशार्थ निर्मम हो उद्योग करते हैं। हम आर्तध्यान, रौद्रध्यान से अपनी आत्मा की रक्षा कर रहे हैं।”

प्रश्न - “महाराज! मेरे लिए क्या आज्ञा है?”

मुझे विदेश जाने की प्रेरणा

महाराज बोले - “तुमने जापान जाकर जिनधर्म की प्रभावना की। यह बहुत अच्छा किया। तुम युरोप, अमेरिका आदि देशों मे जाकर जैनधर्म का प्रचार करो। धर्म-प्रचार के लिये जाने से डरो मत। अपनी श्रद्धा को निर्मल रखो। चारित्र्य में दोष आवे, तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करो। हमारा हृदय कहता है कि अब जैनधर्म का उद्योत होगा। इसके लिए धन, तन तथा मन को लगाकर काम करना चाहिये। धर्म प्रचार के लिए धर्म-

श्रद्धालु, सदाचारसम्पन्न तथा निस्पृह व्यक्ति चाहिये। तुम खूब धर्म प्रचार करो। यही हमारा तुमको आशीर्वाद है।” (यह कहकर उन्होंने बड़ी स्नेहमयी भावना से मेरे मस्तक पर अपनी करुणामयी पिच्छिका रख दी।)

प्रश्न - “आज के जैन भाइयों के लिए आपको क्या कहना है?”

उत्तर - “जैनियों को अपनी धार्मिक क्रियाओं का रक्षण करना चाहिए। मास मदिरा, मधु को त्याग कर रात्रि का भोजन त्यागना चाहिये। धनवान हो या उच्चाधिकारी हो, प्रत्येक जैनी को छना पानी पीना चाहिये व रात्रिभोजन नहीं करना चाहिये। शास्त्र में लिखा है - रात्रि-भोजन त्यागने से आधा जीवन उपवास पूर्वक सहज ही व्यतीत होता है।”

प्रश्न - “आजकल लोग स्वयं को भगवान सरीखा समझ साधन सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र-दर्शन नहीं करते। इससे कोई हानि तो नहीं है?”

महाराज ने कहा - “ऐसा करना अच्छा नहीं है। जो स्वयं को भगवान सोचते हैं, वे यहाँ ससार में क्यों रहते हैं, अपने स्थान पर क्यों नहीं जाते?” उन्होंने यह भी कहा - “जो स्वयं धर्म से पतित होकर तथा उसे दूर फेककर दूसरे के कल्याण की बात सोचते हैं, वे भूल पर हैं। स्वयं धर्म पर आरुढ़ होकर ही जिनधर्म की प्रभावना हो सकती है।”

महाराज के ये शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं - “जैनधर्मी अपने धर्म से डिग रहे हैं। कहने से वे नहीं सुनते। जब अन्य धर्मवाले जैनधर्म से प्रेम करेंगे, भक्ति करेंगे, तब इन जैनो में भी शरम से अपने धर्म की जागृति होगी।” मैंने महाराज से कहा था - ‘आप तो स्वर्ग यात्रा करने वाले हैं। कदाचित् आचार्य शातिसागर महाराज का दर्शन हो, तो हमारा प्रणाम कह दीजिये। इस जैन धर्म को गौरवान्वित करने का वहाँ ध्यान रखिये।’

ता १९ के प्रभात में उन क्षपकराज के पुन दर्शन किये। उन्होंने फिर से देश-विदेश में जैनधर्म की प्रभावना करने का आदेश देते हुए आशीर्वाद दिया। मैं पावापुरी के लिए रवाना हुआ। पश्चात् ज्ञात हुआ कि २२ अक्टूबर को साम्य-भाव सहित नमिसागर महाराज शरीर त्यागकर स्वर्ग की ओर गये, उनका स्वर्गवास हो गया।



मुनिराज आदिसागरजी

गेडवाल के श्री बालगोड़ा देवगोड़ा पाटील - १०८ परमपूज्य मुनि आदिसागर महाराज का सिवनी में २७ फरवरी सन् १९५७ को शिखर जो जाते समय आगमन हुआ था। उन्होंने आचार्य श्री गांतिसागर महाराज के विषय में मेरी प्रार्थना पर निम्नलिखित बातें बताई -

दर्शनीय विभूति

उन्होंने कहा - “सन् १९१७ की बात है, महाराज का चातुमान नसलापुर में हो रहा था। वहाँ उनका सत्सङ्ग मिला। उनके दर्शन से अंतःकरण में बड़ी गांति मिलती थी। पुन पुन उनके दर्शन के परिणाम होते थे।”

शास्त्र स्वाध्याय में तत्परता

उन्होंने कहा - “चिक्कोड़ी तालुका बेलगान जिला में महाराज का लगभग १० वर्ष पर्यन्त विहार हुआ। उतने समय तक मैं चिक्कोड़ी की अदालत में सरकारी कर्मचारी था। अतः महाराज के दर्शन का बहुधा मौभाग्य मिला करता था। महाराज बहुत शास्त्र-स्वाध्याय करते थे। शास्त्र की गूढ़ गंजाओं को सरलता से समझते थे और सुन्दर समाधान करते थे।”

जनता को भ्रमवर्धक चर्चा में न हो

आचार्य महाराज ने एक स्मरणयोग्य बात कही थी - “खुली मझा में ऐसी चर्चा नहीं चलानी चाहिए, जिससे जनता की दिशा भूल होना सम्भव हो।”

दूध निर्दोष है

एक बार एक अन्य सम्प्रदाय के विद्वान् ने महाराज से पूछा था - “आप चमड़े के पात्र का पानी नहीं लेते? चमड़े के बर्तन का घी नहीं लेते, तब दूध को क्यों लेते हैं? उसमें भी तो मांस का दूषण है।”

महाराज ने कहा था - “आप लोग अनेक नदियों के जल को अत्यन्त पवित्र मानते हैं, किन्तु यह तो सोचिये कि वह जल कहाँ तक शुद्ध है? जिसमें जलज जोष मल-मूत्र त्यागते हैं और जिसमें उनको मृत्यु भी होती है। अनेक दोषों के होते हुए भी यदि जल शुद्ध है, तो दूध क्यों नहीं? एक बात और है, दूध की धैली गाय के गणों में अल।

होती है। जब गाय घास खाती है, तब पहिले उमका रम भाग बनता है। इसके बाद खून बनता है, इसलिये दूध में कोई दोष नहीं है।”

फोटो खिचवाना

उन्होंने बताया - “एक बार में चिकोडी (बेलगाँव) में था। आचार्य महागज उस समय मुनि अवस्था में नसलापुर में विगजमान थे। मैंने चिकोडी के अनेक गृहस्थों के साथ नसलापुर जाकर महाराज से प्रार्थना की कि वे हमें फोटो खिचवाने की मजूरी प्रदान करें। हमारी प्रार्थना स्वीकार हुई। फोटोग्राफर महाराज के पास आया। उसने महाराज से कहा - “महाराज! अच्छी फोटो के लिए यह जगह ठीक नहीं है। दूसरा स्थान उचित है। वहाँ चलिए।” इसके साथ ही इम प्रकार खड़े रहिए आदि विविध प्रकार के सुझाव उपस्थित किए। महाराज अनुज्ञा देकर वचनबद्ध थे। उन्होंने फोटोग्राफर के सकेतों के अनुसार कार्य किया। फोटो तो खिच गई, किन्तु इसके बाद एक विचित्र बात हुई।”

“उम समय महाराज दूध चावल तथा पानी के सिवाय कोई भी वस्तु आहार रूप में नहीं लेते थे। फोटो खींचने की स्वीकृति देने वाली मनोवृत्ति को शिक्षा देने हेतु महाराज ने एक सप्ताह के लिए दूध भी छोड़ दिया। बिना अन्य किसी पदार्थ के वे केवल चावल और पानी मात्र लेने लगे।” महाराज ने बताया - “हमारे मन ने फोटो खिचवाने की स्वीकृति दे दी। इसमें अनेक प्रकार की पराधीनता का अनुभव हुआ। फोटोग्राफर के आदेशानुसार हमें कार्य करना पड़ा, क्योंकि, हम वचनबद्ध हो चुके थे। हमने दूध का त्यागकर अपने मन को शिक्षा दी, जिमसे वह पुनः ऐसी भूल करने को उत्साहित न हो।”

इस प्रकरण से महाराज की लोकोत्तर मनस्विता पर प्रकाश पड़ता है।

रसना इन्द्रिय का जय

नसलापुर चातुर्मास में यह चर्चा चली कि - “महाराज! आप दूध, चावल तथा जल मात्र क्यों लेते हैं? क्या अन्य पदार्थ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।” महाराज ने कहा - “तुम आहार में जो वस्तु देते हो, वह हम लेते हैं। तुम अन्य पदार्थ नहीं देते, अतः हमारे न लेने की बात ही नहीं उत्पन्न होती है।”

दूसरे दिन महाराज चर्या को निकले। दाल, रोटी, शाक आदि सामग्री उनको अर्पण की जाने लगी, तब महाराज ने अजुली बन्द कर ली। आहार के पश्चात् महाराज से निवेदन किया गया - “म्हामिन्! आज भी आपने पूर्ववत् आहार लिया। रोटी आदि

नहीं ली। इसका क्या कारण है?” महाराज ने पूछा - “तुमने आटा कब पीसा था, कैम पीसा था?” इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में यह बताया गया कि रात को आटा पीसा था, आदि। तब महाराज ने कहा - “ऐसा आहार मुनि को नहीं लेना चाहिए।”

इसके बाद तीसरे दिन फिर पूर्ववत् ही महाराज ने आहार लिया। आहार के पश्चात् महागज ने भोजन की अनेक त्रुटियाँ बताईं। भक्ष्य-अभक्ष्य के विषय में पूर्ण निर्णय होने में पंद्रह दिन का समय व्यतीत हो गया। इसके बाद महाराज ने अन्य शुद्ध भोज्य वस्तुओं का लेना प्रारम्भ किया। केवल दूध, चावल जल लेते-लेते लगभग आठ दस वर्ष का समय व्यतीत हो गया था।

महाराज की रसना-इंद्रिय-विजय असाधारण थी। रसना-इंद्रिय की आसक्तिवश आज की दुनिया रसातल की ओर जा रही है। जीभ की लोलुपता की पूर्ति निमित्त आज के जमाने में लोग पाप से तनिक भी भय नहीं खाते हैं। भक्ष्य वस्तुओं में भी लोलुपता की पूर्ति के हेतु विविध रसमय व्यजन बनते हैं। उनकी ओर से मनको हटाकर रस परित्याग व्रत स्वीकार करना सचमुच में महत्त्व की बात है। रसलोलुपी यदि कभी रस त्याग कर भोजन करे, तब वह समझेगा कि इस परित्याग के लिए किस प्रकार मनोजय की अपेक्षा रहती है। आगम में कहा है -

जिबभोवत्थ-णिमित्तं जीवो दुक्खं अणादिसंसारं ।

पत्तो अणंतसो तो जिबभोवत्थे जह दाणि ॥९८८॥ मूलाचार

इस अनादि संसार में जीव ने जीभ तथा स्पर्शन इंद्रिय के कारण अनंत दुःख प्राप्त किए हैं। इसलिए जिह्वा तथा उपस्थ इंद्रियों को वश में करो।

त्यागवृत्ति स्वीकार करने पर भी जिसकी रसना चटपटे पदार्थों की ओर आसक्त होती है, उसे आचार्य महाराज की उच्च तपोमय जीवनी से प्रकाश प्राप्त करना चाहिए।

वृत्ति-परिमंख्यान तप की उच्चता

आचार्य महाराज ने कोनूर में वृत्ति-परिमंख्यान तप प्रारम्भ किया था। उनकी प्रतिज्ञा बड़ी विलक्षण, किंतु अत्यंत विवेकपूर्ण थी। सात दिन पर्यंत प्रतिज्ञा के अनुसार योग न मिलने से महाराज के छः उपवास हो गए। समाज के व्यक्ति सतत चिंतित रहते थे, जिस प्रकार आदिनाथ भगवान को आहार न मिलने पर उस समय का भक्त समाज चिन्तातुर रहा था। सातवें दिन लाभान्तराय का विशेष क्षयोपशम होने से एक गरीब गृहस्थ भीमप्पा के यहाँ गुरुदेव को अनुकूलता प्राप्त हो गई।

महाराज का नियम था कि यदि मिट्टी के वर्तन पर नारियल रख कोई पड़गाहेगा, तो में आहार लूंगा। गरीब भीमप्पा की दरिद्रता वगदान बन गई। उम बेचारे ने निर्धनतावश मिट्टी का कलश लेकर पड़गाहा ओर उसने महाराज को आहार देने का उज्ज्वल सुयोग प्राप्त किया। महाराज ने यह नियम इसलिए किया था कि हर एक उमका पालन कर सकता था।

अपार तेजोमय माधुराज

कोन्नूर में मात सौ गुफाएँ हैं, जहाँ पहले सेकड़ों मुनियों का निवास रहता था। महागज गाँव से दो तीन फर्लांग पर स्थित उन्हीं गुफाओं में रहकर आत्मध्यान करते थे। उस समय उनमें अपार तपस्या का तेज था। उनकी आत्मा अपूर्व शांतिमय थी। उनका मुनि जीवन वास्तविक में अलौकिकता से परिपूर्ण था। उसी समय सर्पकृत उपसर्ग हुआ था तथा महागज ने अद्भुत स्थिरता धारण की थी। उमसे उनका यश विश्वव्यापी हो गया।

दिगम्बरत्व पर महाराज की दृष्टि

भोज के मुनिराज आदिमागरजी को रत्नप्पा स्वामी कहते थे। उनका चिक्कोडी से दस मील दूरी पर स्थित सदलगा ग्राम में चातुर्मास हुआ था। वहाँ जेनों के तीनसो घर थे। रत्नप्पा स्वामी दिगंबर थे। इस पर पुलिस के सब इन्स्पेक्टर ने अपना विरोध पाटील के पास मूचित किया कि तुम्हारे गुरु हमारे दफ्तर के सामने से नग्न रूप में नहीं जा सकेंगे। गाँव के पाटील ने इन्स्पेक्टर से कह दिया कि रत्नप्पा स्वामी हमारे गुरु हैं। उन पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध नहीं चलेगा। इसके पश्चात् जेन ममाज ने बम्बई सरकार के पास एक प्रस्ताव पास कर भेजा कि हमारे गुरु को दिगंबर रूप में विहार करने की अनुज्ञा प्रदान की जाय।

आचार्य महाराज को उक्त प्रस्ताव की बात विदित हुई, तब उन्होंने कहा - “हमें सरकार से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दिगंबर रूप में विहार करना जैनमुनि का धार्मिक अधिकार है।” महाराज की दृष्टि बड़ी मार्मिक थी। यथार्थ में जब जैन गुरु के दिगंबर रूप में विहार करने की शास्त्र की आज्ञा है, तो शासन-सत्ता न्यायानुसार उममें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अपने अधिकार के विषय में प्राप्त निश्चित स्थिति को अधिकारियों की कृपा का केन्द्र बिंदु बनाना महाराज को उचित नहीं लगा।

रमवती वाणी

“उनकी वाणी में अद्भुत मधुरता थी। महाराज का एक तीव्र विरोधी व्यक्ति एक बार सागली जाते समय उनके पास आया। महाराज के साथ मैं और नेमिसागर जी थे। वे मुधारक, मुनियों को आहार दान देने के विरोध में भी आंदोलन करते थे। मिथ्याधर्मी साधु की प्रशंसा करते थे। ऐसे विचित्र व्यक्ति ने मोटर में उतरकर तपोमूर्ति महाराज को प्रणाम किया।”

महाराज बोले - “यह हमारा पक्का शिष्य है। इसलिए मोटर लेकर दर्शनार्थ आया है।” इस प्रसंगी वाणी से सचमुच मैं उस विरोधी के मन में महाराज के उज्ज्वल जीवन के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हो गया।

प्रतिभा द्वारा अन्य साधुओं में प्रभावना

एक बार आचार्य महाराज हुवली पहुँचे। वहाँ एक अन्य सम्प्रदाय के अनेक साधु विद्यमान थे। उनके सघनायक आरूढस्वामी नाम के विद्वान् थे। आचार्य महाराज की सर्वत्र श्रेष्ठ साधु के रूप में कीर्ति का प्रसार हो रहा था, इसलिए आरूढस्वामी पालकी में आरूढ होकर अपने शिष्य समुदाय के साथ आचार्य महाराज के निकट आकर बैठ गए। अपने सम्प्रदाय के विशेष अहंकारवश उन्होंने जैन गुरु को प्रणाम करना अपनी श्रद्धा के प्रतिकूल समझा था। आचार्य महाराज की इस विषय में उपेक्षा दृष्टि रहती थी। कारण, प्रणाम करने या न करने से उनकी न कोई हानि और न लाभ ही है।

उस समय नेमिसागरजी शास्त्र पढ़ रहे थे। सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व का प्रकरण चल रहा था। कुछ समय तक आरूढस्वामी ने शास्त्र सुना और प्रश्न किया - “बार-बार सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व का शब्द सुनने में आ रहा है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का क्या भाव है?”

महामिथ्यात्व के रोग में ग्रस्त व्यक्ति को कैसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का भेद समझाया जावे? उत्तर देना सामान्य बात नहीं। उत्तर तो कोई भी दे सकता था, किन्तु उत्तर ऐसा आवश्यक था, जो हृदय को समाधानप्रद हो तथा जिससे कटुता उत्पन्न न हो। आचार्य महाराज की प्रतिभा ने एक सुन्दर समाधान सोचा। उन्होंने ये अनमोल शब्द कहे - “भीतर देखना सम्यक्त्व है। बाहर देखना मिथ्यात्व है।” महाराज ने कनडी भाषा में ये वाक्य कहे थे। इसे सुनते ही आरूढस्वामी का हृदय-कमल खिल गया। उस ज्ञानवान साधु को अवर्णनीय आनन्द आया। उन्होंने आचार्य महाराज को साष्टांग प्रणाम किया।

और कहा ऐसे सद्गुरु का मुझे अपने जीवन में प्रथम बार दर्शन हुआ। ऐसे महापुरुष को ही अपना गुरु बनाना चाहिए। आरूढस्वामी के सभी शिष्यों ने महाराज को प्रणाम किया। हजारों व्यक्तियों के मुख से जैनगुरु के गौरव व स्तुति के वाक्य निकलते थे। उस समय बड़ी प्रभावना हुई थी।

समयोचित उपदेश

महाराज ने सन् १९२५ में श्रमणवेलगोला की यात्रा की थी। उस यात्रा से लौटते समय आचार्य सघ दावणगिरी में ठहरा था। बहुत से अन्यधर्मी गुरुभक्त महाराज के पास रस, दूध, मलाई आदि भेंट लेकर पहुँचे। रात्रि का समय था। चन्द्रसागरजी ने लोगो से कहा कि महाराज रात्रि को कुछ नहीं लेते हैं। वे लोग बोले - “महाराज गुरु हैं। जो भक्तों की इच्छा पूर्ण नहीं करता, वे गुरु कैसे?” महाराज तो मौन थे। वे भद्रपरिणामी भक्त रात्रि को ढोलक आदि बजाकर भजन तथा गुरु का गुणगान करते रहे।

दिन निकलने पर महाराज का विहार हो गया। वे लोग महाराज के पीछे-पीछे गए। उन्होंने प्रार्थना की कि - “स्वामीजी! कम-से-कम हम लोगो को कुछ उपदेश तो दीजिए।” उनका अपार प्रेम तथा उनकी योग्यता आदि को दृष्टि में रखकर महाराज ने उन लोगो के द्वारा गाये गए भजन के कुछ उनके परिचित शब्दों का उल्लेख कर कहा - “इन शब्दों के अर्थ का मनन पूर्वक आचरण करो और अधिक से अधिक जीव दया का पालन करो, तुम्हारा कल्याण होगा।” इस प्रिय वाणी को सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। महाराज में यह विशेषता थी कि वे समय, परिस्थिति, पात्र आदि का विचार कर समयोचित तथा हितकारी बात कहते थे।

व्यवहार कुशलता

उन भक्तों का मन महाराज के चरणों में इस प्रकार आसक्त हो गया जिस प्रकार मधुकर कमल के प्रति अपार अनुराग धारण करता है। महाराज लगभग दस मील पहुँचे होंगे कि वे भक्त एक गाड़ी में घृत, धान्य आदि सामग्री लेकर सघ के सत्कार की सद्भावना से प्रेरित हो वहाँ पहुँचे। महाराज ने सघपति से कहा - “इन लोगो की प्रेमपूर्ण भेंट तुम्हें स्वीकार करना चाहिए।” उनकी स्नेहपूर्ण भेंट प्रेम भाव से स्वीकार की गई। सुमधुर भोजन द्वारा उन गुरुभक्तों को परितृप्त भी किया गया। महाराज का व्यवहार अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ भी इतना मधुर होता था कि वे इनके चरणों के प्रेमी बन जाते थे।

शेडवाल मे सर्प का उपसर्ग

आचार्य महाराज आत्मवली, उग्रतपस्वी तथा निर्भय हृदय वाले थे। सर्प के द्वारा अनेक बार उन पर उपसर्ग हुआ। सन् १९२२ की बात है - “महाराज शेडवाल अनाथाश्रम की समीपवर्ती गुफा में ध्यानार्थ गए। रात्रिभर वहाँ रहकर ध्यान के पञ्चात् गुफा से बाहर आते समय उन्होंने सबेरे श्रावक से कहा - “होशियारी से भीतर जाना।” उस श्रावक ने भीतर जाकर देखा तो उसे कुछ नहीं दिखा। मैं भीतर गया, तो प्रयत्नपूर्वक खोज की। महाराज के शब्द अन्यथा नहीं हो सकते, इस विश्वास से मैंने विशेष ध्यान देकर इधर-उधर खोज की, तो एक फोटो के पीछे लगभग दो हाथ का सर्प छिपा था। मैंने उसे स्वयं पकड़कर खेत में छोड़ा था।

कोगनोली मे सर्प का उपसर्ग तथा महिमा-प्रसार

महाराज कोगनोली की गुफा में ध्यान करने बैठे थे। एक सर्प पाँच छ हाथ लम्बा तथा बहुत मोटा महाराज के पेट तथा अधोभाग में लिपटा हुआ बैठा था। महाराज गभीर मुद्रा में अवस्थित थे। सैकड़ों लोगों ने आकर देखा। घटा भर के बाद वह सर्प स्वयमेव चला गया।

महाराज का ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होंने उपस्थित लोगों को यह प्रतिज्ञा दिलाई थी कि इस सर्प की बात को जाहिर नहीं करेंगे। लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा की इतनी मात्र पूर्ति की थी कि उन्होंने यह वर्णन नहीं छपवाया, किन्तु वे इसकी चर्चा को नहीं रोक सके। गुरु की ऐसी अपूर्व तपस्या को देख भला कौन अपना मुख बद रख सकता था? कोगनोली में सर्प के भीषण उपद्रव की अवस्था में अविचलित तथा प्रसन्नता पूर्ण ध्यान-मुद्रा से महाराज की महिमा का प्रसार दक्षिण में बड़े वेग से हुआ। लोगों की भक्ति भी खूब वृद्धि को प्राप्त हुई।

गांधीजी का अनुभव

इस प्रसंग में गांधीजी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है - “मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेम की तो कोई सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं साँप के साथ कहीं खेल सकता हूँ? जो अहिंसामूर्ति है, उसके सामने साँप भी ठण्डा हो जाता है, मुझे इस पर पूरा-पूरा विश्वास है।”

(गांधी वाणी पृ २८५ - हिन्दी नवजीवन २८ सितम्बर १९२४)

विश्व के द्वारा आदरणीय गांधीजी के हृदय के उपरोक्त उद्गारो को ध्यान में रखने से आचार्य महाराज की सर्व श्रेष्ठता स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

अपढ किसान रामू का उद्धार

जिनको सब लोग आचार्य कुथुसागर महाराज के नाम से जानते हैं, वे पहले अपढ किसान थे। शरीर सुदृढ़ था। उनका नाम रामप्पा था। वे कपास की मजबूत जड़ को उखाड़ने में प्रवीण थे। इस कारण उनकी 'हत्तीकटिगी रामू' के रूप में प्रसिद्धि थी। रामप्पा महाराज की जय बोलने में प्रवीण था। दो चार जैन-अजैन भजन मात्र याद थे। रामप्पा ने महाराज से क्षुल्लक के व्रत मागे।

चद्रसागर जी ने विरोध करते हुए कहा - “ऐसे जंगली को क्या व्रत देते हो?” महाराज में मनुष्य के हृदय को समझने की अलौकिक दृष्टि थी। उन्होंने देखा - “रामा में स्थिर वैराग्य है।” अतएव उन्होंने रामा को व्रत दिए। वह रामा आचार्य कुथुसागर महाराज के रूप में विकसित हुआ। यह आचार्य महाराज के महान् व्यक्तित्व का प्रभाव था कि उनके पवित्र पारस तुल्य जीवन का स्पर्श पाकर कुधातु रूप लोह-सदृश जीव भी सुवर्णरूपता को प्राप्त होता था।

प्रभावशाली जीवन

“दूसरे की बात ही क्या, मेरा जीवन उन गुरुदेव के अर्चित्य सपर्क के कारण आज निर्वाण दीक्षाधारी बन गया। सन् १९१८ में मेरा एक मित्र मुनि शातिसागर जी के गुण गाता था, तब मैं निरादर भाव से कहा करता था - “उनमें क्या धरा है? वे सामान्य मनुष्य सरीखे होंगे।” एक दिन रविवार को चिकोडी में कचहरी बन्द रहने से मैंने नौ मील पर स्थित नसलापुर जाकर महाराज को देखा। उनके दर्शन होते ही मेरे मन में उनके चरणों के प्रति अपार प्रीति उत्पन्न हुई। उस समय मुझे अवर्णनीय आनन्द प्राप्त हुआ। आज भी उस घटना का स्मरण कर चित्त में महान् शांति प्राप्त होती है। उनकी आत्मा का ऐसा ही प्रभाव पड़ता था, जैसा चुम्बक का लोहे पर पड़ता है। मेरा जीवन बदल गया। मैं आज उनके प्रभाववश ही मुनि बना।

शिष्य को गुरुत्व प्राप्ति

आचार्य महाराज ने देवप्पास्वामी (मुनि देवेन्द्रकीर्ति महाराज) से क्षुल्लक दीक्षा ली थी। देवप्पास्वामी सन् १९२५ में श्रमणबेलगोला में थे, उस समय महाराज भी वहाँ पहुँचे। देवप्पास्वामी ने महाराज का शास्त्रोक्त जीवन देखा था और जब उससे उन्होंने

अपनी शिथिलाचारपूर्ण प्रवृत्ति की तुलना की। तब उनको ज्ञात हुआ कि मेरी प्रवृत्ति मुनिपदवी के अनुकूल नहीं है। देवप्पास्वामी दस गज लम्बा वस्त्र ओढ़ते थे। उद्दिष्ट स्थान पर जाकर आहार लेते थे। आहार के समय वे दिगम्बर होते थे। भोजन के समय जोर से घटा बजता था, ताकि भोजन में अन्तराय रूप वाक्य कर्णेन्द्रियगोचर ही न हो। ऐसी अनेक बातें थीं। देवप्पास्वामी सच्चे मुमुक्षु थे। विषयो से विरक्त थे। उनको सम्यक् प्रणाली का पता नहीं था। उन्होंने आचार्य महाराज से कहा - “मुझे छेदोपस्थापना दीजिये।”

महाराज ने उनको यथायोग्य प्रायश्चित्तपूर्वक पुनः दीक्षा दी। उनके गुरु ने भी गुरुत्व का परित्याग कर शिष्य पदवी स्वीकार की। आचार्य महाराज को अपने गुरु के सम्बन्ध की यह चर्चा करना अच्छा नहीं लगता था।

देवप्पास्वामी का प्रभाव

“देवप्पास्वामी का ब्रह्मचर्य बड़ा उज्ज्वल था। मैंने गोकक में उनकी गौरवपूर्ण कथा सुनी तथा उसकी प्रामाणिकता का निश्चय किया। वे गोकक से कोन्नूर जा रहे थे कि वहाँ की भीषण पहाड़ी पर ही सूर्य अस्त हो गया। उनके साथ एक उपाध्याय था। उसे कण्ठुडी पडित कहते थे। स्वामी ने एक चक्र खींचकर उपाध्याय को उसके भीतर सूर्योदय पर्यन्त रहने को कहा और वे भी उस घेरे के भीतर ध्यान के लिए बैठ गए। रात्रि होने पर एक भयानक शेर वहाँ आया। उसने खूब गर्जना की, उपद्रव किए, किन्तु वह शेर घेरे के भीतर न घुस सका। भय से उपाध्याय का बहुत बुरा हाल था, फिर भी वह घेरे के बाहर नहीं गया। दिन निकलने के बाद स्वामी कोन्नूर पहुँचे, तब उपाध्याय ने सब जगह उपरोक्त कथा सुनाई।

भीमशा की भीषण भक्ति

आचार्य श्री कोगनोली में विराजमान थे। चातुर्मास का समय सन्निकट था। प्रत्येक समीपवर्ती ग्रामवासी चाहता था कि गुरुदेव की चार माह पर्यन्त सेवा का सौभाग्य हमारे ग्राम को प्राप्त हो। कई स्थानों के लोग महाराज के पास एकत्रित हो गए थे। निर्णय होना शेष था। नसलापुर के अनेक लोग आए थे। उनमें शक्ति और भक्ति गुणसंपन्न भीमशा मकदूम नामक व्यक्ति ने ऐसा काम किया, जिसकी कोई स्वप्न में भी शायद कल्पना नहीं करेगा।

महाराज गाँव के बाहर गुफा में ध्यान करने गए। प्रभात में चार बजे महाराज

सामायिक को बैठे ही थे कि भीमशा अपने साथियो सहित गुफा में गया। भीमशा के मस्तक में एक विचित्र विचार आया कि इस समय महाराज ध्यान में है। ये कुछ भी नहीं बोलेंगे। भीमशा ने महाराज को आसन सहित उठाकर अपने बलवान कंधे पर विराजमान कर शीघ्र ही नसलापुर की ओर प्रस्थान किया। सूर्योदय होते समय वे लगभग आठ मील दूर यमगरणी ग्राम पर्यन्त पहुँच गए थे। सामायिक पूर्ण हुई। आकाश में सूर्य को देखकर महाराज का मौन भी पूर्ण हुआ। उन्होंने भीमशा से कहा - “अरे बाबा! अब तो हमें नीचे उतरने दो।” पश्चात् भीमशा का साहस तथा भक्ति देख महाराज हँसने लगे।

कुछ काल के पश्चात् कोगनोली की गुफा में महाराज को न देख अन्य ग्रामों के गृहस्थ महाराज को खोजते हुए उस स्थान पर आए। उन्होंने महाराज से अपने-अपने ग्राम में चातुर्मास हेतु विनय की। उस समय महाराज ने हँसते हुए भीमशा की ओर इशारा करते हुए कहा - “यमराज बैठा है। इससे कौन बच सकता है?” इसके पश्चात् नसलापुर में ही महाराज का चातुर्मास हुआ। ऐसी भक्ति लोगों की महाराज के प्रति रहती थी। लोगों का महाराज के चरणों में इतना प्रेम रहता था कि वे अपने कुटुम्ब, परिवार का भी ममत्व छोड़ महाराज की सेवार्थ अपने प्रिय प्राणों के परित्यागार्थ तैयार रहते थे।

महाराज के समक्ष जब भीम सरीखा शक्तिशाली भीमशा आता था, तब महाराज के मुख-मडल पर स्मित की मधुर रेखा आ जाती थी। सभवतः महाराज को भीमशा की अद्भुत भक्ति की स्मृति आ जाती रही होगी।

शेडवाल में महान् प्रभाव

“महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत प्रभाव पूर्ण रहा है। शेडवाल में आश्रम खोलने का उद्योग चल रहा था। समाज में अनैक्यवश तीन पटी हो गई थीं, अतः कार्य असफल हो रहा था। मैंने आश्रम खोलने की चर्चा महाराज को पधारने पर प्रारम्भ की, तब एक व्यक्ति ने विरोध करते हुए कहा - “कानडी में एक कहावत है, ‘हिडीयोल तुम्बिरे पकमेल तोडेयल’ इत्यादि शब्द कहे - उसका अर्थ यह है कि यदि मुट्ठी के भीतर कीचड़ भरी है, तो बाहर से हाथ के धोने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?” मैंने कहा - “रत्नत्रयपुरी में आश्रम की स्थापना का लक्ष्य उस अतः कारण में विद्यमान पक को दूर करना है।” उस समय महाराज की उपस्थिति मात्र से लोगों के मनोभावों में महान् परिवर्तन हुआ। जहाँ वर्षभर के लिए दोसौ रुपया इकट्ठा होना दुष्कर था, वहाँ लोगों ने स्वयं उत्साहित होकर महाराज के नाम पर उस पाठशाला की योजना करके पंद्रह वर्ष के खर्च की तत्काल व्यवस्था करली। सबका मनोमालिन्य भी दूर होकर एकता हो गई। श्रेष्ठ तपस्या और

उज्ज्वल चांग्रि क काग महागज का आग्रयजनक प्रभाव पड़ता था। वे आत्मशक्ति के सुन्दर सम्पूर्ण-स्वरूप प्रतीत होते थे।

जिथिलाचार्य मुनि-मार्ग को उज्ज्वल बनाया

आचार्य महागज के द्वारा दिगम्बर मुनि के जीवन को नवजीवन प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने जीवन को तत्कालीन विभागों में विमुक्त रखकर मार्ग को भी शुद्ध बनाया। आज तो लोग उस अवस्था की कल्पना तक नहीं कर सकते जब कि मुनि एक धोती आदि लेते थे। एक धोती दस दिन के उपयोग हेतु रखते थे। भोजन की व्यवस्था श्रावकों के घर जाकर उपाध्याय पहले से करता था। एक उग्र तपस्वी मुनि थे। वे आठवें दिन आहार करते थे। अज्ञानतावश उनको मुनि पद के योग्य बातों का परिज्ञान नहीं था। उनका आहार कहाँ होगा वह वान छह माह पूर्व से निश्चित हो जाती थी। आहारदान करने वालों की सूची तैयार रहती थी। आहार में प्रदान की जाने वाली भोज्य सामग्रियों को श्रावक के यहाँ से मगवाकर वे शुद्ध करके वाष्पित भोज देते थे। दस दिन जब आहार होता था तो वही सामग्री उनको अर्पण की जाती थी। श्रावक के घर जाकर वे अपना वस्त्र टांग देते थे। जोग-जोग से उठा बजता था उस समय वे आहार लेते थे। यदि किसी उपाध्याय को किसी स्वामी के आहार की योजना में असफलता हुई, तो वह भोजन के प्रमुख व्यक्ति के पीछे लगकर आग्रह करता था कि आप प्रमुख हैं। आपको आहार कराना ही होगा। हम स्वामी को आहार के लिए कहाँ ले जावे? आदि रूप में दिगम्बर मुनि का मार्ग अत्यन्त मलिन हो रहा था। सूर्योदय से जैसे रात्रि का घन अधका दूर होता है उसी प्रकार आचार्य जान्निमाग महागज रूपी सूर्य के उदय ने मुनिचर्या में ज्योति जगा दी। उनका यह महान् उपकार कौन भूल सकता है? जैन संस्कृति के कल्याण निमित्त ही उनका जगत् निर्मित हुआ था ऐसा प्रतीत होता है।”

मोचविचारकर व्रतदान

आचार्य महागज बहुत दूरदर्शी थे। उनसे जब कोई व्रत माँगता था, तो वे व्रत लेने वाले की सम्पूर्ण (वर्तमान तथा आगामी) परिस्थिति पर दृष्टिपात कर लेते थे। मैंने कोनूर में महाराज से पचाणुव्रत लिये। परिग्रह का परिमाण करते समय मैंने कहा - “मैं पाँच हजार रुपयों को रखने का परिमाण करता हूँ।”

महाराज ने कहा - “इतने में तुम्हारा निर्वाह नहीं होगा। उससे आकुलता उत्पन्न होगी।” अतएव महाराज के कथनानुसार मैंने परिग्रह परिमाण लिया था।

पात्र के योग्य प्रायश्चित्त

“एक बार मारवाड के नावा ग्राम मे दिगम्बर जैन महासभा के अधिवेशन मे, मैं बालगोडा और दरीगोडा के साथ पहुँचा था। मैं तथा मेरे साथी, जिन्हे मैं काका कहता था, जैन के हाथ का ही जल पीते थे। महासभा के एक उच्च पदाधिकारी सज्जन ने हमसे कहा कि यहाँ शोध के चौके में जैनी ही पानी लाता है तथा भोजन बनाता है। हमने उस चौके में दो-तीन दिन भोजन किया। अन्त में पता चला कि वहाँ कहार जाति का आदमी पानी लाता था। इससे मेरे मन मे बहुत खेद उत्पन्न हुआ। वापिस लौटकर हमने आडते नामके स्थान पर आचार्य महाराज के दर्शन किए। यह कोल्हापुर के समीप है।

विवेकपरायणता

हमने आचार्य महाराज के समक्ष अपना सर्व वृत्तान्त सुनाया कि उत्तरप्रान्त मे जाने पर किस प्रकार हमारे नियम मे दूषण आ गया। आचार्य महाराज ने सम्पूर्ण कथन ध्यान से सुना। इसके पश्चात् महाराज ने प्रायश्चित्त ग्रन्थ उठाकर लगभग आधा घटे के अनन्तर हमे महामन्त्र की विशेष जापरूप प्रायश्चित्त दिया। मैंने कहा - “इतना प्रायश्चित्त देने मे आपको अधिक समय क्यों लगा?”

महाराज ने कहा - “शास्त्र मे उपवास का प्रायश्चित्त अनेक स्थल पर बताया गया था। हम जानते हैं कि तुमको सरकारी काम के कारण बाहर सदा दौरा करना पड़ता है, इससे तुमको उपवास रूप प्रायश्चित्त क्लेशदायी हो जायगा। यह विचार कर हम तुम्हारे योग्य प्रायश्चित्त को देखते थे। इसमे हमे समय लग गया।”

इस प्रकरण से यह बात प्रकाश मे आती है कि आचार्य महाराज मे कितना उच्च विवेकभाव विद्यमान था। सामान्य बुद्धि के मनुष्य की बात तो दूसरी, बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी कभी-कभी सोचते थे कि महाराज ने अनेक आगमिक विषयो पर विशेष प्रकार का मत निर्धारण क्यों किया? उन सब लोगो के समक्ष यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य महाराज अत्यन्त दूरदर्शी तथा विचारशील थे। अतएव गम्भीर विचार के अनन्तर किसी भी बात का निश्चय करते थे। सचमुच मे वे लोकोत्तर महात्मा थे।

प्रश्न - मैंने आचार्यश्री से कहा, “आप व्रत देते समय काफी सोच-विचार क्यों करते है? जो व्यक्ति आकर व्रत माँगता है, उसकी मनोकामना क्यों नहीं पूर्ण करते?

उत्तर - हम व्रत देते समय जीव का कल्याण विचारते हैं। यदि अल्प शक्ति वाले व्यक्ति ने अधिक कठिन नियम ले लिया, तो वह व्रत पालन न करके व्रतभग दोष

के कारण दु खी हागा । हम एम्मा व्रत नहीं नेत, जिमको न पालन क कारण उम आत्मा को क्लेश हो अथवा उमका अकल्याण हो ।

वर्तमान समय म सामान्य व्यक्ति पर भी महान् व्रता का भार गबन का अमधुर फल अनेक जगह दिखाई पडता है । आचार्यश्री उतावली न कर विवेक में काम करते थे । वे अधिक दीक्षित बनान की प्रमिद्धि में पड़े थे । उनकी दृष्टि मार्मिक थी ।

बेगलोर हाईकोर्ट के जज श्री टी के तुकोल की धर्मपत्नी ने आचार्यश्री के पाम आकर गत्रिभोजन त्याग का व्रत मागा । महाराज ने कहा, “वाई तुम्हाग पति वडा अधिकारी बनेगा । उम समय अपनी प्रतिज्ञा का पालन न कर सकागी ।” उम वार्ड की पूज्यश्री से चर्चा के समय जस्टिस महोदय आ गए । जब उन्होंने आचार्यश्री से कहा, मैं व्रत पालन में बाधक नहीं बनूंगा, तब महाराजश्री ने गत्रिभोजन त्याग सदृश छोटा व्रत दिया था । इस बात पर अन्य साधुजन को ध्यान देना आवश्यक है । पात्रता आदि का गहराई से विचार करके व्रतदान स्व-पर हितकारी होगा ।



आ. अनन्तकीर्ति महाराज

अपूर्व आध्यात्मिक आकर्षण

मुनि अनन्तकीर्ति महाराज बेलगाँव वालो ने बताया - “आचार्य महाराज का व्यक्तित्व असाधारण आध्यात्मिक आकर्षण का केन्द्र था। जिस प्रकार चुम्बक लौह पदार्थ को अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार अच्छी भवितव्य वाले भव्य जीव उनके सान्निध्य को पाकर उनसे बहुत कुछ प्राप्त करते थे। उनके उपदेश के बिना ही बहुतों की आत्मा पाप-पक से निकलकर सयम की उज्ज्वल भूमि में अवस्थित हुई है।”

अपना अनुभव

उन्होंने स्वयं अपना अनुभव इस प्रकार बतलाया - “आचार्य शान्तिसागर महाराज कोन्नूर ग्राम में अपना वर्षाकाल व्यतीत कर रहे थे। मैं उनके पास जाया करता था। उनका दर्शन कर मन में यही इच्छा होती थी कि मैं भी दिगम्बर मुद्रा धारण कर उनके साथ में रहूँ। बार-बार न जाने क्यों ऐसी इच्छा हुआ करती थी कि घर में, कुटुम्ब में, व्यापार में तथा परिवार में कुछ नहीं रखा है। उन साधुराज सदृश वन में शान्ति का लाभ होगा।”

व्यक्तित्व का प्रभाव

“उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहण की। एक वर्ष के पश्चात् क्षुल्लक पद ग्रहण किया। इसके बाद मैं निर्ग्रन्थ बना। मैंने क्षुल्लक पद पञ्चकल्याणक के अवसर पर लिया था, किन्तु आचार्य शान्तिसागर जी के पास आकर मैंने नवीन रूप से पुनः दीक्षा ली थी।”

पुनः दीक्षा लेने का हेतु

मैंने अनन्तकीर्ति महाराज से पूछा - “जब आपने दीक्षा ले ली थी, तब पुनः दीक्षा लेने का क्या कारण था?”

उन्होंने कहा - “दीक्षा गुरु पाहिजे - दीक्षा-गुरु होना आवश्यक है।” उनके वाक्यों को सुनकर सचमुच मैं यह बात मन को उचित लगी। कई मुमुक्षुजन सद्गुरु का सान्निध्य पाने का प्रयत्न न करके स्वयं दीक्षा ले लेते हैं। उनकी कृति में अनेक बातें कभी-कभी ऐसी आ जाती हैं, जो उनके जीवन में नहीं होती, यदि उन्होंने किसी को

दीक्षागुरु बनाया होता। अनुभवी गुरु शिष्य के जीवन की अपूर्णताओं तथा विपरीत प्रवृत्तियों के परिणामों का मन्त्रवृत्त कार्य करते हैं। जो शिष्य न बनकर स्वयं गुरुपदार्थ बनता है, उसके जीवन में समय की सुवास नहीं दिखती, किन्तु स्वच्छन्द प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

ध्वनिधु में मद्गुरु नाविक हैं

जिन तरह महान् मंवर या मिन्धु में चतुर नाविक का आश्रय प्राणों का रक्षण करता है, उन्हीं प्रकार ध्वनिधु में मद्गुरु का अवलम्बन ग्रहण करना हितकारि होता है।

आत्मा के हितार्थ अहंकार का त्याग आवश्यक है

जब आत्मा का कल्याण करना है, मागे कुटुम्ब-परिवार को छोड़ना है, तब स्वात्मनिष्ठि के प्रेमा माधु को छोटे से अहंकार रूपी शत्रु को और छोड़ देना चाहिए। यह थोड़ाना अहंकार महान् माधु को लघु बनाते हुए उनकी माधुता को कभी-कभी मोह की धँवर में डुबो दिया करता है। इन प्रकाश में अनन्तकीर्ति महागज की बात बड़ी सुन्दर लगती है कि उन्हें गुरु नहीं मिला था- किन्तु तत्पश्चात् मद्गुरु मिल गये, तो उनमें दीक्षा ली। यह कार्य उज्ज्वल है, प्रशम्न है। अधिनन्दीय एवं अधिवन्दीय है। अन्य सुमुख बग को इस सम्बन्ध में अवश्य दृष्टि देने की प्रार्थना है।

दीक्षा लेने में कुटुम्बी बाधक नहीं बने

अनन्तकीर्ति महागज से मैंने पूछा - “महागज आप तो बड़े सम्पन्न परिवार के व्यक्ति रहे, दीक्षा लेते समय क्या कुटुम्बी लोग बाधक नहीं बने?”

उत्तरार्थ वैगम्य की ज्योति

उन्होंने कहा - “हमारे मन में प्रेम हटने के बाद कुटुम्बियों में गेकने की भला क्या ताकत थी?” मचमुच में जब अन्त कर्ण में यथार्थ वैगम्य की ज्योति जगती है, तब उस भाग्यशाली को विषयों की दामता त्यागकर आत्मस्वातन्त्र्य के पथ में प्रवृत्ति करने वाले को कौन गेक सकता है? उदीयमान प्रभातकालीन प्रभाकर को क्षितिज पर देखकर ऐसा कौन है, जो उसकी वृद्धि को रोककर उसे पुनः उषा की गोद में मुला मके? हाँ, असली वैगम्य चाहिए। ज्ञान-वैगम्य अल्प काल तक टिकता है - जैसे मट्टे का व्यापारी क्षण में धनवान् बन जाता है। श्रीमन्तों में महाश्रीमन्त बनता है और थोड़े समय के बाद ही वही दरिद्रों की पंक्ति में भी बैठ जाता है, अतः विवेकी, मन के मजबूत होने पर ही अपना कदम उठाया करते हैं।

क्या मुनिपद कठिन है?

मैंने पूछा - “आपने मुनिपद जैसी कठिन चीज को बहुत जल्दी कैसे ग्रहण कर लिया?”

अनन्तकीर्ति महाराज ने कहा - “मुनि का जीवन कठिन नहीं है। वास्तव में आत्मकल्याण का पथ सुलभ है। अज्ञान के कारण जीव उसे कठिन मानता है और जो वास्तव में कठिन है, उसे सुलभ समझता है। घर के काम की अपेक्षा मुनि का जीवन सुलभ होता है।” वे कहने लगे - “पण्डित जी! कपड़े ओढ़कर आपको जितनी ठंड लगती है, उतनी ठंड हमें दिगम्बरत्व में लगती है।”

मैंने पूछा - “महाराज! यह कैसी बात है?”

उत्तर - “अन्तरङ्ग में ‘धृति-कम्बल’ - धैर्य रूपी कम्बल ओढ़कर हम रहते हैं। उस कम्बल के धारण करने पर आनन्द से शीत ऋतु व्यतीत हो जाती है।” उन्होंने समझाया - “आप लोग व्यापार करते हैं। भयकर गर्मी में बैठकर व्यापार में निमग्न रहते हैं, तब क्या गर्मी लगती है? उस समय धनोपार्जन के आनन्द के कारण जिस प्रकार गर्मी का कष्ट कष्टरूप नहीं लगता, इसी प्रकार परीषदादि भी सयमी पुरुषों को बाधक नहीं होते।”

अद्भुत योगी

उन्होंने उस समय शान्तिसागर महाराज के सत्सङ्ग का उल्लेख करते हुए बताया था - “आचार्य महाराज अद्भुत योगी की तरह ध्यान में निमग्न रहते थे, जब चाहे तब वे अपनी आँखों को बन्द कर देते थे और अपने आप में मस्त रहा करते थे।” वास्तव में, जैसे फिल्म (चित्रपट) देखते समय बाहरी प्रकाश बुझा देना उपयोगी रहता है, ठीक इसी प्रकार अतर्ज्योति के दर्शन के लिए चक्षुरूपी बाहरी खिडकियों को बन्द करना आवश्यक है। इतना ही क्यों, आत्मा के असली आनन्द - अवर्णनीय रस का निर्झर तो तब बहता है और उसमें आकण्ठ निमग्न होने का अपूर्व सुखद अनुभव तब प्राप्त होता है, जब आत्मा व्यग्रता के कारणरूप स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन इन्द्रियों से सम्पर्क दूरकर उपद्रवी मन को कसकर बाँध लेता है। जो खाते-पीते, मौज-उडाते, खेलते-कूदते, विषय सेवन करते हैं, मान-अपमान की गठरी पास रखते हैं, रागद्वेष का कचरा साथ में रखते हुए आत्मानन्द की उज्ज्वल बाते बनाते हैं, उनकी बाते ऐसी लगती हैं, जैसी किसी दरिद्र के मुख से श्रीमन्तों को भी तिरस्कृत करनेवाली धनवैभव की चर्चा निकलती है।

अहंकार का प्रभाव

आचार्य अनंतकीर्ति महाराज ने कहा था - “एक बार आचार्य ज्ञातिसागर महाराज कुभोज पहुँचे। एक व्यक्ति धर्ममार्ग से डिग चुका था। उसके सुधार हेतु महाराज के भाव उत्पन्न हुए। महाराज ने उस व्यक्ति को अपने पास बुलाने का विचार किया।” उस पर चंद्रसागरजी ने कहा - “महाराज! वह दुष्ट है। बुलाने पर वह नहीं आयगा, तो आपका अपमान होगा।”

आचार्य महाराज ने कहा - “हमारे पास मान नहीं है, तो अपमान कैसे होगा? मान होने पर अपमान का भय उचित था।” इसके पश्चात् वह व्यक्ति महाराज के पास आया। उनके तपोमय व्यक्तित्व ने उस पापी हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। महाराज के कथन को सुनकर उसने अपने जीवन में समुचित सुधार कर लिया। आचार्य श्री लोकोत्तर साधुराज थे।



आ. देशभूषण महाराज

१०८ आचार्यरत्न देशभूषण महाराज सन् १९५७ मे देहली मे थे। उस समय हम देहली, राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसादजी के पास जबलपुर के वृहत् जैन पचकल्याणक महोत्सव मे उनके पधारने की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु गए थे। दिसम्बर माह मे महामहिम राष्ट्रपतिजी से भेट हुई थी। लगभग ५० मिनट तक उन भद्रस्वभाव वाले महान् सत्पुरुष से चर्चा हुई थी। पश्चात् मैं आचार्य देशभूषण महाराज के पास आया। मैंने प्रार्थना की कि मुझे आचार्य शातिसागर महाराज के विषय मे कुछ महत्त्वपूर्ण सस्मरण सुनाइये।

उपगूहन तथा स्थितीकरण

देशभूषण महाराज ने कहा था - “स्व आचार्य महाराज मे उपगूहन तथा स्थितीकरण अग अपूर्व थे। किसी साधु के दोषो की चर्चा चलने पर लोगो के समक्ष वे चुप रहते थे। शात रहते थे। एकान्त स्थान मे वे सदोष साधु को खूब दड देते थे। लोगो के द्वारा की गई चुगली पर वे विश्वास न करके स्वय अपनी पैनी दृष्टि डालकर दूसरे की मानसिक अवस्था का अनुमान कर लिया करते थे। उनके आत्म-तेज के कारण अपराधी स्वय भी अपराध को स्वीकार करता था।”

प्रेमपूर्ण मार्मिक शिक्षा

देशभूषण महाराज ने कहा - “मै नवदीक्षित और छोटी अवस्था का मुनि था। नाद्रे मे मैं आचार्य महाराज के पास गया। मैंने उनकी वदना की। उन्होने दयाकर मेरी वदना को स्वीकार कर प्रतिवदना की।” उन्होने मुझ पर अपार प्रेम भाव व्यक्त करते हुए कहा - “तुम हमारे भाई हो। सदा आगम के अनुकूल चलना। किसी के बहकावे मे मत आना। तुम्हारी उमर छोटी है। सम्हाल कर काम करना। तुम क्षत्रियवश के हो। घराने को धब्बा लगे, ऐसा काम कभी मत करना। तुम भ्रम उत्पन्न करने वाले बडे-बडे भूतो से बचना। धर्म की खूब प्रभावना करना।”

सयम की चिन्ता

पढाई की बात न पूछकर पहले हमारे सयम का हाल पूछा - “तुमने कितना प्रतिक्रमण किया? दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक आदि कितने किए हैं?” किन्हीं विषयों मे गडबडी ज्ञातकर वे पूछने लगे - “खाने के कारण तो गडबडी नहीं हुई

है।” हमने कहा - “महाराज! आपके चरणों में हम आत्म निर्मलता के हेतु आए हैं। आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं।”

अकेले भ्रमण का निषेध

महाराज ने लोगों से कहा - “हमारा भाई आया है। उसका उपदेश होगा।” मेरा उपदेश सुनकर वे मत्त हुए। पश्चात् एकान्त में समझाने लगे, तुम चतुर्थ हो और यह पंचम जाति का है, इस प्रकार जाति के साथ भेदभाव मत करना। लोग झगड़ा मोल लेते हैं। तुम शत्रु पर गुस्सा मत करना। शत्रु भी यदि त्यागी हो तो उसे साथ में रखना। अकेले भ्रमण मत करना। तुम्हारा भी कल्याण होगा।”

देशभूषण महाराज ने बताया था - “प्रतिवर्ष आचार्य महाराज को पत्र भेजकर उनसे प्रायश्चित्त जात कर हम प्रायश्चित्त ग्रहण करते रहे हैं।”

मार्मिक उपदेश

उन्होंने कहा था - “प्रायश्चित्त शास्त्र पढ़ना। प्रायश्चित्त शास्त्र दूसरों को पढ़कर नहीं सुनाना। प्रथमानुयोग का भी मनन करना। एकान्त में अपनी शांति के हेतु समयसार पढ़ना। सार्वजनिक रूप में समयसार नहीं पढ़ना।”

प्रपितामह सदृश आचार्य महाराज

चर्चा के प्रसंग में देशभूषण महाराज ने बताया - “मुनि जयकीर्ति महाराज उनके दीक्षागुरु थे। जयकीर्ति महाराज के गुरु पायसागर महाराज थे। पायसागरजी के गुरु आचार्य शातिसागर महाराज थे। इस दृष्टि से आचार्य महाराज देशभूषण महाराज के प्रपितामह हुए।” उस पर मैंने कहा - “तब तो समय की दृष्टि से आप महाराज शातिसागर जी के प्रपौत्र ठहरे।” देशभूषण महाराज ने कहा - “बिल्कुल ठीक बात है।” क्षण भर में वैराग्य की लहर आने पर वे कहने लगे - “पंडितजी! किसका पिता, किसका पुत्र कौन किसका है? जगत् में सभी जीव अलग-अलग हैं।”

आचार्यश्री का श्रेष्ठ विवेक

इसके पश्चात् देशभूषण महाराज ने कहा - “आचार्य शातिसागर महाराज ने अपने जीवन की एक विशेष घटना हमें बताई थी। एक ग्राम में एक गरीब श्रावक था। उसकी आहार देने की तीव्र इच्छा थी, किन्तु बहुत अधिक दरिद्र होने से उसका साहस आहार देने का नहीं होता था। एक दिन वह गरीब प्रतिग्रह के लिए खड़ा हो गया। उसके

यहाँ आचार्यश्री की विधि का योग मिल गया। उसके घर में चार ज्वार की रोटी थी। उन्होंने सोचा कि यदि इसकी चारो रोटी हम ग्रहण कर लेते हैं, तो यह गरीब क्या खायेगा? इससे उन्होंने थोड़ीसी भाकरी, थोड़ा दाल चावल मात्र लिया था। उस समय गरीब श्रावक का हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा था। उसके भक्ति से परिपूर्ण आहार को लेकर वे आए और सामायिक को बैठे। उस दिन सामायिक में बहुत मन लगा। बहुत देर तक सामायिक होती रही। शुद्ध तथा पवित्र मन से दिए गए आहार का परिणामो पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वे लोकोत्तर थे।”



आचार्य विमलसागर महाराज

डाकू का कल्याण

१९ जनवरी १९५९ को १०८ मुनि विमलसागर महाराज फलटण चातुर्मास के उपरान्त शिखरजी जाते हुए सिवनी पधारे थे। उन्होंने बताया था कि आचार्य शातिसागर महाराज आगरा के समीप पहुँचे। वहाँ जैन मंदिर में उनके पास एक महान् डाकू रामसिंह पद्मावती पुरवाल वेष बदलकर गया। महाराज के पवित्र जीवन ने उस डाकू के हृदय में परिवर्तन कर दिया। उसने महाराज से अपनी कथा कहकर क्षमायाचना की तथा उपदेश हेतु प्रार्थना की। महाराज ने उससे कहा - “तुम णमोकार मन्त्र जपो” णमोकार मन्त्र जपते ही उस डाकू के तत्काल प्राणपखेरू उड़ गए। जीवन कितना क्षणिक है। क्षणभर में उसका कल्याण हो गया।

आचार्य विमलसागरजी ने कहा था - “स्व आचार्य महागज आगरा तरफ पधारे थे। उनकी कृपा से हमें यज्ञोपवीत प्राप्त हुआ था, जो रत्नत्रय का लिङ्ग है। उस रत्नत्रय के चिह्न के निमित्त से आज मुझे निर्ग्रन्थ पदवी प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। उनके सम्पर्क से परिणामो में अपूर्व उत्साह उत्पन्न होता था। आत्मकल्याण की ओर भाव बढ़ते थे।”



श्रावकों के संस्मरण

सर सेठ हुकमचन्द्र जी, इन्दौर

हमने ११ मार्च सन् १९५७ को अपने भाई अभिनदन कुमार दिवाकर एडवोकेट के साथ इन्दौर जाकर गवाराजा राज्यरत्न श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्द्र जी मे इन्द्रभवन मे आचार्य शातिसागर महाराज की ममाधिचर्चा करते हुए आचार्य महाराज के विषय मे उनके विचार पूछे। आचार्य महाराज के प्रति अत्यन्त हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करते हुए जेनविभूति सेठ हुकमचन्द्र जी कहने लगे -

लौकान्तिक रूप में जन्म की कल्पना

“आचार्य महाराज अपूर्व साधु थे। उनका अन्त सुधा गया, इससे उनका सब सुधर गया। ऐसे अपूर्व साधु हमने अन्य नहीं देखे। उनकी परिणति को देखकर हमें ऐसा लगता है, कि वे अवश्य लौकान्तिक देव हुए होंगे। हमारा मन ऐसा भी बोलता है कि वे सोधमेन्द्र हुए होंगे। दोनों ही अवस्थाएँ ऐसी है, जहाँ से एक भव के उपगन्त वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।”

धर्म की सम्हाल

मैंने पूछा - “सेठ साहब! आचार्य महाराज ने आपको क्या कोई महत्त्व की बात कही थी?”

सेठ साहब ने कहा - “महाराज ने कहा था कि धर्म को अन्त तक सम्हालना।”

“मैंने महाराज से यह भी कहा था - “महाराज! मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मेरा अन्त धर्म मे ही हो। मेरी आत्मा के सब परमाणु धर्ममयी हो जावे।” महाराज ने अपने मङ्गलमय आशीर्वाद से मुझे कृतार्थ किया। श्रावकोत्तम सेठ सा ने यह भी कहा था - “आचार्य महाराज मे एक बहुत बड़ी बात थी, जो मैंने उनमे ही देखी। वह बात यह थी कि उनके पास पहुँचते ही मन को बड़ी शांति मिलती थी। मे बहुत ठिकाने गया, किन्तु महाराज के समान शांति नहीं मिली। हम चाहते है कि उनके समान हमारी आत्मा का भी कल्याण हो जावे। उनके समान ही आत्मा का चिन्तन करते-करते हमारा भी अन्त हो जावे।”

इसके पश्चात् मेरी दृष्टि उस राजोचित वैभवपूर्ण इन्द्रभवन मे उच्चस्थल पर स्थित पिच्छी तथा कमण्डलु की ओर गई। मैंने पूछा - “सर सेठ साहब! आपके इस राजप्रासाद मे ये वस्तुएँ कैसे रखी गई?”

वे बोले - “पंडितजी साहब! अपने अन्तकाल मे मैं पिच्छी कमण्डलु वाला बनना चाहता हूँ।”

एक धनकुबेर का ऐसा अकिंचनता को अपनाने का ध्येय बड़ा लोकोत्तर है। मैंने कहा - “आपने जीवन भर तो पिच्छी वाले बाबा आचार्य महाराज के चरणों का पीछा किया और अब आप उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् पिच्छी का पीछा कर रहे हैं।”

इस पर सेठ साहब बड़े जोर से हँसने लगे और कह बैठे - “आप बहुत ठीक कहते हैं। असली वैभव त्याग मे है। इस पुद्गल मे क्या धरा है? यह तो नाशवन्त है।”

इस चर्चा के उपरांत सर सेठ साहब ने हमारे आदरणीय पिता श्री सिंघई कुवरसेन जी के सुख-स्वास्थ्य की चर्चा की। सेठ साहब ने कहा - “सिंघई कुवरसेन जी हमारे जूने (पुराने) दोस्त हैं। बहुत प्यारे हैं। हमारी बराबरी के है। उनको हमारा जय जिनेन्द्र अवश्य कहना। भैया! हमे बड़ी खुशी है कि वे धर्मध्यान मे बहुत सावधान है।” ससार का स्वरूप विचित्रित है। अब सर सेठ हुकमचन्द्रजी नहीं हैं और न हमारे पूज्य पिता सिंघई कुवरसेन जी ही हैं। दोनों स्वर्गवासी हो गए।

आचार्य महाराज ने सर सेठ हुकमचंदजी के बारे मे कहा था, “सारे भारत की जैन समाज मे हुकमचंद सरीखा वजनदार आदमी और देखने मे नहीं आया। राज-रजवाडो मे उनके शब्द की मान्यता रही। इससे जैनो का बहुत लाभ हो गया। हुकमचंद के निमित्त से जैनधर्म पर आया सकट बहुतबार टला है।

ब्र. पं. वंशीधर जी न्यायालंकार, इन्दौर

पूर्वकालीन मुनियो सदृश आचरण

श्रीमान ब्र प वंशीधर जी न्यायालंकार स्याद्वाद-वाचस्पति इन्दौर के निवास स्थान पर हमने आचार्य महाराज की चर्चा चलाई तो प्रकाण्ड विद्वान् पंडितजी ने सूत्र-रूप से ये शब्द कहे थे - “वर्तमान काल मे भी आचार्य महाराज पूर्वकालीन दिगम्बर जैन मुनियो सदृश आचरण करते थे। वे प्रकृति के सरल थे। कठिन तपस्वी थे। दूरदर्शी, गभीर, मितभाषी तथा दिगम्बर जैनमार्ग मे दृढ श्रद्धालु थे। वे मदकषायी थे। उनमे महान्

गुण अपरिश्रावीपने का था। इससे दु खी आदमी अपना दु ख-दर्द उनके समक्ष बिना भय के प्रगट कर देता था।”

मार्मिक शास्त्रज्ञान

पंडितजी ने आचार्य महाराज के शास्त्रीय ज्ञान की मार्मिकता का उल्लेख करते हुए कहा - “एक बार महाराज से शुद्धोपयोग के बारे में चर्चा हुई थी।” कुछ लोग कहते थे कि चौथे गुणस्थान में ही शुद्धोपयोग होता है। उस समय महाराज ने कहा था - “सातवे गुणस्थान में शुद्धोपयोग है। मैंने भी महाराज का समर्थन किया था कारण “शुद्धस्य सत उपयोग शुद्धोपयोग” स्वयं शुद्ध होते हुए जो उपयोग है, वह शुद्धोपयोग है। चारित्र-मोह के मदोदय वाले का उपयोग शुद्धोपयोग है। यह सातवे गुणस्थान से होता है।” इस सबध में कुदकुद स्वामी द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण मिलता है। अशुभ, शुभ तथा शुद्धरूप त्रिविधभाव हैं। आर्त, रोद्र अशुभ भाव हैं। वे त्याज्य है, कारण कुगतिप्रद हैं। धर्मध्यान शुभभाव है। इसकाल में शुक्लध्यानरूप शुद्ध भाव का अभाव है। अतः धर्मध्यान का ही आश्रय हितप्रद है। सातवे गुणस्थान पर्यंत धर्मध्यान है। श्रेणी आरोहण काल में शुक्लध्यान, शुद्धभाव होता है। अतः पंचमकाल में शुद्धभाव शुक्ल ध्यान, शुद्धोपयोग नहीं होगा। धर्मध्यान साक्षात् स्वर्गप्रद तथा परंपरा से मोक्षप्रद है। “परे मोक्षहेतू” सूत्र धर्मध्यान को भी शुक्लध्यान सदृश मोक्ष का हेतु कहता है।

आचार्य महाराज व्यवहार और निश्चय नययुगल को उपयोगी मानते थे।

सेठ चन्दूलाल जोतीचन्द सराफ वारामती

सेठ चन्दूलाल जोतीचन्द सराफ वारामती ने सपरिवार जिस उदारभाव से प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक गुरुसेवा की है, उसे भारत के सब लोग जानते हैं। बम्बई के सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी जौहरी सघपति, महाराज के प्रथम कोटि के भक्त रहे हैं। उसी श्रेणी में श्रीचन्दूलालजी का नाम आता है। लोग इन्हें चन्दू काका कहा करते हैं। उनसे मैंने पूछा - “क्या कभी-कभी आचार्य महाराज भी आपको काका कह देते थे?” उन्होंने कहा - “हाँ! क्या बताऊँ, महाराज भी मुझे काका कह देते थे?” चन्दू काका ने महाराज के सस्मरण सुनाते हुए कहा - “महाराज ने हमसे कहा था कि तुम व्रत ले लो। तुम हमारी बात मान लो। अब हमारे सरीखा कहने वाला तुम्हें नहीं मिलेगा।” मैंने महाराज से कहा - “महाराज! हमें व्रतों में मत डालो। हमसे व्रत नहीं बनेगे। दान करने के लिए (१०,०००) की जगह (२०,०००) बोलो, वह हम कर देंगे। व्रत के बारे में हम आपकी बात नहीं

सुनेगे।” किन्तु महाराज मौका पाकर १०-१२ वर्षों से कहा करते थे। अतः मे सल्लेखना का समय जब समीप आया, तब हमे उनकी बात सुननी पडी। उन्होने कहा था - “तुमने हमारी इतनी सेवा की, इसी से तुम्हारे कल्याण के लिए हम व्रत दे रहे है।” अब हम फिर तुम्हे उपदेश देने नहीं आवेगे। हमे समाधि लेना है।

व्रतधारण से आनन्द प्राप्ति

मैने पूछा - “क्यो काका, व्रत लेने मे काफी तकलीफ हुई होगी?”

वे बोले - “पण्डितजी, व्रत लेने से रच मात्र भी कष्ट नहीं होता है। मन को अच्छा लगता है। महाराज गये। ऐसे महाराज अब नहीं मिलेगे।”

सल्लेखना की चर्चा

महाराज ने हमसे कहा था - “चन्दूलाल! अब हम सल्लेखना ले रहे हैं। तुम विघ्न मत डालना।”

अपार प्रेम

हम कहते थे - “महाराज! अभी कुछ वर्ष जाने दीजिए।” महाराज ने कहा - “हम तुम्हारी नहीं सुनेगे।” उनकी प्रबल इच्छा देखकर हम भी चुप हो गये। वे कहते थे - “हम जो करते हैं, अपने कल्याण के लिए करते है।” चन्दू काका ने कहा - “पण्डितजी, उनकी सल्लेखना की बात सुनकर हमे इतना रोना आया, इतना दुःख आया कि कह नहीं सकते। हमको जीवन मे उतना रोना कभी नहीं आया। हमने समझ लिया था कि अब महाराज गये। ऐसी निधि अब नहीं मिलेगी।” महाराज रोकने लगे। हमने कहा - “महाराज, हमे रोकिए मत, हमे रो लेने दीजिए।” पण्डितजी! क्या बताएँ, अपने पिता पर भी उतना मोह नहीं होता था, जितना मोह महाराज पर होता था, दिन और रात महाराज ही महाराज दिखते थे, किन्तु अब एक दिन भी स्वप्न तक मे दर्शन नहीं हुआ।”

मुक्तागिरि का विचार

सेठ चन्दूलाल जी ने बताया - “बारामती से कुथलगिरि जाते समय महाराज ने कहा था “अब हम फिर लौटकर नहीं आने वाले है। कुथलगिरि मे यदि चातुर्मास हो गया, तो आगे मुक्तागिरि जाने वाले हैं।”

व्रत-प्रतिमारूप रत्न का दान

चन्दू काका की धर्मपत्नी ने आचार्यश्री की आहार दान द्वारा चिरस्मरणीय

सेवा की। महाराज ने उनसे कहा था - “बाई! तुमने इतने दिन हमारी इस प्रकार सेवा की, जिस प्रकार माता अपने बच्चे की सेवा करती है। तुमने बहुत सेवा की। हम सोचते हैं, तुमको कुछ दे दे। क्या देना? हम तुमको एक रत्न देते हैं। व्रत प्रतिमा को पालन करना। अब तो हम जाते हैं।” सेठानी ने प्रसन्नता पूर्वक व्रत ले लिये।

चन्द्रका की धर्मपत्नी ने महाराज की बहुत सेवा की। उन्होंने महाराज के सम्बन्ध में कहा था - “पण्डितजी! आचार्य महाराज हमारे बगीचे में बारामती में थे। मेरा एक नौ माह का पुत्र मर गया। प्रतापगढ़ में थे, तब छ माह का पुत्र मर गया था। कचनेर में थे, उस समय मेरी पुत्री के मरने के समाचार मिले थे। ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े दुःखों के होने पर भी मैं चुप रही और गुरु सेवा करती रही।”

सांत्वनापूर्ण वाणी

“एक दिन महाराज बोले - “ऐसी बाई हमने कहीं नहीं देखी। पुत्र मर गया। हमें पता तक नहीं चला।” उतरा हुआ मुँह देखकर महाराज बोले - “बाई ससार में कुछ नहीं है। कितने पुत्र-पुत्री नहीं हुए। ससार ऐसा ही है। इसमें शोक नहीं करना चाहिए।” महाराज के शब्द सुनते ही हृदय का सारा सताप तत्काल दूर हो गया। महाराज की सेवा करने से इतना आत्मबल आ गया था कि कई बच्चों की मृत्यु होने पर भी अश्रुपात नहीं किया। मन में मोह आने पर हम उसे निकाल देते थे। ऐसे साधु कभी नहीं मिलेंगे, यह सोचकर हमने कुटुम्ब की चिंता छोड़ दी थी। जो होना होगा, सो होगा।”

अपार प्रभाव

सेठानी जी ने कहा - “हमने महाराज का अनेक बार बड़ा प्रभाव देखा। उनके साथ मैं कभी कष्ट नहीं हुआ। हमने महाराज की वाणी को सदा सफल होते देखा। उनका प्रभाव ऋद्धिधारी मुनियों की तरह हमने देखा। यह बात हम अपने अनुभव की बताते हैं। अनेक बार ऐसा हुआ कि हमारे चौके में थोड़े लोगों का भोजन बना है और बहुत लोग आ गये, तो भी भोजन कम नहीं होता था। फिर भी काफी भोजन शेष रहता था। पहिले हमारे घर की बहुत सामान्य अवस्था थी। उनकी सेवा करते-करते अपने आप सब कुछ आने लगा और अब इतना बड़ा घर (लाखों का) बन गया।”

उन्होंने बताया “हमारे यहाँ माणिकलाल का लडका बोलता नहीं था। आठ वर्ष का हो गया था। महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उसके सिर पर पिच्छी रख दी और कहा - यह लडका बोलने लगेगा और आठ दिन में वह लडका बोलने लगा।”

गुरुमेवा को सर्वोपरि स्थान

सेठानी ने यह बताया - “सेठजी, आचार्य महागज की आज्ञा को सर्वोपरि स्थान देते थे। जब महागज के पास का बुलावा आता था, तो सोने-चाँदी की दुकान के फैले हुए काम की जग भी परवा न करके हानिलाभ का विचार छोड़कर, महागज के पाम चले जाते थे। एक समय तेरह वर्ष के पुत्र जम्बू पर घर का लाखों का काम छोड़कर महागज के पाम चले गये थे। महागज महान् पुण्यात्मा थे। उनकी सेवा में मठा समृद्धि ही मिली। विपत्ति का कभी दर्शन भी नहीं हुआ।”

विशेष कृपा

“महाराज की हमारे सेठजी पर बड़ी कृपा थी। फलटण चातुर्मास के बाद एकदम महाराज बिना किसी को कुछ कहे सुबह ९ बजे फलटण में खाना हो गये। किसी को पता नहीं, उस दिन १६ मील चलकर वे एक श्रावक के साथ वारामती आ गये। वे निश्चय के बड़े पक्के थे। अपने हृदय की मुनते थे और तदनुसार ही वे काम करते थे।”

शिष्य की उन्नति में प्रयत्नता

आचार्य महागज चन्दू काका के निवासस्थान पर आये। वहाँ उनका आहार हुआ। महाराज ने पूछा - “यह मकान किसका है?” चन्दू काका बोले - “महाराज! यह मकान तो आपका है।” महागज जोर में हँसने लगे।

व्यवस्था प्रेमी

महागज ने हमारे परिवार का बड़ा उद्धार किया। हमारे घर में छोटे-बड़े सभी ने महागज से कुछ-न-कुछ व्रत ले लिये हैं। महागज ने अपनी पिच्छी, कमण्डलु और शान्त्र-भण्डार हमें दे दिए और कहा - “ये शान्त्र किसी को देना, तो हम्नाक्षर लेकर देना।” महागज व्यवस्था और नियम के बड़े प्रेमी रहे। अव्यवस्थित काम उन्हें पसन्द नहीं आता था।

श्री मगनलाल नेमचंद गांधी, पंढरपुर

चन्दूकाका के यहाँ पंढरपुर के श्री मगनलाल नेमचंद गांधी ने कहा - “मैं महाराज के पाम वागमती के वर्गीचे में दो तीन सप्ताह पर्यन्त रोज जाता था।” महाराज बोले - “तुम यहाँ बहुत समय तक ठहरे।” श्री गाँधी ने कहा - “महागज! आपके दर्शन के लिए ठहरे हैं।” महाराज बोले - “मेरे पाम ठहरने वालों को पिच्छी और कमण्डलु

लेना पड़ता है। उधर देखो! ये पिच्छी कमण्डलु तैयार हैं।” श्री गाँधी ने कहा - “महाराज! हमारा भाग्य नहीं है। हमारा इतना बड़ा भाग्य होता, तो क्या कहना था?”

सेठ तुलजाराम चतुरचन्द्र, बारामती

बारामती के सेठ तुलजाराम चतुरचन्द्र और सेठ चन्दूलाल जी आचार्य महाराज के अधिक निकट सम्पर्क में आते रहे हैं। मैंने १२ फरवरी सन् १९५७ को सेठ तुलजाराम-जी से आचार्य महाराज की कुछ चर्चा चलाई। उन्होंने आचार्य महाराज के पास से लगभग ८० वर्ष की अवस्था होते हुए भी व्रत-प्रतिमा ग्रहण की है। कई वर्ष तक महाराज उन्हें प्रेरणा करते रहते थे, लेकिन उनका मन पिघलता नहीं था। आचार्य महाराज से अत्यन्त निकटता होने के कारण महाराज की तीव्र भावना थी कि इस जीव का कल्याण हो जाय।

विशेष बात

एक समय महाराज ने कल्याण की भावना से उनसे कहा - “तुम्हारे व्रत के भाव नहीं होते, इससे ऐसा दिखता है कि तुम्हारे कुगति का बन्ध हो गया है।”

उत्तर में सेठजी ने कहा - “महाराज! हमारी छ पीढ़ी में मेरे सरीखा भाग्यशाली कोई नहीं हुआ। इसी से तो आप समान श्रेष्ठ वीतराग गुरु का दर्शन हुआ। त्याग की क्या बात है? कभी आप सरीखी बात हो जायगी।”

“इसके पश्चात् पुन महाराज ने व्रती बनने को कहा, क्योंकि उससे हमारा कल्याण होगा।”

प्रश्न - महाराज से उक्त सेठजी ने कहा - “अव्रती श्रावक भी तो स्वर्ग जाता है, इसीलिए व्रती बनने की क्या जरूरत है?”

उत्तर - महाराज बोले - “व्रती के देवगति में जाने का नियम है। अव्रती का नियम नहीं है।”

विशेष अनुग्रह

सेठजी ने कहा - “महाराज! आप हम पर जबर्दस्ती क्यों करते हैं?” महाराज बोले - “स्वर्ग जाते समय हमें साथी चाहिए-सोवती पाहिजे -दूसरा शान्तिसागर आकर अब तुम्हें नहीं कहेगा।” सेठजी ने कहा - “महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।”

उन्होंने सिर पर पीछी रखदी। व्रत दे दिये। उन्होंने कहा - “तुम्हारा कल्याण होगा।” इससे मुझे बड़ा आनन्द हो रहा था। इसके पहिले भी महागज मधुग विनोद द्वारा मुझे प्रतिबुद्ध करते रहते थे। एक दिन महाराज कहते थे - “उत्तरपुराण मे वर्णन आता है - किसी राजा का एक केश सफेद हुआ, तो वह वैराग्य युक्त होकर राज्य छोड देता था। अब तो तुम्हारे सारे बाल सफेद हो गये, फिर भी व्रतधारण की बुद्धि नहीं होती।” इतना कह कर वे हँस देते थे।

संयम रूप अग्नि

एक दिन सेठजी महाराज के पास शास्त्रसभा मे पीछे पहुँचे और पीछे बैठने लगे। महाराज ने कहा - “पास मे आने मे क्यों डरते हो? क्या हम अग्नि है? देखो, यहाँ सयम की अग्नि है। हमारे पास मत बैठना।” सेठ जी ने कहा - “महाराज! अग्नि मुझे बडी प्यारी लगती है। आगामी जन्म मे भी ऐसी ही अग्नि चाहता हूँ।” महाराज हँसने लगे।

उक्त सेठजी ने कुथलगिरि क्षेत्र मे ६१,०००) रु मे कुलभूषण भगवान की प्रतिमा विराजमान करने की बोली ली थी। यह बात जब आचार्य महाराज ने सुनी, तो वे बोले - “सौ सुनार की एक लुहार की। तुमने बडा अच्छा काम किया। अगले जन्म के लिए कलेवा साथ मे रख लिया।”

उनके सुपुत्र माणिकलाल भाई की उदारता से उनके नाम पर बारामती मे एक सुन्दर समुन्नत डिग्री कालेज चल रहा है।

पं. मोतीचन्द्र गौतमचंद्र कोठारी, फलटण

प मोतीचन्द्र गौतमचन्द्र कोठारी एम ए ने आचार्य महाराज के सत्सङ्ग का लाभ लिया था। श्री कोठारी ने महाराज के सम्बन्ध मे महत्त्व की निम्नलिखित बातें बताई - “आचार्य शातिसागर महाराज प्रगाढ श्रद्धावान तथा महान् प्रतिभाशाली साधुराज थे। जब कभी कोई गम्भीर तथा जटिल प्रश्न उनके समक्ष आता था, तब वे उसका उत्तर तुरन्त नहीं देते थे। उस पर गहरा चिन्तन करते थे। ध्यान के समय भी वे उस पर विचार करते थे और उसका समाधान खोजते थे। जल्दी मे कुछ भी उत्तर देना उनका स्वभाव न था।”

मार्मिक बात

श्री कोठारी ने बताया - एक दिन मैंने कहा - “महाराज! आप तुरन्त उत्तर क्यों नहीं देते?”

महाराज बोले - “क्या तुम हमें सर्वज्ञ समझते हो? क्या तुमने यह मान लिया है कि लंगोटी त्यागने मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है? देखो! तत्काल बिना सोचे-विचारे उत्तर देने पर आगम के कथन का विरोध सम्भव है। मैं आगम के विरुद्ध कथन करके नरकगति में नहीं जाना चाहता हूँ। उत्तर न देने से लोग मुझे अज्ञानी समझेंगे, इससे मेरी कोई हानि नहीं है। मैं अज्ञानी हूँ ही इसमें तनिक भी सदेह नहीं है। आगम के विषय में उचित विचार किए बिना बोलना अकल्याणकारी है।”

दुराग्रह से हानि

आचार्य महाराज यह भी कहते थे - “बहुधा अनेक पंडितों की ऐसी आदत होती है कि उनके मुख से जो बात निकल गई, उसका समर्थन करना। ऐसे दुराग्रही व्यक्ति के पास सम्यक्त्व कैसे रहेगा? दुराग्रह और सम्यक्त्व इनमें अत्यन्त विरोध है।”

महाराज के ये शब्द भी बड़े महत्वपूर्ण हैं - “पंडित को सत्यप्रेमी तथा आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाला होना चाहिये। वचन पक्ष को लेकर अनर्थ पर उतरना अज्ञानी एवं अविवेकी का लक्षण है। ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं होता।” वे कहते थे - “अज्ञानी कहलाना बुरा नहीं है। ज्ञानी कहे जाने के मोहवश विपरीत कथन द्वारा कुगति में पतन की सामग्री का सचय करना अच्छा नहीं है।”

धर्मघातक पांडित्य

आजकल अनेक व्यक्ति पांडित्य प्रदर्शन हेतु आगम के विरुद्ध सिद्धान्त बनाते हैं और अज्ञ वर्ग के समक्ष उपस्थित होकर मौलिकता (Originality) के नाम पर सम्मान पाते हैं। मानपत्र प्राप्त करते हैं। जिन महान् ज्ञानी आचार्यों की वाणी के भाव को समझने की भी उनमें पात्रता नहीं है, उनके दोषों को बताने का साहस दिखाते हैं। धनिकों की सहायता का अवलंबन पाकर ऐसी आगम विरोधी सामग्री ग्रंथों में भूमिका के नाम पर मिला दी जाती है, कभी-कभी प्राचीन भाषान्तर के पुनर्मुद्रण के समय भी अपने दूषित विचारों को मूल रचना में मिला दिया जाता है।

जैसे आजकल असली घी में नकली घी मिलाकर अप्रामाणिक व्यापारी ग्राहक को ठगता है, ऐसी ही स्व-पर वचना का बाजार साहित्य के क्षेत्र में भी गरम हो रहा है।

उदाहरणार्थ ज्ञानपीठ काशी में छपे महापुराण को लीजिए। भगवज्जिनसेन स्वामी के द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था आदि के विपरीत कथन करने वाले अपने विचारों को ग्रंथ में स्थान दे दिया जाता है। अर्थ की सहायता पाकर ऐसा वाङ्मय इस प्रकार लोगों के हाथ में आ जाता है। पचाध्यायी, समयसार आदि की नवीन व्याख्या के नाम पर आगम का अद्भुत रूप बनाया जा रहा है तथा यह रोग वर्धमान हो रहा है। जैन संस्कृति के रहस्यों से नितान्त अपरिचित, परन्तु लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त राजनैतिक व्यक्ति के द्वारा अपने प्रकाशनो को यश मिल जाने से कोई-कोई व्यक्ति तथा प्रकाशक कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं। धार्मिक मण्डली की यह स्थिति देख हार्दिक मनोव्यथा होती है।

अप्रभावना

अज्ञानाधिकार को दूर कर सम्यक्ज्ञान का प्रकाश फैलाना प्रभावना है। सम्यक्ज्ञान पर आवरण डालकर विपरीत ज्ञानभाव को जगाना भी प्रभावना माना जाने लगा। अद्भुत बात है, आग लगने पर पानी डालकर आग को बुझाया जाता है। आज धन वैभव वाला सस्ते पानी की उपेक्षाकर बहुमूल्य पेट्रोल डालकर अग्नि को प्रशांत करना चाहता है? इसका परिणाम कभी भी मधुर नहीं होगा, ऐसा ही आगम के साथ स्वच्छद दृष्टि से खिलवाड़ का परिणाम अमधुर होगा।

गुरुदेव की सीख

अतएव हमें आचार्य महाराज की इस वाणी को ध्यान से अपने हृदय में स्थान देना चाहिए - “पंडितों को वचन पक्ष की जिद्द नहीं करना चाहिए। आगम विपरीत, तोड़-मरोड़ नहीं करना चाहिए। यह महान् पाप की बात है।”

दूषित प्रवृत्ति का कारण

आज लोग धर्मरूप अमृत को छोड़कर अधर्मरूप विषपान में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति कर रहे हैं। इस अद्भुत स्थिति का क्या कारण है? इस समस्या पर आचार्य महाराज ने इस प्रकार प्रकाश डाला था - “आज की दुष्ट प्रवृत्ति में काल का प्रभाव बड़ा कारण है। इसके सिवाय जीवों के दर्शन और चारित्र्यमोहनीय कर्म का तीव्र उदय भी कारण है।”

अपने विवेचन को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने कहा - “आज मनुष्य क्रूरता के मार्ग पर बढ़ता जा रहा है। आजकल हिंसा की सामग्री अधिक बनाई जा रही है। मनुष्य स्वयं अपने सहार के साधनों का संग्रह करने में सलग्न है। वह आजीविका के लिए ही

उद्योग नहीं करता है, वह तो भोगसामग्री को एकत्र करने में एव उसकी अभिवृद्धि करने में अतिशय तल्लीन रहता है। इस काल में ऐसे ही विषयलोलुपी लोग सर्वत्र पाए जाते हैं।”

निकृष्ट काल में मुनि जीवन की उपयुक्तता

प्रश्न - “जब इतना निकृष्ट काल है कि आदर्श गृहस्थ का जीवन कठिन हो गया है, मुनियों को आहार देने वाले धर्मात्मा गृहस्थों की उपलब्धि कठिन हो गई है, तब क्या मुनि जीवन पर आज के काल का दुष्ट प्रभाव नहीं है?”

उत्तर - महाराज ने कहा - “इस पचम काल में जन्मधारण करना अवश्यमेव पूर्व पुण्य की न्यूनता का परिणाम है। यदि पुण्य की न्यूनता न होती, तो वह ऐसी निकृष्ट सामग्री के बीच क्यों रहता? जिस जीव ने पूर्वभव में पुण्य सचय किया है, वह विदेह सदृश धर्म भूमि में उत्पन्न होकर आत्महित साधन करता है। आज की विपरीत परिस्थिति में कुछ ऐसी आत्माएँ हैं, जिनका होनहार उज्ज्वल है और भविष्य महान् है। आत्मकल्याण के लिए विषय भोगों से विरक्त होकर वे धर्म में तीव्र रुचि धारण करते हैं। मुनि जीवन को स्वीकार करते हैं। ऐसे भाग्यवान् पुरुष बहुत थोड़े होते हैं।”

आज के विपरीत काल में जो आत्माएँ धर्मपालनार्थ पुरुषार्थ करती हैं, उनका महान् कल्याण होता है। भावसंग्रह में देवसेन आचार्य की निम्नलिखित वाणी बहुत मार्मिक है। इससे मुमुक्षु वर्ग के चित्त में उत्पन्न होने वाली अनेक शकाओं का समाधान प्राप्त होता है। भद्रपरिणामी जीवों के चित्त में साधु-भक्ति के उज्ज्वल भाव उत्पन्न होते हैं। आचार्य का कथन है -

सहणण अइ-णिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो ।

तह विहु धीरा पुरिसा महव्वयभर-धरण-उच्छहिया ॥१३०॥

यह दुःषमा काल है, सहनन नि कृष्ट है, चित्त चंचल है, तथापि धीर पुरुष महाव्रतों का भार धारण करने में उत्साह रखते हैं।

आज की तपस्या का महाफल

वरिस-सहस्सेण पुरा जं कम्म हणइ तेण काएण ।

त सपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे ॥१३१॥

पूर्व काल में एक हजार वर्ष तक तप करने पर जिन कर्मों का क्षय होता था, उन कर्मों का क्षय इस हीन सहनन के द्वारा एक वर्ष में होता है।

हीन सहनन में महान् तप करने वाले की आत्मशक्ति विशिष्ट रहती है।

पाखंडी का पतन

यहाँ इतना लिखना उचित है कि साधुत्व का वेष धारणकर जो पाखंड रचते हैं, धर्म को दूषित करते हैं, उनका कुगति में पतन होता है। यह शास्त्र का कथन गृहस्थों तथा साधुओं को ध्यान में रखना चाहिए, जिसे प आशाधरजी ने अपने अनंगार धर्माभूत में उद्धृत किया है -

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैः वठरैश्च तपोधनैः ।

शासनं जिनचंद्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम् ॥

भ्रष्ट चारित्र वाले पंडितों ने तथा ऋषटाचरणी साधुओं ने जिनचंद्र के निर्मल शासन को मलिन कर दिया है।

जन्मान्तर का अभ्यास

प्रश्न - “आपका चित्त आत्मा पर किसप्रकार केन्द्रित हो जाता है और आप किसप्रकार आत्मध्यान सदृश महान् कार्य को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर लेते हैं।”

उत्तर- “अरे बाबा! यह बात एक जन्म में साध्य नहीं होती। हमारा अनेक जन्म का अभ्यास चला आ रहा है। दीक्षा लेने वाला प्रत्येक साधु एकदम आत्मध्यान करने में समर्थ नहीं होता। इसी से पहिले साधु के लिए पचमनस्कार मंत्र का जाप शास्त्र में कहा गया है। ये साधु कुछ काल के पश्चात् ध्यान करने में समर्थ हो जाते हैं।”

महाराज ने कोठारी जी से कहा - “तुम हमारे पास आकर एक न एक चर्चा क्यों छेड़ दिया करते हो?”

उत्तर देते हुए कोठारी जी ने कहा - “महाराज! मूर्ति तो मौन रहती है, शास्त्र का मर्म समझने की मुझमें पात्रता नहीं है, तब गुरु चरणों में आकर उत्तर न पूछूँ, तो क्या किसी अज्ञानी व्यक्ति के पास जाऊँ।” इस उत्तर से उनके चेहरे पर मधुर स्मित शोभायमान होने लगा।

गभीरता तथा दक्षता

महाराज मे अपूर्व गभीरता थी। अन्य मनुष्य किसी ठगने वाले व्यक्ति के सपर्क को पाकर उसका मुख देखना भी न चाहेंगे, किन्तु महाराज अभद्र व्यक्ति को भी कार्यसिद्धि हेतु अपने पास आश्रय प्रदान करते थे। यथार्थ मे वे सागर के समान गभीर थे। कोठारी जी ने बताया - “फलटण के चन्द्रप्रभु मंदिर मे ताम्रपत्र पर अंकित की गई सिद्धांत शास्त्र की प्रति रखी गई। उसमे धवल सिद्धांत की प्रति को सावधानी पूर्वक देखने पर एक अद्भुत बात पकड़ मे आई। धवल ग्रन्थ ९३ वे सूत्र के सजद पद सहित तथा सजद पद रहित दो ताम्रपत्र पाए गये। आचार्य महाराज के आदेशानुसार ‘सजद’ शब्दयुक्त ताम्र पत्र की तैयारी नहीं होनी थी, किन्तु पक्षविशेष की पुष्टि के लिए वह ताम्रपत्र तैयार किया गया और उसे फलटण के ग्रन्थ के भीतर चुपके से रख दिया गया।

चालाकी का परिज्ञान

इस चालाकी का पता जब आचार्य महाराज को चला, तो वे बहुत गभीर हो गए।” उस समय मैने महाराज से कहा - “महाराज! क्या बात है? यह कैसे हो गया?” महाराज बोले - “मायावी माणुस भेटल्यानंतर काय करावयाचे” - “मायावी व्यक्ति के मिलने पर क्या किया जाय?” उसको मायावी पद प्रदानकर गुरुदेव ने सम्मानित किया था। यह जानते हुए भी महाराज शांत थे, गभीर थे।

त्यागी की धन-लिप्सा

एक व्यक्ति ने उच्च त्याग का आश्रय ग्रहण कर लिया, किन्तु धन के लेन-देन का व्यापार बन्द नहीं हुआ। उस समय मैने उन त्यागी जी की चर्चा की, तो महाराज के मुख से ये मार्मिक शब्द निकल पड़े - “अजून हि त्याचे घर सुटले नाही” - “अभी भी उनका घर नहीं छूटा है।” महाराज के इस उत्तर मे एक बहुत गहरा रहस्य भरा है।

कोई व्यक्ति जब क्षुल्लक, ऐलक आदि उच्च सयम की पवित्र मुद्रा को धारण करते हैं, तो उनको अपना सयमी के रूप मे पुनर्जन्म सरीखा सोचना चाहिए। पूर्व जीवन के व्यवसाय की आदतो की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहिए।

कोई-कोई उच्च सयम वाले तपस्वी बनते है, किन्तु उनका लेन-देन तथा बहीखाता का काम बन्द नहीं होता। उनके वेष से पवित्रता टपकती है, किन्तु उनकी प्रवृत्ति उनके पूर्व जीवन की स्मृति को जगाती है। ऐसे लोगो को आचार्य महाराज की उक्ति में महत्त्वपूर्ण सुझाव सोचना चाहिए।

घर छोड़कर यदि अतिथि बनकर कोई समाज में आता है, जनता के द्वारा विनय, पूजा आदि को प्राप्त करता है, तो उन पूज्य पुरुष का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने भावरूप घर-गृहस्थी के चक्कर से अपनी पूर्णतया रक्षा करें, अन्यथा आत्मा का अहित अवश्यम्भावी है। सस्कृति तथा धर्म को भी लाछन आता है। अपने पद के विरुद्ध काम नहीं करना चाहिए। 'ऊँची दुकान और फीका पकवान' की पद्धति से अपयश होता है और इष्ट ध्येय की भी सिद्धि नहीं होती। ऊपर से घर छोड़ा, परिग्रह छोड़ा, किन्तु भीतर से गृहस्थ का भाव नहीं छोड़ा, तो वह त्यागी नहीं है। भाव की निर्मलता मुख्य है। त्यागी बनने पर अनेक प्रकार की दुकानों के लगाने का क्या प्रयोजन?

मुनीश्वर वर्धमान सागर महाराज ने भी मुझे एक त्यागी को लक्ष्य कर कहा था, "वह धन के चक्कर में रहता है, ऐसे व्यक्ति के ध्यान में द्रव्य ही दिखता है। वह अच्छी सामायिक कैसे कर सकेगा। सयमरूप चितामणिरत्न के लिए चक्रवर्ती की विभूति भी जीर्ण तृणवत् त्यागी जाती है, तब धनिकों और धन की तरफ निर्ग्रन्थ साधु का ध्यान नहीं रहना चाहिए। धन की लालसा सयमरूप ज्योति को उज्ज्वल नहीं रहने देती है।"

नम्रता का हेतु?

एक बार एक अन्य पथी व्यक्ति आचार्य महाराज से पूछ बैठा - "महाराज! आप बन्दर की तरह नम्र क्यों रहते हैं?"

महाराज ने कहा - "पॉव में काँटा गड़नेपर काँटे द्वारा ही वह निकाला जाता है। 'कटकनैव कटक,' मन बदर की तरह चंचल है। उसको रोकने के लिए बदर की तरह नम्रता स्वीकार करना आवश्यक है, इससे वह बन्दर वश में हो जाता है।"

महाराज के शांत भाव से दिए गए मार्मिक उत्तर को सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और इनका परम भक्त बन गया।

अल्प निद्रा

महाराज की निद्रा अत्यन्त अल्प थी। उनके नेत्रों से यह ज्ञात नहीं हो पाता था कि उन्होंने अल्प निद्रा ली है। आलस्य भी उनमें नहीं दिखाई देता था। वे नित्यविधि सदा प्रमाद रहित होकर किया करते थे। इस विषय में जब महाराज से पूछा - "क्या कारण है कि अल्प निद्रा होते हुए भी आपके शरीर पर उसका कोई चिह्न नहीं रहता है और न खेद ही दिखता है?"

महाराज ने कहा था - “आगम देखो, उससे पता लगेगा कि मन की आत्मा में स्थिति होने पर अपने आप निद्रा कम हो जाती है।”

अपूर्व शास्त्रज्ञान

श्री कोठारी ने कहा - “महाराज अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न थे। एक बार उनके समक्ष मैं धवल सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़ रहा था। वे उस ग्रन्थराज की कठिन बातों का पहले ही समाधान करते थे, जिसका खुलासा वर्णन उक्त ग्रन्थ में आगे मिल जाता था।”

ध्यान और संयम का सम्बन्ध

महाराज ने कहा था - “मैं तुमको ध्यान के लिए कहता हूँ, किन्तु ध्यान, धारणा आदि का सयम के साथ निकट सम्बन्ध है। सयम की साधना बिना ध्यान की सिद्धि नहीं होती।” महाराज का कथन आगम समर्थित भी है।

द्रव्यसंग्रह में कहा है -

तव-सुद-वदवं चेदा ज्ञाण-रह-धुरंधरो हवे जम्हा।

तम्हा तत्तिय-णिरदो तल्लब्धीए सदा होह ॥५७॥

तप, श्रुत तथा व्रतवान आत्मा ही ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने में समर्थ होता है, अतः उस ध्यान की प्राप्ति के लिए सदा तप, श्रुत तथा व्रत पालन में लीन होना चाहिए।

आध्यात्मिक प्रभाव

कोठारीजी ने कहा - “मैं अन्नहीन स्वभाव वाला था। पित्तप्रकृति होने से उपवास नहीं बनता था। महाराज के पास रहने से मैंने उपवास प्रारम्भ कर दिये। आठ-दस घण्टे काम करने पर भी उपवास में बाधा नहीं आती थी। उनका आध्यात्मिक प्रभाव महान् था।”

साम्य भाव

एक व्यक्ति ने महाराज से कवलाना ग्राम में कहा - “महाराज सघ के कई लोग अच्छे नहीं हैं, उनको अलग कर देना चाहिए।”

महाराज ने कहा - “दुष्ट और सज्जन दोनों पर साधु का समान भाव रहना चाहिए। यदि सज्जन पर प्रेम और दुष्ट पर द्वेष तो साधुता कैसे रहेगी? भले-बुरे दोनों पर रागद्वेष का जीतना साधु का कर्तव्य है।”

विशेष कृपा

आचार्य महाराज की हम पर बड़ी कृपा रही है। उनकी स्वर्गयात्रा के कुछ दिन पूर्व सामान्यतया उनका दर्शन बंद हो गया था। चर्चा होना तो अत्यन्त कठिन बात थी। मेरी छोटी बहन सौभाग्यवती कमलाबाई गुरुदेव के दर्शन की ममतावश उस अद्भुत समय पर जबलपुर से वहाँ आ गई। मैंने तो कह दिया था कि अब महाराज के पास पहुँचना असंभव है। इतने में आचार्यश्री के चरणों में कुछ राज्य अधिकारी जा रहे थे। सौभाग्य से उनके साथ मैं कमलाबाई को लेकर महाराज की कुटी में पहुँच गया। मैंने महाराज को नमोस्तु कहते हुए कहा - “मैं सुमेरुचंद्र दिवाकर आपको प्रणाम कर रहा हूँ।” गुरुदेव ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

मैंने कहा - “महाराज! मेरी छोटी बहन कमलाबाई दर्शन के लिए चरणों में आई है। यह गोमूढसागर आदि शास्त्र पढ़ी हुई है।”

महाराज ने कहा - “बहुत देर से आना हुआ। जल्दी क्यों नहीं आई?” उत्तर में निवेदन किया गया - “दर्शन को आने की बहुत समय से इच्छा थी, किन्तु पहले आने का सुयोग नहीं मिला।”

महाराज की क्षीण स्थिति को ध्यान में रखकर मैंने और चर्चा को रोकने के लक्ष्य से कहा - “महाराज! आज ही इसका भाग्य जगा है। इसे आशीर्वाद दीजिए।” उन परम कारुणिक साधुराज ने उसे अपने आशीर्वाद से कृतार्थ किया।

धर्मवीर तलकचंद वेणीचंद शहा वकील, फलटण

श्री तलकचंद वेणीचंद शहा वकील फलटण धर्मात्मा, महान् निर्भीक, न्यायबुद्धि, गुरुभक्त, आगम-प्रेमी और व्रती श्रावक थे। आचार्य महाराज का उन पर बहुत विश्वास था। गंभीर विषयों पर आचार्यश्री उनसे परामर्श करते थे। उक्त वकील साहब के साथ आचार्य महाराज की आज्ञानुसार हमें अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने का अवसर आया है। शहा वकील साहब से चर्चा के पश्चात् आचार्य महाराज के सम्बन्ध की इसप्रकार सामग्री प्राप्त हुई।

श्री शहा वकील सा ने बताया - “आचार्य महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत आकर्षणपूर्ण था। उनकी शांत वीतराग मुद्रा देखने और वाणी सुनने पर चित्त उनके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रहता था। लगभग ४० वर्ष पूर्व मैंने उनका पहली बार दर्शन

किया था तब मेरा मन उनके पुण्य चरणों के प्रति अनुरक्त हो गया था।”

आकर्षक व्यक्तित्व

उन्होंने बताया - “मैं कोन्नूर में महाराज के पास गया था। वे अष्टमी तथा चतुर्दशी को मौन के साथ उपवास धारण करते थे। जंगल में जाकर धूप में ध्यान करते थे। उनका आसन बहुत दृढ़ था। वे बैठते थे, तो ऐसा लगता था कि कोई मूर्ति बैठी हो। चार-छ घंटे वे बैठते, किन्तु हिलते-डुलते नहीं थे।”

निर्विकार मुद्रा

“महाराज की मुद्रा निर्विकार रूप से रहती थी। किसी के आने पर हर्ष नहीं होता था तथा जाने पर विषाद भी नहीं होता था।

“उनका आहार बहुत शीघ्र होता था। मैंने कोन्नूर में घड़ी लगाकर देखा था, छह मिनट के भीतर उनका आहार पूरा हो जाता था। वे दूध, चावल मात्र लेते थे तथा जल ग्रहण करते थे। उनके दाँत थे। वे भोजन को विशेष चबाए बिना शीघ्र उदर में प्रवेश कराते थे। भोजन की आसक्ति या गृह्यता उनमें नहीं थी। वे अलौकिक तपस्वी महात्मा थे।”

महान् प्रतिभा

उनकी प्रतिभा महान् थी। अनुभव अब्धुत था। कई बातें वे अपने अनुभव, ज्ञान के आधार पर कहते थे। पश्चात् वही बात आगम में मिलती थी। वे ऐसा कहते थे - “इस प्रकार तत्त्व का स्वरूप होना चाहिए। हमने शास्त्र में कहीं नहीं देखा है।” पश्चात् उनके अनुभव के अनुकूल ही शास्त्र का कथन मिलता था।

संस्कारी साधु

मेरी महाराजश्री से कई बार बहुत चर्चा चलती थी। उनकी अपार कृपा थी। चर्चा के प्रसंग पर वे कहते थे - “बिना कई भवों में निर्ग्रन्थ पद का पालन किए ऐसी शास्त्रोक्त प्रवृत्ति के योग्य मन नहीं होता।” यथार्थ बात यह है कि जन्म-जन्मान्तर के पवित्र संस्कार सपन्न वे साधुराज थे।

प्रगाढ श्रद्धा

उनकी जिनागम के प्रति अप्रतिम श्रद्धा थी। आगम कहता है - “जैनधर्म अभी १८,५०० वर्ष रहेगा।” इस पर उनकी श्रद्धा थी। इस काल पर्यन्त धर्म का नाश

नहीं होगा। आगम के प्रकाश में वे अपना मार्ग बनाते थे। उनका विशुद्ध हृदय जैसा कहता था वही करते थे। आगम के विरुद्ध चलने की बात वे स्वप्न में भी नहीं सोचते थे। आगम तो उनका प्राण था।

आचार्य महाराज की सल्लेखना के सम्बन्ध में गहा वकील का अभिमत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सदा आचार्य महाराज के निकट संपर्क में रहने से वे महाराज को ठीक तरह से जान सके थे तथा महाराज भी वकील साहव को चतुर तथा धर्मात्मा गृहस्थ अनुभव करते थे।

सल्लेखना पर अभिमत

वकील साहव ने यह महत्त्वपूर्ण बात कही थी “महाराज की सल्लेखना पहले हो गई, ऐसा मेरा मत है। लोगो ने गडबडी कर दी। महाराज सूक्ष्म अक्षर पढ़ लेते थे। इससे स्पष्ट होता था कि उनकी दृष्टि अधिक क्षीण नहीं हुई थी। फिर भी महाराज कहते थे - अब गमनादि कार्य में ईर्यासमिति का सम्यक् रीति से परिपालन नहीं होता। इस प्रकार वे अपने मूलगुणों के रक्षण कार्य में बहुत सावधान रहते थे।”

श्री माणिकचंद्र वीरचंद गांधी सराफ, फलटण

श्री गांधी ने बताया कि सन् १९५४ में महाराज का फलटण में चातुभासे हुआ था। उस समय महाराज ने एकान्त में मुझे बुलाकर कहा - “हमारा भाव शिखरजी जाने का होता है।” मैंने कहा - “महाराज, मैं आपकी सेवार्थ तैयार हूँ। खर्च की तथा व्यवस्था की चिन्ता न कीजिए। अपने निश्चय के आठ दिन पूर्व मुझे आज्ञा दीजिये।”

सल्लेखना की प्रेरणा

इसके अनन्तर महाराज बारामती पहुँचे। वहाँ अषाढ वदी षष्ठी को उनका बाढ़-दिवस मनाया गया। वहाँ महाराज की सल्लेखना की योजना बनी। लोग सल्लेखना का स्वरूप नहीं समझते थे। वे उसे सामान्य वस्तु सोचते थे। सल्लेखना लेने के बाद महाराज का फिर दर्शन नहीं होगा, सल्लेखना तप के द्वारा शरीर का परित्याग होता है, ऐसा ख्याल न होने से अज्ञानी लोग जब चाहे तब महाराज के समक्ष चर्चा छेड़ देते थे और पूछते थे - “महाराज! अब सल्लेखना कब होगी?” मानो उनकी दृष्टि में सल्लेखना शिखरजी की या गिरनारजी की यात्रा सदृश हो। वे सोचते थे कि सल्लेखना के पास जाकर महाराज फिर जल्दी वापिस आ जावेगे। यदि उनको पता होता कि सल्लेखना की प्रचण्ड



दावानगर मे भगवान पार्श्वनाथ की श्रेष्ठ कलात्मक मूर्ति
(मूर्ति के चरण मे पहले पारस पाषाण था)

अग्नि में प्रवेश के उपरान्त इस पूज्य विभूति का दर्शन नहीं होगा, तो वे क्यों बार-बार उसे करने को कहते?

यदि महाराज शिखरजी जाने का विचार करते थे, तो गुरु-चरण-भक्त-मण्डली मन में दुःखी होने लगती थी कि शिखरजी तरफ गए, तो फिर उनका दक्षिण लौटना कठिन होगा, इसी प्रकार की कल्पना यदि सल्लेखना के बारे में होती कि सल्लेखना-वाला फिर बारामती, फलटण आदि में दर्शन देने के लिए नहीं आयेगा, तो उसके विषय में प्रेरणात्मक वाणी के बदले में ऐसे ही शब्द निकलते कि - “महाराज! जल्दी क्यों करते हैं? यम सल्लेखना की कल्पना ही न कीजिए, लेना है तो नियम सल्लेखना लीजिए। इससे आपके रत्नत्रय साधन में कोई विघ्न नहीं आता है।”

दहीगाँव चातुर्मास का इरादा

श्रीगांधी ने बताया - “महाराज ने बारामती में मुझसे कहा था कि हमारा इरादा दहीगाँव अतिशय क्षेत्र में चातुर्मास करने का होता है। इसके बाद कुथलगिरि जाने का विचार है।”

“महाराज का भाव कभी-कभी मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र के दर्शनार्थ जाने का होता था। ऐसी भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ चल रही थीं, तब जीवराज गौतमचंद जी, बालचंद देवचंदजी, रावजी देवचंद शहा आदि मंडली महाराज के पास आ गई। यदि महाराज मुक्तागिरि गए, तो वहाँ उनका चातुर्मास होगा, पश्चात् उनका दक्षिण पुनः आना कठिन सोचकर जीवराजजी ने कहा - “महाराज! आप मुक्तागिरि जाने का विचार छोड़िए। कुथलगिरि ही चले। आपको सल्लेखना लेना है। आपके नेत्रों की ज्योति मन्द हो रही है। मुक्तागिरि में पानी वगैरह का सुभीता नहीं है। आपकी सल्लेखना में बहुत लोग आवेंगे।”

कुथलगिरि के पक्ष में तर्क

इसे सुनकर महाराज ने कहा - “कुथलगिरि में अनुकूलता नहीं पड़ती, कोई रहता नहीं है। सल्लेखना के समय हम वहाँ आ जावेंगे। अभी मुक्तागिरि के दर्शन का विचार होता है।”

उनके इस कथन का प्रतिवाद करते हुए यह कहा गया कि अब आपकी नेत्रों की शक्ति कम हो रही है। सल्लेखना का समय समीप है, इससे कुथलगिरि ही चलिए। कुथलगिरि में आपकी सर्व प्रकार की व्यवस्था हम लोग करेंगे।

अकाल मे प्रेरणा

मृत्यु के साथ युद्ध करने की महाराज की पहले से पूरी तैयारी थी। गजपथा मे उन्होने बारह वर्ष के भीतर सल्लेखना लेने के निश्चय द्वारा मृत्युराज को अन्तिम सूचना दे ही दी थी, इसीसे वे अपना ध्यान, आचार, सयमादि महाप्रयाण को लक्ष्य मे रखकर करते थे। इस प्रकार की अतरङ्ग तैयारी होते हुए कुछ लोगो ने रणभेरी का बजाना शुरू कर दिया। समय पर रणवाद्य के बजने पर किसी को भी कुछ कहने का स्थान न था, किन्तु असमय मे ही सल्लेखना लेने की प्रेरणात्मक बाते, उस पक्ष को उचित बताना आदि कथन अग्नि-प्रदीप्त करने मे घृताहुति का काम कर गए।

आमदनी का लोभ

हमे दक्षिण प्रवास मे अनेक गुरुभक्त तथा महाराज की प्राणपण से सेवा करने वाले ऐसे बन्धु मिले, जिन्होने कहा - “कुथलगिरि बार-बार प्रेरणा कर ले जाने मे क्षेत्र को आमदनी प्राप्त होने का महान् लोभ कारण था। लोग सोचते थे कि महाराज कुथलगिरि मे रहेगे, तो क्षेत्र को बहुत आमदनी होगी।”

दूसरे के मन को जानना कठिन काम है। कई लोगो की मानसिक विचारधारा को ऋजुमति मन पर्ययज्ञानी भी नहीं समझ सकता, विपुलमति मन पर्ययज्ञानी मे ही यह सामर्थ्य है कि वाणी कुछ बोलते हुए भी मन की भिन्न प्रवृत्ति रखने वालो की यथार्थ में क्या मन स्थिति है, इसे जान सके।

लेखक का कर्तव्य

इस प्रसङ्ग मे हम क्या लिखे, क्या न लिखे, यह विचार हमारे मन के समक्ष उपस्थित होता है। यदि व्यक्ति विशेष के मोह, ममत्व या डर के कारण हमने सत्य का प्रतिपादन न किया, या उस पर परदा डाला, तो लेखक पर सत्य की हत्या का बहुत बडा पाप आता है, उस कर्तव्य को ध्यान मे रखकर यह लिखना पडता है कि कुथलगिरि ले जाने के भीतर विशुद्ध भाव नहीं था, धनसचय की प्रमुख भावना इसका हेतु थी, यह जो धार्मिक लोगो का कथन है, वही सम्यक् प्रतीत होता है।

प्रलोभन

इसी विशेष लाभ को लक्ष्य मे रखकर महाराज को वचन दिया गया कि अब कुथलगिरि मे पहले सरीखी गडबडी नहीं होगी। अब पिछले चातुर्मास के समान बात

नहीं होगी कि आपको छोड़कर हम व्यापारार्थ यहाँ-वहाँ दोड़ते फिरें। अब हम स्वयं चौका लेकर आपकी सेवा करेंगे।

दयामूर्ति साधुराज

सच्चे साधु का हृदय बालक की तरह निर्विकार रहता है। पूर्व में कितना ही असत् व्यवहार किया हो, किन्तु प्रत्यक्ष में आकर प्रणाम करने वाले पर उन सच्चे साधु की दयादृष्टि हो जाती है।

लौकिकजन कहते हैं कि महाराज को ऐसे लोगो पर विश्वास नहीं करना था, जिन्होंने उनको कई बार धोखा दिया, उनकी आज्ञा के विरुद्ध उत्पात मचाए, किन्तु वे लोग अपने समान साधु को राग तथा द्वेष मूर्ति समझते थे। महाराज शातिसागरजी अपूर्व साधु थे, वे लोकोत्तर थे। शरीर पर लिपटने वाले सर्प पर भी उनका प्रेम ऐसा था, मानों उनका परमस्नेही अन्य धर्मावलम्बी मित्र रुद्रप्पा ही आकर उनसे भेट कर रहा हो। प्राणो को हरण करने के क्रूर कर्म में सलग्न सेकड़ो साथियों वाले छिद्दी ब्राह्मण पर भी राजाखेडा में उन्होंने कोप नहीं किया, प्रत्युत पुलिस के उच्च अधिकारी को यह कहा था कि जब तक इन लोगों को नहीं छोड़ोगे, तब तक हम आहार ग्रहण नहीं करेंगे, जैसे जननी अपने पुत्र को बधन में देखकर प्रतिज्ञा करती है, ऐसी प्रतिज्ञा उनकी थी।

भवितव्यता

साधुता की बातें सब कर सकते हैं, किन्तु जीवन में श्रेष्ठ साधुवृत्ति को स्थान देने वाले मनस्वी महात्माओं में आचार्य महाराज सचमुच में नरश्रेष्ठ थे, साधुओं के चूडामणि थे, चारित्र-चक्रवर्ती थे। महाराज साधुराज थे और महान् विचारक भी थे। वे अपनी पैनी दृष्टि से सत्य-असत्य का सहज ही विश्लेषण कर लेते थे, अतएव कुथलगिरि सल्लेखनार्थ ले जाने वालों की भीतरी स्थिति को वे क्षण भर में सोच सकते थे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्यों? समन्तभद्र स्वामी ने कहा है - “भवितव्यता की शक्ति अलघ्य है।” वह भवितव्यता बाह्य अतरंग साधन पर आश्रित है। अतरंग सामग्री थी, निमित्त की कमी थी, सो उसकी भी पूर्ति हो गई। एक कारण से कार्य की कल्पना अविवेक की आधार शिला पर अवस्थित है। उपादान कितना ही बलवान हो, योग्य निमित्त के बिना कार्यरूपता धारण करने में वह पगु ही रहता है। इसी से तार्किक चूडामणि समन्तभद्र स्वामी उस भवितव्यता को क्रम-बद्ध पर्याय के नाम पर नहीं छोड़ते हैं। वे उसे “हेतुद्वयाश्रित” कहते हैं।

पूरक सामग्री का सन्निधान

इस भवितव्यता के लिए पूरक साधन-सामग्री वारामती में मिल गई, अतः महाराज सल्लेखना की अग्नि में प्रवेश हेतु कुथलगिरि चले। अग्नि-प्रवेश-प्रेरक व्यक्ति रणभेरी की ध्वनि कर रहे थे। सब जगह यह समाचार पहुँचने लगा कि अब महाराज सल्लेखना ले रहे हैं। सन् १९५३ में भी महाराज कुथलगिरि गए थे। उस समय कुथलगिरि यात्रा को मृत्युराज की भेट नहीं सोचा जाता था, किंतु इस समय सल्लेखना लेने का अवाछनीय जोरदार प्रचार होने लगा। महाराज महाज्ञानी थे। वे सब होते हुए भी आगे-पीछे विचार करते थे, किन्तु उस समय समाज के पापोदय से कुछ लोगो ने भक्ति दिखाने के लिए एक चिकित्सक को लाकर नेत्र की परीक्षा कराई। वैद्यराज को 'यमराज सहोदर' भी कविगण कहते हैं। चतुर चिकित्सक विवेक के प्रकाश में बाते करता है। बीमार को कभी भी यह नहीं कहता है कि तुम्हारी स्थिति खतरनाक है। परिचर्या करने वालों को वह वस्तुस्थिति से अवश्य परिचित कराता है।

प्रेरक सामग्री संचय

हमें बताया गया कि चिकित्सकराज कहे जाने वाले व्यक्ति ने अपने कर्तव्य का विस्मरण कर गुरुदेव से कह दिया कि अब आपके नेत्रों में शक्ति नहीं रही है। पास में रहने वाले समझदार समझे जाने वालों ने तथा स्वयं को भी समझदार मानने वालों ने उस समय डाक्टर के अभिप्राय का विरोध न कर "मौन सम्मतिलक्षण" के नियमानुसार महाराज को यम सल्लेखना के भयकर निश्चय करने के विरोध में कुछ न कहकर यही कहा कि आपको जो उचित दिखे, सो कीजिए। कुथलगिरि में कर्मोदयवश लोगो की बुद्धि विपरीत हो गई। शूर-शिरोमणि शातिसागरजी ने आमरण आहार त्याग देने का निश्चय कर लिया।

महाराज को धोखे में डाल दिया गया

श्री गांधी ने यह महत्त्व की बात बताई - "महाराज कुथलगिरि पहुँच गए। मैं उनके पास पहुँचा। महाराज ने पहाड़ पर मुझ से एकान्त में कहा - "माणिकचंद! मैं पहले दो बार कुथलगिरि में फँस गया था, अब तीसरी बार फिर लोगो के चक्कर में फँस गया। तुम ठीक कहते थे।" इन शब्दों में बड़ा रहस्य है, गूढ़ बात है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि मैं धोखे में आ गया। महाराज साधु शिरोमणि थे, अतः उन्होंने मनस्वी व्यक्ति की भाषा में यह कहा - "हमने समाधि धारण की है, यह बुरी बात नहीं है। हमारा इसमें समाधान है। हमारे भावों में कोई आकुलता नहीं है।"

भयकर परिस्थिति

श्री गांधी ने कहा - “मैं महाराज के चरणों के समीप बहुत समय तक रहा हूँ। उनकी बातों से स्पष्ट ज्ञात होता था कि इतनी जल्दी सल्लेखना नहीं लेगे। लोगों ने पुनः - पुनः प्रेरणा की, इससे उनका मन उस ओर अधिक आकर्षित हो गया। सल्लेखना के पूर्व महाराज का सेठ चदूलाल सराफ के यहाँ आहार हुआ। उस समय महाराज की प्रकृति के अनुकूल आहार दिया गया। एक सपन्न सुशिक्षित दिखने वाले भक्त ने अपने श्रीमुख से ये शब्द महाराज की उपस्थिति में कहे - “महाराज को शीघ्र सल्लेखना लेना है, तुम ऐसा आहार क्यों कराते हो?” उन्होंने सज्जन ने पर्वत पर एक वृद्धा महिला को धक्का मारकर गिरा दिया था। ऐसे व्यक्ति का नाम जानते हुए भी उल्लेख करना ठीक नहीं लगता। उन सज्जन के तथा उनके सहयोगियों के हाथ में मुख्य कार्यों का सूत्र था। अनेक विचित्र व्यक्तियों से महाराज वहाँ घिरे थे। वहाँ के अद्भुत प्रबन्ध के साथ महाराज का कोई सबन्ध नहीं था।”

अंत समय पर प्रकाश

महाराज के स्वर्गारोहण के पूर्व सारी रात श्री गांधी गुरुचरणों में रहे थे। अतः उन्होंने रात्रि की-कालरात्रि की-विशेष बात इस प्रकार बताई - “३६ वे दिन ५ बजे प्रातः काल महाराज अत्यन्त शांत मुद्रा युक्त थे। श्वास वेग से चलने लगी थी। मैंने क्षु सुमत्तिसागर महाराज से कहा था कि अब आचार्य महाराज अधिक समय तक नहीं टिकेंगे। सघपति, भट्टारक महाराज और चन्दूकाका आ गए। लक्ष्मीसेन स्वामी ने कहा - “महाराज को अब पद्मासन से बैठाना चाहिए।” उस समय महाराज से पूछा गया - “क्या आपको उठाकर बिठा देवे?” तब उन्होंने इशारे द्वारा निषेध किया। यह बात करीब ६ बजे सुबह की थी। छह बजकर पन्द्रह मिनट के करीब गन्धोदक लाया गया। हमने उनके हाथों को सहारा दिया, तब उन्होंने स्वयं गन्धोदक मस्तक पर लगाया। इसके थोड़ी देर बाद पौने सात बजे के करीब महाराज ने जोर की साँस ली। उसके अनंतर मुख से ‘ॐ सिद्धाय नमः’ की ध्वनि निकली थी। दो एक मिनट के बाद दूसरी श्वास जोर की आई, उसके पश्चात् बहुत क्षीण ध्वनि में ‘ॐ सिद्धाय नमः’ शब्द निकले। उन शब्दों का अनुगमन करते हुए प्राणों ने भी परलोक को प्रयाण किया। प्राणोत्क्रमण होते हुए भी वे सजीव तथा तेजपुञ्ज लगते थे।”

ऐलक वृषभसागर महाराज हिवरखेड़ा

पूज्य ऐलक वृषभसागर महाराज ने (मुक्काम हिवरखेड़ा जिला अमगवती) मिवनी में मन् १९६० का चातुर्मास व्यतीत किया था। एक दिन आचार्य शातिसागर महाराज के पुण्य-जीवन की चर्चा निकली। उस अवध में ऐलक महाराज ने एक महत्त्व की बात इस प्रकार मुनाई - आज से लगभग २३ वर्ष पूर्व की बात है उस समय में वह्मचागी था। प्रतिमा लिये हुए ४० वर्ष हुए थे। आचार्य महाराज मुक्तागिरि पधारे।

उनके साथ मे धर्मसागर महाराज भी थे। उस समय धर्मसागरजी यशोधर ऐलक कहलाते थे।

गुरु-दर्शनार्थ हजारों व्यक्ति मपरिवाग मुक्तागिरि आ रहे थे। वहाँ बहुत बड़ी भीड इकट्ठी हो गई थी। मुक्तागिरि मे जलपासि के लिए केवल दो कुए थे। एक दिन दोनों कुए जलशून्य हो गए। लोगो ने बेरहमी से पानी खर्च किया था। जलाभाव से सब यात्री चिता मे डूब गए। धीरे-धीरे यह समाचार आचार्य महाराज के कानो तक पहुँचा।

महाराज ने कहा - “जब पानी नहीं हे, तब तो, सब लोग कष्ट में पड जाएगे। इस स्थिति मे यही उचित होगा कि हम यहाँ से प्रस्थान कर दे। इससे पानी की झड़ट नहीं रहेगी।”

पानी का चमत्कार

लोगो ने विनय की, कि गुरुदेव इस पवित्र तीर्थ मे आप जेमे गुरुगज के दर्शन का अपूर्व सौभाग्य हमे मिला हे, उससे हम लोगो को वचित न कीजिए। लोग अनुनय विनय कर रहे थे, इतने में महाराज के हृदय मे एक नवीन विचार आया, उससे प्रेरित हो उन्होने कहा - “दो घटे तक कुओं को ऊपर से ढाँक दो। कोई भी व्यक्ति एक बूद भी पानी न निकाले।” आचार्य महाराज की आजानुसार, कुए ढाँक दिये गए और दो घटे पर्यन्त कुओं की तरफ कोई भी नहीं गया। दो घटे उपरात दोनों कुओं पर का आवरण अलग कर दिया गया। लोगो ने देखा कि आधे कुए भर चुके हैं, हजारों लोगो ने पानी खींचना आरभ किया। इच्छानुसार विशाल जनसमुदाय पानी को खर्च करता जाता था, किन्तु कुआ जैसा का तैसा भरा हुआ पाया गया। सच्चे जिनेन्द्रभक्त, रत्नत्रयमूर्ति, साधुराज की तपस्या और वाणी मे अद्भुत शक्ति पाई जाती हे। यह तप का चमत्कार मैने प्रत्यक्ष देखा। सारी जनता सुख से धर्म साधन करने लगी।”

हमें तो प्रतीत होता है कि कूप पर जब शाति के सागर की दृष्टि पड़ी, तब कूप ने सक्कीर्णता का परित्याग कर यथार्थ में सागर से अपना सबध स्थापित कर लिया था। सागर से सबधित कूप में जल की न्यूनता कैसे आ सकती है?

शेर तथा सर्पराज

ऐलक महाराज ने बताया कि मुक्तागिरि का पहाड भयकर जगली जानवरो से परिपूर्ण है। वहाँ शेर रात को ही नहीं, दिन को भी नजर आता है। पर्वत के ऊपर

जलप्रपात के समीप एक ८-१० हाथ लंबा और स्थूलकाय अत्यन्त पुगना विशाल मर्पगज भी रहता है। वह किसी व्यक्ति को नहीं मरता।

एक बार वह मर्प गुड़ी माकर बैठा था। मुनीम गधोवा कुछ लोगों के साथ ऊपर गए। लोगों का ध्यान डम वात पर नहीं गया कि यहाँ सर्पों के गजा बैठे हैं। प्रमाद में एक व्यक्ति का पैर डमकी पूछ पर पड़ा। मर्पगज ने मनुष्य की ऊर्चाई वगैरह अपना फुट भर चौड़ा फण उठा लिया और क्षण भर में वे वहाँ में चले गए। देखने वाले घबड़ा गए। एक व्यक्ति गिरा और उसकी जाघ की हड्डी टूट गई तथा भयकर चोट लगी।

आचार्य महागज पर्वत के ऊपर उसी स्थान पर रहते थे। उनके साथ यशोधर ऐलक महागज भी रहते थे। आचार्य महागज को ऐसे स्थान पर रहने में अद्भुत शांति मिलती थी जहाँ मर्प व्याघ्र, आदि भयानक जीवों का निवास हो। वे अद्भुत योगी थे।

मुक्तागिरि में महागज ने १० दिन पर्यंत निवास किया था। उस समय का आनंद आज भी स्मरण करके हृदय शांति प्राप्त करता है। मुक्तागिरि की यात्रा महाराज ने पीछे की थी, किन्तु वे अपनी तीर्थवदना में उस क्षेत्र को विशेष महत्त्व देते थे।

इसी कारण वे मुक्तागिरि को अपनी समाधिभरण की भूमि बनाने की अनेक बार इच्छा व्यक्त करते थे। कुथलगिरि जाने के पूर्व वे गुरुदेव मुक्तागिरि आने की ही चर्चा करते थे। विपरीत निमित्तों ने उनकी इच्छा में विघ्न उपस्थित किया। कदाचित् वे मुक्तागिरि आए होते, तो मल्लेखना की ओर उनका इतने शीघ्र झुकाव न होता। भवितव्यता अमिट है।

मुक्तागिरि की अनेक विशेषताएँ हैं। इससे अजैन उच्च आफीसर लोग मुक्तागिरि की वदना भक्ति पूर्वक करते हैं। उनका विश्वास है कि इससे उन्हें तरकी मिलती है। विदर्भ की जनता के लिए तो मुक्तागिरि सचमुच में महान् पुण्यधाम तथा जलप्रपात के कारण सुरम्य स्थल भी है।

पू. ऐलक महागज ने यह भी बताया कि जब महाराज का सघ मुक्तागिरि आ रहा था तथा जब वह खामगाँव में आगे बढ़ा, तब आस-पास बड़े-बड़े ओले गिरे। भीषण वर्षा भी हुई, किन्तु जिस जगह आचार्य महाराज का सघ विराजमान था, उसके आसपास लम्बी दूरी तक न वर्षा हुई और न ओले गिरे। सब लोग निश्चित थे।

ऐलक कुलभूषण महाराज

ऐलक कुलभूषण महाराज (दक्षिण)^१ ने आचार्य शान्तिसागर महाराज की चर्चा करते हुए उनके सम्बन्ध में एक सम्मणीय घटना सुनाई। उन्होंने कहा - “आचार्य शान्तिसागर महाराज शेडवाल में विराजमान थे। वहाँ में विशाग का वे नमलापुर में पधारें।

दैविक उपद्रव निवारण

वहाँ दादा पट्टणकुलें नाम के ब्रह्मचारी आचार्य महाराज व. शिष्य थे। उनके घर में दैविक उपद्रव होते थे। कभी सबके देखते-देखत कपड़ा जल जाता था। पेट्टी के भीतर ही वस्तु जल जाती थी। घर में जहाँ तहाँ आग का उपद्रव होता रहता था। कभी खेत में फसल का नुकसान हो जाता था।

वह पिशाच कहता था कि मुझे बलि दो। बकरा चढ़ाओ। वह पिशाच ब्रह्मचारी जी की भानजी पर आता था। ब्रह्मचारीजी ने कहा - “हम तुमको कुछ भी नहीं देंगे। तुम हमारी जान भी लो, हमारा सत्यानाश भी करो, ता भी हम बलि नहीं देंगे।” वह पिशाच बोला - “कुछ नहीं तो केला तो दो।” ब्रह्मचारीजी ने कहा - “मैं एक लवंग भी नहीं दूँगा।” ऐसा क्रम बहुत दिन से चलता था। जब आचार्य महाराज वहाँ पधारें, तब ब्रह्मचारीजी ने अपनी कष्टमय कथा सुनाई।

घर में प्रतिमा की पूजा

आचार्य महाराज ने कहा - “तुम घर के भीतर जिनेन्द्र की प्रतिमा को विराजमान करके पूजन, अभिषेक आदि क्रिया करो, इससे प्रेत बाधा दूर हो जायगी।” ब्रह्मचारीजी ने ऐसा ही किया। जब घर में भगवान की प्रतिमा लाकर विराजमान की गई और पूजनादि कार्य हुए, तब व्यतर्ग बाधा तत्काल दूर हो गई।

कुलभूषण महाराज ने जिनेन्द्रभक्ति से सम्बन्धित एक और उपयोगी बात बताई थी। इस कथन के सम्बन्ध में उनके पास बेलगाँव जिले से कनडी भाषा में आगत एक पत्र था। ब्र. गज्जाधर मल्लिनाथ मुनोती, हिरेहट्टी, तालुका खानापुर (बेलगाँव) में भेजे गए दिनांक १७-९-५६ के उस पत्र में लिखा था - “भादो में मंदिर जी में शौचधर्म की पूजा चल रही थी। उस समय देवप्पा सगवी को एक चार-पाँच हाथ लम्बे तथा स्थूल सर्प ने डस लिया। सर्प का विष चढ़ता जाता था।

१ उन्होंने आचार्य देशभूषण महाराज से मुनिदीक्षा ली थी।

देवप्पा को १५ मान पर स्थित बलगाँव नगर ले जाने के लिए माटु बुला ला गइ। जब मुझ मंदिर में ममाचार मिला तब मैं देवप्पा के पास गया और उसे मंदिरजी में ले आया। मंदिर में मूलनायक भगवान परमनाथ हैं। मैंने देवप्पा से पूछा - “क्या तुम्हारा हम पर विश्वास है?” उसने कहा - “तुम पर मेरा पूरा विश्वास है। मेरा आप पर इतना विश्वास है कि आपके वचनों पर मैं मरने को भी तैयार हूँ।”

गंधोदक में मरण का विष निवारण

‘मैं मरणमय स्थान पर बांधी गई कपड़े की पट्टी दूर की। मैंने तथा पंडित श्रीपाल ने जिनेन्द्र भगवान के समक्ष प्रतिज्ञा की - “मरने! जब तक देवप्पा निर्विष नहीं होता है तब तक के लिए हम दोनों अन्न-जल का त्याग करते हैं।” इसके पश्चात् मैंने महाभिषेक के उपरान्त महागानि मंत्र पढ़ते हुए बड़ी शानिधारा की और पंचामृत अभिषेक तथा शानिधारा का गंधोदक देवप्पा के गले पर डाला। इसके अनंतर दशलक्षण पूजा का पाठ फिर से चलने लगा। पूजा पूर्ण होने के पूर्व ही देवप्पा का विष दूर हो गया।

पहले अजैन लोग मेरी निन्दा करने थे कि देवप्पा को मार डालेंगे, पश्चात् देवप्पा को विषमुक्त देख सबके आनंद और आश्चर्य की सीमा नहीं रही।” उक्त घटना की सत्यता का निश्चय कुलभूषण महागज ने स्वयं उस स्थान पर जाकर किया। मई १९७९ में आचार्य सुबलनगर महागज का जबलपुर के नमोप तिवरी ग्राम में चातुर्मास हुआ था। उन समय एक ग्रामीण को माँप ने डम लिया और उसकी बुर्गी हालत हो गई थी। उस समय वह व्यक्ति तिवरी लाया गया। आचार्य महागज ने जिनेन्द्र स्मरण तथा मंत्र द्वारा उसको निर्विष कर दिया। हम तिवरी गए थे तब उक्त घटना का वर्णन तथा जैन धर्म की प्रभावना की वार्ता हमें सुनने में आई। इसी कारण आचार्य शान्तिसागर महागज सभी को जिनेन्द्रभक्ति के लिए प्रेरणा करते थे। जिनेन्द्र देव की आराधना में अपूर्व सामर्थ्य आज भी है। श्रद्धा चाहिए।

अद्भुत सिद्धियाँ

कुथलगिरि में मल्लेखना महातप को धारण करने पर आचार्य महाराज की अतर्ग निर्मलता तथा प्रभाव अद्भुत रूप में विकसित हो रहे थे। हमारे अत्यन्त परिचित छिदवाडा निवासी एक जैनबन्धु बड़े प्रेमान थे, क्योंकि उनकी पत्नी दैविक बाधाओं से व्यथित रहती थी। समीक्षा-शील स्वभाव के रहने में वे दैविक बाधा को मानसिक विकृति मोचते थे, किन्तु अनुभव ने उनको अपनी धारणा बदलने को बाध्य किया। मेरे

पूछने पर उन स्नेही जेनवधु ने बताया कि उनकी पत्नी भूखी रहती हुई भी भोजन नहीं कर पाती थी। यदि बलपूर्वक एक ग्रास भी खिलाया, तो वह मूर्छित हो जाती थी। एक दिन रात्रि को स्त्री ने जोर से चिल्लाकर कहा कि उमकी पीठ पर कई लट्ठा का प्रहार हुआ। शकाशील पति महोदय को विश्वास नहीं हुआ, किन्तु पश्चात् देखा तो पीठ पर बहुत जोर के दड-प्रहार वण नीलापन आ गया था। पीठ मूज गई थी।

एक दिन स्त्री ने कहा कि कोई उसे जला रहा है। वहाँ दपति के सिवाय कोई दूसरा न था। क्षणभर में शरीर पर दाहजन्य फफोला दृष्टिगोचर हो गया। अनेक प्रकार की चिकित्सा करते हुए भी आपत्ति में तनिक भी न्यूनता न थी। वह व्यथित महिला कुथलगिरि पहुँची। महाराज के उपवास का सभवतः २८ वाँ दिन था। उम महिला के साथी गिरतेदारों ने अभिषेक की बोली ली थी। भगवान् १००८ देशभूषण कुलभूषण का वेभवपूर्वक अभिषेक करने के पश्चात् उन्होंने आचार्य महाराज को गधोदक दिया।

वचनमात्र से दैविक बाधा निवारण

उम समय उक्त महिला ने गुरुदेव से कहा - “महाराज! मैं बड़े कष्ट में हूँ। दैविक पीडा के कारण भोजन भी नहीं कर पाती हूँ।” इन करुणाजनक शब्दों को सुनकर क्षण भर में महाराज ने सिर पर पीछी रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा - “अच्छा! अब तुमको कष्ट नहीं होगा।” इन शब्दों के उच्चारण के पश्चात् तत्काल वह महिला उस पीडा से मुक्त हो गई। पर्वत से नीचे आने पर उसने बराबर भोजन-पान किया। मने २९ अगस्त सन् १९५९ को छिदवाडा जाकर उक्त बातों की जाँच-पड़ताल की थी। यह कथा तो बहुत लम्बी थी, किन्तु संक्षेप में उसकी झलक मात्र दी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तप पुनीत साधुराज के शब्दों में कितना अलौकिक प्रभाव रहता था। दो शब्दों से दैविक बाधा दूर हो गई। अद्भुत सिद्धियों से ममलकृत आचार्य महाराज की आत्मा थी। सचमुच में वे योगिराज थे।

श्री क्षुल्लक सुमतिसागर फलटण

शांति पुज सत्पुरुष

फलटण वाले क्षुल्लक सुमतिसागरजी के २६ सितम्बर १९५९ को नातेपुते में दर्शन हुए। उन्होंने महाराज की गृहस्थावस्था से अतः पर्यन्त सत्संग तथा गुरुसेवा का लाभ लिया तथा क्षुल्लक दीक्षा लेकर अपना जन्म उज्ज्वल किया। उन्होंने आचार्य महाराज के विषय में बताया - “महाराज अलौकिक महापुरुष थे। उनके पास अहंकारभाव नहीं

था। वडे हांते हुए वे अहंकार विहीन थे। स्वाभिमान उनमें अवश्य था, जब कभी धर्म की बात आती थी तब गोंग्व के साथ धर्म की बात कहते थे। शिष्य मडली में कभी मतभेद या विवाद की बात उत्पन्न होती, तो उनके निमित्त में शीघ्र ही शांति की स्थापना हो जाती थी। वे महान् शांतिपुत्र मत्पुम्प थे।”

क्षुल्लक जी ने महागज के साथ अपने मपर्क की चर्चा करते हुए बताया -
 “आचार्य महागज ममडोली में विगजमान थे। मुझे धावते ने कहा कि तुम्हें अध्यात्म शास्त्र का प्रेम है। तुम ममडोली जाओ तो बहुत लाभ होगा। महागज का अध्यात्म शास्त्र का अनुभव अच्छा है। मैंने कारजा जाकर भट्टारक वीरमेन स्वामी के पास चार माह रहकर अध्यात्म का अभ्यास किया था। वीरचंद कोदरजी गांधी भी मेरे साथ में रहे थे। मैं ममडोली आचार्य महागज के पास गया।”

अध्यात्म के महान् जानी

“उनके मत्पुग में मन को बड़ा समाधान मिला। कारजा के भट्टारकजी के पास जिन शकाओं का समाधान नहीं हुआ था, उनका महाराज के पास सहज ही निवारण हो गया। उनके उत्तर में मन की पूर्ण तृप्ति हुई। मैं समयमर देखकर महाराज में शकाएँ करता था। महाराज अपनी प्रतिभा और अपूर्व क्षयोपशम शक्ति के आधार पर मधुर समाधान करते थे, उससे मदेह का निवारण हो जाता था। इससे उनकी ओर मेरा आकर्षण बहुत हो गया था। मदा उनके चरणों में रहने की भावना होती थी।”

तेज पुंज माधु

उनमें तपस्या का अपूर्व तेज था। जो उनके पास आकर दर्शन करता था, उसका मस्तक उनके चरणों के आगे झुक जाता था। वे मुझे चतुर्थकाल के उच्च चरित्र-मपन्न मुनि सदृश दिखते थे। महाराज जिस आसन में बैठते थे, उसमें परिवर्तन नहीं करते थे। आमन बदलना तो दूर आसन पर से हिलते तक नहीं थे। ऐसा लगता था कि कोई नि कम्प मूर्ति विगजमान हो। बिना प्रयोजन के वे एक शब्द भी नहीं बोलते थे। रोज हजार, पंद्रह सौ आदमी उन साधुराज के दर्शनार्थ आते थे। वे प्रायः मौन रहते थे। हाथ उठाकर आगत नर-नारियों को अपना मंगलमय आशीर्वाद देते थे।

अध्यात्म के निर्झर

मैं ममडोली से फलटण वापिस आ गया। वहाँ वीरसागर जी, चंद्रसागर जी ब्रह्मचारी की अवस्था में आए थे। मैंने उनसे कहा था - “यदि आपको अध्यात्म का

अमृत पीना है, तो अपनी वाणी के द्वारा तथा अपनी जीवनी के द्वारा जो अध्यात्मरम का निर्झर प्रवाहित करते हैं, उनके पास समझोली में जाओ। उनका नाम शातिसागर महागज है।” मेरी प्रेरणा से वे दोनों महानुभाव वहाँ गए। इस संपर्क से उन दोनों के जीवन में श्रेष्ठ परिवर्तन हो गया। उनके समान साधु न देखा, न सुना। उनके दर्शन मात्र से लोगों की असयम पूर्ण मनोवृत्ति बदल जाती थी और लोगों के हृदय में उच्च सयम की लालसा उत्पन्न होती थी। वर्तमान काल में असयमी जीवन में विगति होकर सयम के कठिन मार्ग में चलने की ममता तथा प्रेमरस जागृत हो जाना उनके दर्शन का प्रभाव था। सचमुच में महाराज अलौकिक थे।”

हृदय पर शासन

“उनके समीप जो भी आता था, उसके हृदय को वे जीत लेते थे। उन चारित्र-चक्रवर्ती के चारित्र का चक्र असयम के विरुद्ध चलना प्रारंभ हो चुका था। मैं तो गृहस्थ था। ससार के समस्त कार्यों में फँसा हुआ था। मेरी अवस्था उम्र समय २२ वर्ष की थी, उम्र सयम-चक्र के प्रभाव से मेरे भाव व्रती बनने के हो गए। मैंने व्रत प्रतिमा ले ली। ५१ वर्ष की वय में मैंने ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली। ५६ वर्ष की अवस्था में मैंने क्षुल्लक बन गया। मैंने बड़े उत्साह तथा आनन्दभाव से व्रत लिये थे। मैं बहुत आनंद में हूँ। सयम को पालते हुए अध्यात्मशास्त्र के पढ़ने पर विलक्षण रम आता है। असयमी की अवस्था में भी समयसार, परमात्मप्रकाश आदि शास्त्र पढ़े। अब सयम धारण करने के उपरान्त भी उनको पढ़ रहा हूँ। इस सबध में अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि सयमपूर्ण जीवन के साथ अध्यात्म का अपूर्व आनंद आता है। आत्मा की कोरी चर्चा करने में यथार्थ लाभ नहीं मिलता। अध्यात्म से प्रेम है, तो सयम की ओर अवश्य झुकना चाहिए।

मर्मस्पर्शी आत्मनिरूपण

महाराज शातिसागर जी दिगम्बर मुनि थे। उनके मुख से अध्यात्मसार की चर्चा बड़ी स्वाभाविक तथा प्रभावपूर्ण होती थी। परिग्रह के जाल में फँसा हुआ, विषयी व्यक्ति बुद्धि का वैभव बताकर अध्यात्म शास्त्र का प्रतिपादन करता है, उस उज्ज्वल कथन के पूर्ण विपरीत उसकी प्रवृत्ति होती है, इसका उचित प्रभाव बाहर नहीं पड़ता है। संयमी जीवन और अध्यात्मशास्त्र की प्ररूपणा इन दोनों का महाराज में समन्वय देख कहना पड़ता था कि यह मणि-काचन योग है। समयसार रूप मणि पास में है, तो जीवन भी तो कचन सदृश चाहिए। लोह के समान निकृष्ट धातु के साथ मणि का सबध विचित्र सा दिखता है।

अत समय

क्षुल्लिजी का महागज के गम मल्लखना के समय गहन का सुयोग प्राप्त हुआ था। उस समय की बात उन्होंने इस प्रकार कही - 'मैंने महागज के गम पमाकार मंत्र पढ़ा तो वे कहते थे हम सावधान रहे। आप कुछ न बोलें। वास्तव में महागज मल्लखना काल में मनन मजग रह। विकारी भावों का वहाँ तनिक भी अविर्भाव नहीं होता था। वे जानते पूर्ण अवस्था में रहते थे। 'अंतिम समय केमा व्यर्जन हुआ इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया - 'महागज अत काल तक सावधान थे। स्थान्मुख थे। प्राणोत्क्रमण के पञ्च मिनिट पूर्व में उनका कान में 'णमो अर्गहताग णमो मिद्वाग म् नमस्कार मंत्र पढ़ा था। अत समय में उनका मुख पर जग भी विकृति नहीं आई। वह नान और मीम्य था। नेत्र खुले थे। मोंे ख्याल में उनके प्राण नेत्रों में निकलेंगे। वे महान् थे उनकी उच्चता की कल्पना करना तक कठिन है। आज भी उन गुन्दों के स्मरण द्वारा आत्मा प्रभावित होती है। वे हृदय में सदा विगजमान हैं।

अजितमती अम्मा

दीक्षा समय उपदेश

अजितमती अम्मा ने नातेपुते में बताया - "आचार्य महागज ने मुझे शिख जी में क्षुल्लिजी की दीक्षा दी थी। उन्होंने मुझे पहले एकादश प्रतिमाओं का उद्देश दिया और कहा - "हम तुम्हारी आत्मोन्नति के लिए दीक्षा देते हैं। स्त्रीलिंग छेदने को तथा मोक्ष जाने के लिए दीक्षा देते हैं। समय में डगना नहीं। आत्मा नहीं मगती है। इस जग का मोहक धर्म को नहीं भूलना। 'महागज ने कहा था - "चाग्रि को उज्ज्वल रखकर अभी भी मर जाना अच्छा है। चाग्रि को मलिन बनाकर दीर्घजीवी बनना ठीक नहीं है। महागज ने मेरे साथ विमलमती को भी दीक्षा दी थी।

वीरमागजी की प्रशमा

अन्य त्यागियों का उल्लेख करते हुए अजितमती अम्मा ने बताया - "महागज वीरसागजी की मरलता तथा चाग्रि की प्रशमा करते थे। वे कहते थे कि वीरमाग अभी भी हमारे वचन के बाहर नहीं है। उनका वीरमाग पर बहुत विश्वास था।'

श्री भाऊ साहव लाटकर

महान शक्तिशाली

कोल्हापुर ने पालवान भाऊ साहव लाटकर ने नताया था - “मे तीन रजा
दड करता था। एक बार मे चार भा दूध पीता था। कोल्हापुर महाराज मे, याने पालवान
के रूप में रहता था। मे आचार्य महाराज के साथ रहकर जी गया था।

“वे सर्वोदय होने पर चदगर्भ पहाट पर चटना प्रारंभ करने थे और मोन
मधुवन में आकर साधारणिक करते थे। पश्चात् आचार्य को निर्मलते थे। महाराज चलने
समय मार्ग में विलकुल नहीं रुकते थे। पत्थर टोच पर ही चटना करने समय रुकने पर
मे मुटुद गरीर युक्त पालवान था, किन्तु महाराज के साथ चलने में निराल लभ्य जाता
था। महाराज में थकावट का कार्य विशेष निहा नहीं दिया था। यथार्थ में उक्त तथ -
साधना के लिए, दीर्घान्तर्गत कार्य का दायोपशम भी निहाय महाराज रहता है।”

आचार्य महाराज का महान यथार्थ में विशिष्ट था। वर्धमान महाराज ने नताया
था कि आचार्य महाराज १० मिनिट में एक मील चरते थे। लगातार चटो चलने पर भी
उनके पैर नहीं थकते थे।

ब्र जिनदास समडोलीकर

पालीताणा में माधुवर्ग द्वारा प्रशंसा

ब्र जिनदामजी ने मुनाया था कि वे आचार्य महाराज के साथ-साथ गिरनार
की यात्रा को गए थे। पालीताणा में श्वेताम्बर माधुआ का अच्छा समुदाय इकट्ठा था।
वहाँ आचार्य महाराज को देखकर वे साधु आपस में कहते थे - “सच्चे जैन साधु और
तपस्वी गुरु तो शातिसागर महाराज ही हैं।” श्रावक तथा श्राविका महाराज को देखकर
कहती थीं - “सच्चे गुरु तो शातिमागर महाराज हैं। उन सरीखा साधु कहीं नहीं है।”

आचार्य महाराज गिरनार से लोटते में मोनगद गए थे। कानजी से आचार्यश्री
ने कहा था, “तुमने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया, यह बताओ श्वेताम्बर धर्म में कोन
बात तुम को अनुचित प्रतीत हुई।” इस प्रश्न का उत्तर न पाकर आचार्यश्री ने कहा था
“अब हम जाते हैं”। वे वहाँ नहीं ठहरे। इस विषय में ब्र जिनदास जी ने कहा, “यह
हमारे समक्ष की बात थी और पूर्ण सत्य है।” ऐसा ही वर्णन महामुनि १०८ धर्ममागर
महाराज ने भी किया, क्योंकि वे भी गिरनार यात्रा में महाराज के साथ थे। आचार्यश्री के

चरित्र-निर्माण हेतु सामग्री-ग्रन्थि मेरु जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। दुःख है उनका स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती लक्ष्मीदेवी पाटील

नाइने कुमगोडा पाटील के चिरंजीव जनगोडा पाटील कटिक्टर जयसिंगपुर में आए थे। उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मीबाई भी वहाँ थीं। लक्ष्मीबाई ने हमने पूछा - “कुथलगिरि ने आचार्य महागज ने आपसे क्या कहा था? वे मेरे हमने लोगों में चर्चा मूनली है, किन्तु आपके मुख ने उमका जान आवश्यक है।”

उंचम की परंपरा चलाना

लक्ष्मीबाई ने कहा - “आचार्य महागज ने मेरे पति श्री पाटील (जनगोडा) से कहा था कि तुम पिच्छी हाथ में धारण करके ही मरण करना। इस प्रकार की परंपरा अपने घरने में चलाना। पाटील ने महागज ने दस वर्ष का समय माँगा, तब महागज ने कहा कि तुम्हें दस वर्ष के स्थान में बाह्य वर्ष का समय देते हैं। इतने समय में तुम दीक्षा ले सकते हो।

लक्ष्मीबाई ने कहा - “महागज ने मुझे बुलाकर इन विषय में मेरी सम्मति माँगी तो मैंने उत्तर दिया कि मैं प्रसन्नता से सम्मति देती हूँ।” मैंने पूछा - “आपके पति घर त्यागकर माधु बनेंगे इन प्रसन्न पर आपने कैसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी सम्मति प्रदान की?”

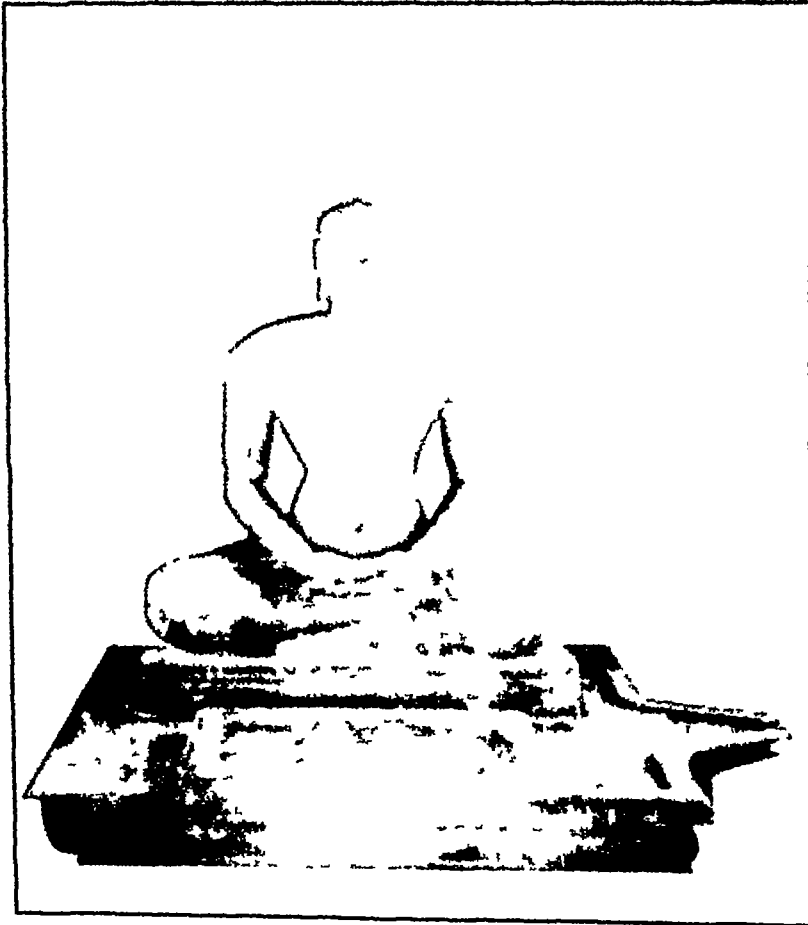
निर्मल भावों की उत्पत्ति

लक्ष्मीबाई ने कहा - “मैं जब महागज के चरणों के समीप पहुँची और महागज की वातगग शान्त मुद्रा का दर्शन हुआ, तब मेरे भाव बहुत निर्मल हुए थे। उस अवस्था में महागज प्रसन्नतापूर्वक मैंने कहा था कि मेरे पति दीक्षा लेते हैं, तो मुझे इस बात में हर्ष है। उस समय मेरे मन में वैराग्य के भाव उत्पन्न हुए थे।”

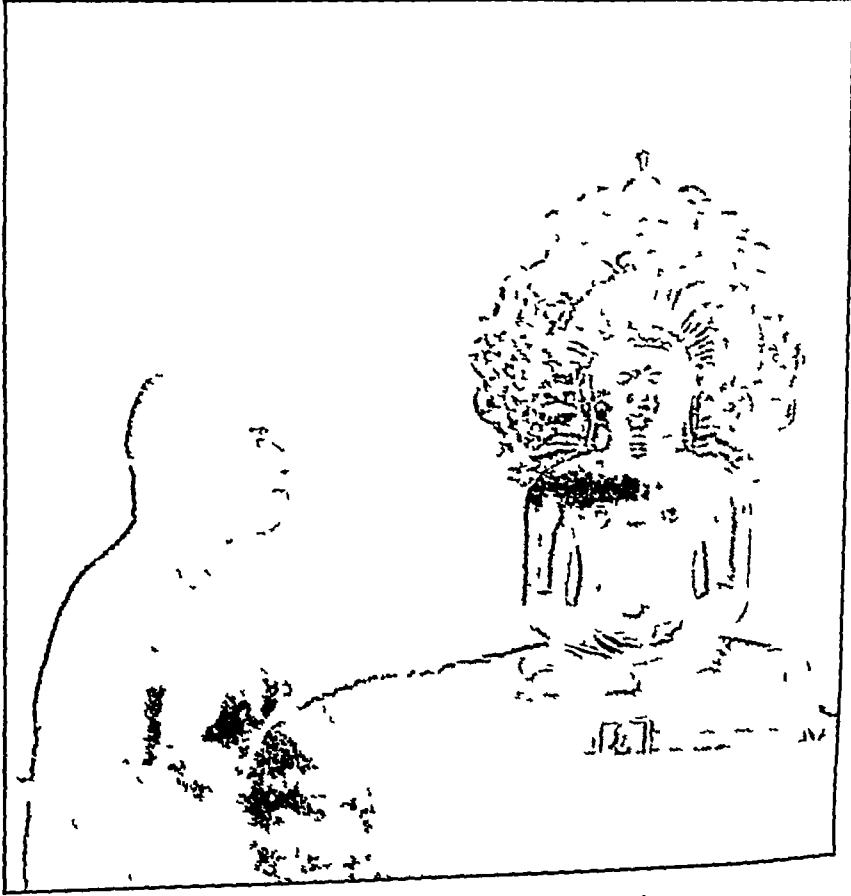
श्री जनगोडा पाटील

मुनि दीक्षा की प्रेरणा

इसके पश्चात् मैंने श्री जनगोडा पाटील से पूछा - “आप से महागज की क्या-क्या चर्चा हुई थी और कितनी देर तक आचार्य महागज ने आपको अपने पास स्थान दिया था?”



भगवान शान्तिनाथ की कलामय मूर्ति तथा
आचार्य शान्तिसागर महाराज के चरणयुगल



आचार्यरत्न देशभूषण महाराज जिनेन्द्रदर्शन करते हुए

श्री पाटील ने बताया - “लगभग एक घंटा तक महाराज से हृदय की बातें हुई थीं। महाराज ने पहले मेरे समक्ष अपने पूर्वजों का पवित्र इतिहास सुनाया। घराने के तेजस्वी जीवन, वैभव तथा धार्मिक प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला। उसे सुनकर मेरे मन में बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ तथा बहुत उज्ज्वल भाव जगे। महाराज के कथन का अंतरंग रहस्य यह था कि तुम अपने वंश की प्रतिष्ठा के अनुसार कार्य करना। ऐसा काम नहीं करना, जिससे वंश के नाम पर कलक लगे।

ऐसा कहने के बाद महाराज ने मुझे पिच्छी हाथ में लेकर निर्ग्रन्थ बनने को कहा। उन्होंने यह भी कहा कि तुम दीक्षा लेने के बाद अपने पुत्र को भी ऐसा ही करने को कहना, जिससे घराने में दीक्षा लेने की पवित्र परंपरा क्रमशः चलती जाये।”

अल्प परिग्रह हेतु प्रेरणा

महाराज ने यह भी कहा था - “अब तुम अधिक धन-सचय के भाव को छोड़कर अल्प परिग्रह में ही सतोष धारण करो। अधिक परिग्रह मत बढ़ाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। जितना तुम्हारे पास है, वह पर्याप्त है, आवश्यकताओं को थोड़ी करो, अधिक के लिए प्रयत्न नहीं करना।” अधिक सग्रह के महारोग से पीड़ित मानव समाज यदि आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित अल्प परिग्रह के रास्ते पर चले, तो अधिक तृष्णा के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट शीघ्र ही दूर हो जायेगा। इस विषय में कबीर के शब्द ध्यातव्य हैं-

कहा चुनावे मेढिया लांबी भीत उसार।

घर तो साढे तीन हाथ घना कि पौने चार॥

“तुम पहले क्षुल्लक दीक्षा लेना, या ऐलक दीक्षा लेना। बारह वर्ष के भीतर ऐसा कर सकते हो। गडबड मत करना। शांत तथा स्थिर भावपूर्वक कार्य करना।”

ससार में सभी वृद्धजन अपनी सतति को इस प्रकार का उपदेश देते हैं कि तुम लौकिक वैभव और विभूति के सग्रह में सर्वश्रेष्ठ बनना, किन्तु साधु शिरोमणि शातिसागर महाराज ने तपोलक्ष्मी की प्राप्ति तथा वृद्धि के लिए उपदेश दिया। इसका कारण यह है कि अकिंचनता को आभूषण मानने वाले आचार्य महाराज ने तपश्चर्या रूपी धन का सग्रह किया, अतः उन्होंने अपने भतीजे जनगोडा पाटील को सयमश्री के सग्रह हेतु प्रेरणा दी थी।

गजानन भाऊ मूग कोल्हापुर

सरलवृत्ति

कोल्हापुर के धर्मप्रेमी बधु गजानन भाऊ मूग महाराज के पास फलटण गए। मंदिर प्रवेश केस सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण चर्चा करके जाने को तैयार हुए। महाराज ने पूछा - “तुम जल्दी जा रहे हो। भोजन किया या नहीं?” मूग महाशय ने निवेदन किया - “महाराज! आपके आहार को अभी देर है, इससे हम अभी वैसे ही जाते हैं?” करुणामूर्ति महाराज ने कहा - “हमारे आहार का तुम्हारे भोजन से क्या सबध?”

तपोमय मुनि जीवन

दक्षिण के अनेक मान्य तथा विचारशील लोगो ने बताया कि उत्तर प्रात की ओर प्रस्थान करने के पूर्व आचार्य महाराज अधिक अतर्मुख वृत्ति थे। जिस समय उनके शरीर पर सर्प लिपटा था, उस समय महाराज साक्षात् तपोमूर्ति दिखते थे। उस समय उनके मुख से निकले हुए एक-एक शब्द को लोग अमृत की घूँट समझकर पीते थे। वे बहुत कम बोलते थे। उग्र तप और ध्यान में निमग्न रहा करते थे। उस काल में उनमें अनेक अद्भुत सिद्धियों की जागृति का आभास सा होता था।

चमत्कार

एक व्यक्ति के घर में एक बच्चा भयकर बीमार था। महाराज ने अपने अत करण के प्रकाश से बच्चे की बात जान ली और घरवालो को कहा - “घबडाओ मत। बालक अच्छा हो जायगा।” बालक अच्छा हो गया। लोग आश्चर्य में पड़े कि बच्चे की बात का महाराज को कैसे पता चल गया। लोकोत्तर तपस्वी साधुराज उत्तर की तरफ जाकर लोकव्यापक तथा महोपकारी आचार्य हो गए।

सन् १९२७ में महाराज इस्लामपुर गए थे। उस समय अनेक जैनधर्म-विद्वेषियो ने सगठन कर यह निश्चय किया था कि महाराज को लगेटी पहिना कर ही नगर में से निकलने देंगे। उस धर्म सकट के समय हजारो क्षात्र धर्म वाले जैन तलवार बंदूक, भाला आदि लेकर वहाँ इकट्ठे हो गए। कोल्हापुर के तत्कालीन जैन दीवान लट्टे साहब ने समाचार दिया था कि आवश्यकता पडने पर मैं कोल्हापुर की सेना भेजूंगा। महाराज के प्रभाव से नगर का प्रमुख अधिकारी जैनधर्म का पक्षकार बन गया। उसने विरोधी व्यक्तियों को सूचना दी कि यदि कुछ भी गडबडी हुई तो तुम लोगो को हथकडी पहिनाई जायगी।

पराक्रम का पोषण

उस समय सघ में विद्यमान चंद्रसागरजी ने लोगो से कहा कि वे शान्त रहे। उत्तेजित न हो। यह सुनकर आचार्य महाराज बोले - “यहाँ शांति का उपदेश असामयिक है। यह शांत रहने का मोका नहीं है। धर्म की प्रतिष्ठा-रक्षण के हेतु लोग जो उचित समझेंगे, सो करेंगे। जब विधर्मी लोग निर्ग्रन्थ साधुओं को बुरा पहनाने की तैयारी कर रहे हों, उस समय समर्थ धार्मिक लोग कैसे चुप बैठेंगे?” इसमें आचार्य महाराज की दृष्टि एक क्षत्रिय तेजस्वी साधु के अनुरूप थी। परिस्थिति के अनुसार प्रवृत्ति करने का जैनधर्म का आदेश है। क्षत्रिय वृत्ति से सद्धर्म का संरक्षण होता है। जैनधर्म वीरो का धर्म है, कायरों का नहीं।

उपद्रव में शांत भाव

आचार्य महाराज जब साधु परमेष्ठी थे, उस समय उनको बड़ी-बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ा था, परन्तु उनके सच्चे तपोबल से सकट शीघ्र दूर हो जाते थे। एक बार महाराज कोगनोली से कागल ग्राम जा रहे थे। उस समय वे क्षुल्लक थे। साथ में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। ग्वालों के कुछ दुष्ट लड़कों ने महाराज को शांत भाव से विहार करते देखकर उन पर पत्थर फेंकना शुरू किया। महाराज तो शान्त थे। इतने में वहाँ एक सर्प आ गया और उसने फण उठाकर बच्चों की तरफ देखा कि वे सब भाग गए। महाराज आगे बढ़ गए। वे यथार्थ में धीरोदात्त थे।

तपःतेज

आचार्य महाराज जब मिरज पहुँचे, तब मिरज के राजा उनका दर्शन करने तथा उपदेश सुनने सभा में पधारे। उनके लिए विशिष्ट आसन तैयार किया गया था। मिरज नरेश ने कहा - “मैं ऐसे योगिराज के चरणों में ही आप सब के साथ बैठने का पात्र हूँ।”

अविवेकी भक्त

महाराज ने कुथलगिरि में एक बार कहा था - “यमराज कहता है कि हम तुम्हें अभी नहीं ले जाते, किन्तु मैं जबरदस्ती जा रहा हूँ।” कई लोग कहते थे - “महाराज आपके नेत्रों की ज्योति मद हो गई है, आप आहार कैसे लेते हो?” अनेक लोग ऐसे भी थे, जो समाधिमरण का क्या अर्थ है, इसे बिना सोचे-समझे ही समाधि लेने के लिए महाराज को ऐसे ही प्रेरित करते थे, जैसे विरक्त परिणाम वाले तीर्थंकर के पास आकर

लौकान्तिक प्रेरणा करते हैं। अन्तर इतना ही है कि लौकान्तिकदेव विवेकमूर्ति होते हैं और ये प्रेरक व्यक्ति विवेक-विहीन थे।

विरक्ति मे महान् वृद्धि

कुथलगिरि जाने के पूर्व मिरज तरफ महाराज का विहार हुआ था। मिरज के समीप महाराज के पैर मे एक काँटा गड गया, तब महाराज बोले - “अब भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु कर्मचक्र मुझे फिराता है, घुमाता है।” काँटा बिना निकाले भी वे कुछ दूर तक चलते रहे। साथ के लोगो ने बहुत आग्रह किया, तब उन्होंने काँटा निकालने दिया।

समय के पूर्व समाधि

इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मन मृत्यु से युद्ध करने को पूर्ण तैयार हो रहा था। ऐसी मानसिक स्थिति मे कुछ भोले भक्त तथा कोई-कोई अपने को विशेष बुद्धिमान मानने वाले व्यक्ति आचार्य महाराज को शीघ्र सल्लेखना लेने की प्रेरणा देते थे, सलाह देते थे और यदा-कदा स्मरण दिलाते थे। इस सल्लेखना-प्रसंग पर पर्याप्त ऊहापोह के पश्चात् हमें तो ऐसा लगता है कि यदि ऐसी विपरीत सलाह देने वाली मडली न होती, तो जैन समाज को अपने श्रेष्ठ गुरुदेव के दर्शन का लाभ अभी और कुछ समय तक होता। इतने जल्दी वह राजहस यहा से जाकर लोकान्तर को प्रयाण न करता।

भवितव्यता

भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है। समतभद्र स्वामी ने उसे अलघ्य शक्ति-युक्त कहा है। बाह्य-अतरंग सामग्री के मिलने पर होनहार को कोई नहीं टाल सकता है। एक दिन १०८ वर्षमानसागर जी ने मराठी भजन के ये शब्द कहे थे - “कर्म बलवान मोठे, भोगा बिन चुके न कोठे” - “कर्म बडे बलवान हैं। वे अपना फल दिये बिना नहीं छूटते।” कर्मों को जबरदस्ती उदयावली मे प्रवेश कराकर तपस्वी अविपाक निर्जरा भी करता है, किन्तु बहुत से ऐसे कर्म बँधे रहते हैं कि उनको भोगना ही पडता है। भगवान आदिनाथ स्वामी ने पूर्व जन्म मे एक बैल को छ घंटे भूखा-प्यासा रखा था, उसका फल यह हुआ कि तीर्थकर पदवीधारी निर्ग्रन्थ होने पर उनको छ माह पर्यन्त अन्तराय कर्मोदयवश प्रयत्न करते हुए भी विधिपूर्वक आहार का लाभ नहीं मिला अतः भवितव्यता के अनुसार आचार्य महाराज के स्वर्गारोहण के विषय मे बाह्य अतरंग सामग्री की अनुकूलता प्राप्त हो रही थी।

भावो की विचित्रता

आचार्य महाराज ने सदा ज्योतिषशास्त्र को देखकर महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, किन्तु यम सल्लेखना लेकर कुथलगिरि के पहाड़ पर चढ़ने का उनका परिणाम अमावस्या को हुआ। उनसे निवेदन भी किया गया कि महाराज आज का दिन ठीक नहीं, किन्तु इस कथन का उन पर कोई असर नहीं हुआ। वे कहने लगे - “अमावस्या को क्या देखना? उस दिन तो महावीर भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया था। भगवान ने क्या मुहूर्त देखा था?”

अपूर्व सामर्थ्य संपन्न तपस्वी

वास्तव में आचार्य महाराज की तपस्या अपूर्व तपस्या रही है, जिसके कारण विपरीत परिस्थितियों के मध्य में भी उनका मन शांति का सागर ही रहा और ३६ दिन के लम्बे समय तक उन्होंने सच्ची सल्लेखना-काय और कषाय की लेखना अर्थात् काय और कषायों को कृश करने का कार्य करते हुए अपने जन्म को कृतार्थ किया। यथार्थ में महाराज का मन सुमेरु पर्वत सदृश स्थिर था। प्रलय के पवन से अन्य पर्वत कपित होते हैं, मेरु नहीं। आचार्य महाराज ने जीवन भर महान् तप किए। उन्होंने सिंह-विक्रीडित सदृश कठोर तप किया था। वे एक बार हमसे कहते थे कि हमने सब प्रकार के तपो का अभ्यास कर लिया है। तपोभि द्वारा उनका जीवन अत्यन्त परिशुद्ध बन चुका था, इससे अतकाल में सक्लेशकारक सामग्री का समुदाय उनके लिए ऐसा ही हुआ, जैसे समुद्र के लिए एक अग्नि का स्फुलिंग होता है।

तपस्या का रहस्य

तत्त्वज्ञानी महात्मा को भी तपस्या करने का आगम में उपदेश दिया गया है, इसका रहस्य आचार्यश्री के सल्लेखना काल में स्पष्ट हुआ। यदि आराम के साथ वे जीवन व्यतीत करते और समय तथा सयमी के सपर्क से बचते रहते, तो उनकी जीवन नौका श्रेष्ठ सल्लेखना के सौभाग्य से वचित हो सक्लेश के सागर में समाप्त हुए बिना न रहती, इसीलिए पूज्यपाद स्वामी ने समाधिगतक में मुमुक्षु को कष्ट सहन करने के लिए प्रेरणा की है -

अदुःख-भावितं ज्ञान क्षीयते दुःखसन्निधौ।

तस्माद्यथाबल दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः ॥१०२॥

-जिस ज्ञान ने दुःख सहन करने की भावना नहीं की है, वह दुःख के आगमन

होते ही विनष्ट हो जाता है, इसलिए मुनि का कर्तव्य है कि यथाशक्ति कष्टों को सहन करके आत्मा को सुदृढ़ बनावे।

अद्भुत बात

महाराज की सल्लेखना के अंतिम दो तीन दिन तक ऐसा दिखता था कि अब आत्मा शरीर का त्याग करने को तैयार बैठी है। एक दिन तो लोगो में ऐसा प्रवाद फैल गया था कि ३४ वे दिन रात्रि को ही महाराज दिवंगत हो गए। जब महाराज की शरीर-स्थिति अत्यन्त क्षीण हो गई थी, तब शास्त्र से परिचय रखने वाले विवेकी विद्वानों तथा विशिष्ट त्यागियों की महाराज के आस-पास उपस्थिति आवश्यक थी। ऐसे लोग सेवार्थ तैयार बैठे थे, किन्तु वहाँ का रग-ढग आरम्भ से ही अद्भुत रूप में था। मेरा आचार्यश्री के साथ निकट सबध रहा। मुझे तक स्वार्थी तत्त्वों ने नहीं बुलाया। समाधि की प्रतिज्ञा लेने की सूचना तक प्रबधको ने हमें नहीं भेजी थी।

भ. लक्ष्मीसेन जी

आचार्यश्री की समाधि बेला में भट्टारक लक्ष्मीसेन जी ने महत्त्वपूर्ण सेवा की थी। वे आचार्यश्री के अत्यन्त विश्वासपात्र तथा विद्वान् भक्त थे। समाधिमरण काल समीप आ गया। उस समय का उनका कथन महत्त्वपूर्ण है, “प्रबधको ने कहा था, हम आपको २ बजे रात को जगावेगे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया - अतः ५ बजे हम स्वयं महाराज की कुटी में गए।” उन्होंने देख लिया कि अब यह धर्म का सूर्य अस्ताचल को स्पर्श कर चुका है और इसको पूर्ण रूप से अस्तगत होने में कुछ भी काल शेष नहीं है। इससे उन्होंने ‘सिद्धोह, बुद्धोह, आनदरूपोह’ सदृश जोर-जोर से जप करना प्रारम्भ किया। कभी-कभी वे ‘णमो सिद्धाण’ का भी जप करते थे। महाराज के सामने की ओर सघपति सेठ गेदनमलजी, सेठ चदूलालजी सराफ तथा लक्ष्मीसेन स्वामी थे और पृष्ठ भाग की ओर भट्टारक जिनसेनजी, क्षु सिद्धसागर (भरमप्पा) थे। करीब ६ बजे तक मन्त्रों का पाठ चलता गया। करीब पौने छह बजे उपाध्याय गधोदक लाया और महाराज से कहा गया - “यह गधोदक आया है। क्या आपको लगा दे?”

महाराज ने कहा - ‘हूँ’, तब गधोदक उनके शरीर में लगाया गया। कुछ समय के पश्चात् पूछा - “क्या आपको उठाकर बैठा दे?” उन्होंने हाथ से निषेध किया। ‘निर्मलतोह’, ‘निरजनोह’, आदि मन्त्रों का उच्चारण किया जा रहा था। भक्तामर का पाठ

भी प्रारम्भ हुआ और १७ वॉ पद्य पढ़ा गया।”^१

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्य ।

स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।

नांभोधरोदरनिरुद्ध - महाप्रभावः ।

सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

- हे मुनीन्द्र! आप कभी भी अस्त को नहीं प्राप्त होते, आप राहु द्वारा ग्रास नहीं किये जाते, एक क्षण में समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं, आपका महान् प्रभाव मेघों के द्वारा नहीं रोका जाता, आपकी महिमा लौकिक सूर्य की महिमा से अधिक है।

जिस समय ये शब्द निकले - ‘मुनीन्द्र! नास्तं कदाचिदुपयासि’ - ‘हे साधुराज! आप कभी भी अस्तगत नहीं होते,’ उसी समय उन श्रेष्ठ सयमी क्षपकराज के जीर्ण शरीर से चैतन्य ज्योति ने लोकान्तर को प्रस्थान कर दिया। अब जिन आचार्य शातिसागर महाराज के सद्भाव से हम अपने को कृतार्थ माना करते थे, वह विभूति स्वर्गीय निधि बन गई। चैतन्य ज्योतिरहित वह तप पुनीत शरीर वहाँ ही पड़ा रहा। वह सूचित करता था कि जीव से शरीर यथार्थ में पृथक् है।

अंतिम क्षण में महाराज का मुख पश्चिम की ओर था। यह स्वाभाविक ही था। सूर्य की उदय की दिशा पूर्व है और अस्त होने की दिशा पश्चिम है। धर्म का सूर्य पश्चिम मुख हो अस्त हो गया, यह बात निसर्ग के अनुकूल ही रही। व्यावहारिक जनो की दृष्टि में यह धर्मसूर्य अस्तगत हुआ, किन्तु यथार्थतः ऐसा जाय, तो कहना होगा कि सम्यक् प्रकार से श्रेष्ठ समाधि की साधना के फलस्वरूप महाराज की आत्मा का सामान्य उदय नहीं बल्कि महान् अभ्युदय हुआ होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखने पर प्राणोत्क्रमण बेला में पठित भक्तामर का १७ वॉ काव्य इनके पूर्ण अनुरूप रहा। ये मुनि तो थे ही। धर्म के सूर्य भी थे। धर्म का सूर्य अस्तगत नहीं होता, वह तो नित्य उदित रहता है, अतः महाराज की महिमा वास्तव में सूर्यातिशायी हुई।

१ ऋद्धिमत्र - “ॐ ह्रीं अर्हं णमो अद्भुतमहाणिमित्त-कुसलाण। ॐ णमो णमिरुण अट्टे मट्टे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्र-पीडा जठरपीडा भजय भजय सर्वपीडा-सर्वरोगनिवारण कुरु कुरु स्वाहा। मत्र पास रखने से, अच्छा पानी मत्र द्वारा २१ बार मत्र कर पिलाने से पेट की असाध्य पीडा, वायुशूल, गोला सभी मिटते हैं। विधान- सात दिन पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार जाप सफेद माला द्वारा करनी चाहिए।

महत्त्व की बात

मैने भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराज से पूछा - “क्या आपसे कोई महत्त्व की बात महाराज ने कही थी?”

उन्होंने उत्तर दिया - “महाराज ने कहा था कि “वर्धमानसागर का ध्यान रखना तथा अन्य साधुओं पर भी दृष्टि रखना।” उनका अभिप्राय था कि समाधिमरण का काल समीप आने पर उनका ध्यान रखना।

भट्टारक लक्ष्मीसेन जी की बुद्धिमत्ता

मैने भट्टारक लक्ष्मीसेनजी से महाराज के सल्लेखना काल में होने वाली अव्यवस्था और गडबडी के विषय में चर्चा की, तब उन्होंने अपने पद के अनुरूप ये गौरवपूर्ण शब्द कहे थे - “हमने भट्टारक जिनसेन स्वामी से कहा था कि यहाँ हमें अपने मान-अपमान का विचार छोड़कर गुरु की सेवा करना है। यहाँ आचार्य महाराज कितनी महान् सल्लेखना कर रहे हैं। वे इतना सहन कर रहे हैं, तब हम क्यों कुछ भी सहन न करें? हम यहाँ एक व्यक्ति के लिए आए हैं, हमें दूसरों को नहीं देखना चाहिए। इससे हम चुप रहते थे। जब विशेष विपरीत स्थिति देखते थे, तब दूसरों से अपना अभिप्राय कह देते थे।”

श्री धनपाल बापूराव चौगुले अक्किवाट

भोज ग्राम के समीप लगभग १० मील की दूरी पर अक्किवाट नाम का एक ग्राम है, जो महामात्रिक विद्यासागर दिगम्बर मुनिराज की धर्मप्रभावना एवं समाधि की भूमि रहा है। हमें बताया गया कि विद्यासागर मुनिराज ने यवन नरेश अकबर के दरबार में जैनधर्म के गौरव को वृद्धिगत किया था। एक बार उन्होंने अमावस्या को मंत्र करके एक थाली आकाश में फेंकी थी, वह रात्रि भर पूर्णचंद्र के समान प्रकाश देती रही थी। यह बात उस स्थान पर खूब प्रसिद्ध है। अमावस्या को बहुत लोग वहाँ जाकर विद्यासागर महाराज की निषीधिका को प्रणाम करते हैं। सभी जाति के लोग उन महामुनि की भक्ति करते हैं।

आचार्य महाराज कई बार उस ग्राम में गए थे। वे विद्यासागर मुनिराज के समाधि स्थल पर जाकर प्रातः काल स्तोत्र पाठादि करते थे। कभी-कभी मध्याह्न की सामायिक भी वहाँ करते थे। महाराज कहा करते थे - “तुम विद्यासागर मुनि की भक्ति करो, यह स्थान पुण्यभूमि है।”

श्री धनपाल बापूराव चौगुले हेडमास्टर अक्किवाट ने बताया कि आचार्य महाराज जब यहाँ के समीपवर्ती ग्रामों में विहार करते थे, तो इस स्थान का तथा विद्यासागर मुनिराज का गौरवपूर्ण शब्दों में उल्लेख किया करते थे। यहाँ से १२ मील दूर चिचली ग्राम में सन् १९२५ में महाराज का भाषण हुआ था। बहुत लोगो ने पाप का त्याग कर व्रत लिये थे।

एक खास महत्त्व की बात यह हुई थी कि एक वेश्या के हृदय में धर्म की भावना जगी और उसने अपनी पापवृत्ति का त्याग किया था। उस समय महाराज के चरण जहाँ पड़ते थे, वहाँ मेला सा लग जाता था।

शास्त्रानुसार उपदेश

उस जमाने में महाराज दो-दो घंटे कानडी में बड़ा मार्मिक उपदेश देते थे। उनकी उपदेश पद्धति शास्त्रानुसार ही होती थी। वे जनानुरजक की पद्धति का अनुकरण नहीं करते थे। अधिकाधिक लोगो को प्रसन्न करके यश प्राप्त करने की उनकी चेष्टा नहीं रही। मैंने मजरेवाडी, नादणी, कुरुन्दवाड, शिरोड आदि ग्रामों में महाराज के उपदेश को सुना है और उनका लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रभाव देखा है।

उनके स्वर्गवास होने पर आसपास के ग्रामवासी सभी जाति वालों ने उपवास आदि किए थे। सगे-सबन्धी की मृत्यु से भी अधिक दुःख उनके वियोग का लोगो ने माना था।

सुभिक्ष

जब आचार्य महाराज हमारी तरफ पधारे थे, उसके तीन चार वर्ष पूर्व यहाँ धान्य की उत्पत्ति बहुत कम हो गई थी, किन्तु महाराज के पधारने के वर्ष में इतनी अधिक मात्रा में फसल आई कि पिछले वर्षों की कसर तक निकल आई। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की मन, वचन, काय, कृत, कारित तथा अनुमोदना पूर्वक निरन्तर रक्षा करने में तत्पर उन दया के देवता के शरीर से निकलने वाली पुण्यवर्णाओं से वनस्पतिकायिक जीवों को भी हर्ष हुआ था। निमित्तशास्त्र भी तो कहता है कि जिस मार्ग से सच्चे दिगम्बर तपस्वियों का विहार होता है, वहाँ सुभिक्ष का आवास होता है। वे भगवान् से प्रार्थना करते थे - “प्रभो! दुर्भिक्ष चोर-मारी क्षणमपि जगता मास्मभूत् जीवलोके।”

कुथलगिरि के गरीब व्यापारी

कुथलगिरि में महाराज के स्वर्गवास होने के अनंतर गरीब लोग वाते करते थे -
“भगवान्! इन साधु महाराज को क्यों जल्दी बुला लिया? कहीं एक माह ये बाबा और जीवित रहते, तो हमारा भाग्य जग जाता।”

श्री गौतम रामचन्द्र शाह म्हसवडकर

श्री गौतम रामचन्द्र शाह म्हसवडकर ने एक मनोरञ्जक बात सुनाई। गौतमभाई जामुन के वृक्ष पर चढ़ रहे थे कि डाल टूट पड़ी, इससे उनका पैर टूट गया। उनको देखकर कुथलगिरि जाने के पूर्व महाराज बोले -

विनोद

“गौतम! तुम मेरे साथ-साथ कुथलगिरि अवश्य चलना। कारण, मेरे नेत्रों की ज्योति मंद हो रही है। तुम लगडे हो और मैं अंधा होता जा रहा हूँ। ‘अधे-लगडे की’ जोड़ी बराबर रहेगी।” ऐसा विनोद कर वे हँसने लगे। उनकी सरलता तथा मधुरता अवर्णनीय थी। गौतम भाई ने एक बात और सुनाई - “पैर टूटने के एक वर्ष बाद सन् १९५२ में मैं आचार्य महाराज के पास दहीगाँव में पहुँचा। लोग मेरे प्रति समवेदना का भाव व्यक्त करते थे।

सांत्वना

उस समय आचार्य महाराज ने कहा - “गौतम! पैर टूट गया। कोई बात नहीं। पूर्ववद्ध अशुभ कर्म की निर्जरा हो गई। यह अच्छा ही हुआ। इस प्रकार बुराई में भी भलाई देखने की मनोवृत्ति उन ऋषिराज की थी। उनकी वाणी की युक्तियुक्तता से मेरे दुःखी मन को बड़ा सतोष हुआ और सांत्वना प्राप्त हुई। सचमुच में यदि मैंने पूर्व में पाप-कर्म का सचय नहीं किया होता, तो इस प्रकार की वेदना अकस्मात् स्वयं नहीं आ सकती थी। जैसा बीज जीव बोता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। व्यर्थ ही हम अज्ञानवश दूसरों को दोष देते हैं।

करुणापूर्ण हृदय

महाराज का हृदय करुणा रस से परिपूर्ण था। इस विषय में गौतम भाई ने सुनाया - “एक बार महाराज कुथलगिरि जा रहे थे। मार्ग में जोरदार पानी बरसने लगा। हम लोग भीगने लगे, तब महाराज ने कहा कि भीगो मत। कुटी के भीतर आ जाओ। उस

छोटी सी कुटी में हम लोगो के जाने से महाराज को कितनी असुविधा होगी, यह बात हमने सोची। उन ऋषिराज के चरणो के समीप बैठने की मान्यता वाला व्यक्ति उनके बराबरी के स्थान पर कैसे बैठेगा, इस सकोचवश हम भीतर नहीं गए, किन्तु उन दयामूर्ति गुरुदेव ने अपनी करुणापूर्ण भावना व्यक्त करने में देर नहीं की।

व्रत प्रतिमा दान

“महाराज विनोदवश मुझे गौतम कहते-कहते कभी-कभी गणधर भी कहकर बुलाते थे।” एक दिन महाराज बोले - “गौतम! तुम अपने हाथ से तो सदा भोजन बनाते हो, इसलिए प्रतिमा क्यों नहीं लेते? आटा पीसने का प्रश्न कोई कठिन नहीं है। बड़े-बड़े अधिकारी तक आहार दान के हेतु स्वयं चक्की चलाकर आटा पीसा करते हैं। इससे तुमको व्रत प्रतिमा लेने में नहीं डरना चाहिए।” महाराज ने सल्लेखना काल में मुझे व्रत प्रतिमा देकर मेरा भविष्य सुधार दिया।

संयमी का अर्थ-संचय बुरा है

कोई-कोई व्यक्ति ऊँचा सयम धारण करते हुए भी अर्थ-सचयादि के कार्य में भाग लिया करते हैं। उनके विषय में महाराज का कथन चिरस्मरणीय है - “एक म्यान में दो तलवारे नहीं रहती है, इसी प्रकार अर्थोन्मुख चित्त आत्मोन्मुख नहीं रह सकता तथा आत्मोन्मुख मन अर्थोन्मुख नहीं होता। अतः आत्मा का उद्धार करने वाले संयमी को अर्थ-सचयादि के फेर में नहीं फँसना चाहिए। अर्थसचय में प्रवृत्त साधु को दातार की प्रशंसा करनी पड़ती है। उसके प्रति विशेष राग भाव पैदा होता है। जिसने दान नहीं दिया, उसके प्रति चित्त में मलिन भाव पैदा हुए बिना नहीं रहते। राग-द्वेष की निवृत्ति ही तो संयमी जीवन का लक्ष्य है। समतभद्र स्वामी का वाक्य है। “रागद्वेष-निवृत्त्यै चरण प्रतिपद्यते साधु” अतः ऐसे प्रसंगों से बचना चाहिए, जो रागद्वेष की भावनाओं को जगावे।

क्षुल्लक महाबल जी (वर्तमान मुनिराज)

क्षु महाबल जी ने शिखरजी जाते हुए हमें बताया कि “पायसागर महाराज के हृदय में आचार्य महाराज की अपूर्व भक्ति थी। उन गुरुदेव के कारण ही उनकी समाधि सम्यक् संपन्न हुई। ९ बजे उक्त पायसागर महाराज को भक्तामर मैंने सुनाया। दस मिनट वे ध्यान में बैठे। ध्यान अवस्था में ही उनकी परलोक यात्रा हो गई।”

श्री सुवैया शास्त्री कारकल

महाराज की वृत्ति न्यायपूर्ण रहती थी। श्री सुवैया शास्त्री कारकल वाला ने बताया - प्रारम्भ में आचार्य महाराज के सघ के कोल्हापुर जिले में दर्शन प्राप्त हुए। सघ के कुछ साधु श्लोको का अशुद्ध पाठ कर रहे थे। मैंने महाराज से कहा कि महाराज यह अशुद्ध पद्य-पठन ठीक नहीं है।”

महाराज ने कहा - “आप ठीक कहते हैं, आप सरीखे ज्ञानवान शास्त्री पंडित सघ में साथ रहे, तो सब सुधार हो जायगा।” महाराज ने मेरे कहने का तनिक भी विपरीत अर्थ न लेकर न्याय का ही समर्थन किया था।

श्री जिनकुमार बैतूल

बैतूल के पोस्टमास्टर श्री जिनकुमार आचार्य महाराज के समीप गजपथा चातुर्मास के समय लगभग एक वर्ष रहे थे। उन्होंने बताया - “आचार्य महाराज के समीप अरविदकुमार रावजी दोशी केमरा लेकर महाराज की फोटो उतारने पहुँचे, तब महाराज ने पूछा कि तुम हमारी फोटो क्यों उतारते हो?”

अरविन्द ने कहा - “आप समान सद्गुरु का दर्शन प्रतिदिन नहीं होता। इसलिए आपकी फोटो खींचते हैं, जिससे आपका दर्शन परोक्ष रूप से हो जाए।”

महाराज बोले - “मंदिर में प्रतिमाजी बहुत हैं, उनका दर्शन करके अपना कल्याण क्यों नहीं करते?”

“रात्रि के समय मैं महाराज की कुटी के समीप ही सोता था। रात्रि को महाराज लघुगका के लिए उठते थे। वे अंधेरे में सोते थे। उनकी आहट मिलते ही मैं जागता था और टार्च के प्रकाश से भूमि को शुद्ध दिखाता था। उपवास के दिन महाराज नहीं उठते थे। महाराज के समीप पूर्ण नीग्वता रहती थी। वे बिलकुल चुपचाप रहते थे। कभी-कभी मैंने देखा कि ज्वर के कारण शरीर बहुत गर्म है, किन्तु वे चुपचाप रहे आते थे, मानो पूर्ण नीरोग हो। मैं रात को कभी जागता था, तो उन्हें सदा सावधान तथा ध्यान की स्थिति में पाता था।

विनोद द्वारा शिक्षा

एक दिन मुझे जोर की नींद आ गई। मैं निद्रा में निमग्न था। प्रभात में उन्होंने

विनोदपूर्वक पूछा - “रात को तुम कहाँ चले गए थे।” मैं उनके प्रश्न का अर्थ न समझ सका। तब उन्होंने मेरी गहरी निद्रा का हाल बताया।

सामायिक के पूर्व मैं उनके नेत्रों में औषधि लगाता था। मैंने पूछा - “इस अजन से लाभ हुआ या नहीं।” महाराज ने कहा - “कुछ भी लाभ नहीं है।” विनोद पूर्ण मुखाकृति के साथ कहने लगे - “इतने बड़े शरीर में इतनीसी औषधि क्या करेगी?”

प्रश्न - आप कोमल नेत्रों में अजन लगाने का कष्ट क्यों उठाते हैं?

उत्तर - उन्होंने कहा - कुछ आँसू बह जाते हैं, इससे नेत्रों में ठडक पड़ जाती है। कुछ शांति मिलती है।”

शांति का आभास

प्रश्न - शांति आत्मा का गुण है। शरीर से आत्मा को शांति कैसे? सिर में दर्द है, तो पैर में पट्टी लगाने का क्या प्रयोजन?

महाराज ने कहा - “हमारे मन में अगाध शांति है, थी और आगे भी कमी नहीं होगी। शरीर को शांति मिलने से क्षणभर शांति का आभास हो जाता है। वास्तव में इससे आत्मा की शांति में न हानि है और न वृद्धि।”

इस कथन द्वारा शांति तत्त्व का रहस्य स्पष्ट होता है। ‘शांति का आभास’ इन्द्रियों के आश्रय से प्राप्त है। असली शांति की उपलब्धि बाह्य पदार्थों की सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है।

क्षुद्र कीट पर करुणा

“मैं और भरमप्पा अष्टमी और चतुर्दशी को महाराज के साथ गजपथा के पहाड़ पर जाते थे। मार्ग में जामुन के बराबर एक बड़ा कीड़ा सामने आ गया। मैंने अपने पैर से उसे अलग कर दिया। महाराज ने देखकर अपने हाथों में उस कीड़े को उठा लिया और उसे योग्य स्थान पर छोड़ दिया। यह देखकर महाराज की ‘सत्त्वेषु मैत्री’ - संपूर्ण जीवों में मित्र भाव रूप वृत्ति स्पष्ट होती थी।

सुवास

“उनकी असाधारण तपस्या, विशुद्ध चित्तवृत्ति और जिनेन्द्रदेव की प्रगाढ़ भक्ति के कारण कभी-कभी आश्चर्यप्रद शक्ति का विकास नेत्रगोचर होता था। आचार्य श्री के नेत्रों के लिए किसी अनुभवी व्यक्ति ने मेहदी का तेल मस्तक में लगाने को बताया

था। मैं उस सुवास शून्य तेल को महाराज के सिर पर मलता था। इसके पश्चात् उनकी कमर में दाद रोग के निवारण हेतु मैं नीम की निबोरी का कटु तेल रगड़ता था। इसके अनन्तर मैं देखता था कि मेरे हाथों में दुर्वास के बदले उन महापुरुष के स्पर्शवश चन्दन की सुवास आती थी। मेरी तरह दूसरों का भी ऐसा अनुभव रहा है।”

दूसरे की सुविधा का ध्यान

“महाराज स्वयं शरीर के प्रति अत्यन्त निस्पृह तथा विरक्त रहते हुए भी दूसरों के सुख-दुख का बड़ा ध्यान रखते थे। मैं प्रतिदिन तीन बजे दिन को उनके समक्ष शास्त्र पढ़ा करता था। जब भोजन का समय समीप आता था, तो वे कहते थे - “जीमो, तुम्हारे भोजन का समय हो गया है।” स्वयं अनेक उपवास करते हुए भी दूसरे की छोटी सी असुविधा तक का वे अधिक ध्यान रखते थे। यहाँ ध्यान शब्द वास्तव में दृष्टि सामान्य का द्योतक है। ध्यान तो उनका अपनी आत्मा की ओर ही रहा करता था।”

डॉक्टरी के विषय में विचार

एक दिन महाराज कहने लगे - “तुम आगे और क्या अभ्यास करने का निश्चय कर रहे हो?” मैंने कहा - “महाराज! मेरे भाव सेवा के हैं, इसलिए मैं डॉक्टरी सीखने की सोचता हूँ।” उन्होंने कहा - “सेवा के भाव हैं, तो धर्म की सेवा करो। चिकित्सक बनने पर तुम्हारे समक्ष पैसे की आकुलता रहेगी। उस समय धन की हाय-हाय तुम्हारी आज की सेवा की भावना को समाप्त कर देगी।” उनके इस कथन में व्यापक लोकप्रवृत्ति का अनुभव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

अपूर्व विनोद

मैं मार्च १९५४ में नीरा में महाराज के पास दर्शनार्थ पहुँचा। महाराज ने कहा - “तुम इतनी दूर कैसे आए।”

मैंने कहा - “महाराज! आप दिगंबर साधु हैं, आपके दर्शन हेतु आया हूँ।”

उस समय मधुर विनोद की भाषा में उन्होंने कहा - “इतनी दूर आने का क्या कष्ट उठाया? बन्दर भी नग्न रहता है, उसे देख सकते थे।” इसके बाद वे हँसने लगे।”

मैं उनकी पूजा करने बैठा। नैवेद्य चढ़ाते समय मेरे हाथ में कोई पकवान न देखकर वे कहने लगे - “तुम पढते हो, घेवर, पूड़ी, लाडु, बासुन्दी, पेडा, जलेबी आदि और हाथ में तुमने किसमिस रखी है। क्या तुम हमें भुलाते हो?” इतना कहकर वे हँसने

लगे। उनका स्मितवदन देखकर ऐसा लगता था, मानो भगवती अहिंसा ही स्मित की स्थिति में हो।

जन्मदिवस पर उपवास का कारण

महाराज ने बुधवार को उपवास किया था। गुरुवार के दिन भी वे आहार को नहीं उठे। मैंने प्रार्थना की कि कल तो आपका उपवास था, आज उपवास क्यों करते हैं? शरीर में उष्णता वृद्धिगत होगी। उससे आपके नेत्रों को नुकसान होगा।

महाराज ने कहा - “गुरुवार हमारा जन्मदिन है।” मैंने कहा - “जन्म-दिन आनन्दाचा दिवस आहे-आनन्द का दिन है। लोग उस दिन मिष्ठान्न खाते हैं, खिलाते हैं।”

महाराज ने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि सुनते ही मन हर्षित हो उठा। वे कहने लगे - “धर्म के लिए कोई असमय नहीं है। सभी समय धर्म की आराधना के योग्य हैं। नीतिकार कहता है, ‘अकालो नास्ति धर्मस्य, जीविते चचले सति’ - जीवन के क्षणिक होने पर धर्म करने के लिए कोई भी अकाल अर्थात् अयोग्य समय नहीं है। जब जननी के उदर से जन्म धारण करते समय जीव दिन-रात आदि के योग्य-अयोग्य काल का विचार नहीं करता है, मरते समय भी काल विशेष का ध्यान नहीं रखता, तब धर्म धारण करने में भी यह क्यों सोचा जाय कि आज मेरा जन्मदिन है, इससे मैं आत्मकल्याण के कार्य में प्रमाद करूँ?” उपवास के दिन तत्त्वज्ञानी आत्मा को ज्ञानामृत का आहार देते हैं। Fast means - fasting of the body but feasting of the soul

प्रगाढ श्रद्धा पूर्ण हृदय

सकट-निवारण हेतु जिनेन्द्र-नाम-स्मरण पर महाराज की बड़ी आस्था थी। गहरा विश्वास था। बम्बई सरकार ने हरिजन मंदिर प्रवेश कानून के द्वारा जैनों के धार्मिक अधिकारों पर हस्तक्षेप किया था, तब आचार्यश्री ने अन्न त्याग किया था, यह तो सब जानते हैं। उस समय महाराज क्या करते थे, यह बात सबको ज्ञात नहीं है।

जप

सामान्यतः महाराज सूर्यास्त के समय आध्यात्मिक-प्रकाश लाभार्थ सामायिक हेतु बैठते थे। रात को बारह बजे के लगभग सामायिक के पश्चात् उनका जाप चलता था। पश्चात् वे अल्प निद्रा लेते थे। मंदिर प्रवेश कानून की विशेष चर्चा चलने पर तथा

कहीं की विशेष चिन्ताप्रद स्थिति जात कर वे रात-गत भर लगातार जातिपूर्वक जाप करते रहते थे।

एक दिन मैंने पूछा - “महाराज! क्या जाप से धर्म-संकट टल जायगा?”

दृढ विश्वास

तब उन्होंने बड़ी दृढता से उत्तर दिया - ‘जीघ्र ही धर्म की विजय होगी।’ उनकी श्रद्धा अपूर्व तथा अविचल थी।

महाराज के समक्ष तत्त्व चर्चा चला करती थी। कभी-कभी बहस गरम रूप भी दिखाई पड़ती थी किन्तु उसके पर्यवसान में शांति की ही उपलब्धि होती थी। एकदिन तीन श्वेताम्बरी साधु गजपथा में महाराज के पास आए। दो बजे से चार बजे तक चर्चा जोर-जोर से चलती रही। श्वेताम्बर साधु कहते थे - “हरिजनो को मंदिरों में प्रवेश दीजिए।”

आगमवाणी

उनको अकाट्य तर्कपूर्ण ढंग से समझाते हुए आचार्य महाराज ने कहा - “जिनेन्द्र की वाणी हमारा प्राण है। उसके आदेश के अनुसार हम चलना है। हमें आप-से या दूसरे में पथप्रदर्शन प्राप्त नहीं करना है।” महाराज के श्रद्धा, युक्ति तथा अनुभव प्रेरित प्रवचन को सुनकर वे साधु उनके समक्ष नत-मस्तक हो चले गए। गरम बहस के समय ऐसा भ्रम होता था कि कहीं इसका कटुतापूर्ण पर्यवसान न हो, किन्तु ऐसा न होकर अंत में शान्ति पूर्ण भावों का विस्तार होता था।

ब्र. पं. पन्नालालजी काव्यतीर्थ

अपूर्व गुणग्राहक

प० पन्नालालजी काव्यतीर्थ, धर्मालंकार ने आचार्य महाराज के विषय में बताया - “मैंने सन् १९३० के लगभग मथुरा में महाराज के जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। सघ के साधुओं की भी चर्चा बारीकी से देखी। मैंने अपनी कुछ गंकाओं की ओर शास्त्राधार से महाराज का ध्यान आकर्षित कराया। महाराज ने पक्षमोह त्यागकर तत्काल शास्त्रानुसार सशोधन कराया। उनकी गुणग्राहकता अपूर्व थी।”

महान् गंभीर

मैंने पंद्रह दिन तक महाराज को नमस्कार नहीं किया था। मैं उनकी समस्त

पद्धतियों को बारीकी से देखता रहा था। मेरे नमस्कार न करने पर महाराज में जग भी क्षोभ नहीं उत्पन्न हुआ। वे बड़े गंभीर थे। पढ़ाई के पश्चात् मेरा मन सदेह मुक्त हुआ, तब मैंने उनको तथा सब के साधुओं को प्रणाम किया। महाराज की शांति अपूर्व थी।

तेजपुंज नेत्र

महाराज के शरीर में साहजिक दीप्ति पाई जाती थी। उनका शरीर तपोग्रि के कारण झुलसा हुआ, किन्तु चमकदार दिखता था। उनका तप पुनीत शरीर उनकी महिमा को स्पष्ट करता था। उनकी आँखों में अद्भुत ज्योति थी। उनके तेजपुंज नेत्रों के दर्शन से उनकी पवित्रता टपकती थी।

निर्माल्य

उनकी दृष्टि बड़ी मार्मिक थी। एक दिन मैंने महाराज से निवेदन किया- “शिखरजी में तेरहपथी कोठी के प्रबन्धक का कार्य मुझे सौंपा जा रहा है; किन्तु मेरा मन इस कार्य से पीछे हटता है। मंदिर के पैसे को लेने से निर्माल्य लेने का दोष आयेगा। आपकी क्या दृष्टि है?”

महाराज ने पूछा- “क्या तुमने काम करने का वेतन तय किया है?” मैंने कहा- “मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। जो व्यवस्थापक मंजूर देगी, वह मैं स्वीकार करूँगा।”

मार्मिक बात

महाराज ने बड़ी मार्मिक बात कही- “देखो! विदेह में सभी लोग जिनेन्द्र के आराधक हैं। वहाँ भी तो जिन मंदिर हैं। उनकी व्यवस्था, रक्षा का कार्य जेनी के सिवाय अन्य कौन करेगा? इससे तीर्थक्षेत्र में जाकर प्रबन्धक बनने में कोई बाधा नहीं है। एक बात है कि जितने दिन वहाँ रहो, उतने दिन जी-जान से परिश्रम करना। प्रमादपूर्ण कार्य मत करना।”

चन्द्रसागर महाराज की तपस्या

“महाराज के कथन से मन का सदेह दूर हुआ। मैंने उनके कथनानुसार ही कार्य किया था। आचार्य महाराज महान् तो थे ही, उनके शिष्य भी अपूर्व थे। चन्द्रसागर मुनि महाराज की तपस्या से मैं बहुत प्रभावित हुआ था। शायद सन् १९३६ की बात है। चन्द्रसागर महाराज जयपुर नगर के बाहर खानियाँ की नशिया में विराजमान थे। मैं उनके दर्शनार्थ पहुँचा। महाराज मध्याह्न में वहाँ के पहाड़ के ऊपर जाकर ध्यान करते थे। हम

कुछ लोगो के साथ पहाड पर चढने ही वाले थे कि ऊपर से शेर की गर्जना सुनाई दी। सब लोग घबडा गए। कई लोगो का तो भय के कारण बुरा हाल हो गया था। ध्यान का समय पूर्ण होने पर चद्रसागर महाराज पर्वत से शात, गभीर तथा तेजोमय मुखमडल सहित नीचे आए। पहाड से जब वे उतरते थे, तब ऐसा दिखता था, मानो एक नरसिंह नीचे आ रहा है। उनकी रसना इद्रिय की विजय भी महान् थी।”

युक्तियुक्तता

प पन्नालालजी ने कहा-“चद्रसागर महाराज ने मुझे व्रत प्रतिमा लेने की प्रेरणा दी। मैंने अपनी असमर्थता बताते हुए कहा-“महाराज! मुझ से यह नहीं बनेगी, दोष लग जावेगे।” वे बोले-“प्रतिमा लेने पर दोष मालूम होंगे। तुम पंडित हो, स्वयं दोषो को जानकर उनको दूर कर सकोगे।” “उनकी कृपा से मुझे दूसरी प्रतिमा मिली। उससे बड़ी शांति प्राप्त हुई। यथार्थ मे आचार्य महाराज के निकट संपर्क मे रहने वाली अनेक आत्माओ का कल्पनातीत कल्याण हुआ है।”

पं. कुन्दनलाल जी सिवनी

स्फटिक सदृश अंतःकरण

प० कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्य सिवनी ने बताया- “मै ब्यावर मे महाराज के चातुर्मास के काल मे मौजूद था, क्योकि मै दिगम्बर जैन महासभा द्वारा संचालित महाविद्यालय का अधीक्षक (Superintendent) था। दिन-रात आचार्य महाराज के निकट संपर्क मे आने का अवसर आता था। उनका अंतःकरण स्फटिक के समान निर्मल था। सत्य को स्वीकार करने मे उनको क्षण भर भी विलम्ब नहीं लगता था। मै जब भी देखता, महाराज प्रायः स्वाध्याय मे ही सलग रहते थे। ध्यान करते थे और तपस्या मे लीन रहते थे।”

वास्तव मे देखा जाय, तो आचार्य महाराज के जीवन मे समन्तभद्र स्वामी का साधु परमेष्ठी सबधी लक्षण पूर्णरूप से चरितार्थ होता था। समन्तभद्र स्वामी को किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने भावि-तीर्थकर कहा है, यथा- “सेढिय-समतभद्रो तित्थयरा होति”- “श्रेणिक महाराज तथा समतभद्र आचार्य आगामी तीर्थकर होंगे।” ‘राजावलिकथे’ कन्नड ग्रंथ मे समतभद्र स्वामी को भावी तीर्थकर एव चारण ऋद्धि समन्वित भी कहा है-

“आ भावितीर्थकरन् अप्प-समन्तभद्र स्वामिगळु पुनर्दीक्षेगोण्डु तप

सामर्थ्यादि चतुरगुलचागणत्वमडेदु गत्नवरडकादि-जिनागम-पुराणम
पेल्लि म्याद्वादवादिळ आगि ममाधिय ओडेदर ।”

ऐसी पूज्य आत्मा ने गत्नकरड श्रावकाचार में कहा है-

विषयाशा-वशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।

ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तन्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

— जिनके पास इन्द्रियों को आनंद देने वाले विषयों की आशा का अभाव है, जो कृषि, वाणिज्यादि सावद्य कर्मरूप आरंभ रहित है, धन-धान्य, वस्त्रादि वात्स तथा काम, क्रोधादि अतरंग परिग्रह रहित है तथा जो ज्ञान, ध्यान तथा तपस्या में अनुरक्त है, वह तपस्वी प्रशसनीय है ।

यह लक्षण आचार्य महाराज में पाया जाता था । उनको देखकर आश्चर्य होता था कि आज की आध्यात्मिक अधियागी रूप अमावस्या की बेला में ऐसी चिन्मय मूर्ति कैसे प्रकाशमान हो रही है? यथार्थ में वे अद्वितीय साधु थे ।

अपूर्व आगम-भक्ति

पंडित जी ने बताया- “मैं जब महाराज के पास पहुँचता, तो देखता था कि वे बड़े ध्यान पूर्वक शास्त्र-स्वाध्याय करते थे । कभी-कभी वे कहते थे कि देखो! शास्त्र में यह कितनी सुन्दर बात आई है । कभी किसी विषय पर मैं उनके समक्ष शास्त्रीय चर्चा पर आचार्यान्तर की बात उपस्थित करता या उनकी धारणा के विपरीत कहता था, तो वे बड़े प्रेम तथा प्रसन्नतापूर्वक बात को सुनते थे । उनको शास्त्र का आधार दिखाते ही, वे तत्काल आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करते थे । वास्तव में, महाराज आगम-प्राण थे ।”

आसनदृढता

महाराज की आसन-दृढता अपूर्व थी । उपवास के दिन सुबह से जिस आसन से वह स्थित होते, तो सारा दिन वीतने पर भी उनका वही आसन रहता था । आठ-आठ घंटे तक आसन एक ही रहता था । बैठने के पश्चात् वे वज्र की भाँति स्थिररूपता धारण करते थे । महाराज काष्ठ के आसन पर बैठते थे । उसके पीछे भी टिकने के लिए कुर्सी की तरह काष्ठफलक रहता था, जैसा कि उनके चित्रों में अंकित पाया जाता है । महाराज उस काष्ठ के फलक से पृथक् ही बैठा करते थे ।

तप का तेज

उनके देह में दर्पण की तरह सहज दीप्ति शोभायमान होती थी। रूखा-सूखा आहार ग्रहण करने वाले रसपरित्यागी उन साधुराज के समस्त शरीर में विद्यमान तेज यथार्थ में उनके विशुद्ध चरित्रयुक्त तप का ही तेज था।

ब्यावर चातुर्मास

ब्यावर चातुर्मास की एक महत्त्वपूर्ण बात थी ब्र० देवचदजी बी ए, कारजा गुरुकुल के सस्थापक तथा मुख्य सचालक की क्षुल्लक दीक्षा। आचार्य महाराज के सपर्क से प्रभावित उन ब्रह्मचारी जी के चित्त में क्षुल्लक व्रत लेने की भावना जगी।

शेडवाल के मुनि आदिसागर महाराज ने सन् १९५८ के सिवनी चातुर्मास में बताया था-“कर्णाटक प्रान्त में क्षुल्लक को मुडन अणुव्रती कहते हैं। वह शिखा रहित, यज्ञोपवीत रहित, गेरुआ रंग के खड-वस्त्र युक्त तथा मुडन युक्त रहता है। ऐलक को उच्छुल्लक शब्द से कहते हैं।”

“ब्र० देवचदजी ने क्षुल्लक दीक्षा का निश्चय होने के पूर्व उपलब्ध समस्त श्रावकाचारों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया। स्व० प० देवकीनन्दनजी व्याख्यान-वाचस्पति, मै तथा कुछ अन्य व्यक्ति भी उनकी उचित सहायता कर रहे थे। क्षुल्लक के कर्तव्यादि के विषय में निर्भ्रान्त होने पर दीक्षा का पक्का निश्चय हो गया। जब नामकरण की चर्चा महाराज शातिसागरजी ने उठाई, तब अन्य शिष्यों के समान ‘सागरान्त’ नाम रखने का विचार समक्ष आया।”

शांतमूर्ति

प० कुन्दलालजी ने बताया-“उस समय मैंने कहा, महाराज इनके नाम में सागर न लगाइये। सागर महान् है, किन्तु उसमें ज्वारभाटा भी आ जाता है।” मेरे कथन का उन शांतिमूर्ति साधुराज पर कुछ भी बुरा असर नहीं पड़ा। स्मित मुख से वे कहने लगे-“तुम ही कहो, क्या नाम रखा जाय?” मैंने कहा-“महाराज, मेरा सुझाव सर्व-प्रिय रहेगा। इनका समतभद्र नामकरण कीजिए।” प्रसन्नतापूर्वक यह नाम स्वीकृत हुआ। वह दृश्य भी नहीं भुलाया जा सकता, जब एक स्नातक (Graduate) आचार्य महाराज के चरणों को प्रणाम करते हुए मुडित-मुड क्षुल्लक की दीक्षा ले रहा था। उस समय ऐसा लगता था कि आज के असयम के जगत् में सयम प्रेम की एक मधुर मनोरम झाँकी ही दिखाई जा रही है। मुनि श्री समन्तभद्रजी दिगम्बर मुनि के रूप में अपने अंतिम समय तक कुभोज बाहुबली क्षेत्र में विराजमान रहे।

दिगम्बरत्व पर गांधीजी

दिगम्बरत्व बहुत बड़ी निधि है। तन के दिगम्बरत्व के साथ मन भी दिगम्बर होना चाहिए। दिगम्बरत्व के माध्यम से सच्चा अपरिग्रहत्व उपलब्ध होता है। गांधीजी ने यरवदा जेल में २६ अगस्त १९३० में बड़ी अनुभव पूर्ण बात कही थी -

“आदर्श आत्यंतिक अपरिग्रह तो उसीका होगा, जो मन से ओर कर्म से दिगम्बर है। मतलब, वह पक्षी की भाँति बिना घर के, बिना वस्त्रों के ओर बिना अन्न के विचरण करेगा। इस अवधूत अवस्था को तो विरले ही पहुँच सकते हैं। सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि उसका विचार ओर इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटाइये, त्यों-त्यों सच्चा सुख और सच्चा सतोष बढ़ता है, सेवाशक्ति बढ़ती है।”^१ गांधी के उपरोक्त वाक्य गहरे अनुभव, गंभीर चिंतन और विशाल अध्ययन की आधारशिला पर अवस्थित हैं।

सम्यक्त्व और संयम

महाराज का अनुभव अपूर्व था। उच्च श्रेणी के विद्वान् तथा शास्त्रीय लोग भी आचार्य महाराज से महत्त्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त करते थे। आत्मा की उपलब्धि तथा संयम की साधना के सवध में विद्वानों तथा जन साधारण में अद्भुत भ्रम उत्पन्न होता है। आचार्य महाराज की यह वाणी बड़ी उद्बोधक तथा माननीय है। महाराज ने कहा था- “शुद्ध आत्मा का अनुभव होना सम्यक्त्व है। तत्त्वार्थ-श्रद्धान तो उपचार कथन है। सम्यक्त्व का स्वरूप समझ में नहीं आता, तो व्रत धारण करो। व्रत के द्वारा देवगति में जाना, वहाँ से विदेह में जाकर सीमधर आदि तीर्थंकरों के समवसरण में पहुँचकर आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझना। वहाँ स्पष्ट ज्ञात होगा कि आत्मा का अनुभव क्या चीज है? अरे! आत्मा और भगवान दो नहीं हैं। इसे (आत्मा को) देखा, तो उसे (परमात्मा को) देखा।”

पुरुषार्थ करो

महाराज ने यह भी कहा था- “प्रमादी को कुछ नहीं मिलेगा। पुरुषार्थ करो। ब्रती बनने वाला तीनगति में नहीं जाता है। मिथ्यादृष्टि कुलिंगी साधु सोलहवे स्वर्ग तक जाता है। सम्यक्त्वहीन दिगम्बर जैन मुनि ग्रैवेयक तक जाता है। चारित्र तो अभी थोड़ी देर में कमा सकते हो। सम्यक्त्व हाथ की बात नहीं है। कर्महानि, सद्गुरुदेशना, अर्थ

पुद्गल-परावर्तन काल समाश्रमण का शेष रहना आदि कारणों की प्राप्ति सम्यक्त्व के लिए आवश्यक है। चारित्र विहीन सम्यक्त्वी १३२ मार्ग पर्यन्त मसार में रहेगा। सम्यक्त्व महित चारित्र के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।”

मोक्ष का साक्षात् कारण चारित्र

वास्तव में अनेकान्त दृष्टि को भूलकर जो एकान्त पक्ष पकड़ते हैं, वे स्वयं अपने पैर पर कुठागघात करते हैं। पूज्यपाद स्वामी का सर्वार्थमिद्धि में यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है- “धर्मेन्तर्भूतमपि चारित्रमन्ते गृह्यते मोक्ष-प्राप्ते साक्षात्कारणमिति ज्ञापनार्थम्।”^१ उत्तमक्षमादि धर्मों में मयम है। उसमें चारित्र का अतर्भाव हो जाता है, फिर भी सवर के कारणों में चारित्र को अतर् में स्थान दिया गया है, क्योंकि वह मोक्ष की प्राप्ति में साक्षात् कारण है, यह सूचित करना इष्ट था। इसमें विवेकी व्यक्ति समझ सकता है कि चारित्र का कितना महत्त्व है? सयोग-केवली भगवान के परमावगाढ सम्यक्त्व है, पूर्ण सम्यक्ज्ञान है, फिर भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जिस समय अयोगी-जिन के गुप्तिरूप चारित्र की पूर्णता होती है, उसी क्षण मोक्ष होता है।

चेतावनी

महाराज का यह कथन अनमोल है - “जैनधर्म का मूल आधार भगवान की वाणी है। उस पर शक्ति के अनुसार चलो। पच पापों के त्याग की शक्ति न हो तो एक का ही त्याग करो। शक्ति के अनुसार कार्य करना कल्याणप्रद है। आगमकथित मार्ग को उल्टा करने का पाप बड़ा है।” महाराज ने एक मार्मिक चेतावनी दी थी- “सम्यक्त्व तो पशु पर्याय तथा नरक पर्याय में भी होता है, परन्तु उच्च चारित्र का पालन मनुष्य पर्याय में ही होगा। मनुष्य पर्याय के क्षय होते देर नहीं लगती, अतः शीघ्र सावधानी करना श्रेयस्क है।”

श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ में एक वाक्य आया है। - “मुहुत्तमवि णो पमायए, वओ अच्चेति, जोव्वण च” - “एक मुहूर्त पर्यन्त भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। अवस्था ढलती है, यौवन भी जाता है।”

१ मिथ्यादृष्टे अतर एकजीव प्रति उत्कर्षेण द्वेष्ट-षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम् (सर्वार्थसिद्धि १, ८ पृ २७)

२ सर्वार्थमिद्धि (अध्याय ९ सूत्र १८)

ऐहिक सुखो का प्रेम

महाराज ने कहा था- “आजकल सब लोग ऐहिक सुखो की ओर झुकते हैं। लोग सरल तथा स्वच्छन्दता के मार्ग को पसंद करते हैं। दिगम्बर जैनधर्म कठिन है। दिगम्बर जैन साधु प्राण भी चले जाँय, किन्तु मर्यादा का पालन करते हैं। इतर साधु भूख-प्यास की बाधा होने पर भोजन, जल ग्रहण करेगा। अतरायो को टालने की अन्य साधु कब परवाह करते हैं? दिगम्बर जैनधर्म की कठिनता के कारण थोड़े ही दिगम्बर जैन साधु पाए जाते हैं।”

शासन दोषी है

भारतवर्ष ने सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ स्वच्छदाचरण की ओर प्रवृत्ति की। आचार्य महाराज ने सन् १९४८ में कुछ चेतावनी के शब्द कहे थे, जो इस समय सबके अनुभव गोचर हो रहे हैं। उन साधुराज ने कहा था - “हम यह खातिरी से (विश्वासपूर्वक) कहते हैं कि आज का भ्रष्टाचार ठीक नहीं है। पाप का फल थोड़े दिनों में अवश्य मिलेगा। काला बाजार, चोरी, रिश्वत खाना आदि सब असत्कर्म सरकार ने सिखाए हैं। यह भूल प्रजा की नहीं, शासन की है। हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री-सेवन तथा अतिलोभ इन पाँच पापों को छुड़ाना न्याय है, धर्म है। इन पापों की पुष्टि करते हुए राज्य करना अन्याय है।”

मिथ्यावादियों का कर्मवाद

प्रेमपूर्वक पाप कार्यों को करते हुए कोई-कोई लोग यह कह बैठते हैं। - “जो-जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे” - “सीमधर भगवान के ज्ञान में जब हमारा मोक्ष होना झलका है, तब हम मोक्ष का प्रयत्न करेंगे, अभी प्रयत्न करने का क्या प्रयोजन।” इस शका के उत्तर में महाराज ने कहा था - “ऐसा कथन तो अन्यमतियों के समान हो जायेगा। मिथ्यात्वियों के कर्मवाद के समान हो जायगा।”

इस प्रसंग पर एक उपयोगी बात देना ठीक लगता है। सन् १९५९ अप्रैल में सोनगढ के बाबा सिवनी आए थे और उन्होंने उपरोक्त नियतिवाद का समर्थन किया था। मैंने उनसे कहा था-

क्या क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे।

वीतराग की वाणी द्वारा दूर करो भव पीरा रे॥

इससे वे निरुत्तर हो गए थे। विदेह में विराजमान सीमधर प्रभु के ज्ञान में जो झलका है, उसका भारतवासी को कैसे पता चलेगा।

वास्तव में लोग पाप कार्यों में पुरुषार्थ करते हैं और आत्म-कल्याण के क्षेत्र में पुरुषार्थ से विमुख होकर भगवान के ज्ञान की ओट में छिपना चाहते हैं और प्रमादी जीवन व्यतीत करते हैं।

द्रव्य का स्वाधीन परिणमन

सूक्ष्म रीति से तत्त्व का चितवन करने पर यह ज्ञात होगा कि जैनधर्म में समस्त वस्तुओं को कथंचित् स्वतंत्रता दी है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन उसके स्वाधीन है। एक द्रव्य का परिणमन द्रव्यान्तर के आधीन नहीं है। ऐसी तत्त्व व्यवस्था है, तो भगवान के ज्ञान के आधीन पदार्थ का परिणमन कहना भक्ति की भाषा है, तर्क की भाषा नहीं। जैसे एक किसान का लिखा हुआ एक कागज है। वह मूल प्रति है। उसकी नकल एक श्रेष्ठ ज्ञानी कर लेता है, तो वह दूसरी नकल उतनी महत्ता को न्यायालय में नहीं प्राप्त होगी, जितनी उसकी मूल प्रति (Original Copy) महत्त्वपूर्ण मानी जायगी, अतः तत्त्व-चिन्तन करते समय हमारा कर्तव्य है कि प्रमाद, अन्याय आदि को प्रोत्साहन प्रदान करने के मलिन उद्देश्यवश धर्म का या भगवान के ज्ञान का अवलंबन नहीं लेना चाहिए। धर्म की ओट में यदि पाप का पोषण किया जाता है तो यह बहुत बड़ा पातक है, जिसका परिणाम पापी जीव उदय काल में रो-रोकर भोगा करता है। अतः आत्महित के कार्य में हमें उत्साह धारण करना चाहिए, कारण नर-पर्याय अत्यन्त दुर्लभ है।

श्री शान्तिनाथ भुजबली वैद्य बारामती

वैद्यराज को उपदेश

बारामती में श्री शान्तिनाथ भुजबली वैद्य एक सज्जन व्यक्ति हैं। वे महाराज के पास बहुधा आया-जाया करते थे और उनके स्वास्थ्य के विषय में विशेष ध्यान रखा करते थे। वैद्यराज ने बताया कि महाराज हमसे कहते थे।- “तुमने हजारों आदमियों को दवा दी है। उससे अधिक फल निर्ग्रन्थ साधु अथवा व्रती को औषधि देने का है। तुम साधु-सेवा में लगे रहते हो। इसका तुम्हें बहुत मधुर फल मिलेगा। ऐसा ही परोपकार करने में अपने जन्म को सार्थक बनाते रहना।”

महाराज के ये शब्द बड़े मार्मिक हैं- “पैसा खूब सग्रह करो, तो वह तुम्हारे

साथ नहीं जायेगा। धर्म ही साथ जाने वाला है। बीमार स्वयं की प्रसन्नता से जितना दे, उतना लेना। जवर्दस्ती करके ओर उसे दुखी करके नहीं लेना चाहिए। इसे अवश्य ध्यान में रखना।”

चिकित्सक का कर्तव्य

सचमुच में चिकित्सक के लिए जो बात आचार्य महाराज ने कही थी, वही बात आज के हजारों वर्ष पूर्व रचित वैद्यक ग्रन्थ चरक महिता में बताई गई है। बंगाल के प्रकाण्ड डॉक्टर श्री विधानचन्द्र राय ने लिखा है- “आयुर्वेद के विद्यार्थी से चिकित्सा कार्य को समाज सेवा के व्रत के रूप में ग्रहण करने की शपथ कर्गई जाती थी, क्योंकि वास्तविक चिकित्सक का हृदय रोगी के प्रति ममता और अनुकम्पा की भावना से कदापि शून्य नहीं होगा और उसके मन में विरक्ति कदापि उत्पन्न नहीं होगी। रोगी के कष्टों को दूर करने के लिए जिस हाथ का उपयोग किया जाता है वह कदापि कम्पित नहीं होगा। स्वाधीन भारत के चिकित्सकों का आयुर्वेद के इस आदर्श पर चलना परम कर्तव्य है।”

नेत्रों की चिकित्सा

वैद्यगज ने कहा- “जब हम आचार्य महाराज के नेत्रों में दवा डालते थे, तो वे कन्ते थे, क्यों बार-बार दवा डालते हो, इससे लाभ नहीं होता। अब हमें सल्लेखना लेना होगी, क्योंकि हम ईर्या समिति का पूर्णतया पालन नहीं कर सकते। हम तो सल्लेखना की तैयारी कर रहे हैं।”

साम्य परिणति

कुथलगिरि में आगत सारे देश के हजारों व्यक्तियों को देखकर वैद्यराज ने कहा- “महाराज यह आपका प्रभाव है जो इतने व्यक्ति आ रहे हैं।” महाराज बोले- “इसमें हमारा क्या है? इससे हमें हर्ष नहीं है, हम तो आत्म-चिन्तन में लगे हैं।”

परोपकार के भाव

जब वैद्यराज महाराज की नाड़ी गिनते थे, तब महाराज कहते थे - “नाड़ी देखने में क्या लाभ होगा? क्यों व्यर्थ के काम में लगे हो? हमारे शरीर में कोई ज्वर आदि रोग नहीं है।” वैद्यराज कहते थे- “हम आपकी नाड़ी की गति समझने को देख रहे हैं।” महाराज कहते थे- “अच्छा! तो देख लो, तुम्हारा लाभ होता है, तो कर लो।” कैसी

सरल और पवित्रता से भरी उनकी वाणी थी, दूसरा व्यक्ति दु खी न हो, इस बात को वे सदा ध्यान रखते थे।

आत्मा की मलिनता दूर करो

एक दिन वैद्यराज से महाराज ने कहा-“तुम ससार का कल्याण करते फिरते हो। कुछ तो आत्मा का कल्याण करो। दूसरे के कपडे धोते-धोते समय क्यों गँवाते हो? अपनी आत्मा को धोने के लिए व्रत, नियम, स्वाध्याय आदि षट् कर्म करना चाहिए, इनसे तुम्हारा कल्याण होने वाला है।”

स्वर्गारोहण की रात्रि का वर्णन

आचार्य महाराज का स्वर्गारोहण ३६ वे दिन प्रभात में ६ बजकर ५० मिनट पर हुआ था। उस दिन वैद्यराज महाराज की कुटी में रात्रि भर रहे थे। उन्होंने महाराज के विषय में इस प्रकार बताया-“दो बजे रात को हमने जब महाराज की नाडी देखी, तो उसकी गति बिगड़ी हुई अनियमित (Irregular) थी। तीन, चार ठोकर देने के बाद रुकती थी, फिर चलती थी। चार बजे सवेरे श्वास कुछ जोर का चलने लगा, तब हमने कहा, “अब सावधानी की जरूरत है। अन्त अत्यन्त समीप है।” सवेरे ६ बजे महाराज को सस्तर से उठाने का विचार क्षुल्लक सिद्धसागर (भरमप्पा) ने व्यक्त किया। महाराज ने सिर हिलाकर निषेध किया। उस समय तक वे सावधान थे। उस समय श्वास जोर-जोर से चलती थी। बीच में धीरे-धीरे रुककर फिर चलने लगती थी। उस समय महाराज के कान में भट्टारक लक्ष्मीसेन जी “ॐ नमः सिद्धेभ्यः” तथा णमोकार मन्त्र सुनाते थे। ६ बजकर ४० मिनट पर मेरे कहने पर महाराज को बैठाया। कारण, मैंने कहा कि अब देर नहीं है। उनको उठाया। पद्मासन किया, तब श्वास मन्द हो गई। ओष्ठ अतिमन्द रूप से हिलते हुए सूचित करते थे कि वे जाप कर रहे हैं। एक दीर्घ श्वास आया और हमारा सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया। उस समय उनके मुख से अन्त में ‘ॐ सिद्धाय’ शब्द मन्द ध्वनि में निकले थे।” वैद्यराज ने कहा “कि रात में दो बजे से हाथ पैर ठण्डे हो रहे थे। रुधिर का संचार कम होता जा रहा था। हमारी धारणा है कि महाराज का प्राणोत्क्रमण नेत्रों द्वारा हुआ। मुख पर जीवित सदृश तेज विद्यमान रहा आया था।”

क्षु. सिद्धिसागरजी

महाराज के अन्तिम क्षण में समीप रहने वाले क्षुल्लक सिद्धिसागर (भरमप्पा) ने सिवनी में आकर शिखरजी जाते समय हमें बताया था कि “अन्त में तीन दिन चौबीसो घण्टे महाराज एक ही करवट रहे थे । पहिले महाराज ने हमें आज्ञा करदी थी कि तुम हमारे हाथ पॉव मत दाबना, क्योंकि हमने सेवा कराना छोड दिया है । तुम जबर्दस्ती सेवा करते थे, अब नहीं करना ।”

ज्ञान के महान् प्रेमी

आचार्य महाराज सयम के सिवाय सम्यक् ज्ञान के भी महान् प्रेमी थे । उन्होने कहा था- “ज्ञान बिना समाज में धर्म नहीं टिकेगा । ज्ञान का प्रसार सार्वजनिक जैन मन्दिर में स्वाध्याय के लिए ग्रन्थ रखने से ही हो सकेगा, कारण, वहाँ सब जैन लोग आते हैं और उन ग्रन्थों पर सबका स्वत्व रहता है । उसे कोई उठाकर नहीं ले जा सकता । वह सुगमता से सबको मिल सकता है । ग्रन्थ की बिक्री से सुविधा नहीं होती । गरीब आदमी, त्यागी तथा सन्यासी लोग ग्रन्थ नहीं ले सकते, इसीलिए जहाँ तक बने मुफ्त में ग्रन्थ बाँटना चाहिए ।”

क्षु० सिद्धसागरजी (भरमप्पा) ने आचार्य महाराज की बहुत सेवा तथा वैयावृत्त्य की थी । उन्होने बताया कि मैंने महाराज से क्षुल्लक दीक्षा मागी । महाराज ने कहा- “वर्धमानसागर से दीक्षा ले लो ।” फिर मैंने महाराज से नाम पूछा । उन्होने मेरा नाम सिद्धसागर बताया । इसके बाद उन्होने ब्र० बडू रत्नू को दीक्षा के लिए कहा और कहा कि हम तुम्हें दीक्षा दे देंगे । उस समय मैंने कहा- “महाराज! मुझे भी आप दीक्षा दीजिए ।” रत्नू बडू ने दीक्षा नहीं ली । मेरा भाग्य था मुझे दीक्षा मिल गई । दीक्षा देते समय महाराज ने मुझ से कहा था कि तुम को कुछ नहीं आता, इसलिए हमेशा णमोकार मंत्र का जाप मंदिर में करते रहना । आहार को जाने के पूर्व शौच से आने पर तथा अन्य समय पर २७ बार जाप करना ।”

वर्धमानसागरजी को सदेश

उन्होंने वर्धमानसागरजी के लिए यह खबर भेजी थी- “जब तक हाथ पैर चलते हैं, तब तक गडबड नहीं करना । तुम्हारी आयु अधिक है । घबराना नहीं । सदा आत्मचिंतन करना ।”

उनका स्वर्गवास होने पर वर्धमानसागर महाराज ने कहा था- “जैसे आचार्य महाराज गये, वैसे ही सब जावेगे। शोक क्यों करना?”

क्षु० सिद्धसागर जी ने कहा- “महाराज बहुत गभीर थे। महान् कष्ट आने पर भी वे हाहाकार नहीं करते थे। वे अपनी तकलीफ स्वयं नहीं कहते थे।”

विशेष आशीर्वाद

“आपके बारे में कई बार महाराज चर्चा करते थे। उनका आप पर सदा विशेष आशीर्वाद रहता था।”

पात्रापात्रता का विवेक

आचार्य महाराज बहुत सोच-विचार कर कार्य करते थे। एक दिन भाईचंद नेमचंद गांधी नातेपुते ने आचार्यश्री से ब्रह्मचर्य प्रतिमा रूप व्रत मागे। महाराज ने उनकी पात्रता का विचार करके कहा- “तुम पापभीरु हो, इस कारण तुमको व्रत देते हैं। तुम्हारे हृदय में वैराग्य नहीं है, इससे प्रतिमा रूप व्रत नहीं देते हैं।”

विनोद

“महाराज का विनोद मधुर तथा अकटु होता था। भाईचंद ने सुनाया कि मेरी विलक्षण तथा विचित्र बातों को सुनकर महाराज मुझे “दो शहाणा” (दो दिमाग वाला बुद्धिमान्) कहा करते थे।”

स्वप्न द्वारा सकेत

जो आत्मा अत्यन्त पवित्र होती है, उसके स्वप्न भी महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सूचित करते हैं। द्वादशांग में अष्टांग निमित्त शास्त्र की गणना में स्वप्नज्ञान का उल्लेख आता है। आचार्य शातिसागर महाराज को भविष्य की अनेक घटनाओं आदि के विषय में स्वप्न के द्वारा सकेत प्राप्त हो जाया करता था। प्रतिष्ठाशास्त्रों में कई जगह कार्य करने के लिए मंत्रजाप करके स्वप्न में उसका रूप देखकर कर्तव्य निर्धारण किया जाता है। आशाधर प्रतिष्ठा-सारोद्धार ग्रंथ में लिखा है कि प्रतिष्ठाचार्य जिनमंदिर की भूमि की तरह मूर्तिरूप परिणत की जाने योग्य शिला के शुभ-अशुभ जानने के लिए रात्रि के आरम्भ में अष्टांग निमित्तों को विचारे। स्नान करके एकान्त शुद्धस्थान में शुभ गंधद्रव्य को हाथ पर लगाकर सिद्धभक्ति पढ़े तथा इस मंत्र श्लोक का मन में ध्यान करें-

महाराज के चार स्वप्न

लोणर चातुर्मास ने, अन्तः आचार्य महाराज ने। यह स्वप्न गरि व अतिम प्रार में दिखाई पड़ा था-“आचार्यश्री ने आगपाम ५.०० में अधिकृत बैठे थे। उस समय १२ ताव लवा गर्प गंग बांधकर बैठे थे। वह लोग वे घाम में आकर महाराज के गिर पर चढ़ गया। उस समय महाराज ने तागा का चुप गम को बहा, इतने में गर्प चला गया।”

इस स्वप्न का अर्थ महाराज ने यह समझा कि सर्प यमराज का प्रतीक था। सर्प चला गया, इसमें अपमृत्यु का संकट दूर हो गया, ऐसा सूचित होता था।

फलटण में

फलटण के चातुर्मास में मन १९५४ के कार्तिक मास में महाराज ने एक स्वप्न देखा कि उनमें जिनशासन की देवी ने यह कहा कि अब अन्न का आहार छोड़ दो। सबेरे आदिनाथ मंदिर में जाकर उन्होंने अन्न-आहार का त्याग कर दिया।

बारसी में

तीसरा स्वप्न बारसी में अर्ध जागृत अवस्था में आया। उसमें एक विशाल गजेन्द्र सदृश ग्थूलकाय सिंह दिखा। उसके मुख में एक आदमी समा सकता था। उसने

महागज की गर्दन को पकड़कर अपन मुँह में गूँथ लिया, किन्तु दाँत नहीं लगे। महागज ने शांत भाव में सिद्ध भगवान का स्मरण किया। उन्होंने मिट्टी का कान पकड़ा। इतने में नौद खुल गई।

इसका महागज ने यह अर्थ निकाला कि उनका जीवन मकट में है। विपत्ति जीवित है, किन्तु अन्न त्याग द्वाग अकाल मरण टलेगा, ऐसा प्रतीत हुआ।

कुंथलगिरि में

चौथा स्वप्न कुंथलगिरि में इस प्रकार आया था कि एक समय महागज जंगल में अकेले खड़े थे। एक मजबूत मींगो वाला भयंकर जंगली भैंसा गेषपूर्वक दौड़ता हुआ महाराज पर झपटा। उस समय एक मुनि हाथ में पिच्छी लेकर दम फीट की दूरी पर आ गये। उनके हाथ में एक तान हाथ लम्बी लकड़ी थी। उससे उन मुनि ने भैंसे को खूब मारा। पिटाई के कारण धक्कर वह भैंसा गिर पड़ा। उस समय महाराज सिद्ध भगवान का जाप कर रहे थे। मुनि ने महाराज से कहा कि अब आप मकटमुक्त हैं, चले जाइये। महागज ने कहा कि मुनि होकर तुमने इस प्रकार हिंसा का कार्य क्यों किया? यहाँ से दूर चले जाओ।

इस स्वप्न में आचार्य महागज ने मोचा कि विपत्ति तो दूर हो गई, किन्तु प्रज्ञात मुनि का दर्शन आगे दुर्लभ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। महाराज ने मौन पूर्वक पाँच उपवास का नियम लिया था। इन स्वप्नों का वर्णन महाराज ने अपने विश्वासपात्र भक्तों को सुनाया था, जिनके समक्ष वे अपने मन की बात मकोचरहित हो कहते थे।

पं. अभयकुमार शास्त्री बारामती

जेडवाल आश्रम में शिक्षा प्राप्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री रागोलीक वागमती ने महागज के सम्बन्ध में सुनाया था- “महाराज पक्का आदमी देखकर ही उस पर काम मौपा करते थे। वे कहा करते थे कि समाज में पण्डित बहुत हैं, किन्तु चारित्रवान पण्डित बहुत कम हैं। उनका शिक्षा के विषय में महत्त्वपूर्ण अभिप्राय था, वे जेडवाल आश्रम के छात्रों की सख्या के बारे में कहते थे, छात्रों की सख्या कम हो, इसकी चिन्ता नहीं, छात्र विद्वान् के साथ चारित्रवान भी बने, यह आवश्यक है। छात्रों की जिनधर्म पर श्रद्धा आवश्यक है। वे जिनधर्म के अभिमानी हों। विद्वत्ता बढ़ाना, खूब ग्रन्थ लिखना आदि पाण्डित्य के कोरे कार्यों की वे प्रशंसा नहीं करते थे। उनकी दृष्टि में उच्च चारित्र का

मूल्य था। लोचपटुता, भाषणकुशलता, लोभपुत्र की या ना उनके निचाय में गौरव-पूर्ण नहीं थी। आत्महित उनका मुख्य लक्ष्य था।”

डॉ. बालचन्द्र जीवराज शहा फलटण

असाधारण क्षयोपशम

महाराज का क्षयोपशम बड़ा असाधारण था। फलटण के चन्द्रपथ मन्दिर के ऊपर श्रुतभण्डार बनाने के लिए स्थान नहीं था। महाराज ने उस जगह को देखाकर ऐसा परिवर्तन कराया कि वहाँ जगह निबल आई। उनका अनुभव अत्यन्त पर्वीण इन्जीनियर के समान था। सरस्वती भवन में कितना शीमेण्ट लगाया, कितना लोहा लगेगा आदि सभी बातों का उनको ज्ञान था।

स्थायीपन में रुचि

महाराज बाह्य मौंदर्य के बदले स्थायीपन को पसंद करते थे। शांति के लिए अनेक प्रकार के कागज मगाये गए। कागज देखकर उन्होंने सबसे मजबूत कागज को पसंद किया। उसके मूल्य की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

भूगोल की महत्त्वपूर्ण चर्चा

एक सरकारी कर्मचारी से जेन भूगोल के बारे में चर्चा चली। उस समय महाराज ने कहा-“पहिले विश्वास रखो, पीछे उसकी शोध करो, तो तत्त्व हाथ लगेगा। तुम पहिले ही विश्वास नहीं करते और यह केसा, वह केसा है इत्यादि शिकाएँ करते हो, इससे इष्ट सिद्ध नहीं होता।”

मराठी सूक्ति का रहस्य

एक दिन चर्चा चली - मराठी भाषा की सूक्ति पर “जैसा बोले, तैसा चाले त्याची वदावी पावले” -इसका भाव महाराज ने बताया कि जैसा आगम कहे, उस प्रकार चले अर्थात् स्वच्छन्द मन के अनुसार प्रवृत्ति न करे।

इन्द्रिय निग्रह का उपाय

एक दिन मैंने महाराज से पूछा- “महाराज! इन्द्रिय-निग्रह किस प्रकार करना चाहिए?” महाराज ने कहा था- “घोड़े का दाना-पानी बन्द कर दो, घोड़ा अपने आप वश में हो जाता है।” उन्होंने एक छोटे से उत्तर से गम्भीर प्रश्न का अनुभव के आधार पर समाधान कर दिया।

नियमितपना

महाराज में नियमितता (Punctuality) अधिक थी। वे समय पर कार्य करने का ध्यान रखते थे। उनमें गुणग्राहकता अपूर्व थी। यदि विशेष कलाकार उनके पास आता था, तो उसको वे बहुत प्रेरणा देते थे।

लोकविज्ञता

महाराज के पास जब अजैन लोग दर्शनार्थ आते थे, तब महाराज उनको श्रीफलादि देते थे। लोगो ने उनसे पूछा कि आप ऐसा क्यों करते हैं? महाराज ने बताया कि वे लोग हमारे पास गुरुभाव से आये, उस भाव से उन्होंने दर्शन किया। उनकी श्रद्धा है कि गुरु का प्रसाद कल्याणकारी होता है, ऐसी उनकी पद्धति है, इससे उन्हें सन्तोष होता है। धर्म की ओर उनका आकर्षण बढ़ता है, पुन पुन आने की इच्छा होती है। उनका कल्याण देखकर ही हम ऐसा करते हैं।

बच्चों से नैसर्गिक प्रेम

बच्चों पर महाराज का अकृत्रिम प्रेम था। कितनी भी गम्भीर मुद्रा में वे हो, बालक के पास आते ही वे उसे देखकर हर्षित होते थे। कभी-कभी किसी बच्चे के हाथ में मोटर का खिलौना रहता था, तो वे पूछते थे कि क्या इसमें हम बैठ सकते हैं आदि। उस समय ऐसा लगता था कि ये वृद्ध पितामह हैं और ये ससार के श्रेष्ठ महापुरुष रत्नत्रय-मूर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज ही हैं, ऐसा नहीं मालूम पड़ता था।

धनी-निर्धन में समान भाव

एक दिन महाराज से पूछा- “महाराज! आप श्रीमन्तों के महाराज हैं या गरीबों के?” महाराज ने कहा- “हमारी दृष्टि में श्रीमन्त और गरीब का भेद नहीं रहता है। अर्थ के सद्भाव-असद्भाव द्वारा बड़ेपने की कल्पना आप लोग करते हो। अकिञ्चनों की निगाह में धन के सद्भाव-असद्भाव का अन्तर नहीं रहता।”

आदमी की परख

एक दिन महाराज से पूछा- “महाराज! आपके पाम बैठने वाले क्या सभी खरे भक्त हैं?” महाराज बोले- “इनमें दश प्रतिशत ही खरे हैं। यह हमें मालूम है कि कौन खरा है और कौन खोटा है। हम दूसरे के नेत्रों को देखकर ही उस आदमी को पहिचान लेते हैं।” यथार्थ में उनकी दृष्टि हृदय के भीतर की बात को देख लेती थी।

जीवन का सार

एक दिन आत्मचिन्तन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था कि “जाते समय पिता अपने सम्पत्ति के भंडार की चाबी पुत्र को देता है। इस प्रकार हम तुमको जीवन का सार बताते हैं। बताते नहीं हैं, हम यह तुमको देते हैं, आत्म चिंतन के सिवाय सुख नहीं मिलेगा।”

आत्मा का रेडियो चालू करो

“एक दिन मैंने छोटा रेडियो बनाया और महाराज को दिखाया। उसके विषय में उन्होंने अनेक सूक्ष्म प्रश्न किये। पश्चात् कहने लगे- “बालचन्द! अब तुम हृदय के रेडियो को क्यों चालू नहीं करते? उसका गीत सुनो। इसमें क्या रखा है? आत्मा का रेडियो त्रिलोक और त्रिकाल की बातें बताता है, वह इससे बड़ा है।” एक छोटे से यंत्र को देखकर उन माधुराज ने केसी मार्मिक बात कही। सचमुच में मोहनीय कर्म, ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण एवं अन्तराय के नाश होने पर यह जीव त्रिलोक और त्रिकाल का ज्ञाता बन जाता है। अज्ञान के कारण यह जीव पर-पदार्थ में उलझकर स्वयं दुःखी होता है। महाराज ने हजारों मील पैदल विहार किया, किन्तु उनके चरण, कमलों के समान कोमल ही रहे आये। वास्तव में वे ‘चरण-कमल’ ही थे। शरीर-शास्त्री बताते हैं कि चरणों का कमल सदृश मृदुल रहना महान् पुरुष का चिह्न है।

आगमप्राण

धवल आदि सिद्धान्त ग्रन्थ ताम्रपत्र में मुद्रित हुआ। फलटण में धवल ग्रन्थ

विराजमान हुए थे। उनके सम्बन्ध में महाराज ने कहा था-“देखो, ये मेरे प्राण है, जो तुम्हारे पास है। मेरे बराबर इनकी रक्षा तुम लोगो को करना चाहिए।” ये शब्द महाराज ने सैकड़ों बार कहे थे। जिनवाणी को वे अपना प्राण मानते थे। वास्तव में जिनवाणी के लिए ही सल्लेखना द्वारा उन्होंने अपने प्राणों का अर्पण भी कर दिया।

तीर्थभूमि का महत्त्व

महाराज से पूछा गया कि आप सल्लेखना के लिए तीर्थ को क्यों दृढ़ते हैं? आप समान श्रेष्ठ साधु जहाँ भी निवास करते हैं, वही स्थान तो तीर्थ बनता है? क्या आप नया तीर्थ नहीं बना सकते?

महाराज ने कहा- “निर्वाण स्थान में अनेक तपस्वियों ने रहकर कर्मों का क्षय किया है, वहाँ का परमाणु-परमाणु उनके द्वारा पवित्र हुआ है। उस पवित्र भूमि में रहने से आत्मा की साधना में सहायता मिलती है। आत्मा स्वरूप में लीन हो जाती है। इस आत्म विशुद्धि का कारण होने से समाधि के लिए निर्वाणस्थल का शरण ग्रहण करना आगम में बताया है। गुलाब के उद्यान में बैठने पर पुष्प की सुवास पवन द्वारा प्राप्त होती है। इसी प्रकार निर्वाण-स्थल के पवित्र परमाणुओं द्वारा आत्मा की विशुद्धता के हेतु एक आध्यात्मिक सुवास प्राप्त होती है।”

फलटण में कभी-कभी एक बालिका मधुर कण्ठ से महाराज को भजन सुनाती थी। उसके भजनों की ओर महाराज का बड़ा आकर्षण रहता था। एक भजन वृद्धावस्था के दुःखी जीवन को चित्रण करने वाला मराठी भाषा में है। महाराज उससे उस भजन को कई बार सुनते थे। उसकी एक पंक्ति का भाव है- “यह बुढ़ापा बड़ा विचित्र है। समय बीतता नहीं। काल आता नहीं। बताओ क्या करें?” इसी पंक्ति को दुहराकर महाराज कहते थे- “तू मेरी शिष्या है, अच्छा गीत सुनाती है। उसके आने पर कहा करते थे, अब हमारी शिष्या आ गयी है। उसका भजन होने दो।” एक दिन बालिका ने कहा- “महाराज! आत्मा कैसे दिखेगी?” उस छोटी सी लड़की को आत्मा कैसे बताई जाय? महाराज बोले- “तू मेरे साथ चल, दीक्षा मत ले, भजन के द्वारा प्रभावना कर।”

रहस्य की बात

एक बार महाराज से पूछा गया- “महाराज! आप महत्त्व की बातें कैसे बता देते हैं? आप कहते हैं कि हमें अवधि नहीं है, फिर विद्वानों को भी प्रकाश देने वाली अपूर्व बातें कैसे कहते हैं?”

महाराज ने कहा- “ठीक तो है, हमारे अवधि नहीं है। जिस प्रकार के भाव हमारे अन्तःकरण में आते हैं, उनको हम कह देते हैं।”

देश का भविष्य

भारत के राजनीतिज्ञों के ध्यान देने योग्य एक बात उन महाश्रमण के मुख से निकली थी। महाराज ने कहा- “जब तक यह देश अहिंसा-तत्त्व का परित्याग नहीं करता है और अन्य धर्मों पर जुल्म नहीं करता है, तब तक इसका शासन बना रहेगा। अन्यथा अत्याचार के पथ पर चलने वाले शासक का विनाश निश्चित है।”

ध्यान का मार्ग

महाराज से पूछा गया- “सामान्य मनुष्य किस प्रकार ध्यान करे?”

उत्तर में महाराज ने कहा- “जब तक असली आत्मा का ध्यान नहीं होता, तब तक स्फटिक की बनी जिनेन्द्रमूर्ति का ध्यान करो। अभ्यास से मन स्थिर होगा अपनी आत्मा को स्फटिक की तरह विशुद्ध और निर्मल चितवन करो। वहाँ मन को केन्द्रित करने से चंचल मन स्थिर बनेगा।”

दीक्षा और आहार

प्रश्न - “महाराज ! यदि आप सब को दीक्षा दे देंगे, तो उनको आहार कैसे मिलेगा ?”

उत्तर - महाराज ने कहा- “आहार के लिए दीक्षा मत लो। दीक्षा लेने के बाद आहार अपने आप मिलेगा।”

भक्तामर स्तोत्र का प्रथम परिचय

“महाराज ने बताया था कि उन्होंने जीवन में सबसे पहिले भक्तामर स्तोत्र पढ़ा था। वही पहला शास्त्र था।”

द्रव्य रहित पूजा

जो लोग भगवान के दर्शन को जाते हैं और द्रव्य का ले जाना बेकार सोचते हैं, ऐसी सूखी पूजा वालों के बारे में महाराज मराठी का एक वाक्य कहते थे- “तू मेरे द्वार पर आया है, न फल लाया, न फूल, जा अपने घर। तुझे कोई वर नहीं देता और न शाप ही देता। जैसा आया उसी प्रकार चला जा।”

उनके गळ्ठ थे-

फल नाही, फूल नाही, आला माझा द्वारा।

वर नाही, गाय नाही, जा तुझा घरा ॥

इस तरह कहकर महाराज हँसने लगते थे।

श्री बाबूराव मार्ते कोल्हापुर

सप्तम प्रतिमाधारण तथा व्यापार करना

महाराज ने कोल्हापुर के धर्मात्मा श्रीमान् बाबूरावजी मार्ते को सप्तम प्रतिमा के व्रत देते हुए कहा था- “तुम व्यापार करो, किन्तु अपना लेन-देन सत्यता से करना।” उक्त ब्रह्मचारीजी ने क्षुल्लक पद धारण करने का निश्चय किया था।

महाराज की भावना

उनमे आचार्य महाराज ने कहा था- “हमारी भावना है कि हमारे सभी शिष्य स्वर्ग में भी हमारे साथी रहे, इसलिए सबको ब्रती होना चाहिए।”

ब्र. बंडोवा बाबाजी (क्षुल्लक जी)

ब्रह्मचारी बंडोवा बाबाजी रत्तू ने बताया कि- “आचार्य शान्तिसागर महागज के लोकोत्तर व्यक्तित्व ने नेमण्णा नाम के सरल चित्त वाले गृहस्थ को नेमिसागर मुनिराज बना दिया। नेमण्णा महोदय विलक्षण प्रकृति के व्यक्ति थे। भिन्न-भिन्न धर्म के साधुओं के सम्पर्क में रह चुके थे। एक दिन आचार्य महाराज के जीवन की घटना ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। उसदिन उन्होंने निश्चय किया कि शान्तिसागर महाराज ही ऐसे साधुरत्न हैं, जिनके चरणों को अन्त करण में विराजमान कर जीवन भर अभिवन्दन करना चाहिए।”

प्रभावप्रद घटना

यहाँ यह सहज प्रश्न उठता है कि वह कौनसी घटना होगी, जिसने जीवन बदल दिया?

ब्र. बण्डू ने बताया- “आचार्य महाराज एक गुफा में बैठकर आत्म-ध्यान में निमग्न थे। वास्तव में अपने स्वरूप में मग्न बैठे थे। उस समय एक मकोड़ा उनके गरीर

पर चढ़कर उनकी पुरुष इन्द्रिय को काट रहा था। माथ में ओर भी मस्तकें थे। ने मास खाते थे ओर रक्त की धारा बगती थी, किन्तु महाराज गन्ध की तरफ स्थिर थे। उनका ध्यान पूर्ण हुआ, तब बाद में नेमण्णा ने पृछा-“यह क्या है?” ब्र. वण्डु रक्त ने कहा-“देखते नहीं हो, यह रक्त बह रहा है।”

सुनकर महाराज बोले-“कहाँ है रक्त?” बाद में उन्होंने देखा कि मकोड़े उनके शरीर को खा रहे थे। ब्र. वण्डु ने उन मकोड़ों को अलग किया था।

सामायिक में तल्लीनता

उम समय आचार्य महाराज बोले-“हम तो सामायिक में बैठ गये थे। हमको पता नहीं, क्या हुआ।”

यह शब्द सुनकर नेमण्णा ने कहा-“यह क्या चमत्कार है? यह माधु है या भगवान है। निश्चय से ये बहुत बड़े साधु है।” इस घटना ने उनके मन में पबल वेगव्य उत्पन्न किया। वे ही नेमण्णा परमपूज्य १०८ निर्ग्रन्थ मुनि नेमिसागर महाराज के रूप थे। आचार्य नेमिसागर जी की प्रेरणा में चोरीवली में दिव्य, समुन्नत तीन मूर्ति विराजमान हुई हैं।

पाटील श्रीबालगोडा कोगनोली

चिकोडी के नागगोडा जनगोडा उर्फ बालगोडा पाटील कोगनोली प्रभावशाली धर्मात्मा और गुरुभक्त सज्जन हैं। उन्होंने आचार्य महाराज की बहुत सेवा की थी।

प्रारम्भिक तपोभूमि कोगनोली

जब शांतिमागर महाराज ने दीक्षा लेकर भोजभूमि से विदा ली, तब उन्होंने कोगनोली ग्राम में अपनी प्रारम्भिक तपस्या का विशेष समय व्यतीत किया। आसपास के लोग शांतिसागर महाराज को कोगनोली के महाराज कहने लगे थे। उस समय पूर्ण दिगम्बर मुद्राधारी मुनियों का अभाव था। उस समय मुनि आहार लेते समय दिगम्बर हुआ करते थे। आचार्य शान्तिसागर महाराज ने उस शिथिलाचार के जाल में जकड़ी हुई मुनिचर्या का उद्धार किया था। कोगनोली में वे दिगम्बर मुद्रा में रहा करते थे। एक उपवास एक पारणा यह क्रम बारह महीने चला करता था।

बालगोडा पाटील ने बताया कि कोगनोली में आचार्य महाराज के शरीर पर सर्प लिपटा था। वह घटना तो सर्वत्र प्रसिद्धि पा चुकी है। उस ग्राम में विचित्र घटना हुई

थी। श्री पाटील ने बताया- “हमारे यहाँ जब महाराज आये, तब उनकी तपश्चर्या बड़ी भीषण थी। रसो का परित्याग कर वे आहार लेते थे। बहुधा उपवास करते थे। दिगम्बर रूप में विचरण करते थे। कोई लोग उपसर्ग न कर दे इस भय से ग्राम का प्रमुख व्यक्ति होने के कारण मैं महाराज का कमण्डलु हाथ में लेकर सामने चलता था, जब कि महाराज शौच आदि के लिए बाहर निकलते थे।”

पागल द्वारा भयंकर उपसर्ग

महाराज बस्ती के बाहर एक निर्जन स्थान में बनी हुई गुफा में रात्रि को रहा करते थे और वहाँ आत्मध्यान में लगे रहते थे। दुर्भाग्य की बात थी कि एक बार नगर का एक पागल महाराज के पास जंगल में गया। महाराज उस समय कठोर तप किया करते थे। उस एकान्त प्रदेश में उस पागल ने भयंकर उपद्रव किया। महाराज का शरीर अत्यन्त बलशाली था। यदि वे शान्ति के सागर न होते, तो उस पागल को कहीं भी उठाकर फेंक सकते थे, किन्तु वे तो आचार्य महाराज थे। क्षमाशील साधुओं के स्वामी थे। भीषण उपद्रव में भी वे अविचलित थे।

उस पागल के हाथ में एक लकड़ी थी, जिसके अग्र भाग में नोकदार लोहे का कीला लगा था। उससे बैलों को मारने का काम किया जाता है। पागल ने महाराज जी के पास रोटी मागी। वह कहता था- “ऐ बाबा। रोटी दो, बड़ी भूख लगी है।” बाबा के पास क्या था? कुछ होता तो देते। वे तो चुपचाप ध्यान करने बैठे थे। उनको शान्त देख पागल का दिमाग और उत्तेजित हुआ। उसने अपने पास की लकड़ी से महाराज के शरीर को मारना शुरू किया। लोहे की नोक शरीर में, पीठ में, छाती आदि में चुभोयी। सारा शरीर रक्तरजित हो गया। लकड़ी की मार से हाथ पैर सूज गये थे। उस कठिन परिस्थिति का क्या वर्णन करे? बहुत देर तक उपद्रव करने के बाद पागल वहाँ से चला गया। बस्ती में आकर उसने अपने एक कुटुम्बी की हत्या की, जिसके कारण उसे प्राणदण्ड मिला था।”

श्री पाटील ने बताया- “सबसे हमने जब महाराज को देखा, तो उनके शरीर पर अनेक जगह लकड़ी के निशान थे। कई जगह से खून वह रहा था। मैं यह देखकर आश्चर्य में पड़ गया। समझ में नहीं आया क्या हुआ? सारे समाज को खबर लगी। सब लोग बहुत दुखी हुए। महाराज ने कुछ नहीं कहा। वे चुपचाप रहे और पास के ग्राम जैनवाडी को चले गये। वहाँ जाकर हम लोगो ने उनसे बहुत प्रार्थना की। अत्यधिक अनुनय विनय के उपरान्त वे पुनः कोगनोली आये।

“आज भी पागल के द्वाग किये गये उपसर्ग का म्मरण कर रोगटे खड़े हो जाते हैं। कैसी उनकी स्थिरता थी, कितना उनमें धैर्य था, कितनी उनमें शान्ति थी? हमारा छोटा सा हृदय और साधारण सा मस्तक उन गुरुदेव की गहराई और महत्ता का अनुमान भी नहीं कर सकता। धन्य है, वे जो उस भयकर शारीरिक उपद्रव को माम्यभाव से सहन करते रहे।”

श्री फूलचन्द हीराचन्द कोठड़िया पूना

श्री फूलचन्द हीराचन्द कोठड़िया एडवोकेट रविवार पेठ पूना ने महाराज की सल्लेखना का उल्लेख करते हुए एक विशेष बात सुनाई- “आचार्य महाराज के नेत्रों को देखकर एक होम्योपैथिक डॉक्टर ने कहा था कि यदि वे एक माह मेरी दवा नेत्रों में डालेंगे, तो निश्चय से लाभ होगा। आँख में हम शुद्ध दवा डालेंगे।”

“मैंने डॉक्टर से दवा लेकर कुथलगिरि भेज दी। भवितव्य प्रतिकूल था, इसलिए विश्वासपात्र आदमी के द्वारा भेजी गई वह औषधि महाराज के पास नहीं पहुँची। आठ दिन के बाद हम उनके पास पहुँचे, तब महाराज बोले- “तुमने दवा नहीं भेजी। आठ दिन तक का मौका दिया। तुम भूल गये। हमने सोचा कि अब हमारा समय समीप आ गया है, इसीलिए ऐसा हुआ। हमारे मन ने सल्लेखना की सलाह दी और हमने प्रतिज्ञा करली कि अब दवा नहीं दी जा सकती।” मैं बड़ा दुःखी हुआ, सोचा यदि दवा पहिले पहुँच जाती, तो ये गुरुदेव इतने शीघ्र ही इस भरतक्षेत्र को छोड़कर स्वर्ग की यात्रा न करते।

पं. कन्हेदीलालजी न्यायतीर्थ

ग्यारह मार्च १९५७ को माणिकचन्द्र परीक्षालय बम्बई के इन्सपेक्टर श्री प. कन्हेदीलाल जी न्यायतीर्थ सिवनी आए। उन्होंने आचार्य महाराज के विषय में आश्चर्यप्रद तथा महत्त्वपूर्ण बात बताई। उन्होंने कहा- “जब आचार्य महाराज का चातुर्मास उदयपुर में था, उस समय मैं स्थानीय पार्श्वनाथ विद्यालय में धर्माध्यापक था। उस समय इन साधुराज के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें देखीं। दो एक बातें याद हैं। एक तो बात उनके ज्ञान से सम्बन्ध रखती है। ब्र. नन्दनलाल जी शास्त्र बॉचते थे।^१ जब कभी सूक्ष्म चर्चा होते-होते गम्भीर विवाद उठता था, तब महाराज अपने प्रतिभाप्रसूत अल्प शब्दों द्वारा विवाद को शांत कर देते थे।”

१ ब्र. नन्दनलालजी आचार्य सुधर्मसागर महाराज के रूप में प्रख्यात हुए हैं।

दूसरी बात, जो याद रही वह यह है कि वहाँ महाराज की प्रकृति बिगड गयी थी। राजवैद्य प जुगलकिशोर जी को महाराज का हाथ दिखाया। महाराज का चिकित्सा की ओर तनिक भी ध्यान न था। वे अद्भुत आत्मविश्वास सम्पन्न थे। वैद्यराज उनके जीवन से बहुत प्रभावित थे।

सर्पदंश होने पर भी नीरोगता

एक दिन की बात है, वैद्यराज आचार्य महाराज की कुटी से लगभग ग्यारह बजे रात को निकलकर घर गये। उस दिन वैद्यजी के घर में अंधेरे का राज्य था। वे दियासलाई खोज रहे थे कि एक सर्प ने उन्हें काट लिया। वैद्यराज विचार में पड गये। क्या दवा लेना? क्या दवा लेना? इतने बड़े साधु औषधि नहीं लेते। ऐसा कुछ विचार करते ही विष चढ़ने से मूर्छा आ गई। प्रभातकाल में जब नींद खुली तो वैद्य जी ने अपने को स्वस्थ पाया। उन्होंने समझ लिया कि यह प्रभाव उन योगीश्वर का है। बहुत सबेरे ही वैद्यजी महाराज के पास गये और उन्होंने कहा-“महाराज! आपका अद्भुत प्रभाव स्वयं अनुभव कर मैं आपका अनन्य भक्त बन गया हूँ।”

इस प्रकार इन विशुद्ध-चरित्र मुनिनाथ के प्रभाव से न मालूम कितने लोगों की आत्मा पवित्र हो गई।

प्रभावशाली मुद्रा

पंडितजी ने यह भी बताया कि उदयपुर से चार मील पर आचार्य महाराज का चातुर्मास निश्चित हुआ था। जैनधर्म से द्वेष करने वाले अनेक दुष्टों ने आचार्य महाराज पर उपसर्ग करने का निश्चय किया था।

जब आचार्य महाराज की शांत मुद्रा पर उनकी दृष्टि पड़ी, तो सब के सब बैरभाव भूल गये और उनके चरणों के अनुरागी बन गये। ऐसा प्रभाव उनकी मुद्रा के देखने से भद्र जीवों पर पड़ता था। हों! अत्यन्त नीच तथा कुगति में जाने वाले, पापी पुरुषों को उनका दर्शन अवश्य हृदय में दाह उत्पन्न करता था। ऐसा होना कोई नई बात नहीं है। सूर्य को सारा ससार प्रेम से देखता है, किन्तु चमगीदंड सूर्य के तेजोमय रूप को देख नहीं सकता। इसी प्रकार का नियम मनुष्यों में भी मानना चाहिए। कारण, जीवों का स्वभाव अद्भुत होता है। स्वभाव की कोई दवा नहीं होती। फिर भी बहु सख्या के आधार पर यह कथन वास्तविकता पूर्ण है कि आचार्यश्री का दिव्य दर्शन महान् शांति को उत्पन्न करता था।

पार्श्वनाथ उपाध्ये

कोल्हापुर के पास निषाणी नगर है। उसके पास म्त्तवनिधि मेन है। उस अतिशय क्षेत्र में १०८ आचार्य पायसागर महाराज का स्वर्गवाग तीन वर्ष पूर्व हुआ था। उनकी स्मृति में हजारों लोग म्त्तवनिधि पहुंचे थे, क्योंकि पायसागर महाराज का उस तरफ बड़ा प्रभाव रहा है। वे अद्भुत पुरुष हो गए। हम भी श्री गणपति राटे के साथ म्त्तवनिधि पहुंचे।

मूर्ति निर्माता जैनी

वहाँ मंदिर में पूजा करने वाले एक जैन पुजारी- उपाध्याय गिता। वे बूढ़ थे, पाषाण की सुन्दर मूर्ति बना रहे थे। वहाँ हमें पता चला कि पत्थरें मुद्रा, आर्यक नम्रां तथा अतः करण को आनन्दपद मूर्तियों का निर्माण दक्षिण में जिस प्रकार जनधर्म के आराधकों द्वारा हुआ करता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी मूर्तियों जैना द्वारा ही बनाई जाती थीं, हमारा अभिप्राय यह है कि मूर्ति-निर्माण कार्य में भी जैन कलाकार निपुण थे। पार्श्वनाथ तवनप्पा उपाध्ये उन कलाकार का नाम है और वे चिछोडी तालुका (बेलगाँव जिला) के पट्टनकुडी ग्राम के निवासी हैं।

महत्त्वपूर्ण संस्मरण

वयोवृद्ध श्री उपाध्ये ने जातिभागा महाराज के सत्संग का लाभ लिया था, भोजग्राम भी चिछोडी तालुका में ही तो है। श्री उपाध्ये का यह वर्णन महत्त्वपूर्ण तथा मनोरंजक है- “आचार्य महाराज जब गृहस्थ थे अर्थात् उन्होंने जब गृह नहीं छोड़ा था, तब वे हमारे ग्राम पट्टन में आए थे। मैं उनको एक घंटे पर्यन्त पद्मनदिपचविशतिका सुनाता था। उस समय महाराज को ब्रह्मचारी सातगोडा कहते थे। उनका उस समय यह नियम था कि शाम्भु स्वाध्याय के बिना वे अन्न-जल नहीं लेते थे। शाम्भु सुनने के उपरांत ही वे भोजन करते थे। उनका शास्त्र का प्रेम प्रारंभ से ही महान् रहा है। हमारा उनका हार्दिक प्रेम था। वे शास्त्र सुनकर मुझसे कहते थे”-

मुनि बनने की पूर्व से ही भावना

“उपाध्याय! मेरा मन शीघ्र ही स्वामी बनने का है।” दक्षिण में मुनिपद लेने वाले को स्वामी कहने की पद्धति है। इस व्यवहार के पीछे सद्विचार छुपा है। चक्रवर्ती भी साक्षात् क्यों न हो, वह स्वामी नहीं है। वह बेचारा भोगी तथा इन्द्रिय सुखो का दास है।

शातिसागरजी के पास कोन्नूर मे गया था। वहाँ पाँच सौ से भी अधिक गुफाएँ है। महाराज नगर के बाहर ही गुफा मे रहते थे। दोपहर की सामायिक गुफा मे ही करते थे। गुफा पाँच फुट से भी बडी थी। ऊँची अधिक थी। एक चिड्डे वाला सर्प, जो लगभग २ हाथ का रहा होगा, गुफा मे आया। वह महाराज की जघा पर चढा और बाद मे गुफा के बाहर आ गया। वह महाराज के शरीर पर पाँच मिनट पर्यन्त रहा था। उस समय महाराज ध्यान मे स्थिर थे। वे जरा भी हिले-डुले नहीं। उनकी दृढता देखकर मेरे मन पर बहुत प्रभाव पडा। मैं इतना प्रभावित हो गया कि करीब लगातार तीस वर्ष पर्यन्त भादो मे उनके पास नियम से जाया करता था। मैं उनके बहुत परिचय मे रहा। वे अपने ढग के अद्वितीय महापुरुष हो गए।”

कालप्पाण्णा लेगडे शाहपुर

बहिन का वर्णन

कालप्पाण्णा लेगडे शाहपुर बेलगाँव ने बताया- “आचार्य महाराज महान् थे। उनकी बहिन कृष्णाबाई भोज की महिलाओ मे अग्रणी थीं। उनका स्वभाव मृदु था। वे सब स्त्रियो को धर्म का उपदेश देती थीं। उनका वर्ण वर्धमान महाराज के समान था। उनके समान ही वे सरल स्वभाव वाली थीं। शान्त, तेजयुक्त, बुद्धिमती महिला थीं। सैकडो महिलाओ मे उनका व्यक्तित्व पृथक् दिखता था। वे ब्रती थीं। अनुभव पूर्ण चर्चा करती थीं। शरीर नीरोग था। सबसे छोटे भाई कुमगोडा पाटील जयसिंगपुर के मुख्य व्यापारी थे। वे व्यवहार तथा धर्म कार्यों मे अत्यन्त चतुर तथा प्रवीण थे।”

श्री गणपति रोटे कोल्हापुर

प्रतिभा सपन्न

श्री गणपति ने आचार्य महाराज का सम्मरण सुनाया था - “शाहुपुरी मंदिर की प्रतिष्ठा के समय आचार्य महाराज कोल्हापुर आए थे। उस समय कोल्हापुर मे सत्यशोधक समाज के नाम से कुछ व्यक्तियो का समुदाय विद्यमान था। उस समाज के लोगो ने तीन दिन पर्यन्त विचित्र-विचित्र शकाएँ की थीं। महाराज अपनी प्रतिभा के द्वारा जो उत्तर देते थे, उससे सब शात हो जाते थे।”

महत्त्वपूर्ण प्रश्न - मुझे यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न याद है। एक व्यक्ति ने कहा-

“महागज! आपके धर्म में मुक्तात्माओं का पुनर्जन्म नहीं माना गया है। मर मुक्त हो जायेंगे तो एक सिंहालय में कैसे समावेंगे?”

समाधान - आचार्य महाराज व्यक्ति की योग्यता, पात्रता आदि को ध्यान में रखकर उत्तर देते थे। सामान्य जानियों को समझ में आ जाय, ऐसी बात उस समय कहना आवश्यक था। महागज ने कहा- “एक वर्तन में दूध लो। उसे पूरा भर दो। उसमें शक्कर डालने पर दूध नहीं गिरता है। एक दूसरे वर्तन में पानी लो। उस पानी में घोड़े की लीद डालो, तो पानी गिर जाता है। दूध में शक्कर की तरह एक जगह सिद्ध भगवान समा जाते हैं। पानी में लीद की तरह ससारी जीव एक जगह सब नहीं समाते हैं।” लोग चुप हो गए। महाराज की प्रतिभा विलक्षण थी। प्रतिभा ही क्यों, उनकी सभी बातें अपूर्व थीं।

श्री मियांचन्द रतूचन्द फड़े अकलूज

१०८ धर्मसागर मुनि महाराज को शिखरजी की यात्रा कराकर सघपति श्री मियाचंद रतूचंद फड़े आषाढ वदी चतुर्थी सन् १९५५ को बारसी से चार मील की दूरी पर आचार्यश्री के समीप पहुँचे। उनसे महाराज ने पूछा- “धर्मसागर को कहाँ रखकर आए?”

उत्तर- “महाराज जबलपुर के समीप के बरगी ग्राम में छोड़ आए हैं। वहाँ गर्मी बहुत पड़ती है।”

मुनि की विवेकपूर्ण दृष्टि

महाराज ने कहा- “धर्मसागर ने वहाँ ठहरकर उचित काम किया। अगर आगे चलकर गर्मी के कारण बीमार पड़ता, तो क्या हालत होती, ऐसी गर्मी में?” फिर महाराज बोले- “वह होगियार हो गया- तो शहाणा झाला।” आचार्यश्री की दृष्टि को ध्यान में न रख ऋतु की उग्रता के समय कठोर तपश्चर्या करने वाले कई पवित्र मुनीश्वरों का देहावसान हो गया है।

बारसी के समीप आने पर महाराज बोले- “तुम वापिस चले जाओ।” फड़े ने कहा- “महाराज! आपके साथ थोड़ी दूर और चलेंगे।”

महाराज- “जाओ बाबा! तुम थके हुए हो।”

फड़े- “महाराज! आपके साथ चलने से थकावट दूर होती है। थकावट नहीं मालूम पड़ती है।”

सर्वतोभद्र साधुराज

इस प्रकार अनेक निर्ग्रन्थ साधुओ, साध्वियो, श्रावको, श्राविकाओ, गृहस्थो आदि के अन्त करणगत विचारो से भी यह बात स्पष्टरूप से ज्ञात होती है, कि आचार्य शान्तिसागर महाराज महान् योगिराज थे। तपोमूर्ति थे। उनका जीवन अपूर्व आध्यात्मिक प्रकाश से दीप्तिमान था। वे आध्यात्मिक ज्योति थे। उनके विशुद्ध जीवन से गणनातीत भव्यात्माओ ने आत्मकल्याण की मगलमय प्रेरणा प्राप्त की थी। उनका व्यक्तित्व महान् था। उनके पवित्र सपर्क को पाकर मोही प्राणी वीतरागता के पथ पर चलने को स्वयमेव तत्पर हो जाता था।

चंदन सदृशजीवन

उनका जीवन मलयागिरि के श्रेष्ठ चन्दन तुल्य था।^१ उनके समीप पहुँचनेवाला सतापमुक्त बनता था, साथ ही उसकी आत्मा में पवित्रता का सौरभ भर जाता था। उनके शरीर पर अनेक बार सर्पराज लिपटे थे, जो यह द्योतित करते थे, कि शान्तिसागर महाराज वास्तव में चंदन तुल्य महिमा सपन्न सज्जनोत्तम थे, क्योंकि सर्पसमूह का चंदन-प्रेम प्रसिद्ध है।

महान् तत्त्वज्ञानी

मोक्षमार्ग की दृष्टि से जीवन की परिपूर्णता के लिए आत्मोपलब्धि, आत्मबोध एव आत्मनिमग्नता रूप रत्नत्रय की अखण्डमैत्री आवश्यक है। उनकी वाणी तथा विविध प्रवृत्तियों के विषय में आगम के प्रकाश में विचार करने पर यह स्पष्ट होता था, कि वह आत्मा तत्त्व दृष्टि समलकृत थी। आस, आगम, तथा वीतराग धर्म के प्रति उनके अन्त करण में सुदृढ श्रद्धा थी, इसके लिए उनका सर्वांगीण जीवन दर्पण का कार्य करता हुआ प्रतीत होता है।

वैसे सूक्ष्मदृष्टि से सोचा जाय, तो सम्यग्दर्शन अत्यन्त सूक्ष्म है। वह वाणी के अगोचर है। वह केवलज्ञान, मन पर्ययज्ञान अथवा परमावधि, सर्वावधि ज्ञानगोचर कहा गया है। पचाध्यायी में लिखा है-

सम्यक्त्व वस्तुतः सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।

गोचरं स्वावधि-स्वान्तपर्यय-ज्ञानयोर्द्वयो ॥३७५॥

१ गुरुदेव का जन्म जिस गृह में हुआ था, वहाँ हम गए थे। वहाँ चंदन का वृक्ष लगा है।

वह सम्यक्त्व मतिज्ञान श्रुतज्ञान अथवा देशावधि ज्ञान के अगोचर है।
पचाध्यायीकार कहते हैं -

न गोचरं मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-द्वयोर्मनाक्।

नापि देशावधेस्तत्र विषयानुपलब्धितः ॥३७६॥ उत्तरार्ध

किसी के बौद्धिक विकास अथवा वाणी-विलास के आधार पर भी उसके
अन्तःकरण को सम्यक् प्रकार से समझना संभव नहीं है। पचाध्यायी में लिखा है-

अस्ति चैकादशागाना ज्ञान मिथ्यादृशोपि यत्।

नात्मोपलब्धिरस्यास्ति मिथ्याकर्मोदयात् परम् ॥१९९-२॥

मिथ्यात्वी जीव के आचारागादि एकादश अर्गों का ज्ञान होते हुए भी आत्मा
का अनुभव नहीं होता है, क्योंकि उसके मिथ्यात्व प्रकृति का उदय पाया जाता है।

ऐसी स्थिति में सुन्दर लेखक, वक्ता, गायक, कवि आदि होते हुए भी व्यक्ति
की आत्मा मिथ्यात्व पक्ष से विमुक्त है, ऐसी कल्पना दृढतापूर्वक नहीं की जा सकती है,
फिर भी स्थूल रीति से प्रशम, सवेग, अनुकम्पा तथा आस्तिक्य गुणों के द्वारा दूसरे के
तत्त्वज्ञान के विषय में विचारकवर्ग को सोचने, समझने में सहायता प्राप्त होती है।

मिथ्यात्वी की पहिचान

कुछ तो ऐसी बातें कही गई हैं, जिनसे क्षण भर में मिथ्यात्व के विकार का
सन्भाव सूचित होता है। ऐसी प्रसिद्धि है-

सर्प डस्यो तब जानिये, रुचिकर नीम चबाय।

कर्म डस्यो तब जानिये, जिनवाणी न सुहाय ॥

इसी प्रकार भगवती-आराधना का यह कथन सम्यक्त्वी-मिथ्यात्वी का
विश्लेषण करने में सहायक होता है-

पदमक्खर च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्धिड्ढ।

सेस रोचतो विहु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो व्यक्ति सूत्रकथित एक भी पद या अक्षर को नहीं पसन्द करता है तथा उसके
सिवाय शेष आगम को मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि मानना चाहिए। जिनेन्द्र वाणी के एक
अंश में भी अश्रद्धा रूप विषय व्यक्ति के प्रगाढ मिथ्यात्व का परिचायक है।

सम्यक्त्वी जीव मर्वज, वीतगग, हितोपदेशी आप्त की वाणी पर श्रद्धान करता है। उसे वह आज्ञा रूप से स्वीकार करता है। कहा भी है-

सूक्ष्म जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं च तद्ग्राह्य नान्यथा-वादिनो जिना ॥

जिन भगवान के द्वारा प्रतिपादित तत्त्व सूक्ष्म है। वह युक्ति से खण्डित नहीं किया जा सकता है। उसे आज्ञा रूप से मान्य जानकर स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान कभी भी मिथ्या प्रतिपादन नहीं करते हैं।

आगम

त्रिपिटक में कहा है, “तस्मै मुहगयवयण पुष्पा वरदोसं वरहिय शुद्ध आगम-मिदि कहिय”-अरिहत भगवान के मुख से उत्पन्न तथा पूर्वापर दोष रहित, विशुद्धवाणी आगम है। समतभद्र स्वामी ने आप्तमीमांसा में कहा है-

वक्तव्यनाप्ते यद्धेतो साध्यं तद्धेतु-साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागम-साधितम् ॥७८॥

वक्ता यदि आप्त नहीं है, तब जो बात युक्ति के द्वारा निर्णीत होती है, उसे हेतु-साधित कहते हैं। यदि वक्ता आप्त है, तो उनकी वाणी होने के कारण निर्णीत माना गया तत्त्व आगम-साधित कहा गया है।

आज कुछ लोग आगम की उपरोक्त आज्ञा की जान बूझकर अवहेलना करते हुए आगम के बहुभाग को प्रामाणिक न मानकर अपने को सम्यक्त्वी सोचते हैं तथा अपने साथियों को तत्त्वज्ञानी कहते हैं। सम्यक्ज्ञान के प्रकाश में यह चेष्टा प्रगाढ़ मिथ्या भाव से परिचालित प्रतीत होती है। ऐसे व्यक्तियों से सम्यक्त्व के सद्भाव के सूचक आस्तिक्य गुण का अभाव निश्चित होता है। जैसे नीरोग व्यक्ति की चेष्टाओं से उसकी स्वस्थता का परिज्ञान होता है उसी प्रकार सम्यक्त्वी की चेष्टाओं आदि द्वारा सम्यक्त्व का सद्भाव सूचित होता है।

सम्यक्त्व के चिह्न

हमें देखना है सम्यक्त्व के चिह्न रूप प्रशमादि का क्या स्वरूप है, और वे चिह्न आचार्य शान्तिसागर महाराज में थे या नहीं? अनगारधर्माभूत में लिखा है-

प्रशमो रागादीनां विगमोऽनन्तानुबधिना सवेगः ।

भव-भयमनुकम्पाखिल सत्त्वकृपास्तिक्यमखिलतत्त्वमतिः ॥२-५२॥

अनन्तानुबधी रागादि अर्थात् क्रोध, मान, माया तथा लोभ का अभाव प्रशम भाव है। इससे आत्मा में प्रशान्त भाव उत्पन्न होता है। ससार से भयभीत होने को सवेग कहते हैं^१। त्रस-स्थावररूप सपूर्ण जीवों पर दयाभाव रखना अनुकम्पा है। सपूर्ण तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप के निश्चय को आस्तिक्य भाव कहा है। जिनेन्द्र प्रणीत आगम के कथन पर पूर्ण विश्वास धारण करने को भी आस्तिक्य कहा गया है।^२

आचार्यश्री का जीवन

हमने इस आध्यात्मिक ज्योति में विविध व्यक्तियों के विचारों को उनके शब्दों में निबद्ध किया है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शान्तिसागर महाराज प्रशममूर्ति थे। उनका जीवन वैराग्य भाव से परिपूर्ण रहा है, अतः सवेगभाव भी उनमें था। त्रस-स्थावर जीवों के प्रति कारुण्य-भाव धारणकर महाव्रत को अंगीकार करने के कारण उनके उच्च अनुकम्पा भाव स्वयंसिद्ध होता है। जिनेन्द्र की वाणी पर उनकी श्रद्धा लोकोत्तर थी। उस आगम पर श्रद्धा रहने के कारण ही ईर्या आदि समितियों की रक्षार्थ उन्होंने शरीर के सशक्त रहते हुए भी समाधिमरण रूपी दुर्धर तप साधना को स्वीकार कर परम शान्तिपूर्वक प्राणों का परित्याग किया।

धर्मध्यान

आर्तध्यान, रौद्रध्यान का त्याग कर उन्होंने धर्मध्यान को स्वीकार किया था। इस समय शुक्लध्यान भरतक्षेत्र में नहीं होता है। कुदकुदस्वामी ने लिखा है-

१ पचाध्यायी में सवेग का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है-

सवेग परमोत्साह धर्मे धर्मफले चित ।

सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिसु ॥

आत्मा का धर्म तथा धर्म के फल में परम उत्साह रखना, साधर्मियों में अनुराग अथवा परमेष्ठियों में प्रीति करना सवेग भाव है।

२ राजवार्तिक में अकलक स्वामी ने प्रशमादि का स्वरूप पूर्ववत् ही कहा है-

रागादीनामनुद्रेक प्रशम । ससारान्दीरुता सवेग । सर्वप्राणिषु मैत्री अनुकपा । जीवादयोऽर्था यथा स्वभावै सतीति मतिरास्तिक्य । एतैरभिव्यक्तलक्षण प्रथम सरागसम्यक्त्वमित्युच्यते । पृ

१६, अध्याय १, सूत्र २ ।

भरहे दुस्ममकाले धम्मज्झाणं हवेड माहुस्स ।

तं अप्पमहावठिटे ण हु मण्णडं सोवि अण्णाणी ॥७६॥ मोक्षपाहुड

इम भरतक्षेत्र मे इम पचमकाल मे मुनि के धर्मध्यान होता है । यह ध्यान आत्म-स्वभाव मे स्थित मुनि के होता है । इस बात को जो नहीं मानता है वह व्यक्ति भी अज्ञान है ।

शुभोपयोग मीमांसा

आचार्य महाराज की प्रवृत्ति निसर्गत शुभोपयोग रूप होती थी । चारित्र्यून्य कोई-कोई गृहस्थ आजकल अपने को शुद्धोपयोगी सोचते हैं । यह धारणा आगमबाधित है । परिग्रही गृहस्थ के शुद्धोपयोग नहीं होता । वह दिगम्बर साधु के ही पया जाता है । अप्रमत्त गुणस्थान से आगे शुद्धोपयोग कहा है । बृहद्ब्रह्मसूत्रग्रह में गाथा ३४ की टीका में (पृ ९४) लिखा है-“ततोप्यसयत्तसम्यग्दृष्टि-श्रावक-प्रमत्तसयत्तेषु परम्परेण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युणरि तारतम्येन शुभोपयोगो वर्तते तदनन्तरनप्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यन्तं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन विवक्षितैकदेश-शुद्धनयरूप-शुद्धोपयोगो वर्तते”-असयत्त-सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रमत्तसयत्त इन तीन गुणस्थानों में परम्परा से शुद्ध उपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभ उपयोग रहता है । तदनन्तर अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यन्त जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद से विवक्षित एक देश शुद्धन्य रूप शुद्ध उपयोग वर्तता है ।

जो गृहस्थ अपने पद के योग्य सामान्य सदाचार को भूलकर अशुभोपयोग में लीन रहते हुए शुद्धोपयोग की बातें बनाते हैं तथा शुभोपयोग को त्याज्य कहते हैं, वे पापकर्म में डूबते हैं । जब आगम कहता है, गृहस्थावस्था में शुद्धोपयोग नहीं होता है, तब उस आगम की आज्ञा को शिरोधार्य करना हितकारी है । अपनी झूठी कल्पना द्वारा आगम की अवहेलना मिथ्यात्वी का कार्य है ।

पुण्य बंध

इस शुभोपयोग का फल पुण्यबंध है । पुण्यबंध रहित अवस्था शुक्लध्यान द्वारा साध्य है । आज वह ध्यान नहीं होता, अतः धर्मध्यान द्वारा पुण्यबंध मानना होगा ।

कुदकुंद स्वामी ने संसार अनुप्रेक्षा में लिखा है -

असुहेणणिरयतिरियं सुहजोगेण द्विविजणरसोक्खं ।

सुद्धेण लहड सिद्धि एवं लोयं विचितिजो ॥४१॥

अशुभ उपयोग से नरक, तिर्यच पर्याय मिलती है। शुभ उपयोग से देव तथा नरगति के सुख मिलते हैं। शुद्धोपयोग से मोक्ष मिलता है। इस प्रकार इस लोक के विषय में विचार करे।

धर्म ध्यान शुभ भाव है

धर्मध्यान शुभ परिणाम रूप है। यह धर्मध्यान चौथे से प्रारम्भ होता है। श्रेणी पर आरोहण के पूर्व धर्मध्यान होता है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलकस्वामी ने लिखा है-“धर्म्यध्यान श्रेण्योर्नेष्यते”(अ ९ सू. ३६, पृ. ३५४)। आगे उन्होंने यह भी लिखा है-“धर्म्यध्यानमविरत-देशविरत-प्रमत्ताप्रमत्तसयताना भवति”-यह धर्म्यध्यान अविरत, देशविरत, प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत पर्यन्त होता है। अप्रमत्तगुणस्थान का भेद सातिशय अप्रमत्त भी कहा है, जबकि वह जीव करणात्रिक करता हुआ श्रेणी पर आरोहण करता है। अतः इस गुणस्थान में श्रेण्यारोहण के पूर्व धर्मध्यान होता है तथा श्रेणी आरोहण काल में शुक्ल ध्यान होता है। धर्मध्यान शुभ परिणाम स्वरूप है। उससे पुण्य का बंध होता है। इस विषय में कुदकुदस्वामी का प्रवचनसार के ज्ञेयाधिकार में यह कथन मनन योग्य है-

सुह-परिणामो पुण्यं, असुहो पावति भणियमण्णोसु।

परिणामोणणगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥१८१॥

आगम में शुभ परिणाम पुण्य का कारण कहा है। अशुभभाव पाप का कारण कहा गया है। इन दोनों से भिन्न शुद्धभाव दुःखक्षय का कारण कहा गया है। कुदकुदस्वामी ने गाथा २७४ में कहा है-“सुद्धस्म य णिव्वाण” शुद्धोपयोगी के ही मोक्ष होता है, इससे जो गृहस्थ शुद्धोपयोग की ही बातें करते हुए शुभोपयोग की भूमि पर पैर ही नहीं रखना चाहते, फलतः शुभोपयोग छोड़ा, शुद्धोपयोग मिला नहीं, तो पारिशेष न्यायानुसार अशुभोपयोग से कुपथ में भटकते हैं। वे स्वयं आगमविरुद्ध विचार-चक्र में फँसते हैं और अन्य धार्मिक लोगों को भी अपने रास्ते पर खींचने का उद्योग करते फिरते हैं। यह पद्धति ठीक नहीं है।

शुभोपयोगी के पुण्य बंध एवं पाप की निर्जरा होती है। ठीक मार्ग इस प्रकार है। कहा भी है—

अशुभ भाव को त्यागकर सदा धरो शुभ भाव।

शुद्धभाव आदर्श हो यह आगम का भाव ॥१॥

हिमादिक दुर्भाव है, जिनपूजादि मुभाव।

दया-दान- व्रतधारकर लागहु मोक्ष उपाव ॥२॥

आगमोक्त प्रवृत्ति

आचार्य महाराज आगम के हृदय को भली प्रकार समझते थे, अतः वे शुभोपयोग में मबध रखने वाले अन्य कार्यों में भी योगदान करते थे। कुथलगिरि में यम-मल्लेखना लेने पर भी वे प्रतिदिन १००८ भगवान् देशभूषण, कुलभूषण स्वामी का पचामृत अभिषेक देखकर निर्मलता प्राप्त करते थे।

ऐसी श्रेष्ठ तपस्या के समय पर उन आगमप्राण गुरुदेव का अभिषेक-दर्शन धार्मिक वर्ग को यह सूचित करता है, कि उक्त अभिषेक पद्धति पूर्णतया आगम-सम्मत है। वह पथ विशेष की वस्तु नहीं है। आत्मकल्याण के प्रेमियों को आचार्य महाराज के जीवन से अपनी धारणा में सुधार करना चाहिए।

विचारणीय

यह बात स्थूल बुद्धि व्यक्ति भी सोच सकता है, कि उस तपश्चर्या काल में ज्ञान्तिमागर महाराज अपने प्राणाधिक आगम के अनुसार प्रवृत्ति कर रहे थे। जो पक्षाध व्यक्ति यह मोचे, कि महागज दक्षिण के थे, अतः वे ऐसा करते थे, वे भ्रम में हैं। वे गुरुदेव न दक्षिण के थे, न उत्तर के, वे तो आगम के थे। अतएव आचार्य महाराज की महत्ता को स्वीकार करने वालों को पक्ष की ममता त्याग- कर गुरुदेव के जीवन में प्रकाश प्राप्त करना चाहिए। पक्ष मोह छोड़कर आगम की आजानुसार प्रवृत्ति हितकारी है। आगमपथी बनना श्रेयस्क है।

व्यवहार-निश्चय मीमांसा

कोई-कोई यह कहते हैं, मुमुक्षु को व्यवहार दृष्टि को छोड़कर निश्चय दृष्टि को अपनाना चाहिए, क्योंकि उनकी धारणा है कि व्यवहार नय मिथ्या है, इस विषय में आचार्य महाराज कहते थे म्याद्वादवाणी का अग होने से दोनों नय सम्यक् हैं। इसी से उन्होंने व्यवहार का परित्याग नहीं किया था। बहुधा लोग व्यवहार-निश्चय का आगम-सम्मत अर्थ बिना जाने-बूझे व्यवहार की निन्दा के क्षेत्र में कूद पड़ते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि निश्चय नय के समान व्यवहार नय भी सम्यक् ज्ञान का अग है। वस्तुभेद (पर्याय) तथा अभेद (गुण अथवा द्रव्य, सामान्य) रूप है। वह सामान्य-विशेष धर्मरूप है। 'आलाप पद्धति' में लिखा है। "तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च। तत्र

निश्चयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषय ” व्यवहार तथा निश्चय ये दो मूल नय है। निश्चय नय अभेद को ग्रहण करता है, व्यवहार नय भेद को विषय करता है। भेद तथा अभेद मे दोनो प्रमाण के विषयभूत होने से यथार्थ है, काल्पनिक नहीं हैं। महाज्ञानी ऋषिराज समतभद्र स्वामी ने आप्तमीमांसा मे उपरोक्त तत्त्व इन शब्दो मे व्यक्त किया है -

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती ।

तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥३६॥

भेद तथा अभेद दोनो अस्तित्व रूप है, क्योंकि वे प्रमाण ज्ञानगोचर हैं। वे काल्पनिक नहीं हैं। वे मुख्य तथा गौण विवक्षारूप से आपके मत मे एक जगह पर दोनो ही अविरोधी रूप मे पाये जाते है।

भ्रान्त धारणा

आचार्य महाराज ने द्वादशांग महाशास्त्र को समुद्र की उपमा दी थी। उस द्वादशांग वाणी की गभीरता को भुलाकर वालवुद्धि व्यक्ति भी अपने को सरस्वती पुत्र मानकर आजकल आचार्यों के कथन को भी सदोष बताता है। कोई-कोई कहते हैं, पुण्य, पाप दोनो समान हैं। अतः पुण्य भी त्याज्य है। जब पुण्य त्याज्य है, तब पुण्य के कारण दान-पूजादि कार्य भी अग्राह्य हो जाते है। ऐसी धारणावाला गृहस्थ देवपूजा, दानादि सत्कार्यों को भी छोड़कर अपने जीवन की मलिनता का परित्याग नहीं करता है। इस विषय मे एकान्त पक्ष को छोड़कर विवेकी व्यक्ति को आचार्य महाराज के समान अनेकान्ती बनना चाहिए। आचार्य महाराज स्वयं पुण्य प्रवृत्तियों मे तत्पर रहते हुए अनेक भक्तो को व्रतधारण द्वारा पुण्य सचय करने के मार्ग मे लगाते थे। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश मे कहा है “वर व्रतै पद दैव, नाव्रतैर्बत नारक” (३)-व्रतो के द्वारा देवपद पाना अच्छा है, व्रतरहित होकर नरक मे जाना बुरा है। इस रहस्य के सौन्दर्य को भूलकर कोई-कोई कहते है कि पुण्य तथा पाप दोनो समान है। अतः पुण्य का उपदेश देना ठीक नहीं है। कुंदकुंद स्वामी ने मोक्षपाहुड मे कहा है, हिसादि के त्याग रूप व्रत तथा तप द्वारा स्वर्ग जाना अच्छा है। पापाचरण द्वारा नरक जाना ठीक नहीं है, -“वर वयतवेहि सगो, मा दुक्ख णिरय इयरेहि” ॥२५॥

पुण्य सचय

खेद है कि लोग आगम के सिंधु मे अवगाहन बिना किए ही स्वेच्छानुसार कल्याण करते हैं। बड़े-बड़े आचार्यों ने गृहस्थो को पुण्य सचय का उपदेश दिया है।

गृहस्थवस्था में धर्मध्यान रूप गुह्ययोग की संभव है जिसमें पुण्य की प्राप्ति होती है, अतः पुण्यमचय की ओर गृहस्थ की जीवनधारा को प्रवृत्त करना पणितया उचित है। आश्चर्य है कि गृहस्थ पुण्य रूप वृक्ष के फलों को मचय करना चाहता है उनका मनपान करने को लालायिन रहता है उसमें ही अपना प्रायः साग समय व्यय करता है किन्तु उन वृक्ष की निन्दा करता है उसकी जड़ को पुष्ट करने के बदले में उसे क्षति पहुँचाने की अभद्र चेष्टा करता है।

पुण्यस्य फलमिच्छति पुण्यं नैच्छन्ति मानवाः ।

न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

पाप-पुण्य में भेद

गृहस्थों को यह जानना चाहिए कि स्याद्वाद शायन में पुण्य पाप को आध्यात्मिक दृष्टि में जहाँ समान कहा है वहाँ उन दोनों के भेद को भी स्वीकार किया गया है। जिनमें समयनार ही देखा है उनको अक्लक स्वामी का गजवार्तिक भी पहने का कष्ट करना चाहिए जहाँ अनेकान्त दृष्टि को इस प्रकार खुलामा किया गया है।

अनेकांत पक्ष

“उभयमपि णगत्तत्र-हेतुत्वादविशिष्टमिति चेन्नैष्टानिष्टनिमित्तभेदात्तन्मिद्धे”
 शंकाकार कहता है पुण्य तथा पाप दोनों ही समान हैं, क्योंकि दोनों जीव की परतत्रता के कारण हैं। इस पर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा व्यन ठीक नहीं है। इष्ट तथा अनिष्ट निमित्त भेद में उन दोनों में भिन्नता है। ‘यदिष्ट-गति-जाति-गर्गरेन्द्रिय-विषयादिनिर्वर्तक तत्पुण्य। अनिष्टगति-जाति-गर्गरेन्द्रिय-विषयादिनिर्वर्तक यत्तत्पापमित्यनयोऽयं भेद।’ जो इष्ट गति जाति गर्गरेन्द्रिय विषयादि का कारण है वह पुण्य है और जो अनिष्ट गति जाति गर्गरेन्द्रिय विषयादि का कारण है, वह पाप है। इस प्रकार पुण्य-पाप में भेद है। (पृ २४८ अध्याय ६)।

अध्यात्म प्रेमियों के आगच्छ अमृतचन्द्रमूर्ति अक्लक स्वामी का समर्थन करते हुए तत्त्वार्थसागर के चतुर्थ अध्याय में कहते हैं —

संसारकाणत्वस्य द्वयोऽप्यविशेषतः ॥१०४॥

पुण्य-पाप दोनों समार के कारण होने में समान हैं।

इसी विषय को आधारभूत बनाकर पुण्यमचय के विम्वद्ध यथेच्छ प्रतिपादन

किया जाता है। लोगो को यह जानना चाहिए कि शुद्धतत्त्व प्रतिपादन की अपेक्षा उपरोक्त बात कही गई है।

उदाहरण-जीवतत्त्व की दृष्टि से लोकाग्रभाग में तनुवातवलय के नीचे विराजमान सिद्धभगवान तथा वहाँ आकाशप्रदेश में स्थित निगोदिया जीव समान है। दोनों में अन्तर नहीं है। यह द्रव्यदृष्टि है। पर्याय दृष्टि से दोनों का अन्तर स्पष्ट है। निगोदिया अक्षर के अनतवे भाग ज्ञान वाले हैं, अनन्त दुःख के समुद्र में डूबे हैं, अत्यन्त अल्पशक्ति वाले हैं और सिद्ध भगवान अनतदर्शन ज्ञान, सुख, वीर्य आदि सम्पन्न हैं। अतः विवेकी का कर्तव्य है कि पर्याय दृष्टि तथा द्रव्य दृष्टि का यथायोग्य उपयोग करे। द्रव्यदृष्टि से ठण्डा जल और उबलता हुआ पानी समान हैं। यदि एक बालक को दोनों प्रकार के पानी को समान समझाकर भेद न बताया जाय, तो बेचारा उबलते हुए पानी को भी शीतल जल सदृश समझने के कारण दाहजनित व्यथा से पीड़ित हुए बिना न रहेगा। इस कारण यद्यपि पुण्य और पाप एक दृष्टि से समान हैं, किन्तु दूसरी दृष्टि से वे भिन्न भी हैं। गृहस्थो को यह भिन्न दृष्टि भी स्मरण रखना चाहिए।

अमृतचन्द्र सूरि की दृष्टि

अनेकान्त तत्त्वज्ञान के समर्थ प्रतिपादक अमृतचन्द्र स्वामी ने उसी तत्त्वार्थसार में लिखा है-

हेतू-कार्य-विशेषाभ्या विशेष पुण्य-पापयो ।

— पुण्य और पाप में हेतु और कार्य की दृष्टि से भिन्नता है, अर्थात् दोनों समान नहीं हैं।

हेतू शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥१०३॥

— पुण्य का हेतु शुभभाव है, पाप का कारण अशुभ भाव है। इस प्रकार हेतु की दृष्टि से दोनों पृथक् हैं। कार्य की दृष्टि से भी दोनों में भिन्नता है, पुण्य का फल आनन्द है और पाप का फल दुःख है। तपस्वी साधु के मुख से पुण्य-पाप की समानता की बात कुछ अर्थपूर्ण दिखती है, किन्तु कनक, कामिनी के पाश में फँसा हुआ गृहस्थ, साधु की वाणी की नकल करता हुआ अद्भुत सा लगता है। सातवे नरक के नारकी और सर्वार्थसिद्धि के दिव्य सुखो का अनुभव करने वालों को समान गिनने वाला गृहस्थ अद्भुत दिमाग वाला दिखेगा।

उत्तर - इसका उत्तर देते हुए जैन कहते हैं, कि उपरोक्त साम्य होते हुए भी दोनों में भोज्यपना, अधोज्यपना की अपेक्षा अन्तर है। वृक्षपना आम तथा नीम के वृक्षों में गया जाता है। फिर भी भक्ष्यपना की दृष्टि से आम का ऊल मनुष्य के लिए ग्राह्य है, नीम की निवोगे नहीं हों। जौआ को वह निवोगे भले ही अच्छे लगे। अथवा स्त्रीपना माता तथा पत्नी में स्नान रूप में विद्यमान है किन्तु उन दोनों की भिन्नता भी मन्त्र स्वीकार करते हैं। जंगली लोग भी दोनों की भिन्नता को मानते हैं, उच्च समान तो भिन्नता को स्वीकार करती ही है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दृष्टि से दो पदार्थ समान हो जाते हैं। दृष्टि अपेक्षा से उनमें भिन्नता पाई जाती है। महागज वज्रगर्भ की संतान होने से गम, लक्ष्मण भाई हैं किन्तु गम की जननी जौशल्या तथा लक्ष्मण की जननी सुमित्रा है अतः माता की अपेक्षा गम-लक्ष्मण में भिन्नता है। यही न्याय पुण्य, पाप के विषय में लगाना चाहिए। आचार्य कुंदकुंद की परम्परा वाले अमृतचन्द्रमूर्ति तथा अकलंकदेव की भी दृष्टि धार्मिक पुरुष को गिरेधार्य होनी चाहिए। इन आर्ष दृष्टि को अस्वीकार करनेवाला भी यदि सम्यक्त्वो हो सकता है, तो फिर निध्यात्वी का क्या स्वरूप होगा? यह स्मरण रखना चाहिए कि एकान्त पक्ष ही निध्यात्त्व है, वही कथन सापेक्षरूपता धारण करके अनेकान्तरूप बनकर सम्यक् हो जाता है।

पुण्य तथा धर्म

इस प्रसंग में अध्यात्मवाद के आधामियों की एक भ्रान्त धारणा पर भी विचार करना आवश्यक है। वे कहते हैं, भगवान की पूजा आदि धर्म नहीं हैं। वे कार्य पुण्य हैं। पुण्य-पाप के समान है अतः मुमुक्षु को पूजा आदि के प्रपन्न में नहीं फँसना चाहिए। एक और अद्भुत बात है, ये लोग पूजा भी करते हैं और उसे बुरा भी बताते हैं। ऐसे लोगों को यह समझना चाहिए कि भगवान की पूजा आदि में पुण्य होता है, सुख मिलता है तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुंदकुंद स्वामी ने श्रावक धर्म में दान पूजादि का

ममावेश किया है। श्रावकाचरण को 'सावय धम्म' कहा है। अध्यात्मवादिया के अत्यन्त आदर प्राप्त महाकवि बनारसीदास जी जिनेन्द्रदेव की पूजा के फलरूप इन्द्रियजनित सुखों के साथ मोक्षसुख का भी वर्णन करते हैं। उनका कथन है-

देवलोक ताके घर आगन राज रिद्धि सेवे तसु पाय ।
ताके तन मीभाग्य आदि गुन केलि निवास करै नित आय ॥
सो नर तुरत तिरै भव मागर निर्मल होय मोक्ष पद पाय ।
द्रव्य-भाव, विधि सहित बनारसि जो जिनवर पूज मन लाय ॥

धर्म का स्वरूप

धर्म की परिभाषा है-“यतोभ्युदय-नि श्रेयससिद्धि स धर्म”-जिमसे अभ्युदय अर्थात् ससार का वैभव तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं, उसे धर्म कहते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य ने महापुराण में लिखा है-

धर्मादिष्टार्थसंपत्तिस्ततः कामसुखोदयः ।
स च सप्रीतये पुसा धर्मात् सैषा परपरा ॥१५, पर्व ५॥
राज्य च संपदो भोगा कुले जन्म सुरुपता ।
पाडित्यमायुरारोग्यं धर्मस्यैतत्फलं विदुः ॥१६॥

धर्म से इष्ट पदार्थ, संपत्ति का लाभ होता है। उससे कामरूप सुख उत्पन्न होता है। उससे आनन्द प्राप्त होता है। यह परपरा धर्म से प्राप्त होती है। धर्म के फल राज्य, संपत्ति, सुकुल में उत्पत्ति, सुरुप की प्राप्ति, विद्वत्ता, दीर्घजीवन तथा नीरोगता कहे गए हैं।

धर्म का क्या स्वरूप है? इस पर महापुराणकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं-

दया-मूलो भवेद्धर्मो दया प्राण्यनुकपनम् ।
दयाया परिरक्षार्थं गुणाः शेषाः प्रकीर्तिताः ॥२१॥

धर्म का मूल दयाभाव है। प्राणियों के प्रति अनुकम्पा करना दया है। इस दया भाव के रक्षणहेतु शेष गुण कहे गए हैं। कुंदकुद स्वामी ने बोध पाहुड में “धम्मो दया विसुद्धो (२५)-दया से विशुद्ध भाव धर्म है, कहा है। मोक्षपाहुड में उन्होंने अहिंसा भाव को धर्म कहा है। “हिसारहिए धम्मो” (१०) अतः गृहस्थ को जीवदया रूप में धर्म का पालन करना चाहिए। मुनिराज जीव रक्षा करते हैं।

जिन मत्कार्यों को लोग पुण्य कह दिया करते हैं, यथार्थ में उनके भीतर दया भाव का पोषण पाया जाता है। दया शब्द व्यापक है। उसके दो भेद स्वदया, परदया कहे गए हैं। दया या अहिंसा भाव को धर्म जानना चाहिए।

धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ

धम्मो वत्थुमहावो खमादि भावो च दहविहो धम्मो ।

रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं ँखणं धम्मो ॥

वस्तु का निज स्वभाव धर्म है। उत्तम क्षमादि भावरूप दशविध धर्म है। रत्नत्रय धर्म है। जीवदया भी धर्म है (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

सनातन धर्म के चिह्न

महापुराण में लिखा है-

धर्मस्य तस्य लिंगानि दम. शांतिरहिंसा ।

तपो दानं च शीलं च योगो वैराग्यमेव च ॥२२॥

अहिंसा-मत्यवादिता-अचौर्यं त्यक्तकामता ।

निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्म. सनातन. ॥२३॥

उस धर्म के ये चिह्न हैं, इंद्रियों का दमन, क्षमा, अहिंसा, तप, दान, शील, योग (ध्यान) वैराग्य। अहिंसा, मत्यवादिता, अचौर्य, कामभाव का त्याग, परिग्रहरूप धर्म सनातन हैं। आचार्य कहते हैं:-

तस्माद्धर्मफलं ज्ञात्वा नरवं राज्यादिलक्षणम् ।

तदर्थिना महाभाग! धर्मं कार्या मतिः स्थिरा ॥२४॥

अतः हे महाभाग महाबल नरेन्द्र! यह राज्यादिकी प्राप्ति उस धर्म का फल जानकर तुम्हें धर्म के कार्य में अपनी बुद्धि को दृढ़ करना चाहिए।

अतएव इस आर्षवाणी के प्रकाश में जो राज्यादि संपत्ति को धर्म का फल कहे जाने का विरोध करते हैं, उनको अपने विचारों का संशोधन करना चाहिए, क्योंकि उनका कल्याण स्याद्वाद दृष्टि में है।

जिनमें आचार्य के विचारों का समर्थन करने वाले उद्धृत आचार्यों द्वारा गति बहुत से प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं; किन्तु स्थानाभाव होने में धर्मात्मा पुष्पों को पूर्वोक्त आगम में ही आत्महित में प्रवृत्त होना चाहिए।

निमित्त की उपयोगिता

एक बात और है, उस पर भी मक्षेप में प्रकाश डालना उपयोगी प्रतीत होता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए अन्तरंग भाव ही चाहिए। बाह्य निमित्त कारण कुछ नहीं करता है। वह मात्र उपस्थित रहता है। इस प्रकार निमित्त को 'पचम अन्यथासिद्ध' रूपता प्रदान करना विचित्र सूझ है। घट पर्याय की उत्पत्ति में उपादान कारण मृत्तिका है। यदि उस समय कुम्भकार उपस्थित मात्र रहता है और इससे उसे निमित्त कारण माना जाय, तो कुम्भकार का गधा भी उस समय उपस्थित रहता है, अतः वह भी कुम्भकार के समान निमित्त कहा जायगा। गर्दभ को निमित्त कारण कहेंगे तो गर्दभ के अभाव में घट की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिए। ऐसा नहीं है, अतः कार्य की उत्पत्ति में निमित्त-उपादान कारण युगल का सन्दाव मानना चाहिए।

आचार्य गुणभद्र का कथन

उत्तर पुराण में लिखा है कि जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा अचेतन होते हुए भी पुण्य वध में कारणारूप परिणामो की उत्पत्ति में कारणा है। इस विषय में प्रकाश डालते हुए गुणभद्राचार्य लिखते हैं —

कारणद्वयसान्निध्यात्सर्वकार्यसमुद्भवः ।

तस्मात् साधु विज्ञेयं पुण्यकारणकारणम् ॥ ५३-पर्व ७३ ॥

कारण युगल अर्थात् बाह्य अन्तरंग अथवा निमित्त उपादान कारणों के द्वारा कार्य की उत्पत्ति होती है। जिनेन्द्रप्रतिमा पुण्य वध के कारण का कारण है, अर्थात् परस्पर-कारण है। पुण्य वध का कारण जीव का भाव है और जीव के शुभ परिणामो में कारण प्रतिमा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कारण द्वय के द्वारा कार्य होता है, केवल उपादान द्वारा नहीं।

जो सवस्त्र मुक्ति मानते हैं, वे यह कह सकते हैं, कि केवल भाव ही मोक्ष का कारण है, वस्त्र त्याग रूप निमित्त की जरूरत नहीं है। जो दिगम्बर संप्रदाय वाले उपादान को ही सब कुछ मानकर निमित्त का तिरस्कार करते हैं, वे दिगम्बर जैन आगम के विपरीत मत का प्रचार करते हैं।

पद्मपुराण की महत्त्वपूर्ण उक्ति

अपकारे समासक्ता परस्य स्वस्य चानिशम् ।

ज्ञास्यति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गति-गामिनः ॥९९ सर्ग ३० ॥

इस पंचमकाल में अपना अहित करने में तथा दूसरे का अहित करने में निरन्तर तत्पर रहने वाले व्यक्ति पैदा होंगे अपने को मिद्ध ममान मानने वाले दुर्गतिगामी पुरुष पैदा होंगे। एकान्तवादियों द्वारा पूजित चरण वाले मयमग्न्य व्यक्ति का ममाधिग्न्य मग्न देख आर्षवाणी की मत्यता स्पष्ट होती है।

जिनेन्द्र की ऐसी भविष्य वाणी के प्रकाश में लोगों को एकान्त अध्यात्मवाद का आश्रय छोड़कर आचार्य ज्ञान्तिमागर महाराज द्वारा उपदिष्ट तथा उनके जीवन द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त पथ पर चलकर अपना कल्याण करना चाहिए। महाराज कहते थे, आगम के अनुसार विचार बनाना चाहिए। अपनी धारणा के अनुसार आगम को नहीं बदलना चाहिए।

आगम-प्राण

आचार्य महाराज की श्रद्धा मेरु की तरह अविचलित थी। मागर के ममान वह अथाह थी। उनके आदेशानुसार जब धवला, जयधवला महाबंध (महाधवल) सिद्धान्त ग्रंथ ताम्रपत्र में उत्कीर्ण हो गए, तब महाराज ने शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापकों से कहा था “ये शास्त्र हमारे प्राण हैं। हमारा प्राण इस शरीर में नहीं है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी ही हमारा प्राण है।” यथार्थ में आचार्य महाराज आगम-प्राण थे।

सम्यक्त्व के विषय में

अनगाधर्माभूत में एक महत्त्व की बात आई है-

तै. स्वमंविदितै. मूक्षमलोभान्ता. स्वां दृशं विदुः।

प्रमत्तान्तान्यगां तजवाक्चेष्टानुमितैः पुनः ॥२-५३॥

स्वयं के ज्ञान द्वारा उक्त प्रश्नादिकों के द्वारा अमयत सम्यग्दृष्टि से लेकर मूक्षमाम्पगय दशम गुणस्थान पर्यन्त जीव स्वगत सम्यक्त्व के सद्भाव को जान सकते हैं। प्रश्नादिकों के निमित्त में उत्पन्न होने वाले वचन तथा चेष्टा यानी शरीरक्रिया को देखकर छठे प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त के अन्य जीवों के सम्यग्दर्शन को भी जान सकते हैं।

आत्मानुभवी महर्षि

इस प्रसंग में एक उपयोगी सस्मरण लिखना उचित प्रतीत होता है। सन् १९५४ के पर्युषण पर्व में आचार्य महाराज फलटण में विराजमान थे। पर्व के पर्यवसान के समीप काल में आचार्य महाराज बड़ी तन्मयता पूर्वक आत्मध्यान, आत्मचिंतन तथा आत्मस्वरूप

की चर्चा कर रहे थे। उस समय मेने पूछा था-“महाराज! आप जो कुछ कथन कर रहे हैं, वह आगम, अनुमान या अनुभव के आधार से कह रहे हैं?”

मेरे प्रश्न के उत्तर में उनके मुख से सहसा ये मार्मिक शब्द निकल पड़े- “हम अपने अनुभव से यह कथन कर रहे हैं।” इसके पश्चात् वे योगिराज गम्भीर होकर चुप हो गये थे। उस समय हृदय में अवर्णनीय आनन्द आया, कि हमें सच्चे आत्मानुभवी साधुराज के चरणों के समीप रहने का अपूर्व सोभाग्य प्राप्त हुआ। अनगर-धर्माभूत रूप उपरोक्त शास्त्राधार से यह स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्थगुणस्थान से दशम गुणस्थान पर्यन्त स्वयं के सम्यक्त्व का निश्चय हो जाता है। अतः आचार्य महाराज का उपरोक्त कथन शास्त्राज्ञा द्वारा समर्थित स्पष्ट ज्ञात होता है।

विवेक दृष्टि

ससार में जहाँ असली रत्न रहता है, वहाँ नकली रत्नों का ढेर भी पाया जाता है। जौहरी व्यक्ति अपनी कुशलता के द्वारा असली, नकली का भेद जान लेता है। इसी प्रकार आज बहुत से अपने को सम्यक्त्वी कहने वाले तथा समझने वाले की सख्या को देखकर आगम ज्ञाता समझ सकता है कि इनमें कौन किस प्रकार है? जो प्रशम भाव के स्थान में अहंकार, माया आदि कषायों की मूर्ति हो, जो ससार से डरने के बदले में सत्कार्यों से डरकर दूर भागते हों, क्रूर स्वभाव, क्रूर आचार, क्रूर विचारादि के कारण जिनके जीवन में अनुकम्पा का लेश भी न हो तथा जो आगम की आज्ञा का तिरस्कार कर स्वयं नवीन शास्त्र बनाने की प्रवृत्ति में सलग्न हों, ऐसी आस्तिक्यशून्य आत्मा में सम्यक्त्व का सद्भाव सोचना बकराज को हस मानने सदृश अविवेकपूर्ण बात होगी। कहाँ हस और कहाँ बकराज! दोनों का वर्ण धवल है, किन्तु दोनों की परणति भिन्न-भिन्न है। उसी प्रकार कहाँ आचार्य शान्तिसागर महाराज में पाए जाने वाले सम्यक्त्व के सद्भावसूचक प्रशम, सवेगादि भाव तथा कहाँ अहंकार मूर्ति और प्रतारणा पण्डित प्रशमादि शून्य व्यक्ति के परिणाम! “कहाँ काग वाणी, कहाँ कोयल की टेर है।”

सम्यक्त्व के अष्ट अंग कहे गए हैं- नि शक्ति नि काक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य तथा प्रभावना। इन गुणों की दृष्टि से भी आचार्य महाराज का जीवन महत्त्वपूर्ण था। सिंधु में जैसे लहरे दृष्टिगोचर होती थीं। आचार्य महाराज सदृश आत्मा ही सम्यक्त्व तथा सयम के प्रसाद से स्वर्ग के सुखों को भोगकर वहाँ से चलकर मोक्ष प्राप्त करती है। मोक्ष-पाहुड में कुदकुद स्वामी ने लिखा है-

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहड डदत्त ।

लोयतिय-देवत्त तत्थ चुदा णिव्वुदि जति ॥७७॥

इस पचमकाल मे भी रत्नत्रयधारी मुनीश्वर अपनी आत्मा का ध्यान करके डूढ़ पद अथवा लौकान्तिक देव का पद प्राप्त करके वहाँ से चयकर मोक्ष पाते हैं।

अपूर्व जीवन

विचारक व्यक्ति आचार्य महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाले ८१० पृष्ठों वाले 'चारित्रक्रवर्ती' ग्रन्थ और इस 'आध्यात्मिक ज्योति' के माध्यम से उनके लोकोत्तर जीवन की एक सुमधुर झाकी प्राप्त कर करता है। यद्यपि वे गुरुदेव चले गए। अब उनका पुनर्दर्शन स्वप्न मे भी दुर्लभ हो गया फिर भी उनके जीवन की घटनाओं पर गर्भीरता पूर्वक दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि आचार्य ज्ञातिसागर महाराज कितने महान् थे, कितने तेजस्वी थे, कितने पवित्र थे, कितने जितेन्द्रिय थे कितने बड़े परीषह-विजेता थे, कितने बड़े सद्धर्म-प्रभावक विभूतिमान पुरुषसिंह थे? उनकी छत्तीस दिन पर्यन्त सल्लेखना ने पापी, पतित हीनाचरणी खलराजों के अन्त करण पर भी उनकी पवित्रता तथा श्रेष्ठता की मुद्रा अंकित कर दी। छत्तीस गुणवाले आचार्य परमेष्ठी की छत्तीस दिवसीय समाधि अलौकिकता पूर्ण थी।

सप्राण समयसार

उनकी सल्लेखना के पैंतीसवे उपवास के दिन मैं उनके चरणों के समीप तीन घण्टे बैठा था। उस समय का दृश्य आज भी अन्त करण मे स्पष्ट रूप से अंकित है। ऐसा लगता था कि मैं जीवित रत्नत्रय के समीप बैठा हूँ। सचेतन समयसार के दर्शन कर रहा हूँ। अचेतन, पौद्गलिक के नहीं। अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय मे हिंसादि का पूर्ण त्याग करने वाले मुनीश्वर को समयसार स्वरूप लिखा है। उनके शब्द हैं-

हिसातोऽनृतवचनात्स्तेयादब्रम्हत. परिग्रहत. ।

कात्स्न्यैकदेशविरतेश्चारित्रं जायते द्विविधम् ॥४०॥

निरत. कात्स्न्यनिवृत्तौभवति यति समयसारभूतोऽयम् ।

यात्वेकदेशविरतिर्निरतस्तस्यामुपासको भवति ॥४१॥

हिसा, असत्यवचन, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का परिपूर्ण तथा आशिक त्याग से चारित्र दो प्रकार का होता है। पूर्णरीति से हिसा आदि का त्याग करने वाला दिगम्बर साधु समयसार स्वरूप है। जो हिसादि का एकदेश रूप त्याग करता है, उसे उपासक कहते हैं।

साध्य तत्त्व चीतरागता

जो लोग व्यवहार-निश्चय के द्वन्द्व में उलझे रहते हैं, उनको अमृतचन्द्र सूरि के ये शब्द प्रकाश प्रदान करेंगे, कि व्यवहार तथा निश्चय नाम की दो दृष्टियाँ पदार्थ के स्वरूप को ग्रहण करने के लिए हैं। वे साधन-रूप हैं, वे स्वयं साध्य नहीं हैं। उनका सम्यक् अवबोध प्राप्त कर रागद्वेष की विषमता का त्याग कर आंतरिक साम्यभाव अथवा मध्यस्थ वृत्ति की उपलब्धि जिनेन्द्र की तत्त्वदेशना का सार है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखा है-

व्यवहार-निश्चयी यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थ ।

प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकल शिष्यः ॥८॥

व्यवहारनय तथा निश्चयनय इन दो पक्षों से परे समयसार है। इस विषय में कुदकुद स्वामी के समयसार के ये शब्द बड़े मार्मिक हैं-

कर्मं बद्धमबद्ध जीवे एव तु जाण णयपक्खं ।

पक्खातिक्कतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४२॥

जीव में कर्म बँधे हैं अथवा नहीं बँधे हैं? इस प्रकार की दो दृष्टियों को नय पक्ष जानो। जो दोनों पक्षों के परे कहा गया है, वह समयसार है।

धर्म के सूर्य

मैंने आचार्य महाराज के चरणों के समीप अनेक वर्ष बैठकर उनका जीवन निकट से देखा है, उसका गहरा अध्ययन किया है। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि वे सचमुच रत्नत्रय धर्म के सूर्य थे। सूर्योदय के समक्ष नक्षत्र मालिका का अस्तित्व रहते हुए भी दर्शन नहीं होता, ऐसी ही स्थिति उन गुरुदेव के समक्ष अनेक आध्यात्मिक विभूति कहे जाने वालों की होती थी। वह ज्योति लोकोत्तर थी।

बाह्यार्थ परित्याग का हेतु

कुछ लोग गृहस्थावस्था में रहते हुए और इन्द्रियों की दासता करते हुए मोह-विजेता बनने को तथा रागद्वेष रूप शत्रुओं को पछाड़ने का मधुर स्वर आलापते हैं, उनको गुणभद्रस्वामी के आत्मानुशासन में प्रतिपादित ये शब्द ध्यान में रखने चाहिये-

रागद्वेषौ प्रवृत्ति स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम् ।

तौ च बाह्यार्थ-सबद्धौ तस्मात्ताञ्च परित्यजेत् ॥२३७॥

गग तथा द्वेष को 'प्रवृत्ति' शब्द में मकीर्तित करत है उनक त्याग का 'निवृत्ति' कहते हैं। वे गग-द्वेष वाता पदार्थों में सम्बन्धित हैं। इसमें वाता पदार्थों का परित्याग कर।

इस आचार्य वाणी में यह स्पष्ट हो जाता है कि धन, धान्यादि वाता पदार्थों का बिना परित्याग किए जो गग-द्वेष के क्षय का स्वप्न देखते हैं, वे वास्तविक वीतगता का साक्षात् नहीं स्वप्न में भी नहीं प्राप्त कर सकते। इस प्रकार में सर्व परिग्रह त्यागों, महायोगी, बालब्रह्मचारी, साधुगज, आचार्य शान्तिमाग महागज की विशिष्टता प्रत्येक विचारक मुमुक्षु के हृदय में अंकित हो जाती है।

मार्दव-मूर्ति

आचार्य महागज के चरणों के समीप बैठने पर ऐसा लगता था, कि हम जीवित धर्म के समीप बैठे हैं। वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चाग्रि की साक्षात् प्रतिमा लगते थे। जो धर्म की व्याख्या 'उत्तम खमादि-दहविहो-धम्मो' करते हैं वे आचार्यश्री को उत्तमक्षमा मार्दव, आर्जव, मत्त, शौच, मयम तप, त्याग आकिचन्य तथा ब्रह्मचर्य रूप दशविध धर्म की मूर्ति रूप में पाते थे। इतने महान् होते हुए भी वे अपने को सबसे छोटा साधु मानते थे। जब मैं सन् १९५२ में उनका चरित्र लिखने के उद्देश्य से उनसे कुछ प्रश्न पूछने गया था, तब उन्होंने कहा था, "मैं सबसे छोटा साधु हूँ मेरा चरित्र लिखने में अपना समय व्यय क्यों करते हो?" उनकी दृष्टि उन ऋद्धिधारी मुनीश्वरों पर रहा करती थी, जिनकी वे सर्वदा अभिवदना किया करते थे। ऐसी दृष्टि रहने से उनमें 'अहकार' का रोग नहीं पाया जाता था। आज जहाँ तत्त्व की वास्तव में उपलब्धि से शून्य होते हुए भी अनेक व्यक्ति अपने को आत्मज्ञों का चूड़ामणि समझ अहकार-मूर्ति बनकर अविवेकी वर्ग द्वारा स्तुति पादार्चना आदि को प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य अनुभव करते हैं वहाँ गुणराशि होते हुए भी आचार्य महाराज मार्दव मूर्ति थे।

आध्यात्मिक प्रहरी

वे इस परम सत्य को भली प्रकार जानते थे, कि मोक्षमार्ग का मूल भेद-विज्ञान है। इस महान् विद्या की प्राप्ति हेतु वे आत्मचित्तन के लिए प्रेरणा देते थे, तथा आध्यात्मिक, करुणामूर्ति-प्रहरी के रूप में जीव के सयम-रत्न को चुराने वाले विषय-कषायों से सावधान रहने के लिए सदा सदाचार की ओर भी वे लोगों का ध्यान आकर्षित करते थे। उनका अनुभव महान् था, वे नरभव की दुर्लभता, अपूर्वता तथा महत्ता को पूर्णतया जानते थे,

साथ ही जीवन की क्षणिकता से भी वे अपरिचित नहीं थे। कवि ने ठीक ही कहा है -

आयु घटत है रातदिन ज्यो करोत ते काठ ।

हित अपना जल्दी करो पडा रहे सब ठाट ॥

इसलिए वे गुरुदेव अपने पास आने वालों को व्रतादि दान द्वारा उपकृत करते थे। उनका आत्मतेज तथा तपस्या का प्रभाव इतना अधिक था, कि उनके पास आने वाला भव्य जीव स्वयमेव उनसे कुछ-न-कुछ व्रत नियम लेता था।

व्रतों के उपदेश का हेतु

वे कभी-कभी कहते थे, “यह निकृष्ट काल है। महान् ज्ञानियों का अभाव है, जो वस्तु का मार्मिक स्वरूप समझाकर अनादि अविद्या को दूर करने में मार्ग दर्शन करते। यदि तुमने व्रतो को धारण कर लिया, तो उससे देवरूप में जन्म लेकर विदेह में तीर्थंकर सीमधर भगवान के समवसरण में पहुँचकर उनकी दिव्यध्वनि सुनकर आत्म-अनात्म का रहस्य समझ सकोगे। यदि असयमी की अवस्था में मरण कर तुमने हीन पर्याय प्राप्त कर ली, तो तुम्हें कष्ट भोगना पड़ेगा।”

आश्चर्यप्रद व्यक्तित्व

आचार्य महाराज की वाणी में जादू था। जहाँ छोटा सा भी नियम लेना असंभव दिखता है, वहाँ उनके प्रभाव से संपूर्ण परिग्रह का त्याग करने वाले अनेक महामुनि दिखने लगे। श्रेष्ठ सयम की ओर लोगों का मन आकर्षित करने का अत्यन्त कठिन काम सरल हो गया। उन्होंने उच्च मुनि परंपरा की पुनः प्राणप्रतिष्ठा की। उनके ही व्यक्तित्व का प्रभाव है, जो उनके स्वर्गवासी बनने के पश्चात् भी अनेक स्त्री-पुरुष उच्च सयम को स्वीकार कर मनुष्य जन्म को सफल करते हुए सर्व-साधारण का जीवन सुवास-सपन्न कर रहे हैं। चारित्र्य रूपी चक्र को संचालित करते हुए वे ऋषिराज धर्म के चक्रवर्ती होते हुए भी चारित्र्य चक्रवर्ती रूप में दृष्टिगोचर होते थे।

प्रतिकूल वातावरण

वासनाओं पर विजय प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है। महापुराण में बताया है कि भरत चक्रवर्ती ने स्वप्न में शुष्क वृक्ष देखा था। उसका फल भगवान ऋषभदेव ने यह कहा था -

“पुंसां स्त्रीणां च चारित्र्यव्युत्तिः शुष्कद्रुमेक्षणात्।” (७९, पर्व ४१) हे

भरत! तुमने जो स्वप्न में सूखा वृक्ष देखा है, उससे यह सूचित होता है, कि पचमकाल में भरतक्षेत्र के पुरुषों तथा सियों के चरित्र में पतन होगा।

युग-निर्माता

वर्षा ऋतु में यत्र तत्र जल का प्रवाह ही नयनगोचर हुआ करता है, इसी प्रकार आज जहाँ देखो वहाँ भ्रष्टाचार तथा असयम पूर्ण प्रवृत्ति दिखती है, ऐसे वातावरण में सयम का भाव लोगों के अन्तःकरण में अंकित करना आचार्य महाराज की अपूर्व सामर्थ्य को सूचित करता है। उन्होंने एक नवीन युग का निर्माण किया था। यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि आचार्य महाराज ने भद्र परिणामी जीवों को आचार-विचार शुद्धि के क्षेत्र में अद्भुत जागृति कराई। सैकड़ों वर्षों से गृहस्थ लोग मुनि जीवन को वर्तमान काल में असंभव मान बैठे थे। विद्वान् तथा कवि लोग अपनी रचनाओं में हीन सहनन आदि का विचार किए बिना वज्रवृषभ सहननधारी चतुर्थकालीन मुनियों को दृष्टि-पथ में रखकर मुनिजीवन को असंभव सोचा करते थे। प्रतिमाधारी श्रावक का पद प्राप्त करना अत्यन्त कठिन बताया जाता था। गृहस्थों को यह पता नहीं था, कि कौन क्रियाएँ मुनिजीवन से संबन्ध रखती हैं और किन क्रियाओं का पालन श्रावकाचार का अंग है। दक्षिण प्रान्त में कहीं-कहीं दिगम्बर मुनि थे, तो वे मूलगुणों का पालन भी नहीं जानते थे।

अभयवाणी

सयम के क्षेत्र की अद्भुत स्थिति थी। सदाचार के मार्ग में ऐसी कटकाकीर्ण परिस्थिति में आचार्य महाराज ने अपने जीवन तथा वाणी द्वारा भव्यों का अवर्णनीय कल्याण किया। उन्होंने कहा, “घबड़ाते क्यों हो, यह पचमकाल का बालकाल है। अभी पचमकाल के केवल अठ्ठाई हजार वर्ष व्यतीत हुए हैं। शेष साढ़े अठारह हजार वर्ष पर्यन्त धर्म रहेगा। तब तक मुनिजीवन रहेगा। पचमकाल इक्कीस हजार वर्ष का भगवान ने कहा है। इस काल के अंत तक मुनि पाए जायेंगे, अंतिम मुनि के अवधिज्ञान भी पाया जायेगा। ऐसा आगम का आदेश है। जो जीव दर्शन मोह के तीव्र उदय से आक्रान्त हैं, वे इन बातों में श्रद्धा नहीं करते।”

आचार्य महाराज ने उपलब्ध विपुल ग्रंथ राशि का खूब मनन-चितन किया था। बड़े-बड़े अभिमानी शास्त्री लोग उनके समीप आकर उनसे प्रकाश प्राप्त किया करते थे। आचार्य महाराज कहते थे “आगम कहता है पचमकाल के अंत तक मुनिधर्म रहेगा, इसके विपरीत जो श्रद्धान करत हुआ यह कहता फिरता है, कि इस काल में मुनि नहीं हों

सकते, वह वास्तव में मिथ्यात्वी है, क्योंकि वह शान्ति की आज्ञा के विपरीत कथन करता है।”

स्मरण योग्य कथन

आचार्य महाराज ने कहा था कि-“चतुर्थकाल में हजार वर्ष तप करने पर जितनी निर्जग होती है, उतनी निर्जरा इस हुण्डावसर्पिणी पंचम काल में एक वर्ष तपस्या द्वारा सम्पन्न होती है।” क्योंकि आज तप करने में महान् आत्मबल चाहिए।

इस सम्बन्ध में जब मैंने गुरुदेव से शास्त्राधार पूछा, तब उन्होंने आचार्य देवसेन रचित भावसंग्रह की यह गाथा बताई थी-

वरिस-सहस्सेण पुरा जं कम्प हणइ तेण काएण ।

ते सपइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीणसंहणणे ॥१३१॥

पहले मुनि लोग हजार वर्ष तप द्वारा जो कर्मों की निर्जरा करते थे, वह आज इस हीन सहननयुक्त शरीर द्वारा एक वर्ष में सम्पन्न करते हैं।

उक्त ग्रन्थ के ये शब्द भी आगम-प्रेमियों के स्मरणयोग्य हैं -

संहणण अइणिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो ।

तहवि हु धीरा पुरिसा महव्वभरधरण-उच्छहिया ॥१३०॥

यह दु षम काल है। इसमें सहनन अत्यन्त हीन होता है। मन की चंचलता का ठिकाना नहीं है, फिर भी धैर्य सम्पन्न पुरुष महाव्रतों के भार को धारण करने में उत्साहित होते हैं, यह आश्चर्य की बात है।

आचार्य महाराज ने इस सम्बन्ध में ‘पर-उपदेश-कुशल’ पंडित का काम न कर स्वयं घोर तपस्या द्वारा यह बता दिया कि साहसी तथा श्रद्धालु आत्मा आज भी विश्व को चकित करने वाले श्रेष्ठ समय की समाराधना कर सकता है। जिस युग में पाप, असयम, भ्रष्ट आचार-विचार की वैतरणी बह रही हो, उसमें समय तथा उज्ज्वल आचरण की गंगा को प्रवाहित करना इन्हीं साधुराज के भगीरथ-प्रयत्न का सुफल है। यथार्थ में उन्होंने पंचमकाल में चतुर्थकाल की झाँकी उपस्थित कर दी।

महान् उपकारी

आचार्य वीरसागर महाराज ने मुझसे कहा था - “आचार्य महाराज ने समय के क्षेत्र में अवर्णनीय कार्य किया। उन्होंने जीवों का जितना उपकार किया उसका कथन

करना हमारी शक्ति के परे है।” कहते ने उनके दर्शन मात्र से प्रेरित हो श्रष्ट संयम लिया था। नकल मयमी महाप्रभावक माधु आचार्य पायसागर महागज के जीवन की दिशा उनके दर्शनमात्र से बदली थी।

मनवनिधि अनिशय क्षेत्र (कोल्हापुर) में पायसागर महागज ने कहा था—“मैं तो पायसागर था, व्यमनों में लौन था। जप में छुड़ाकर मेरे गुण ने मुझे पायसागर (क्षीरसागर) बना दिया।” नम व्यमन के साथ श्रेष्ठ नाटककार के व्यमन वाले विलासमूर्ति व्यक्ति का दिगम्बर तपस्वी माधु बनकर रत्नत्रयधर्म की प्रभावना करना तथा स्व-परहित करते हुए अग्ने गुण के पदचिह्नों पर चलकर पायसागर महागज का समाधि-मरण करना इसी आध्यात्मिक ज्योति का अद्भुत प्रभाव था। आज अध्यात्मवादी बनकर प्रमादी जीवन की प्रेरणा दे स्वच्छन्द प्रवृत्ति का पोषण करने वाले भी जीव दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उन लोगों के समक्ष जब भी आचार्य शान्तिसागर महागज के सुश्रद्धा समन्वित तप पुनीत पुण्य जीवन की चर्चा की जाय, तो उनकी वही अवस्था हुए बिना न रहे, जो शृगाल की सिंह की छवि मुनकर होती है।

आचार्य महाराज अध्यात्म के मूर्धन्य थे। वे संयम के सिंह थे। उन्होंने अनेकान्तमयी धर्म की देशना द्वारा कितना कल्याण नहीं किया? युद्धभूमि में जाने वाले सैनिक के लिए वीर-गाथा अत्यन्त उत्साह प्रदान करती है, इसी प्रकार मोह के अखण्ड जामन के विन्दु, काम-क्रोध-तृष्णा गेह में जर्जरित जगत् के मोह के कुशामन को उच्छेद कर मम्यक् चाग्रि की महिमा का प्रसार करने वाले चाग्रि चक्रवर्ती माधुराज के उपकारों को स्मरण करता हुआ मुमुक्षु मानव महान् माहम, धैर्य, उत्साह तथा प्रेरणा को प्राप्त करता रहेगा।

इस युग में विज्ञापन का आश्रय पा तथा धनिकों की कृपा के बल पर अध्यात्म विद्या से अपरिचित असंयमी लोग भी महान् योगी, संत-शिरोमणि बनाए जाते हैं, उनके समक्ष आचार्य महाराज के जीवन की विविध प्रवृत्तियों लाई जाती हैं, तब उनकी वही स्थिति होती है, जो मूर्खोदय होने पर अधकार की होती है।

आचार्य महाराज का जीवन युग-युग तक जगत् को आध्यात्मिक प्रकाश तथा उज्ज्वल आचार के लिए प्रबल प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। वास्तव में, वे मोहान्धकार संकुल संसार के मध्य आध्यात्मिक ज्योति-स्वरूप अनुपम विभूति रहे। उनकी पावन स्मृति तथा उनकी दयामयी धर्मदेशना मुमुक्षुवर्ग को मदा कल्याणभाजन बनावेगी। उनका

अन्त बाह्य जीवन रत्नत्रय धर्म से परिपुष्ट था। बहिरात्मा की बात ही दूसरी, बड़े योगीजन भी जिनके जीवन की श्रेष्ठता की गुण-गाथा गाते थे, वे साधुराज, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर महाराज स्वर्गीय निधि बन गए, फिर भी उनके समान उनकी पावन स्मृति भी अमर रहेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

नियमसार में कुंदकुंद स्वामी ने कहा है, “सम्पत्तग्सणिमित्त जिणसुत्त” (गाथा ५३) जिनागम मम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त कारण है। शास को साधु का नेत्र कहा है, “आगमचक्खू साहू” (प्रवचनसार)

राग, द्वेष, मोह, माया, मद, मत्सर, काम, क्रोधादि शत्रु जब साधक की आत्मा में विकार उत्पन्न करने को तत्पर होंगे, तब आचार्य शातिसागर जी के नाम तथा आदर्श का स्मरण आत्मा को अपार साहस, धैर्य तथा सामर्थ्य प्रदान करेंगे।

शिखर जी पर उपदेश

श्रेष्ठ तीर्थ सम्पेदशिखर पर कहे गए उन निर्ग्रन्थ सद्गुरुदेव के ये मार्मिक शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे- “सयम पालन करने में भय नहीं करना चाहिए। आत्मा कभी नहीं मरती। चारित्र को उज्ज्वल रखकर कभी भी मरना अच्छा है। चारित्र को मलिन बनाकर दीर्घजीवी बनना ठीक नहीं है।” उन्होंने इस उपदेश के अनुसार आचरण करके यह स्पष्ट कर दिया, कि जीवन निधि की अपेक्षा सयम रत्न विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन ऋषिराज का दिव्यजीवन आचार्य पूज्यपाद के इन शब्दों की ओर समस्त विश्व का ध्यान आकर्षित करता हुआ प्रतीत होता है -

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।

नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म-संग्रहः॥

— शरीर विनाशशील है, वैभव अल्पकाल स्थायी है, मृत्यु सदा समीप है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए।

शिक्षितों को उपदेश

उन्होंने जहाँ सदाचार को प्रेरणा दी, वहाँ सद्विचार के लिए भी उनकी महान् देन रही है। शिक्षा के विषय में उनका कथन था, जो धोबी की तरह दूसरों के वस्त्र धोता फिर और मलिनता का परित्याग न करे, ऐसा ज्ञानी बनना ठीक नहीं है। ज्ञानी का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने जीवन को सदाचार समलकृत भी बनावे।

शास्त्रदान

वे शास्त्र-दान हेतु बहुत प्रेरणा देते थे। उन साधुराज का कथन था “जिनागम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है। गरीब व्यक्ति तथा साधु सन्यासी पैसा खर्चकर शास्त्र को खरीद नहीं सकते। इससे समर्थ श्रीमानो को उपयोगी शास्त्रों को प्रकाशित कर मदिरो, त्यागियो आदि को बाँटना चाहिए”। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर गुरुदेव के उपदेश मे स्थापित सस्था ने सिद्धान्त शास्त्रों का उद्धार कराने के सिवाय अनगार धर्माभूत, समयसार, उत्तरपुराण, मूलाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि बड़े-बड़े ग्रंथों को छपाकर एव बिना मूल्य देकर अपूर्व ज्ञान-प्रसार का कार्य किया।

आचार्य महाराज सदा अनेकान्त दृष्टि का पोषण करते रहे हैं। वे स्याद्वाद रूपी उपवन की रक्षा करने वाले श्रुतभक्त सत्पुरुष थे। उनकी महिमा का जितना वर्णन किया जाय उतना थोडा है। यथार्थ मे वे गुरुदेव ससार सिधु मे डूबते हुए जीवों की रक्षा करने वाले नाविक थे। वे यद्यपि स्वर्गीय निधि बन गए, फिर भी उनकी पवित्र स्मृति मुमुक्षु वर्ग का अपार कल्याण करती रहेगी। उच्च समाधिमरण द्वारा अपने दुर्लभ नर-जन्म को कृतार्थ करने वाले परम गुरु क्षपकराज शान्तिसागर महाराज के पुण्य चरणों को शतश प्रणाम हैं। जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है -

गुरुमूले यतिनिचिते चैत्यसिद्धातवार्थिसद्घोषे।

मम भवतु जन्मजन्मनि संन्यसनसमन्वित मरणम् ॥

-हे देव! जहाँ अनेक साधुओं का समुदाय विद्यमान हो, ऐसे आचार्य के समीप अथवा जिन प्रतिमा के समीप अथवा जहाँ सिद्धान्त रूपी समुद्र की पुण्य घोषणा श्रवणगोचर होती हो, ऐसे स्थानों मे जन्म-जन्म मे मेरे समाधि सहित मरण हो।

कामना

समाधिमरण होहु मज्झ।

मुझ को समाधिमरण प्राप्त हो।

आचार्य महाराज का अंतिम अमर संदेश

परम पूज्य आचार्य श्री शातिसागर महाराज ने कुथलगिरि में आमरण अनशन के २६ वें दिन तारीख ८ सितम्बर को शाम के ५ बजे मराठी में मानव कल्याण के लिए जो उपदेश किया, वह रिकार्ड किया जा चुका है। उसमें उन्होंने कहा था—

मानव कल्याण का आधार 'सत्य और अहिंसा

“ॐ नमः सिद्धेभ्यः । पंच भरत, पंच ऐरावत के भूत भविष्यत् काल सम्बन्धी भगवानों को नमस्कार हो । तीस चौबीसी भगवानों को, श्री सीमन्धर आदि तीर्थकर भगवानों को नमस्कार हो । ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त तीर्थकरों के १४५२ गणधर देवों को नमस्कार, चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नमस्कार, चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को नमस्कार । अन्तकृतकेवलिभ्यो नमोनम । प्रत्येक तीर्थकर के तीर्थ में होने वाले १०-१० घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरों को नमस्कार हो ।

ग्यारह अंग चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महासमुद्र है । उसका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं हैं, उसके ज्ञाता केवली श्रुतकेवली भी अब नहीं हैं । उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी, सरस्वती 'श्रुत देवी' अनन्त समुद्र तुल्य है । उसमें कहे गये जिन-धर्म को जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है । उसको अनन्त सुख मिलता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा नियम है । एक अक्षर ॐ है । उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवों का कल्याण हुआ है । दो वन्दर लड़ते-लड़ते सम्प्रेक्षितस्वर से स्वर्ग गये । सेठ सुदर्शन ने उच्च पद पाया । सप्त व्यसनधारी अजन चोर स्वर्ग गया है । कुत्ता महा नीच जाति का जीव जीवन्धरकुमार के णमोकार मन्त्र के उपदेश से देव हुआ । इतनी महिमा जैनधर्म की है, किन्तु (श्वास लेते हुए) जैनियों की अपने धर्म में श्रद्धा नहीं है ।

जीव और पुद्गल पृथक् है

अनन्त काल से जीव पुद्गल से भिन्न है, यह सब लोग जानते हैं पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है, जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड़ है, इसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञान-दर्शन-चैतन्य जीव में है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, पुद्गल में हैं, दोनों के गुण, धर्म अलग-अलग हैं। पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष से पुद्गल का अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही होता है, पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पंच पापों में पड़ा है। दर्शनमोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिए? सुख-प्राप्ति की इच्छा है, तो दर्शनमोहनीय का घात करो। सम्यक्त्व धारण करो। चारित्रमोह का नाश करो। सयम धारण करो। दोनों मोहनीय का नाश करो। आत्मा का कल्याण करो। यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव ससार में फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो। सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समयसार, नियमसार, पचास्तिकाय, अष्टपाहुड, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े ग्रन्थों में हैं, पर इन पर श्रद्धा कौन करता है? आत्म-कल्याण वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः ।

कर्म-निर्जरा का साधन

तुम्हें क्या करना चाहिए? दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्मचिन्तन से दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा भी आत्म-चिन्तन से होती है।

दान से, पूजा से, तीर्थयात्रा से पुण्यबन्ध होता है। हर धर्म कार्य से पुण्य का बन्ध होता है, किन्तु कर्मनिर्जरा का साधन आत्मचिन्तन है। केवलज्ञान का साधन आत्मचिन्तन है। अनंत कर्मों की निर्जरा का साधन आत्मचिन्तन है। आत्मचिन्तन के सिवाय कर्म-



, आचार्यश्री अन्तिम अमर सन्देश देते हुए

निर्जरा नहीं होती है। कर्मनिर्जरा बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता। क्या करें? शास्त्री में आत्मा का ध्यान उत्कृष्ट ६ घड़ी, मध्यम ४ घड़ी और जघन्य दो घड़ी कहा है। कम-से-कम १०-१५ मिनट ध्यान करना चाहिए। हमारा कहना यह है कि कम-से-कम ५ मिनट तो आत्मचितन करो। इसके बिना सम्यक्त्व नहीं होता। सम्यक्त्व के बिना ससार-भ्रमण नहीं छूटता, जन्म-जरा-मरण नहीं छूटते। सम्यक्त्व तथा सयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर ६६ सागर यहाँ रहोगे। चारित्रमोहनीय का क्षय करने के लिए सयम धारण करना चाहिए, इसके बिना चारित्रमोहनीय का क्षय नहीं होता। सयम धारण करने से डरो मत, सयम धारण किये बिना सातवों गुणस्थान नहीं होता और सातवे गुणस्थान के बिना उच्च आत्म अनुभव नहीं होता। वस्त्र-धारण में सातवों गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं

ॐ सिद्धाय नमः। समाधि दो प्रकार की है, एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी, अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिए मुनिपद पहले धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो, तो शुद्ध सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। आत्म-अनुभव के सिवाय सम्यक्त्व नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है, फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व आत्म-अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्पसमाधि मुनिपद धारण करने पर होती है। सातवे गुणस्थान से बारहवे पर्यन्त निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवे गुणस्थान में केवलज्ञान होता है ऐसा शास्त्र में कहा है। यह विचार कर डरो मत कि क्या करें? सयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, सयम और सम्यक्त्व के बिना कल्याण नहीं है। पुद्गल

जयपुर

और आत्मा भिन्न हैं, यह ठीक-ठीक समझो। तुम सामान्य स्त्व से जानते हो, भाई-बन्धु, माता-पिता पुद्गल से सम्बन्धित हैं, उनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव अकेला है, बाबा (भाइयो)। जीव का कोई नहीं है। जीव भव-भव में अकेला जावेगा। देवपूजन, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान ये धर्मकार्य हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये ६ कर्म कहे गये हैं। इनसे होने वाले पापों को क्षय करने को उक्त धर्मक्रिया कही हैं, इनसे मोक्ष नहीं है। मोक्ष किससे मिलेगा? केवल आत्म-चितन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता।

जिनवाणी का माहात्म्य

भगवान की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो। इसके एक-एक शब्द से मोक्ष पा सकोगे। इस पर विश्वास करो। सत्यवाणी यही है, एक आत्मचितन से सब साध्य है और कुछ नहीं है। बाबा (भाई) राज्य, सुख, सम्पत्ति, सतति सब मिलते हैं, मोक्ष नहीं मिलता है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चितन है। इसके बिना सद्गति नहीं होती है।

सारांश — 'धर्मस्य मूल दया' प्राणी का रक्षण दया है। जिनधर्म का मूल क्या है? 'सत्य और अहिंसा।' मुख से सब सत्य अहिंसा बोलते हैं, मुख से भोजन, भोजन कहने से क्या पेट भरता है? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए। बाकी सब काम होंगे। सत्य-अहिंसा पालो। सत्य में सम्यक्त्व है। अहिंसा में दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की बात है। सम्यक्त्व धारण करो, सयम धारण करो। इसके बिना कल्याण नहीं होता।' (दिनांक ८-९-५५ समय ५-१० से ५ ३२ शाम।)

ॐ ॐ ॐ

